ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
श्रद्धा का अंकुरण —(अध्याय—9) प्रवचन—पहला
श्रीमद्भगवद्गीता
अथ नवमोऽध्याय:

श्रीभगवानवाच

हदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसीहतं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।1।।
राजविद्या राजगुह्मं यीवप्रीमदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।2।।
अश्रद्द्धानाः पुरूषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्कन्ते मृत्युसंसारवर्त्मीन।।3।।
श्रीकृष्ण भगवान बोले हे अर्जुन, तुझ दोष— दृष्टि रहित भक्त के लिए हम परम गोपनीय ज्ञान को रहस्य के सहित कहूंगा? कि जिसको जानकर तू दुखरूप संसार से मुक्त हो जाएगा। यह ज्ञान सब विद्याओं का राजा तथा सब गोपनीयों का भी राजा एवं अति पवित्र उत्तम प्रत्यक्ष फल वाला और धर्मयुक्त है, साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है। और हे परंतप इस तत्व—ज्ञान— रूप धर्म में श्रद्धारहित पुरुष मेरे को प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार— चक्र में भ्रमण करते हैं।

जीवन को देखने की एक दृष्टि नकारात्मक भी है और एक दृष्टि विधायक भी। जीवन को ऐसे भी देखा जा सकता है कि उसमें पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई न पड़े, और ऐसे भी कि परमात्मा के अतिरिक्त कोई पदार्थ शेष न रहे। जो कहते हैं कि जीवन मात्र पदार्थ है, वे केवल इतना ही कहते हैं कि उनकी देखने की दृष्टि नकारात्मक, निगेटिव है। जो कहते हैं कि जीवन पदार्थ नहीं, परमात्मा है, वे भी इतना ही कहते हैं कि उनकी देखने की दृष्टि विधायक, पाजिटिव है।

इस सूत्र में उतरने के पहले इन दो दृष्टियों को ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि जगत वैसा ही दिखाई पड़ता है, जैसी हमारी दृष्टि होती है। जो हम देखते हैं, वह हमारी आख की खबर है। जो हम पाते हैं, वह हमारा ही रखा हुआ है। जो हमें दिखाई पड़ता है, वह हमारा ही भाव है, और हमारे ही भाव का प्रत्यक्षीकरण है। विज्ञान सोचता था कि मनुष्य तटस्थ होकर भी देख सकता है। और वितान की आधारशिला यही थी कि व्यक्ति तटस्थ होकर

निरीक्षण करे—कोई भाव न हो उसका, कोई दृष्टि न हो उसकी—तभी, सत्य क्या है, वह जाना जा सकेगा। लेकिन विगत तीन सौ वर्षों की वैज्ञानिक खोज ने विज्ञान की अपनी ही आधारशिला को डगमगा दिया है। और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई उपाय ही नहीं है कि व्यक्ति दृष्टि को छोड्कर और तथ्य को देख सके।

एक बहुत कीमती विचारक पोल्यानी ने इस सदी की महत्वपूर्ण किताब लिखी है। उस किताब को नाम दिया है, पर्सनल नालेज। और पोल्यानी का कहना है कि कोई भी ज्ञान व्यक्ति से मुक्त नहीं हो सकता। जानने में जानने वाला समाविष्ट हो जाता है। जो हम देखते हैं, उसमें हमारी आख की छाप पड जाती है। जो हम छूते हैं, छूने से हमें जो अनुभव होता है, वह वस्तु का ही नहीं, अपने हाथ की क्षमता का भी है। जो मैं सुनता हूं उस सुनने में मेरे कान पर पड़ी हुई ध्वनियों की चोट ही नहीं, मेरे कान की व्याख्या भी सम्मिलित हो जाती है।

व्याख्यारहित देखना असंभव है। कोई उपाय नहीं है। हम कितनी ही चेष्टा करें, जो निरीक्षण कर रहा है, वह बाहर नहीं रह जाता, वह भीतर प्रविष्ट हो जाता है। अगर आप एक वृक्ष के पास से गुजरते हैं और वह वृक्ष आपको सुंदर दिखाई पड़ता है, तो इसमें वृक्ष का सौंदर्य तो है ही; आपकी देखने की क्षमता, आपकी व्याख्या, आपके मनोभाव, आपकी मनःस्थिति, आप भी सम्मिलित हो गए। क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि जब आप दुखी हों, तब यह वृक्ष सुंदर दिखाई न पडे। और ऐसा भी होगा कि जब आप आनंदित हों, तो यह वृक्ष भी नाचता हुआ दिखाई पड़ने लगे।

और जब एक चित्रकार वृक्ष के पास से निकलता है, तो उसे जो रंग दिखाई देते हैं, वे गैर—चित्रकार को कभी भी दिखाई नहीं दे सकते। और जब एक कवि उस वृक्ष के पास से निकलता है, तो उस वृक्ष के फूलों में जो काव्य लग जाता है—वह, जिसके पास कवि का हृदय नहीं है, उसे कभी भी अनुभव में नहीं आ सकता है। और उसी वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति दुकानदार की तरह बैठा हो, तो उसे वृक्ष में यह कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा।

तो जब हम वृक्ष को देखते हैं, तो वृक्ष को ही देखते हैं या हम भी उसमें समाविष्ट हो जाते हैं? या कि कोई ऐसा उपाय भी है कि वृक्ष को हम वैसा देख सकें, जैसा वृक्ष अपने में है—स्वयं को

उसके साथ संयुक्त किए बिना?

कुछ लोग सोचते रहे हैं कि यह संभव है। यह संभव नहीं है।

यह बस अप्राकृतिक है। देखने में, देखने वाला प्रविष्ट हो जाएगा। जैसा स्वरूप है जगत का, उसका ही यह हिस्सा है। और अब वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि हमने जो विज्ञान विकसित किया है, वह भी तथ्य कम है, व्याख्या ज्यादा है। जो हम देखते हैं, उसे हम शुद्ध नहीं देखते, वह हमसे सम्मिश्रित हो जाता है।

मनुष्य का कोई भी ज्ञान मनुष्य से मिश्रित हुए बिना नहीं बच सकता है। अगर यह ठीक है, अगर यह सत्य है, तो फिर हम नास्तिक के साथ भी विरोध करने का कोई कारण नहीं पाते। अगर वह कहता है, जगत में ईश्वर नहीं है, तो वह केवल इतना ही कहता है कि मेरी जो दृष्टि है, उससे जगत में ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता है। तब आस्तिक से भी कोई कठिनाई नहीं है किसी को। अगर वह कहता है, मुझे जगत में ईश्वर दिखाई पड़ता है, तो वह असल में भाषा गलत उपयोग कर रहा है। उसे इतना ही कहना चाहिए कि जैसी मेरी दृष्टि है, उसमें मुझे जगत में ईश्वर दिखाई पड़ता है।

कृष्ण ने इस सूत्र की शुरुआत की है, अर्जुन को उन्होंने कहा है, हे अर्जुन! तुझ दोष—दृष्टि रहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय ज्ञान के रहस्य को अब मैं कहूंगा।

दोष—दृष्टि रहित! भक्त की वह व्याख्या है। जब आप किसी व्यक्ति को दुश्मन की तरह देखते हैं, तब आप उसमें जो खोजते हैं, वह दोष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता। ऐसा नहीं कि उसमें दोष ही दोष हैं क्योंकि कल वही आपका मित्र था और आपको दोष दिखाई नहीं पड़े थे। और कल आपने उसे प्रेम की आख से देखा था, और उसमें आपको जो श्रेष्ठ है, उसका दर्शन हुआ था। और आज घृणा की आख से उसी व्यक्ति में जो निकृष्ट है, वह दिखाई पड़ता है। कल आपको उस व्यक्ति में उज्ज्वल शिखर। दिखाई पड़े थे, आज उसी व्यक्ति में अंधेरी खाई दिखाई पड़ती है। कल आपने उसकी ऊंचाई को चुना था, आज आप उसकी नीचाई को चुन रहे हैं। और आप जो चुनना चाहते हैं, वही आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।

इसे ऐसा समझें कि मैं अगर अपने मकान की खिड़की के पास खड़ा हूं। बाहर आकाश में चांद निकला है। मैं चांद को देखूं तो खिड़की मुझे दिखाई नहीं पड़ेगी; खिडकी भूल जाएगी। चांद दिखाई पड़ेगा, आकाश में घूमते हुए बादल दिखाई पड़ेंगे; खिड़की विस्मृत हो जाएगी, खिड़की मौजूद ही नहीं होगी। मेरी दृष्टि से, मेरे दर्शन से खिड़की का विलोप हो जायेगा। लेकिन आप चाहें तो अपनी दृष्टि बदल ले सकते भूल जाएं चांद को, देखें खिड़की को।

जब आप खिडकी को देखेंगे, तो 'चांद पृष्ठभूमि में छूट जाएगा। और अगर आप ध्यानपूर्वक खिड़की को देखेंगे, तो चांद विलीन हो जाएगा; आकाश के बादल खो जाएंगे, बाहर के वृक्ष नहीं हो जाएंगे। खिड़की का चौखटा आपको दिखाई पड़ने लगेगा।

पश्चिम के मनसविद इसे गेस्टाल्ट कहते हैं। वे कहते हैं कि जब भी हम कुछ देखते हैं, तो हम जिस बात पर ध्यान देते हैं, वही हमें दिखाई पड़ता है, और जिस पर हम ध्यान नहीं देते, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। ध्यान ही हमारा अनुभव है।

तो जब मैं एक व्यक्ति को दुश्मन की तरह देखता हूं? तो मुझे कुछ और दिखाई पड़ता है, क्योंकि मेरा ध्यान किन्हीं और चीजों की तलाश करता है, और जब मैं मित्र की तरह देखता हूं, तब उसी। व्यक्ति में मुझे कुछ और दिखाई पड़ता है, मेरा ध्यान कुछ और तलाश करता है। वह जो व्यक्ति बाहर है, उसे तो मैं जानता नहीं। जब भी मैं उस व्यक्ति के संबंध में कुछ भी निष्कर्ष निकालता हूं, तब वह मेरी ही व्याख्या है।

जगत को जो दोष—दृष्टि से देखेगा, जगत में उसे कुछ भी श्रेष्ठ दिखाई नहीं पड़ेगा; सत्य की कोई प्रतीति होती नहीं मालूम पड़ेगी, सौंदर्य का कोई अनुभव नहीं, काव्य की कोई प्रतीति नहीं, कोई पुलक नहीं; नृत्य का उसे कोई भी आभास नहीं होगा। जगत एक उत्सव है, यह उसकी प्रतीति नहीं बनेगी। जगत उसे एक उदास व्यवस्था मालूम पड़ेगी। आंसू उसे दिखाई पड़ सकते हैं, मुस्कुराहटें उसकी आख से खो जाएंगी, ओझल हो जाएंगी। उसे कांटे दिखाई पड़ सकते हैं, फूल? फूल बस तिरोहित हो जाएंगे। और इन सबका जो जोड़ होगा, वही नास्तिक का जगत है।

दोष—दृष्टि से जगत को देखा जाए, तो नास्तिक के दर्शन का जन्म होता है। लेकिन भक्त जगत को और तरह से देखता है।

कृष्ण कहते है कि अब मैं तुझ दोष—दृष्टि रहित भक्त के लिए रहस्य की बात कहूंगा।

वह रहस्य की बात कही ही तब जा सकती है, जब दोष—दृष्टि मौजूद न हो। अन्यथा उसे कहा नहीं जा सकता, क्योंकि कहना व्यर्थ है। क्योंकि कहा भी जाए, तो सुना नहीं जा सकता। अगर अर्जुन अभी दोष देखने की मनोदशा में हो, तो कृष्ण रहस्य की परम गोपनीय बात को कहने में समर्थ नहीं हो सकते। अर्जुन सुन ही न पाएगा।

जीसस ने बार—बार बाइबिल में कहा है, जिनके पास आंखें हों, वे देखें; और जिनके पास कान हों, वे सुन लें, मैं कहे जा रहा हूं, मैं प्रकट किए जा रहा हूं।

जिनसे वे बोल रहे थे, वे अंधे भी नहीं थे और बहरे भी नहीं थे। उनके पास ठीक आपके जैसी ही आंखें थीं, और आपके जैसे ही कान थे। लेकिन जीसस को यह बार—बार कहना पड़ा है कि जिनके पास आख हो, वे देख लें, क्योंकि मैं मौजूद हूं; और जिनके पास कान हो, .वे सुन लें, क्योंकि मैं बोल रहा हूं; जिनके पास हृदय हो, वे अनुभव कर लें, क्योंकि अनुभव सामने साकार है।

कृष्ण कहते हैं, अब मैं गोपनीय बात कह सकूंगा।

आठ लंबे अध्यायों की चर्चा के बाद कृष्ण श्रद्धा के सूत्र पर विचार करना शुरू करते हैं। अब तक वे तर्क की बात कर रहे थे। अब तक वे अर्जुन को समझाने की कोशिश कर रहे थे, क्योंकि अर्जुन नासमझ बने रहने की जिद्द पर अड़ा था। अब तक वे अर्जुन के संदेह काटने में लगे थे, क्योंकि अर्जुन संदेह पर संदेह खड़े किए जाता था। अब तक वे अर्जुन के नास्तिक से संघर्ष कर रहे थे। अब वे कहते हैं, तेरा नास्तिक विसर्जित हुआ। अब तेरी दोष—दृष्टि खो गई। अब तू संदेह से भरा हुआ दिखाई नहीं पड़ता। अब तेरे मन में दुविधा नहीं है। अब तू किसी जिद्द पर अडा हुआ नहीं है। अब तू विपरीत अपेक्षा से सोचेगा नहीं। अब तेरे हृदय का द्वार खुला। अब तू दोष—दृष्टि को छोड्कर देख सकेगा। तो मैं अब तुझसे परम गोपनीय रहस्य की बात कहता हूं।

जब चित्त संदेह से भरा हो, तो क्षुद्र बातें ही कही जा सकती हैं। उन्हें भी कहना मुश्किल है, क्योंकि क्षुद्र बातों पर भी संदेह खड़ा हो जाता है। जब गहन बातें कहनी हों, तो एक आत्मीयता चाहिए, एक इंटिमेसी, एक ऐसा नैकटय, एक ऐसा अपनापन, जहां संदेह भेद खडा नहीं करता है, जहां शंकाएं उठकर बीच में जो नैकटच की शात झील बनी है, उस पर लहरें नहीं उठाती, कोई कंपन नहीं है संदेह का—तभी जो रहस्यपूर्ण है, वह कहा जा सकता है। जरा—सा भी संदेह का कंपन हो, तो रहस्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। कहना व्यर्थ है, क्योंकि सुना नहीं जा सकेगा। बताना फिजूल है, क्योंकि देखा नहीं जा सकेगा।

कृष्ण प्रसन्न होकर इस सूत्र को कहते हैं। इन आठ अध्यायों में उन्होंने निरंतर अर्जुन की बुद्धि से संघर्ष किया है, बुद्धि को काटा है। ताकि बुद्धि हट जाए, तो हृदय उभर आए। और बुद्धि जब तक काम करती है, तब तक हृदय विश्राम करता है। और जब बुद्धि विश्राम पर चली जाती है, तो हृदय सक्रिय हो जाता है। और कुछ रहस्य हैं, जो केवल हृदय से ही समझे जा सकते हैं। ऐसा समझें

कि जो भी रहस्य हैं, वे हृदय से ही समझे जा सकते हैं। क्योंकि हृदय जरा—सी भी भेद की रेखा नहीं खींचता। हृदय निकट आ सकता है, बुद्धि दूर ले जाती है।

अगर दो व्यक्ति बैठे हों और उनके बीच बुद्धि का संबंध हो, तो उनके बीच इतना फासला है, जितना किन्हीं दो आकाश के तारों के बीच है। वे कितने ही निकट बैठे हों, वे एक—दूसरे के गले में हाथ डालकर बैठे हों; लेकिन अगर उनके बीच बुद्धि का आवागमन है, अगर उन दोनों के बीच विचार का लेन—देन है, अगर उनका संबंध बौद्धिक है, इंटलेक्चुअल है, तो वे इतने फासले पर हैं, जितने फासले पर दो बिंदु हो सकते हैं। लेकिन अगर दो दूर के ताराओं पर भी दो व्यक्ति बैठे हों, और उनके बीच विचार का आवागमन नहीं है, और हृदय के द्वार खुल गए हैं, तो वे इतने निकट हैं, जितने निकट कभी भी दो प्रेमी नहीं हुए।

नैकटय, निस्तरंग आत्मीयता का नाम है। जब दोनों के बीच कोई तरंग न उठती हो। जब अर्जुन अर्जुन न रहे और अपनी बुद्धि को तिलांजलि दे दे, तो ही कृष्ण जो रहस्य उसे कहना चाहते हैं, उसके कहने की भूमिका निर्मित होती है, अर्जुन पात्र बनता है।

अब तक उसने उठाए हैं सवाल। सवाल दो तरह से उठाए जाते हैं। एक तो इसलिए कि जो कहा गया है, उसे और गहरे में समझना है, तब सवाल हृदय से आते हैं। और एक इसलिए कि जो कहा गया है, उसे गलत सिद्ध करना है, तब सवाल बुद्धि से उठाए जाते हैं। एक तो तब, जब मैं जानता हूं पहले से ही कि सही क्या है, और उसके आधार पर सवाल उठाए चला जाता हूं। तब वे बुद्धि से उठाए जाते हैं। और एक तब, जब मुझे तो पता नहीं कि सही क्या है, लेकिन मैं सही को जानना चाहता हूं; तब हृदय से सवाल उठाए जाते हैं।

जो सवाल हृदय से आते हैं, वे संदेह नहीं हैं। वे प्रश्न सत्संग बन जाते हैं। और जो सवाल बुद्धि से आते हैं, वे सवाल दो के बीच खाई को और गहरा कर देते हैं।

बुद्धि और बुद्धि के बीच की खाई को पाटना असंभव है। बुद्धि और बुद्धि के बीच किसी तरह का सेतु निर्मित नहीं होता है। बुद्धि और बुद्धि के बीच सिर्फ टूट हो सकती है, मेल नहीं हो सकता। हृदय और हृदय के बीच टूट का कोई उपाय नहीं, मेल स्वाभाविक है। इसलिए कृष्ण ने पूरी कोशिश की हे कि अर्जुन की बुद्धि को काटकर गिरा दें। बुद्धि हट जाए, बुद्धि का पर्दा हट जाए, तो हृदय उन्मुख हो जाता है, सामने आ जाता है।

अब अर्जुन का हृदय कृष्ण को सामने मालूम पड़ रहा है। अब वे देख पा रहे हैं कि अब उसकी दोष—दृष्टि खो गई है। और जब दोष—दृष्टि खोती है, तो आख से, चेहरे से, एक—एक भाव— भंगिमा से, एक—एक गेस्चर से वह प्रकट होने लगती है।

जब आपके भीतर संदेह होता है, तो आपकी आख भी संदेह से भर जाती है, आपके होंठ भी, आपकी भाव— भंगिमा भी। आपका प्राण ही संदेह से नहीं भरता, आपका रोआं—रोआं शरीर का संदेह से भर जाता है।

किसी दिन अगर विज्ञान समर्थ हो सका, तो संदेह से भरे हुए आदमी के खून में और श्रद्धा से भरे हुए आदमी के खून में अगर रासायनिक फर्क खोज ले, तो कोई आश्चर्य न होगा। अगर केमिकल फर्क मिल जाए, तो कोई आश्चर्य न होगा। क्योंकि विज्ञान यह तो अनुभव करने लगा है कि जब एक आदमी प्रेम से भरता है, तो उसके खून की केमिकल, उसके खून की रासायनिक व्यवस्था रूपांतरित हो जाती है। और जब एक आदमी क्रोध से भरता है, तब उसके खून की रासायनिक व्यवस्था रूपांतरित हो जाती है। उसके खून में जहर फैल जाता है। जब एक आदमी उदास होता है, तब उसके खून का रासायनिक रूप और होता है, और जब एक आदमी प्रफुल्लित होता है, आशा से, उमंग से भरा होता है, जब उसकी हृदय की धड़कनें आशा के गीत गाती होती हैं, तब उसके खून की रासायनिक व्यवस्था बदल जाती है।

शरीर का कण—कण भी बदल जाता है, जब भीतर का मन बदलता है; क्योंकि शरीर मन की छाया मात्र है। क्योंकि शरीर जो भी है, वह मन का ही प्रतिफलन है।

कृष्ण कहते हैं कि अब यह संभव है अर्जुन, तू दोष देखने वाली दृष्टि से मुक्त हुआ, रिक्त हुआ, खाली हुआ, तो अब मैं तुझसे रहस्य की बात कह सकूंगा।

दोष की दृष्टि क्या है? यह नकारात्मक देखने का ढंग क्या है? अगर मैं आपसे कहूं कि ईश्वर है, तो जो दोष की दृष्टि है, वह पूछेगी, कहां है? इसलिए नहीं कि उसे खोजना है; बल्कि सिर्फ इसलिए कि जो कहा गया है, वह सही नहीं है। भक्तों ने भी पूछा है कि कहां है? लेकिन इसलिए नहीं कि जो कहा गया है, वह गलत है, बल्कि इसलिए कि उसे कहां खोजें? कहां पाएं उसे? किस तरफ देखें? किस मार्ग पर चले?

भक्त ने जब भी कभी उसने पूछा है कि समझा, है। कैसे उसे पाएं? उसने जब भी प्रश्न उठाये है। तो वे प्रश्न है, कैसे? उनका रूप कुछ भी रहा हो। उसने यह पूछा है कि ठीक है, वह है। कहां है? कैसे उसे खोजें? क्या है मार्ग? क्या है विधि? कहां तक, कैसे मैं अपने को रूपांतरित करूं कि वह मुझे मिल जाए? उसने भी प्रश्न पूछे हैं, लेकिन उसके प्रश्न किसी अनुभूति की पिपासा से उठे हैं। और जब एक नकारात्मक दृष्टि पूछती है, तब वह यह पूछती है कि गलत है यह बात। कहां है? प्रत्यक्ष मेरे सामने लाकर रखो। यहां मेरे सामने हो, तो मैं मानूं। वह असल में यह कह रहा है कि अगर परमात्मा एक पदार्थ हो, तो मैं स्वीकार करूं। परमात्मा अगर एक वस्तु हो, तो मैं स्वीकार करूं। प्रयोगशाला में अगर परीक्षण हो सके, तो मैं स्वीकार करूं। मैं उसे डिसेक्ट कर सकूं? काट—पीट सकूं। जैसे कि चिकित्साशास्त्र का विद्यार्थी अपनी टेबल पर रखकर मेंढक को काट—पीट रहा है, जांच—पड़ताल कर रहा है, आदमी के अस्थिपंजर में खोज कर रहा है। ऐसा अगर तुम्हारा ईश्वर कहीं हो, तो लाओ, उसे रखो प्रयोगशाला की टेबल पर, सर्जरी की टेबल पर, हम उसे काटें—पीटें, उसे खोजें, क्या है उसके भीतर? कुछ है भी या धोखा है!

नकारात्मक दृष्टि विश्लेषण मांगती है, एनालिसिस, तोडो, खंड—खंड करो, तभी हम स्वीकार करेंगे कि है। अगर हमने तोड़कर भी पाया कि है, तो ही हम मानेंगे कि है।

नकारात्मक दृष्टि खंड—खंड करने में भरोसा रखती है। अगर हम एक फूल दें, तो नकारात्मक दृष्टि तोडकर सौंदर्य की खोज करेगी। पंखुड़ियों को काट डालेगी। एक—एक रस को पृथक कर लेगी। एक—एक खनिज को तोड़ डालेगी। और तब अलग— अलग शीशियों में बंद करके फूल के सौंदर्य की खोज करेगी।

स्वभावत:, फूल का सौंदर्य नहीं मिलेगा; क्योंकि फूल का सौंदर्य फूल की पूर्णता में है, उसकी समग्रता में है, उसकी टोटेलिटी में है। तोड़ते ही खो जाता है। फूल का सौंदर्य उसके खंडों में नहीं, उसकी अखंडता में है। और जो भी अखंडता में है, नकारात्मक दृष्टि उसे कभी भी नहीं पा पाएगी।

परमात्मा परिपूर्ण अखंडता है। अगर फूल अपनी अखंडता में है, तो फूल की समग्रता। परमात्मा का अर्थ है, सारे अस्तित्व की समग्रता। पूरा अस्तित्व अगर एक फूल है, तो परमात्मा उसकी समग्रता का सौंदर्य है।

नकार की दृष्टि इंद्रियों पर भरोसा करती है। जो इंद्रियों को प्रतीत हो, वही सत्य है; जिसे इंद्रिया इनकार कर दें, वह सत्य नहीं है। लेकिन इस दृष्टि को भी धीरे— धीरे जैसे—जैसे गहरे उतरने का मौका

मिला, उसे ऐसी बातों को स्वीकार करना पड़ा है, जिनकी इंद्रियां कोई भी खबर नहीं देतीं।

आज का सारा विज्ञान परमाणु की खोज पर खड़ा है, इंद्रियां उसकी कोई खबर नहीं देतीं। ज्यादा से ज्यादा हम परमाणु के जो परिणाम हो सकते हैं, इफेक्ट्स हो सकते हैं, उन्हें जान सकते हैं, लेकिन स्वयं परमाणु को नहीं। लेकिन इसी बुद्धि ने कल यह मानने से इनकार कर दिया था कि आदमी के भीतर प्रेम है। प्रेम के परिणाम तो दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि एक मां अपने जीवन के न मालूम कितने कीमती समय को प्रेम के लिए विलीन कर देती है! कि कोई प्रेमी अपने प्रेमी के लिए मर जाता है! जीवन को भी छोड़ देता है प्रेम के लिए!

तो प्रेम के परिणाम तो भारी हैं, लेकिन प्रेम को काटकर जानने का कोई भी उपाय नहीं है। तो फिर प्रेम एक कल्पना होगी। फिर प्रेम एक खयाल है, फिर उसकी कोई वस्तुगत सत्ता नहीं है, ऐसा जो मानते थे, वे भी परमाणु को स्वीकार करेंगे। और वे भी परमाणु के नीचे उतरेंगे, तो इलेक्ट्रांस को स्वीकार करेंगे। इंद्रियां उनकी कोई भी गवाही नहीं देतीं।

विज्ञान भी तोड़—तोड़कर इस नतीजे पर पहुंचा है कि वे जो अंतिम खंड हाथ में आते हैं, वे हाथ में आते ही नहीं। अंतिम खंड भी हाथ से चूक जाते हैं। इंद्रियों की पकड़ उन पर भी नहीं बैठ पाती। लेकिन एक और दृष्टि भी है, जिसे विधायक, पाजिटिव दृष्टि कहें। जो जीवन को तोड़कर नहीं, जोड़कर देखती है। जो पूछती है, तो इसलिए कि पहुंचें कैसे। जो सवाल भी उठाती है, तो इसलिए ताकि जवाब मिल सके। जवाब गलत है, इसलिए नहीं; ताकि जवाब किसी और का है अभी, कल मेरा भी कैसे हो जाए इसलिए।

आज जो कृष्ण कहते हैं, कल वह अर्जुन का भी हो जाए, इसलिए अगर सवाल पूछा जाए, तो उस सवाल की गरिमा और गौरव अलग है। उस सवाल की गुणवत्ता, उसकी क्वालिटी और है। कृष्ण को लगता है कि अर्जुन अब उस जगह आकर खड़ा हुआ है, जहां उसकी दोष की दृष्टि खो गई है। अब उससे परम रहस्य की बात कही जा सकती है।

वे कहते हैं, तुझ दोष—दृष्टि रहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय ज्ञान के रहस्य को कहूंगा।

दोष—दृष्टि से जैसे ही कोई व्यक्ति रहित हुआ, वह भक्त हो गया। भक्त की इस परिभाषा को ठीक से हृदय में ले लें। क्योंकि भक्त से हम कुछ न मालूम क्या समझते हैं!

भक्त से हमारे मन में जो तस्वीर उठती है, वह बहुत बचकानी है। भक्त से हमारे मन में खयाल उठता है कि मंदिर में पूजा का थाल लिए जो खड़ा है! भक्त से हमारे मन में ख़याल उठता है कि जो रोज नियम से, विधि से प्रार्थना कर रहा है! भक्त से हमें ख़याल उठता है—जनेऊधारी, टोपी लगाए हुए, टीका लगाए हुए! भक्त से हमें कुछ खयाल उठते हैं; कुछ तस्वीरें मन में घूम जाती हैं। लेकिन भक्त का जो अर्थ है, वह है, जिसकी दोष—दृष्टि नष्ट हुई, जो अब जीवन को नकारात्मक ढंग से नहीं देखता; जिसने अब जीवन को उसकी विधायकता में देखने की तैयारी जुटा ली।

इसे हम ऐसा भी समझें, तो ठीक होगा, मैंने कहा कि नकारात्मक जो जीवन—दृष्टि है, वह चीजों को तोड़कर देखती है। तोड्ने के लिए हमारे पास एक शब्द है, विभक्त। चीजों को बांटती है, विभक्त करती है। भक्त का अर्थ इससे उलटा है, जो तोड़ता नहीं, जोड़ता है। भक्त का अर्थ है, जो जोड़ता है। विभक्त का अर्थ है, जो तोड़ता है।

अंग्रेजी में भक्त के लिए हम डिवोटी शब्द का उपयोग करते हैं। वह एकदम ही गलत है। उस डिवोटी से हमारी वही तस्वीर खयाल में आती है, मंदिर में पूजा का थाल लिए। ठीक भक्त का अगर अंग्रेजी में कोई शब्द हो सके पर्यायवाची, तो वह इंडिविजुअल है। लेकिन खयाल में नहीं आएगा। इंडिविजुअल शब्द का भी अर्थ होता है, दैट व्हिच कैन नाट बी डिवाइडेड, इनडिविजिबल। जो ! तोड़ा न जा सके। जो टूटा हुआ न हो। जिसका भरोसा तोड्ने पर न हो। जोडा जा सके, जोड्ने की तैयारी हो, जुड़ा हुआ हो।

कार्ल गुस्ताव का ने अपने मनोविज्ञान को ए थियरी आफ इडिविजुएशन कहा है—एक होने का विज्ञान। भक्त का अर्थ भी वही है। भक्त का अर्थ है, जो जीवन को जोड्ने वाली दृष्टि से। देखने में समर्थ हुआ है। यह सामर्थ्य तभी आती है, जब हम तोड्ने। वाली दृष्टि को छोड देते हैं, त्याग कर देते हैं। और जल्दी में कोई छलांग नहीं लगा सकता।

कृष्ण यह सूत्र गीता के प्रारंभ में भी कह सकते थे, लेकिन तब वह व्यर्थ हुआ होता। हममें से बहुत लोग ऐसे ही हैं, जो गीता के आठ अध्यायों की यात्रा न करते, सीधे इस सूत्र से शुरू करते। वे कृष्ण से भी ज्यादा समझदार अपने को सोचते होंगे!

कोई भी व्यक्ति सीधा भक्ति, में उतर कर बहुत असफलता पाएगा। क्योंकि जब तक बुद्धि अपनी दौड़—धूप को शांत न कर ले, तब तक भक्त का भाव उदय ही नहीं हो जाए तब तक बुद्धि थककर हार न जाए, पराजित होकर गिर न जाए, अपने ही हाथों अपनी आत्महत्या न कर ले—दौड़ ले, कोशिश कर ले, संघर्ष कर ले, विजय की चेष्टा कर ले, और सब विफल हो जाए—तब तक हृदय का आविर्भाव नहीं होता।

इसलिए हृदय का अर्थ, अज्ञान मत समझ लेना। इसलिए हृदय का अर्थ एक तरह का भोला— भाला बुद्धपन मत समझ लेना। इसलिए हृदय का अर्थ बुद्धि की कमजोरी मत समझ लेना। इसलिए यह मत समझ लेना कि जिनकी बुद्धि कमजोर है, वे बड़े धन्यभागी हैं। यह भी मत समझ लेना कि जो सोच—विचार नहीं सकते, उनका तो भक्ति का द्वार खुला ही हुआ है!

नहीं। भक्त तभी कोई हो पाता है, जब बुद्धि की सारी चेष्टाएं असफल हो जाएं। इसलिए भक्ति बुद्धि के पार ले जाती है, नीचे नहीं। और जो बुद्धि तक भी नहीं पहुंच पाते, ध्यान रखें, वे भक्ति तक नहीं पहुंच पाएंगे। यह मेरी बात कठोर मालूम पड़ेगी, क्योंकि भक्त ऐसा सोचते हैं कि ठीक है, बुद्धि का तो बहुत कठिन काम है। हमारे में तो बुद्धि है नहीं, तो हम तो मंदिर में घंटी बजाकर, फूल चढ़ाकर काम चला लेंगे!

इस धोखे में कोई भी न पड़े। जीवन के सत्य की प्रतीति श्रम मांगती है। और कोई भी क्षमा नहीं किया जा सकता। और जीवन के मंदिर के प्रवेश में सभी को संघर्ष के रास्ते से गुजरना ही पड़ता है। वह अनिवार्यता है। और पीछे का कोई भी दरवाजा नहीं है कि आप कोई रिश्वत देकर, कि भगवान की स्तुति करके पीछे के किसी द्वार से प्रवेश कर जाएं।

इसलिए कोई यह न सोचे कि भक्ति का मार्ग बड़ा सुगम है। कृष्ण खुद कहेंगे कि सुगम है। लेकिन ध्यान रखें कि यह आठ अध्यायों के बाद वे अर्जुन से कह रहे हैं। आठ अध्याय को मत भूल जाएं। अगर ऐसा ही सुगम था, तो कृष्ण बिलकुल पागल हैं! यह आधी गीता व्यर्थ! जब ऐसी सुगम ही बात थी, तो इसे शुरू में ही कह देना चाहिए था। इतनी देर तक अर्जुन का समय गंवाने की क्या है जरूरत? कठिन मार्ग पहले बताए, अब सुगम बताते हैं! सीधा गणित तो यही है। कि सुगम पहले बता दिया जाए। अकर सुगम हो सके तो कठिन बताया जाए।

नहीं कारण कुछ और है भक्ति सुगम है, अगर गीता के आठ अध्याय आप पार कर गये हो। तो निश्चित सुगम है। लेकिन अगर वे आठ आप सिर्फ उलट गये हों, छोड़ ही गए हों, तो भक्ति अति कठिन है। भक्ति की सुगमता बेशर्त नहीं है। उसमें एक शर्त है। और शर्त में ही सारा दांव है।

इसलिए लोग कहते सुने जाते हैं कि हमारा मार्ग तो भक्ति है। उनका मतलब यह होता है कि बुद्धि की झंझट में हम नहीं पड़ते। उनका मतलब यह होता है कि कौन उस उपद्रव में पडे! और अगर कोई बुद्धि की झंझट में पडा है, तो वे उसकी तरफ ऐसे देखते हैं, कि बेचारा।

अज्ञानी अपने अज्ञान में भी मजा लेते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, पढ़ने—लिखने से क्या होगा? उनका मतलब यह होता है कि पढ़ा—लिखा जो आदमी है, बेकार गया। ऐसे वे अपने मन में संतोष कमाते हैं।

मैं भी जानता हूं पढ़ने—लिखने से क्या होगा! लेकिन पढ़ने—लिखने से क्या होगा, यह बहुत पढ़े —लिखे आदमी की बात है। किताबें बेकार हैं, यह उसकी बात नहीं है, जिसे काला अक्षर भैंस बराबर है। यह उसकी बात है, जिसने किताबों में से गुजरकर देखा है और पाया है कि वे बेकार हैं। लेकिन किताबें बेकार हैं, यह किताबों से गुजरे बिना कभी किसी को अनुभव नहीं होता है। और बुद्धि बेकार है, यह बुद्धि के मार्ग से गुजरे बिना कभी भी पता नहीं चलता है। इतनी उपादेयता है। बुद्धि से गुजरकर फिर आदमी बुद्धि का भरोसा खो देता है।

लेकिन ध्यान रहे, इस भरोसे के खोने के लिए बुद्धि की बड़ी जरूरत है। इसलिए कृष्ण ने पूरी मेहनत की अर्जुन की बुद्धि के साथ। ऐसा नहीं कहा कि क्या जरूरत है ?' तू भक्ति— भाव को ग्रहण कर ले, तू भक्त हो जा, समर्पित हो जा। मान ले मेरी, जो मैं कहता हूं।

कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि दुनिया में कोई भी आदमी तब तक मान नहीं सकता, जब तक उसकी जानने की क्षमता पूरी तरह पराजित न हो जाए। जब तक प्रश्न गिर ही न जाएं, तब तक निष्प्रश्न चित्त पैदा नहीं होता। और जब तक संदेह अपनी पूरी चेष्टा और पूरा यत्न न कर लें, तब तक मरते नहीं हैं; दबाए जा सकते हैं। हमारे पास जो तथाकथित भक्तों का समाज है, वह दबाया हुआ समाज है। वे दबाए हुए संदेह उसके भीतर भी हैं। उसने कभी संदेहों को पार नहीं किया है। वह उनको दबाकर बैठ गया है उनके ऊपर। इसलिए उसकी भक्ति कमजोर और नपुंसक भी है। क्षणभर में डांवाडोल हो जाती है। इसलिए भक्त होकर भी वह डरता है। नास्तिक की बात सुनने में घबड़ाता है। कोई अगर ईश्वर के विपरीत बोलता हो, तो कान में हाथ डाल लेता है।

इतनी घबड़ाहट भक्त को? इतना कमजोर भक्त? कि अगर वह राम का भक्त है—यह तो दूर की बात है कि नास्तिक की बात वह न सुने—अगर वह राम का भक्त है, तो कृष्ण की बात नहीं सुनेगा! इतनी नपुंसक भक्ति? इतनी कमजोर? इतनी दीन? भक्ति तो परम शक्ति है। जब उसका आविर्भाव होता है, तो उससे ज्यादा बलशाली कोई व्यक्ति ही नहीं होता। वह तो परम ऊर्जा का जागरण है। तो इस कमजोर भक्त और परम ऊर्जा के जागरण का क्या संबंध है?

एक महिला चार दिन पहले मेरे पास आई। और वह कहने लगी कि मैं आपसे यह पूछने आई हूं कि मेरे गुरु तो मर गए हैं, लेकिन वे कह गए हैं कि किसी और की बात सुनने कभी मत जाना, अन्यथा मार्ग से च्युत हो जाएगी। तो गुरु तो मर चुके हैं, मैं आपसे पूछने आई हूं कि अगर आपकी बात सुनने आऊं, तो कोई हानि तो न हो जाएगी?

सत्य इतने कमजोर? और गुरु इतने दीन? कहीं कोई दूसरी बात सुनकर डांवाडोल तो न हो जाएगा मन?

तो जानना कि डांवाडोल है ही। अपने को कब तक धोखा दोगे? ऐसे धोखे से नहीं चलेगा। जरा—सा हवा का झोंका और सब प्राण कैप जाएंगे, और सब मुर्दा पत्ते उड़ जाएंगे और भीतर वे जो छिपे हुए संदेह हैं, ऊपर उघड आएंगे। !? हम ऐसे भक्त हैं, जैसे अंगारे के ऊपर राख छा गई हो बस। थोड़ा अंगारा बुझ गया है, ऊपर—ऊपर राख हो गई है, भीतर अंगार जलती है। भीतर संदेह मौजूद हैं। इसलिए हम विपरीत बात से भयभीत होते हैं। भीतर संदेह मौजूद है, वही हमारा भय है। हम भलीभांति जानते हैं कि कोई भी राख को जरा—सी फूंक मार देगा, तो अंगारा भीतर से प्रकट हो जाएगा। ऐसी भक्ति का कोई भी मूल्य नहीं है, आत्मवचना है।

कृष्ण ऐसी भक्ति की बात नहीं कर रहे हैं। कृष्ण तो उन मनीषियों में हैं, जो पलायन में भरोसा नहीं करते, भागने में भरोसा नहीं करते, लड़ने में भरोसा करते हैं—बाहर के युद्ध में ही नहीं, भीतर के युद्ध में भी।

अर्जुन से उन्होंने पूरी टक्कर ली। अगर बुद्धि के खेल में अर्जुन को रस आ रहा है, तो कृष्ण ने भी उस रस में पूरा भाग लिया। उन्होंने यह नहीं कहा कि यह क्या तू बुद्धि की बातें करता है, बेकार! क्योंकि किसी के बेकार कहने से कुछ भी बेकार नहीं होता है। बल्कि अक्सर तो यह होता है, बेकार कहने से और भी ज्यादा रसपूर्ण हो जाता है। उन्होंने यह नहीं कहा कि बंद कर। श्रद्धा जन्मा!

श्रद्धा कोई जन्माई नहीं जाती। उन्होंने यह नहीं कहा कि भरोसा रख। क्योंकि किसी के कहने से अगर भरोसा आता होता, तो सारी दुनिया कभी की भरोसे से भर गई होती। कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि भरोसा कहने से पैदा नहीं होता, भरोसा तो बुद्धि की असमर्थता से जन्मता है।

ध्यान रखें, जब बुद्धि असहाय हो जाती है, तभी श्रद्धा का जन्म होता है। जब बुद्धि थककर गिर जाती है, और पाती है कि अब एक इंच भी गति का उपाय नहीं है. बुद्धि के मरघट पर ही श्रद्धा का बीज अंकुरित होता है।

इसलिए कमजोर बुद्धि की नहीं, बड़ी संघर्षशील बुद्धि की जरूरत है, बड़ी जीवंत बुद्धि की जरूरत है। और भक्ति को ऐसा मत समझ लें कि वह उनका काम है, जिनके पास बुद्धि नाम मात्र नहीं है। भक्ति उनका काम है, जिनके पास बुद्धि की यात्रा के भी पार जाने का समय आ गया है; जो बुद्धि के भी ऊपर उठने के करीब पहुंच गए हैं, जो उस सीमा—रेखा पर, सीमांत पर खड़े हो गए, जहां बुद्धि समाप्त होती है, और भक्ति और हृदय की यात्रा शुरू होती है।

इसलिए कृष्ण ने कहा कि तुझ भक्त के लिए।

अब तक अर्जुन एक जिज्ञासु था। एक खोज थी उसकी। समझना चाहता था, लेकिन बुद्धि से। अब वह भक्त हुआ। अब वह समझना चाहता है, लेकिन अब खोज पिपासा बन गई है। अब खोज केवल एक इंटलेरूअल इंक्वायरी नहीं है, अब हृदय की अभीप्सा है। अब। तक जो था, वह शब्दों का जाल था। अब अपने को दाव पर लगाने की भी हिम्मत उसमें आ गई है। इसलिए वे कहते हैं कि इस परम गोपनीय ज्ञान को रहस्य के सहित कहूंगा। यह ज्ञान परम गोपनीय है, गुप्त रखने योग्य है; न कहा जाने योग्य है।

बड़ी उलटी बात कृष्ण कहते हैं, कि जो गोपनीय है, उसे कहूंगा!

उसे कहूंगा, जिसे नहीं कहना चाहिए! उसे कहूंगा जा सकता है! उसे कहूंगा, जो कि कहुंगा, जो कहने पर भी नहीं कहा गया है! गोपनीय का यह अर्थ होता है, जो गुप्त है स्वयंव है, उसको रहस्य सहित कहूंगा! उस गोपनियता को जा भी रहस्यमयता है। उसके आस पास जो रहस्य का आभा मंडल है। उसे भी उघाड़कर कहूंगा। जिसे नहीं उघाड़ना उसे निरवस्त्र करूंगा। जिसे छूपाये रखना ही उचित है, उसे अब नहीं छूपाऊंगा। क्यों?

कुछ बातें खयाल में ले लें।'

पहली बात, जब तक हृदय में भक्ति का भाव न हो तब तक कोई भी ज्ञान खतरनाक सिद्ध हो सकता है। विज्ञान का ज्ञान ऐसे ही खतरनाक सिद्ध हो रहा है। ज्ञान खतरनाक नहीं होता, लेकिन ज्ञान जिसके हाथ में जाएगा, अगर उसके पास भक्त का भाव न हो, तो ज्ञान का खतरा निश्चित है।

विज्ञान ने बड़े ज्ञान की खोज की और पदार्थ के गुह्यतम रहस्यों को बाहर ले आया। लेकिन उसका परिणाम हिरोशिमा और नागासाकी हुआ। और उसका परिणाम अब यह है कि खुद वैज्ञानिक चिंतित हैं कि हमने पाप किया। ओपेनहेमर ने, या आइंस्टीन ने, जिन्होंने अणु की ऊर्जा के विस्फोट में सर्वाधिक काम किया, उनके भी अंतिम क्षण बड़े दुख और पश्चात्तापपूर्ण थे, अपराधपूर्ण थे, एक भारी गिल्ट, छाती पर एक बोझ था। लीनियस पालिंग या और दूसरे वैज्ञानिक भी अपने जीवन के अंतिम क्षणों में एक ही चीज से परेशान हैं। और वह परेशानी यह है कि हमने जो ज्ञान मनुष्य को दे दिया है, कहीं वह ज्ञान ही तो मनुष्य का आत्मघात सिद्ध न होगा? कहीं उसके कारण ही तो जगत विनष्ट नहीं हो जाएगा? हमने तो सोचा था कि ज्ञान सदा ही हितकारी है, लेकिन अब ऐसा मालूम नहीं पड़ता।

ज्ञान सदा हितकारी नहीं है। कभी—कभी तो अज्ञान भी हितकारी है। गलत आदमी के हाथ में अज्ञान ही ठीक है। सही आदमी के हाथ में ज्ञान ठीक हो सकता है, क्योंकि ज्ञान शक्ति है। बेकन ने कहा है, नालेज इज पावर—ज्ञान शक्ति है। और शक्ति अगर गलत हाथों में है, तो खतरा निश्चित है।

भक्त का अर्थ है, अब जो गलत नहीं कर सकता। भक्त का अर्थ है, जिसके भीतर से गलत करने वाली बुद्धि विलीन हो गई। भक्त का अर्थ है, जिसने जीवन में अब परम को देखने की क्षमता जुटा ली। अब वह निकृष्ट के लिए प्रयासशील नहीं होगा। उसके हाथ में शक्ति भी दे दी जाए, तो अब कोई खतरा नहीं है।

विज्ञान को जो भूल आज समझ में आ रही है, भारत को पांच हजार साल पहले किसी दूसरे संदर्भ में समझ में आ गई है। जिसे आज विज्ञान पदार्थ में गहरे उतरकर समझ रहा है, और पश्चिम के सारे वैज्ञानिक सारे सम्मेलन एक ही बात पर चिंता कर रहे है। कि क्या अब जो ज्ञान हमें मिल रहा है। वह सर्व समान्य के लिए सुलभ किया जाना चाहिए या नहीं। जो ज्ञान हमें मिल रहा है, वह राजनैतिक ताकत तक पहूंचना चाहिए या नहीं? जो हम जान लेंगे, हम कैसे समझें कि अगर हमने उसे प्रकट किया, तो वह अहितकार सिद्ध नहीं होगा? सिर्फ कौन रोके? यह जो ज्ञान हाथ में आ जाए

इसे रोके कौन? यह रुकेगा कैसे? इसे छिपाओगे कैसे?

बहुत आश्चर्य न होगा, अगर आने वाले पंद्रह वर्षों में सारी दुनिया के वैज्ञानिकों को इकट्ठा होकर यह तय करना पड़े कि सिर्फ वैज्ञानिक ही वैज्ञानिक अनुसंधान से हुई उपलब्धियों को जान सकेंगे, बाकी कोई नहीं। और शायद उन्हें ऐसी भाषा विकसित करनी पड़े—जों विकसित हो रही है—कि जिस भाषा को गैर—वैज्ञानिक समझ ही न सके। आज भी नहीं समझ सकता। आज भी वैज्ञानिक की भाषा धीरे— धीरे स्पष्ट रूप से गोपनीय होती चली जा रही है।

ठीक ऐसा ही एक अनुभव आत्मज्ञान का भारत को भी हुआ है। उससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। भारत ने भी मनुष्य के अंतभेंदन में उस जगह को उपलब्ध कर लिया, जहां परम शक्ति

का स्रोत था। उन सूत्रों को छिपाने का सवाल उठ गया, क्योंकि उन सूत्रों का बताया जाना खतरनाक हो सकता था।

इसलिए एक गोपनीय गुह्य—ज्ञान, एक इसोटेरिक नालेज निर्मित हुई। और उसे यहां तक गुह्य करना पड़ा कि उसे शास्त्र में भी न लिखा जाए; क्योंकि शास्त्र भी पढ़े जा सकते हैं। या इस ढंग से लिखा जाए कि पढ़ने वाला कुछ और समझे, वह नहीं, जो कहा गया है। या इस ढंग से लिखा जाए कि उसके अनेक अर्थ हो सकें, और पढ़ने वाला जब तक जानता ही न हो, तब तक अनेक अर्थों में खो जाए। या इस ढंग से लिखा जाए कि उसके दो अर्थ हो सकें। एक, जो सामान्य आदमी समझ ले, और पाए कि बिलकुल ठीक है, और एक वह आदमी समझे, जिसके हाथ में कुंजियां हैं।

फिर बहुत वर्षो तक, किताबें न लिखी जाएं, इसका आग्रह रहा। हजारों वर्षों तक हमने ज्ञान को मुखाग्र रखा, नहीं लिखने की चेष्टा की। मजबूरी में वह लिखा गया। इसलिए नहीं, जैसा कि पश्चिम के विचारक समझते हैं कि ज्ञान तब लिखा गया, जब लिखने का आविष्कार हुआ। नहीं; क्योंकि जो ज्ञान का आविष्कार कर सकते थे, वे निश्चित ही लिखने का आविष्कार कर सकते थे। लिखना बड़ी छोटी बात है। जो ज्ञान का आविष्कार कर सकते थे, वे लिखने का आविष्कार न कर सकते हों, यह बात समझ में आने जैसी नहीं है। असंगत है।

नहीं, जानने का आविष्कार रोका गया लिखने से हजारों वर्षों तक, ताकि वह जनसामान्य तक न पहुंच जाए; वह गोपनीय रखा जा सके। लिखने की मजबूरी तो तब आई, जब इतनी शाखाएं हो गईं उस ज्ञान की, और गुप्त मार्गों से यात्रा कर—करके वह इतने लोगों के हाथ में और इतने ढंगों से पहुंच गया कि अब जरूरी हो गया कि सुस्पष्ट हो सके, कि जो —जो बातें लोगों ने बीच में मिला ली होंगी, वे ठीक नहीं हैं। इसलिए स्मृति से उसे कागज तक उतारने की चेष्टा करनी पड़ी। ' फिर भी उसे सूत्रों में लिखा गया। सूत्र का मतलब होता है, उसे वही समझ सकेगा, जो सूत्र की भाषा में निष्णात है। अगर आइंस्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धात के फार्मूले को हम लिखें, तो तीन छोटे—छोटे शब्दों में पूरा हो जाता है, तीन वर्णों में पूरा हो जाता है। पूरा का पूरा उसका जीवन—दर्शन, जिस पर आधुनिक विज्ञान की सारी आधारशिला खड़ी है, आपके नाखून पर लिखा जा सकता है। बस, उतनी ही उसकी खोज है, शेष सब विस्तार है। लेकिन उस नाखून पर लिखे हुए सूत्र को आप समझ नहीं पाएंगे। वह भाषा और है।

सूत्र का मतलब होता है, संक्षिप्त, सार। इतना सार कि उसे वही जान सके, जिसे पूरे विस्तार का पता हो। सूत्र से विस्तार नहीं जाना जा सकता, विस्तार पता हो, तो सूत्र खोला जा सकता है। सूत्र जो है, वह स्मरण रखने के लिए है, ताकि पूरे विस्तार को याद न रखना पड़े। तो शास्त्र सूत्रों में लिखे गए।

फिर उन सूत्रों को भी जहां तक बन सके ओरल ट्रेडीशन से—गुरु शिष्य को कहता रहे, और शिष्य अपने शिष्यों को कहता रहे। सीधा मुंह से ही कहे, ताकि कहने में उसका जीवन भी समाविष्ट हो जाए। ताकि जब वह कहे, तो उसकी आत्मा भी उसमें प्रवेश कर जाए। जब वह कहे, तो उसका अनुभव भी उस कहे हुए को रंग और रूप दे जाए। अन्यथा खाली शब्द चली हुई कारतूस जैसे होते हैं। अनुभव से सिक्त, अनुभव से भरे, अनुभव के रस में डूबे हुए और पके हुए शब्द भरी हुई कारतूस की तरह होते हैं। तो सूत्र गुरु अपने शिष्य को कह दे। वह भी कान में कह दे।

अभी भी कान में' कहे जा रहे हैं सूत्र! लेकिन बड़े अजीब सूत्र। कान में गुरु किसी से कह देता है कि राम—राम जपना, यह मंत्र दे दिया।

कान में वही बातें कही जाती थीं, जो सुनने वाले ने पहले कभी सुनी ही न हों। राम—नाम का आप सूत्र दे रहे हैं उसको, वह भलीभांति सुना हुआ है। और फिर भी उसको कह रहे हैं कि किसी को बताना मत, गुप्त रखना!

कभी—कभी चीजें बेहूदगी की सीमा को भी पार कर जाती हैं! सूत्र थे वे, जो सुनने वाले ने कभी सुने ही नहीं थे। जो उसकी चेतना में पहली दफे अवतरित किए जा रहे थे। और इसलिए गुरु ही कहे उनको, क्योंकि उसके पास उसके पूरे जीवन से निकला हुआ, अनुभव से आया हुआ सूत्र है। वह दूसरे की चेतना पर ट्रांसफर करे। वह हस्तांतरण था एक अनुभव का, सूत्रबद्ध। और साधना से फिर उस सूत्र के अर्थ को खोज लेने के उपाय थे।

कृष्ण कहते हैं, मैं उन गोपनीय बातों को तुझसे कहूंगा, और रहस्य के सहित कहूंगा।

क्योंकि सिर्फ गोपनीय बातें कह देने से कुछ भी न होगा। उनका अर्थ भी बताना होगा। उनका रहस्य भी समझाना होगा। कि जिसको जानकर तू दु:खरूप संसार से मुक्त हो जाएगा।

ज्ञान मुक्ति है। जो जान लेता है, वह दुख के बाहर हो जाता है। इसलिए नहीं कि जानना कोई नाव है और दुख कोई सागर है; कि जानने की नाव मिल गई, तो आप पार हो जाएंगे।

नहीं। बात थोड़ी और ही है। असल में अज्ञान ही दुख है। जान लिया, तो सागर विलीन हो जाता है, नाव की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

अज्ञान और दुख पर्यायवाची हैं। अज्ञान के कारण ही दुख है। ऐसा नहीं कि दुख है, और मैं अज्ञानी हूं। मैं अज्ञानी हूं इसलिए दुख है। मेरा अज्ञान ही मेरा दुख है। तो जिस दिन मैं जान लूंगा, उस दिन दुख तिरोहित हो जाएगा। ऐसा नहीं कि जानने के बाद फिर ज्ञान की नौका बनाकर और दुख के भवसागर को पार करूंगा। दुख का कोई भवसागर नहीं है। मेरा अज्ञान ही मेरा दुख है। मेरा अज्ञान ही मेरी पीड़ाओं का जन्मदाता है। मेरे अज्ञान के कारण ही मैं उलझ गया हूं। मेरे अज्ञान के कारण ही मैं अपने ही पैरों पुर अपने ही हाथों कुल्हाड़ी मारे चला जाता हूं। मैं अपने अज्ञान के कारण ही अपने को ही जहर से भर लेता हूं। और अमृत से वंचित रह जाता हूं। वह मेरी ही भूल है। सिर्फ भूल है।

इसे थोड़ा समझ ले, क्योंकि यह बात बहुत कीमती है।

पश्चिम में जो धर्म पैदा हुए, उन्होने आदमी के पाप पर जोर दिया है। यह बुनियादी फर्क है। इस्लाम यहुदी ओर इसाईयत। ये तीनों यहूदी परंपरा के हिस्से हैं?

और दूनिया में दो ही तरह के धर्म की परमपरा है। एक यहूदी धर्म परंपरा और एक हिंदू धर्म परंपरा। बस दो। जो भी धर्म दुनियां में पैदा हुए है या तो वह यहूदी धर्म परंपरा से जन्मे है, उनकी शाखाएं है; या जो धर्म पैदा हुए है—जैसे जैन, बौद्ध...वे हिंदू धर्म परंपरा की शाखाएं—परशाखाएं है। ये दो तरह की धर्म परंपराएं हैं। और इन दोनों धर्म परंपराओं की बुनियादी बात समझने ' जैसी है।

पश्चिम के जो भी धर्म हैं, यहूदी धर्म से संबंधित जो भी धर्म हैं, वे सभी धर्म पाप को मनुष्य का मूल कारण मानते हैं दुख का। भारत के सभी धर्म अज्ञान को दुख का मूल कारण मानते हैं, पाप को नहीं। इसलिए क्रिश्चिएनिटी कहती है, दि ओरिजिनल सिन, वह जो मूल पाप है, वही सब दुखों का आधार है। भारत कहता है, वह जो मूल अज्ञान है, वही सब दुखों का आधार है।

और यह जरा सोचने जैसा है। क्योंकि भारत का यह कहना है कि पाप भी अगर हो सकते हैं, तो तभी, जब अज्ञान हो। इसलिए पाप मूल नहीं हो सकता, अज्ञान उससे भी पहले चाहिए। पापी होने के लिए भी अज्ञानी होना जरूरी है। आदमी अगर गलत भी करता है, तो इसीलिए कि उसके जानने में कहीं भूल है। यह बहुत मजे की बात है कि कोई आदमी जानकर गलत नहीं कर सकता है!

लेकिन आप कहते हैं कि नहीं, मुझे पता है कि सच बोलना। चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए, फिर भी मैं झूठ बोलता हूं!

आपको पता नहीं है। सुन लिया होगा आपने। किसी ने कहा होगा। कहीं पढ़ा होगा। लेकिन भीतर गहरे में आप यही जानते हैं कि झूठ बोलने में ही फायदा है। भीतर आप यही जानते हैं। जानना आपका झूठ .के ही पक्ष में है। आपने कितना ही सुना हो कि सच बोलना ठीक है, लेकिन आप भीतर जानते हैं कि वह दूसरों के लिए ठीक है। और इसलिए भी ठीक है दूसरों के लिए कि अगर दूसरे सच न बोलें, तो मैं झूठ कैसे बोल पाऊंगा? अगर मेरे झूठ को भी सफल होना है, तो वह तभी सफल हो सकता है, जब बाकी लोग सच बोल रहे हो।

इस लिए झूठ बोलने वाला भी लोगों को समझाता रहता है, सच बोलो क्योंकि अगर सारी दुनियां दुनिया झूठ बोलने लगे, तो झूठ बिलकुल व्यर्थ हो जायेगा। आखिर बेईमानी के सफल होने के लिए भी कछ तो ऐसे समझदार चाहिए। जो चोरी नहीं करते है, नहीं तो बहुत मुश्किल हो जाएगो।

अगर यहां सारे लोग बैठे है, और सभी जेबकट है; जो तो जेब नहीं कटेगी। फिर जेब किसकी काटिएगा। और क्या फायद? कोई मतलब नहीं; बात बेकार हो गई, जेबकट सकती है, इसलिए कि कोई जेब कट नहीं है। इसलिए जेब कट भी समझता है, जेब काटना बहुत बुरा है। समझना चाहिए।

मैंने सुना है, एक आदमी पर मुकदमा चला और अदालत ने उससे कहा कि तुम कैसे आदमी हो? इस आदमी ने तुम्हारा इतना भरोसा किया और तुमने इसे ही धोखा दिया! तो उस आदमी ने कहा, अगर इसको मैं धोखा न देता, तो किसको धोखा देता! इसने मुझ पर इतना भरोसा किया, इसीलिए तो मैं धोखा दे पाया। अगर यह भरोसा पहले से ही न करता, तो धोखा असंभव था। सजा आप सिर्फ मुझे ही मत दें, इसे भी दें। हम दोनों भागीदार हैं। इसने भरोसा किया, मैंने धोखा दिया। यह घटना हम दोनों के सहयोग से घटी है।

और यह बात ठीक है। यह बात बिलकुल ही ठीक है। शायद धोखा देने वाला उतना जिम्मेवार नहीं है, जितना धोखा खाने वाला जिम्मेवार है, क्योंकि उसके बिना धोखा नहीं दिया जा सकता।

आप जानते हैं कि सच बोलना ठीक है, दूसरों के लिए, समझाने के लिए; चेहरे बनाने के लिए; प्रदर्शन के लिए। लेकिन जब मौका आए, तो कुशलता से झूठ बोलना ही उचित है, वह आप भीतर जानते हैं। आपके भीतर झूठ ही आपका भरोसा है, सच नहीं।

आप कहते हैं, मैं जानता हूं क्रोध करना बुरा है। लेकिन यह आप तभी जानते हैं, जब कोई दूसरा क्रोध कर रहा होता है, या आप यह तब जानते हैं, जब आपका क्रोध आकर जा चुका होता है। लेकिन जब क्रोध होता है, तब आपका रोआं—रोआं जानता है कि क्रोध ही उचित है, आपका रोआं—रोआं कहता है कि क्रोध ही उचित है।

भारत कहता है, अज्ञान के अतिरिक्त न कोई पाप है और न कोई दुख; और ज्ञान के अतिरिक्त कोई मुक्ति नहीं है।

स्वभावत:, पश्चिम अगर मानता है कि पाप आधार है दुख का, तो पुण्य आधार होगा मुक्ति का। इसलिए ईसाई फकीर या ईसाई मिशनरी सेवा में लगा है। सेवा का प्रयोजन यह है कि पाप कट जाए; बुरा काम है, अच्छे काम से कट जाए।

इसलिए पश्चिम के विचारक को समझ में नहीं आता कि भारतीय साधु ध्यान करके क्या करता है? सेवा करनी चाहिए! और विवेकानंद और गांधी के प्रभाव में ईसाइयत का यह भाव, नासमझी से, हिंदू मन में भी प्रविष्ट हो गया है। हिंदू मन भी डरता है। वह भी कहता है, क्या फायदा? ध्यान से क्या होगा? अस्पताल खोलो। ध्यान से क्या होगा? जाकर गरीबों के झोपड़े में सेवा करो। रवींद्रनाथ ने गाया है कि मैं तो भगवान वहीं देखता हूं, जहां मजदूर गिट्टी फोड़ रहा है। रवींद्रनाथ को पता नहीं है कि अगर मजदूर कभी ऐसा वक्त आ गया और उसने गिट्टी न फोडी, तो रवींद्रनाथ भगवान को कहां देखेंगे! वे कहते हैं, मैं तो भगवान वहीं देखता हूं, जहां भिखारी भिक्षा मांग रहा है। उसकी सेवा करो। यह ठीक है, बुरा नहीं है, बहुत अच्छा है। उचित है कि सेवा की जाए। लेकिन इसमें मौलिक भेद हैं।

भारतीय साधु ध्यान पर जोर देता रहा है, क्योंकि ध्यान से ज्ञान जन्मेगा। और ईसाइयत जोर दे रही है सेवा पर, पुण्य पर, क्योंकि पुण्य से पाप कटेगा। मौलिक आधारों का भेद है। अगर ज्ञान चाहिए, तो ध्यान मार्ग होगा। और अगर पाप काटना है, तो पुण्य उपाय है।

लेकिन भारतीय मनीषा कहती है कि अगर बिना ज्ञान के तुम पुण्य भी करने लगे, तो पुण्य भी तुम्हें बहुत गहरे नहीं ले जाएगा। क्योंकि अज्ञानी के पुण्य का मूल्य कितना है? और अज्ञानी की सेवा किसी भी क्षण खतरनाक हो सकती है। और अज्ञानी की सेवा के पीछे भी अज्ञान तो खडा ही रहेगा।

तो मूल रोग तो हटता ही नहीं है। मैं आपकी गर्दन नहीं काटता, आपके पैर दबाने लगता हूं। लेकिन मैं तो मैं ही हूं, वही का वही। मेरे भीतर जो चेतना है, वह वही की वही है। उसमें कोई भेद नहीं पड़ गया है। मेरे लोभ अपनी जगह खडे हैं; लेकिन उनका रूप बदल गया, मिट नहीं गए। मेरा क्रोध अपनी जगह खड़ा है। लेकिन उसका मार्गातीकरण हो गया, सब्लिमेशन हो गया। लेकिन वह अपनी जगह खड़ा है। और नए—नए रूपों में प्रकट होता रहेगा।

भारत कहता है, जानने के अतिरिक्त कोई मुक्ति नहीं है। और इसलिए कहता है कि जो जान लेता है, वह उससे विपरीत नहीं जा सकता। अगर मुझे पता है कि यह आग है, तो मैं हाथ नहीं डालता हूं। और अगर कभी डालता भी हूं तो भलीभांति जानकर डालता हूं कि यह आग है और मैं जलूंगा। फिर मैं जलने के लिए पछताता नहीं हूं। फिर जलने के लिए रोता नहीं फिरता हूं। फिर जलने के लिए शिकायत नहीं करता हूं। फिर बात ही शिकायत की नहीं है। मैंने जानकर जो किया है, तो फिर इस जगत में कोई शिकायत का उपाय नहीं है। मैं जिम्मेवार हूं।

लेकिन जानकर कोई आग में हाथ नहीं डालता है। डालने का कोई कारण नहीं है। अज्ञान में हाथ चला जाता है आग में, और दुख पैदा होता है। अज्ञान दुख है। हम सब तरह की आग में हाथ डालते हैं। हालांकि यह हो सकता है कि जब हम हाथ डालते हैं, तब हमको आग दिखाई ही न पड़ती हो।

अज्ञान में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; आदमी अंधे की तरह चलता है। सोचते हैं कि यह अच्छा है, और बुरा होता है। सोचते हैं, यह भला है, और भला नहीं निकलता। सोचते हैं? यह फूल हैं, और जब मुट्ठी बांधते हैं, तो काटा छिद जाता है और लहूलुहान हो जाते हैं। लेकिन फिर भी कुछ नहीं सीखते। फिर कल एक फूल दिखाई पड़ता है, फिर जोर से मुट्ठी बांधते हैं, फिर कांटा चुभता है, फिर रोते हैं। परसों फिर एक फूल दिखाई पड़ता है, फिर हाथ मुट्ठी बांधते हैं, फिर वही दुख।

लेकिन यह खयाल नहीं आता कि जरा फूल को अब गौर से देख लें, कहीं हर फूल कांटा तो नहीं है? या मेरे यह मुट्ठी बांधने में ही तो कांटे के चुभने की पैदाइश नहीं है? यह मेरा मुट्ठी बांधने का जो आग्रह है, यही तो मेरा दुख नहीं है? और मैं यह फूल से जो आकर्षित हो जाता हूं, यह क्यों हो जाता हूं? यह मेरी जो आत्मा फूल की तरफ बहने लगती है, यह जो आसक्ति और यह जो राग पैदा हो जाता है, यह क्यों हो जाता है? इस सबके मूल को जो जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है।

तो कृष्ण कहते हैं, इस ज्ञान को जानकर तू इस दु:खरूप संसार से मुक्त हो जाएगा।

लेकिन ध्यान रखें, जानकर, सुनकर नहीं। कृष्ण को कहना चाहिए था, हे अर्जुन, इस ज्ञान को सुनकर तू मुक्त हो जाएगा! अर्जुन बहुत प्रफुल्लित हुआ होता। आप भी प्रफुल्लित होते रहे हैं। लोग सोचते हैं, शास्त्रों को सुनकर धर्म हो जाएगा। लोग सोचते हैं, गीता को सुनकर ज्ञान हो जाएगा। इतना सस्ता अगर ज्ञान होता, तो अज्ञानी किसी को होने की जरूरत ही न थी। सुनकर नहीं होगा। इसलिए इफेटिकली, जोर देकर कृष्ण कहते हैं, जिसको जानकर!

लेकिन हम सुनने को भी जानना समझ लेते हैं। जो—जो आप सुनते हैं, वह आपका ज्ञान हो जाता है। यह बड़ी मजे—की बात है। अखबार पढ़ लिया, आप ज्ञानी हो गए। गीता पढ़ लिया— आप ज्ञानी हो गए! जो भी पढ़कर आपकी स्मृति में चला गया, आप ज्ञानी हो गए।

स्मृति ज्ञान नहीं है। लेकिन हमारा स्कूल विश्वविद्यालय समृति को ज्ञान बताता है। सारा संसार स्मृति को ही ज्ञान मानकर चल रहा है। हम कहते है, एक आदमी बहुत जानता है, कृयो'कि उसकी बहुत स्मृति है, हम कहते है कि एक आदमी को गीता कंठस्थ है। उनका कंठ पागल हो गया है, और तो कोई सार नहीं है। कंठस्थ से कृया होगा? फलां आदमी को वेद कंठस्थ हो गये है। उसकी गरिमा है। कंठ का कृया कसूर है। कंठ को कृया परेशान कर रहे हो?

कंठ बड़ा ऊपर है, उससे कुछ हृदय बदलता नहीं। और कंठ में मैं बहुत खोजा, कोई एकाध अज्ञानी मिल जाए। वह मिलता ही नहीं। जिनके ज्ञान अटक जाता है, उनकी फांसी लग जाती है। फांसी में सब ज्ञानी हैं! और छोटे—मोटे ज्ञानी नहीं हैं, सब ब्रह्मज्ञानी हैं! होता नहीं। बोलने के लिए हो सकता है। दूसरे को बताने के लिए हो सकता है। खुद के जीवन के लिए उसका कोई संबंध नहीं होता। जानने का अर्थ स्मृति नहीं है।

जानने का अर्थ है, अनुभव। तो कृष्ण कहते हैं, जो मैं तुझे रहस्य बताऊंगा, काश! तू उसे जान ले, अनुभव कर ले, तो दुख के सागर से मुक्त हो जा सकता है।

पर जानना और जानने में फर्क है। एक जानना है, वह हम सब जानते हैं। एक आदमी कहता है, ईश्वर है। जाना उसने बिलकुल नहीं है। इससे तो बेहतर वह नास्तिक है, जो कहता है, मुझे कुछ पता नहीं चलता ईश्वर का। मैं कैसे मानूं? यह नास्तिक शायद किसी दिन आस्तिक भी हो जाए! लेकिन वह जो पहला आस्तिक है, जो कहता है, ईश्वर है। क्योंकि उसने सुना है, क्योंकि उसके घर में कहा गया है, क्योंकि परंपरा से बात चली आई है। क्योंकि उसके पितृ। ने, उसके गुरु ने कहा है। क्योंकि शास्त्र में पढ़ा है। या भय की वजह से, या मौत के डर से, या सहारे के लिए, वह माने चला जा रहा है। लेकिन वह कहता है, मैं जानता हूं ईश्वर है।

जानने शब्द का प्रयोग जरा सोचकर करना, ईमानदारी से करना। और जो आदमी जानने का ईमानदार अर्थ सीख जाए, उसकी जिंदगी में क्रांति हो जाती है। लेकिन हम सब बेईमान हैं। जानने के संबंध में हम बिलकुल बेईमान हैं।

आप जरा एक बार अपनी खोपड़ी में वापस खोज—बीन करना। कितना है, जो आप जानते हैं? तब आपको पता चलेगा कि संभावना जीरो हाथ लगेती है। जीरो भी लग जाए, तो बहुत है। पाएंगे कि सब सूना हुआ है जौर से पकड़े बैठे हैं, और डरते भी हैं कि जांच–पड़ताल की अगर पता चल गया कि अपना जाना हुआ नहीं और डरते भी है जांच ‘पड़ताल भी नहीं करते। और ऐसे लोग के पास जाते रहत है जो आपकी इस नासमझी को मजबूत करते रहते है, कहते हे, सुनते रहो। सुनते—सुनते हो जाएगा।

सुनते—सुनते बहरे हो जायेंगे, और सुनते—सुनते सुनना बंद हो जाएगा। और सुनते—सुनते आपको बहम पैदा होगा, इलूजन पैदा होगा। कि सब जान लिया।

हमारा मुल्क ऐसे ही ज्ञान से इतने पीड़ित और परेशान है! हम इतने अज्ञान पिडित नहीं है हमारा मुल्क में अज्ञानी तो कोई है ही नहीं। मैं बहुत खोजा, कोई एकाध अज्ञानी मिल जाए। वह मिलता ही नहीं। सब ज्ञानी है। और छोटे—मोटे ज्ञानी नहीं है; ब्रह्मज्ञानी है।

एक मित्र आये थे कुछ दिन हुए। मैंने कहा बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़ते हैं। क्या करते रहे?

उन्होंने कहा, कुछ नहीं। नौकरी—चाकरी मैंने सब छोड़ दी है। अब तो लोगों को ब्रह्मज्ञान समझाने में लगा रहता हूं।

मैंने कहा, तुम्हें हो गया?

उन्होंने कहा, होगा क्यों नहीं? आज तीस साल से सत्संग के सिवाय कुछ किया ही नहीं है। ऐसा एक गुरु नहीं है भारत में, जिसके चरणों में मैं नहीं बैठा हूं। सब मुझे हो गया है। अब तो दूसरों को मेरे द्वारा हो रहा है। कई लोग आने लगे हैं, और उनको ज्ञान वितरित कर रहा हूं।

जिनके पास नहीं है, वे भी वितरित कर सकते हैं। वितरित करने में कोई कठिनाई नहीं है। खोपड़ी पर बोझ हो जाता है सुन—सुनकर, उसको बांटकर हल्कापन आ जाता है। लेकिन वह ज्ञान नहीं है, वह जानना नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, जान लेगा अगर तू तो दुख से मुक्त हो जाएगा। यह ज्ञान सब विद्याओं का राजा और सब गोपनीयों का भी राजा एवं अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फल वाला और धर्मयुक्त है, साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है।

दो बातें। कृष्ण कहते हैं, श्रेष्ठतम है यह ज्ञान। इससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। यह राजविद्या है, समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ। क्योंकि और विद्याओं से आदमी अपने अलावा कुछ भी जान ले, खुद को नहीं जान पाता। और विद्याओं से आदमी अपने को छोड्कर सब कुछ पा ले, अपने को नहीं उपलब्ध हो पाता। और जब मैं अपने को ही न जान पाऊं, सब भी जान लूं; और अपने को न उपलब्ध हो सकूं? और सब पा लूं; तो भी उस पाने और जानने का अर्थ क्या है?

इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह परम ज्ञान है, राजविद्या है, दि सुप्रीम नालेज, आर दि सुप्रीम साइंस, परम विज्ञान है। इससे तू स्वयं को जान लेगा। और जो स्वयं को जान लेता है, वह सब जान लेता है।

साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है।

और यह जो ज्ञान है, यह सनातन है। यह न कभी पैदा हुआ है और न कभी इसका अंत होगा। इसलिए इस ज्ञान से जो संयुक्त हो जाता, वह भी अविनाशी हो जाता है। और एक बड़ी कीमती बात कहते हैं कि साधन करने को सुगम है।

उसके लिए सुगम है, जो इसका अभ्यास करेगा। जो सुनेगा, उसे बड़ा दुर्गम है। जो सिर्फ सुनेगा, चलेगा नहीं, उसे बड़ा कठिन है। जो चलेगा भी, उसे बड़ा सरल है।

इस सरलता में दो बातें छिपी हैं। एक तो मैंने कहा, यह आठ अध्याय के बाद कही गई सुगमता है। अर्जुन तैयार है, पात्र है। अगर आप पात्र हैं, तो सुगम होगा। अगर आप पात्र नहीं हैं, तो सुगम नहीं होगा। आप पर सब कुछ निर्भर करता है। इस अध्याय को पढ़कर कई लोग समझते हैं कि बस, बात ही सुगम है। खत्म हो गया, कुछ करने को भी नहीं है।

इस अध्याय को सीधा मत पढ़ना! आपकी पात्रता निर्मित होनी चाहिए। आपकी दोष—दृष्टि खो गई है, तो यह सुगम है; यह शर्त है। यह बेशर्त नहीं है। महात्मागण समझाते रहते हैं लोगों को कि कलियुग में तो भक्ति का साधन ही एकमात्र सुगम साधन है। सतयुग में कहते, तो थोडा ठीक भी होता। क्योंकि भक्ति जितना शुद्ध हृदय चाहती है, उतना सतयुग में भी मुश्किल है।

महात्मागण समझाते हैं कि भक्ति सुगम साधन है कलियुग में। अजीब—सी और नासमझी की बात है। भक्त का हृदय जितना शुद्ध हो, उतना तो सतयुग में भी पाना मुश्किल होता है, तो कलियुग में कैसे आसान हो जाएगा? वे कहते हैं, राम—राम का नाम ले लिया, तो कलियुग में बड़ा सुगम साधन है। लेकिन नाम लेने के लिए जो पात्रता चाहिए, वह कहा से लाइएगा? नाम तो कोई भी ले लेता है। लेकिन जो शुद्ध हृदय चाहिए, जिसमें वह राम के नाम का फूल लगे, वह शुद्ध हृदय कहां है?

लेकिन लोगों को, आसान है कोई बात, ऐसा समझकर भी बड़ी राहत मिलती है। इसलिए कई बार तो यह हो जाता है कि कठिनाई से डरे हुए लोग, कोई भी बात कोई कह दे कि आसान है, तो उसके पीछे लग जाते हैं। इसलिए नहीं कि वह आसान है, बल्कि इसलिए कि वे कठिनाई से बहुत डरे हुए हैं।

और ध्यान रहे, जो कठिनाई से डरा है, वह परमात्मा से कभी भी न मिल सकेगा। क्योंकि वह परम कठिनाई है। वहा तो अपने को खोने की और मिटाने की हिम्मत चाहिए। वहा तो आखिरी दाव का साहस चाहिए। वह तो आखिरी एडवेंचर, दुस्साहस है। जैसे कोई छलांग लगाता हो किसी अनंत गड्ढ में, जिसके नीचे की तलहटी दिखाई ही न पड़ती हो। वह तो ऐसा है।

तो सरल का मतलब यह नहीं होता कि आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा। आपकी पात्रता हो, उस पात्रता के लिए बहुत कुछ करना पड़ेगा। जैसे मैं कह सकता हूं कि पानी तो एक क्षण में भाप बन जाता है, लेकिन इसका यह मतलब मत समझ लेना कि पानी को गरम नहीं करना पड़ता। सौ डिग्री तक पानी को गरम होना ही पड़ता है। सौ डिग्री पर एक क्षण में भाप बन जाता है। लेकिन सौ डिग्री की गर्मी एक क्षण में नहीं आती। सौ डिग्री की गर्मी के लिए वक्त लगता है। ये दोनों .बातें सच हैं। अगर कोई पूछे कि पानी क्षणभर में भाप बनता है कि समय लेता है, तो क्या कहिएगा? दो तरह के चिंतन दुनिया में रहे हैं। एक जो कहते हैं, सडेन एनलाइटेनमेंट, तत्काल निर्वाण हो सकता है, उपलब्धि हो सकती है। और एक जो कहते हैं, ग्रेजुअल एनलाइर्टेनमेंट, क्रमशः, सीढ़ी—सीढ़ी उपलब्धि होती है। उन दोनों में बड़ा संघर्ष रहा है, लेकिन एकदम नासमझी से भरा हुआ। क्योंकि उनकी बातचीत ठीक वैसी ही है, जैसे कोई पइनी के संबंध में तय करे कि पानी क्षण में भाप बनता है कि समय लगता है! क्या कहिएगा?

पानी दोनों करता है। और पानी को बांटा नहीं जा सकता। सौ डिग्री तक गरम होने में उसे वक्त लगता है। और मजे की बात यह है कि निन्यानबे डिग्री से भी पानी अगर गर्म होना बंद हो जाए, तो वापस लौट जाएगा, भाप नहीं बनेगा। साढ़े निन्यानबे डिग्री से भी वापस लौट जाएगा। रत्तीभर कमी रह जाए सौ डिग्री में, तो पानी पानी ही रहेगा। और अगर गर्मी देनी बंद हो जाए, तो वापस लौट जाएगा।

सौ डिग्री पर आकर छलांग घटित होती है, और तत्काल पानी भाप हो जाता है। यह घटना तो क्षण में घटती है। कहना चाहिए, क्षण के भी हजारवें हिस्से में घटती है। कहना चाहिए, समय के बाहर घटती है। जरा भी समय नहीं लगता पानी के भांप बनने में, लेकिन पानी को सौ डिग्री तक पहुंचने में बहुत समय लगता है।

भक्त बनने में बहुत समय लगता है। भक्ति को उपलब्धि तो क्षण भर में हो जाती है। भक्त सौ डिग्री में उबलता हुआ व्यक्ति है।

तो आप यह मत सोचना की आप उठे और भक्त हो गये। आप बिलकुल ठंडे पानी हैं। डर तो यह है कि आप बर्फ न जमे हो। फ्रीजन जिसको पहले पिघलाना पड़े, तब कहीं वह सौ डिग्री तक पहूंचने में पचास बार कहे कि कोई और र्साट कट नहीं है। कहां इतना समय लग रहा है।

इसलिए महेश योगी जैसे व्यक्तियि लोगों को थोड़े दिन के लिए बहुत प्रभावी हो जाते हैं; क्योंकि सार्ट कट वे कहते हैं, बस, यह मिनटभर का काम है। ऐसा कर लो, और सब हो जाएगा। कोई भी धोखे। में पड़ जाता है। क्योंकि हमारे मन लोभी हैं। लगता है, जल्दी कुछ होता हो, तो ठीक है। इससे हमारा शोषण चलता है। नहीं, कोई शार्टकट नहीं है। यात्रा पूरी ही करनी पड़ेगी। क्योंकि उस परम यात्रा में कोई धोखा नहीं चलेगा। और जीवन के शाश्वत नियम हैं।

तो सुगम है बहुत, अगर आपका हृदय भक्त होने की परिभाषा को पूरा करता .हो। लेकिन दूसरी बात भी कही है कि इतने से ही सुगम हो जाएगा, ऐसा नहीं है। भक्त का भी हृदय हो। और सुन लें सिर्फ, तो कुछ भी न होगा। फिर वापस गिर जाएंगे। सौ डिग्री तक पहुंचकर भी वापस गिरने का डर है, जब तक कि भाप बन ही न जाएं। इसलिए चलना भी पड़ेगा।

कृष्ण कहते हैं, साधन करने को बड़ा सुगम है।

बड़ा सरल है, अगर साधन करना हो। अगर सुनना ही हो, तो बहुत कठिन है। लेकिन हमें उलटी बात समझ में आती है। हमें लगता है, सुनना हो, तो बड़ा सुगम है; करना हो, तो बड़ा कठिन है। सुनना हमें सरल मालूम पड़ता है। लेकिन मैं भी आपसे कहता हूं, सुनना कठिन है। क्योंकि जिसे आप जानते ही नहीं हैं, उसे सुन कैसे सकिएगा? और जिसका आपको पता ही नहीं है, वह आपकी समझ में कैसे आएगा? और जिसे आपने जाना ही नहीं है, किसी के भी शब्द—वे कृष्ण के क्यों न हों—वे शब्द आपको कुछ भी न बता पाएंगे। वह भाषा ही अनजानी, अपरिचित है।

एक आदमी अरबी में आपके पास बोल रहा हो, आपको वहम होता है कि सुन रहे हैं, क्या खाक सुन रहे हैं! एक आदमी चीनी में बोले चला जा रहा है आपको लगता है कि सुन रहे हैं, लेकिन क्या सुन रहे हैं? लेकिन चीनी और अरबी के मामले में झंझट नहीं है। आप समझते हे कि यह भाषा हमें आती ही नहीं!

आप भूल में मत पड़ना यह की भाषा आपको और भी बड़ी अरबी और भी बड़ी चीनी है। यह बिलकुल नहीं आ सकती है। अरबी में थोड़ा समझ जाए, उस आदमी की आंख, उस आदमी के होंठ की गति को समझ जाये। उसकी भाव भंगिमा कुछ कह दे। यह कृष्ण तो भाव—रहित है। इसके होठो से कुछ पता नहीं चलेगा। इसकी आँख कुछ न कहेगी, क्योंकी ऐसे व्यक्ति ऐसे शून्य हो गए होते हैं, कह रहे हैं, कठिन है इनसे कुछ पता लगाना। और जो यह कह रहे है, वह भाषा समझ में आती हुई मालूम पड़ती है, समझ में बिलकुल नहीं आती। वह भाषा बिलकुल ही कठिन है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि सुनने में तो नहीं है सुगम, लेकिन अगर तू करे, तो सुगम है।

अगर कोई अंधा मुझसे कहे कि प्रकाश मुझे समझा दो, तो समझाना बहुत कठिन है। लेकिन अगर वह कहे कि मेरी आख का इलाज करवा दो, या मेरी आख का कोई अभ्यास करवाओ, जिससे मेरी आंखें खुल जाएं, तो मैं कहता हूं —वह सुगम है। अंधे की आख खुल सँकती है किसी दिन और वह प्रकाश को देख सकता है। कोई मुझसे कहे कि प्रेम समझा दो मुझे, तो कठिन है बहुत। लेकिन अगर वह तैयार हो प्रेम में कूद पड़ने को, प्रेम करने को, तो सुगम है। जीवन में अनुभव के अतिरिक्त और कोई सुगमता नहीं है। शब्द सुगम मालूम पड़ते हैं, बिलकुल दुर्बोध हैं। शब्दों से कुछ भी समझ में न कभी आया है, न आ सकता है। सिर्फ अनुभव, सिर्फ अपनी ही प्रतीति, अपना ही साक्षात्कार प्रकट करता है सत्य को।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सुगम है, साधन करने को बड़ा सुगम है।

और हे परंतप, इस ज्ञानरूप धर्म में श्रद्धारहित पुरुष मेरे को प्राप्त न होकर मृत्युरूप चक्र में परिभ्रमण करते हैं।

जो श्रद्धारहित हैं, वे सुन लें, समझ लें, चलने की भी कोशिश करें, तो भी मुझ तक नहीं पहुंचते। मुझ तक तो वे ही पहुंचते हैं, जो श्रद्धायुका हैं। कारण?

कारण, परमात्मा तक पहुंचने का द्वार हृदय है। कारण, परमात्मा तक पहुंचने का भाव प्रेम है। कारण, उस तक पहुंचने की जो तैयारी है, वह केवल श्रद्धायुक्त हृदय में होती है। यह श्रद्धायुक्त हृदय का अर्थ है, ट्रस्टिंग हार्ट, भरोसा करने वाला हृदय।

छोटा बच्चा है, वह कहता है कि मुझे, सूरज उगता है सुबह, वह देखने चलना है। या कहता है कि बगीचे में सुना है कि फूल खिले हैं, मुझे देखने चलना है। या कहता है कि सागर में बड़ी तरंगें आई हैं, मुझे देखने चलना है। या कुछ और कहता है। उसका पिता कहता है, मेरा हाथ पकड़ और चल!

बेटा कह सकता है कि तुम्हारा हाथ पकड़कर चलूं? रास्ते में तुम छोड़ तो न दोगे? तुम्हें अपने हाथ का पक्का भरोसा है कि मैं भटक तो न जाऊंगा? क्या तुम्हें पक्का खयाल है कि तुम जहां ले जा रहे हो, वह जगह है? और पहले तुम मुझे सब तर्कयुक्त रूप से समझा दो कि सूरज है, कि सागर है, कि फूल खिले हैं, कि पक्षी गीत गाते हैं। जब मैं सब समझ लूं, तब मुझे यह भी समझाओ कि तुम धोखेबाज तो नहीं हो? तब तुम मुझे यह भी बताओ कि तुम्हारे हाथ से तुमने कभी किसी को पहुंचाया भी है कि मुझको ही पहुंचाते हो? और मैं कैसे मानूं कि तुमने किसी को पहुंचाया है? इसकी कोई गवाहियां हैं? और फिर मैं कैसे मानूं कि वे गवाहियां तैयार की हुई नहीं हैं?

यह सब वह पूछने लगे, तो असंभव है यात्रा। लेकिन बेटा उठकर खड़ा हो जाता है, और पिता का हाथ पकड़ लेता चल पड़ता है। यह पिता का हाथ पकड़ने में जो भाव बेटे का है, उसका नाम श्रद्धा है।

श्रद्धा का अर्थ है, एक गहरा अपनापन, एक भरोसा। श्रद्धा का अर्थ है, एक आत्मीयता, अज्ञात के प्रति, अनजान के प्रति भी भरोसे का भाव।

ध्यान रहे, श्रद्धा करके भूल भी हो जाए, तो हानि नहीं है; और अश्रद्धा करके लाभ भी हो जाए, तो हानि है। अश्रद्धा करके लाभ भी हो जाए, तो हानि है। क्योंकि अश्रद्धा से जो मिलेगा, वह दो कौड़ी का होगा; लेकिन अश्रद्धा मजबूत हो जाएगी, जो कि बहुत बड़ी हानि है। श्रद्धा करके हानि भी हो जाए, तो हानि नहीं है, लाभ ही है। क्योंकि श्रद्धा की, यह बड़ी घटना है।

इस जगत में जो सबसे बड़ी घटना है, वह श्रद्धा है। यह बड़ी हैरानी की बात है। खयाल में न आएगा। क्योंकि श्रद्धा एक असंभव बात है, इपासिबिलिटी। किसी पर श्रद्धा करना एक असंभव बात है। क्योंकि हमारी पूरी की पूरी बुद्धि सब तरह के अडंगे खड़े करेगी। वह कहेगी अर्जुन से कि यह कृष्ण! यह मेरे साथ खेला है और मुझसे कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण! इसके गले में मैं हाथ डालकर नाचा हूं कूदा हूं, यह मुझसे कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण! जिससे मौका पड़ा है, तो कुश्ती भी की है, यह कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण जो कि मेरा सारथी होकर खड़ा है इस युद्ध में, मुझसे कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण! इसको भी चोट लग जाती है, तो हाथ से खून निकल आता है। इसको भी भूख लगती है। रात

नींद नही आती है, तो सुबह थका—मादा होता है। यह मुझ से कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण भी मरेगा। यह कृष्ण भी एक दिन पैदा हुआ। यह कृष्ण भी प्रेम में पड़ता है, यह गोपियों के साथ नाचता है। यह, कृष्ण भी लेन—देन करता है, राजनीति चलाता है। मुझ से कहता है, श्रद्धा! अर्जुन को हजार सवाल आने स्वाभाविक हैं। और बिलकुल प्राकृतिक हैं।

श्रद्धा बड़ी असंभव घटना है। श्रद्धा ऐसा फूल है, जो कभी—कभी करोड़ों में कभी एक बार खिलता है। लेकिन जब खिलता है, तो उससे अनंत के द्वार खुल जाते हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, श्रद्धारहित होकर, तो फिर मुझ तक कोई नहीं पहुंच पाता है। क्योंकि मुझ तक पहुंचने का द्वार और सेतु ही श्रद्धा है। और जो मुझ तक नहीं पहुंचता, वह मृत्यु और जन्म, जन्म और मृत्यु, मृत्यु और जन्म के पहिए में घूमता रहता है, भटकता रहता है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
अतर्क्य रहस्य में प्रवेश—(अध्याय—9) प्रवचन—दूसरा

सूत्रः

मया ततमिदं सर्वं जगदस्थ्यमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्यवीस्थ्यः ।।4।।
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।।5।।

यथाकाशीस्थ्योनित्यं वायुः सर्वन्नगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युयधारय ।।6।।
और हे अर्जुन मेरे अव्यक्त स्वरूय से यह सब जगत परिपूर्ण है और सब भूत मेरे में स्थित हैं। इसलिए वास्तव में मैं उनमें स्थित नही हूं।और वे सब भूत मेरे में स्थित नहीं है, मेरे

योग—सामथर्य को देख कि भूतों को धारण—पोषण करने वाला और भूतों को उत्पन्न करने वाला भी मेरा आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं है।

क्योंकि जैसे अकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा ही आकाश में स्थित है, वैसे ही संपूर्ण भूत मेरे में स्थित है, ऐसे जान।

श्रद्धा की बात कहकर कृष्ण ऐसी ही कुछ बात शुरू करेंगे, यह सोचा जा सकता था, जिसे कि तर्क मानने को राजी न हो। यह सूत्र अतर्क्य है, इल्लाजिकल है। इस सूत्र को कोई गणित से समझने चलेगा, तो या तो सूत्र गलत होगा या गणित की व्यवस्था गलत होगी। यह सूत्र तर्क की संगति में नहीं बैठेगा। यह सूत्र रहस्यपूर्ण है और पहेली जैसा है।

एक तो पहेली ऐसी होती है, जिसका हल छिपा होता है, लेकिन खोजा जा सकता है। एक पहेली ऐसी भी होती है, जिसका कोई हल होता ही नहीं, खोजने से भी नहीं खोजा जा सकता है।

यह सूत्र दूसरी पहेली जैसा है। जापान में झेन फकीर जिसे कोआन कहते हैं। ऐसी पहेली, जो हल न हो सके। ऐसा रहस्य, जिसे हम जितना ही खोजें, उतना ही रहस्यपूर्ण होता चला जाए। ऐसा सत्य, जिसे हम जितना जानें, उतना ही पता चले कि हम नहीं जानते हैं। जितना हो परिचय प्रगाढ़, उतना ही रहस्य की और गहराई बढ़ जाए। जितना लें उसे पास, उतना ही पता चले कि वह बहुत दूर है। छलांग तो लग सकती है ऐसे रहस्य में, लेकिन ऐसे रहस्य का कोई पार नहीं मिलता है। सागर में जैसे कोई कूद तो जाए, लेकिन फिर सागर के पार होने का उपाय न हो।

तो द्वार तो है प्रभु में प्रवेश का, लेकिन वापस निकलने के लिए कोई द्वार नहीं है। इसलिए अगम है पहेली। और कृष्ण ने इसीलिए श्रद्धा की बात अर्जुन से पहले कही कि अब तू श्रद्धायुक्त है, तो मैं तुझे उन गोपनीय रहस्यों की बात कहूंगा, जो कि श्रद्धायुक्त मन न हो, तो कहे नहीं जा सकते। इस सूत्र को समझने के पहले श्रद्धा के संबंध में थोड़ी बात और समझ लेनी जरूरी है, तभी यह सूत्र स्पष्ट हो सकेगा।

अस्तित्व में चार प्रकार के आकर्षण हैं। या तो कहें चार प्रकार के आकर्षण या कहें कि एक ही प्रकार का आकर्षण है, चार उसकी अभिव्यक्तियां हैं। या कहें कि एक ही है राज, लेकिन चार उसकी सीढ़ियां हैं। या कहें कि एक ही है सत्य, चार उसके आयाम हैं! अगर बहुत स्थूल से शुरू करें, तो समझना आसान होगा।

वैज्ञानिक कहते हैं, इस जगत के संगठन में, आर्गनाइजेशन में जो तत्व काम कर रहा है, उस तत्व को हम मैग्नेटिज्म कहें, उस तत्व को हम कहें एक चुंबकीय ऊर्जा, एक चुंबकीय शक्ति, जिससे पदार्थ एक—दूसरे से सटा है और एक—दूसरे से आकर्षित है। अगर विद्युत की भाषा में कहें, तो वह निगेटिव और पाजिटिव, ऋण और धन विद्युत है, जो जगत के अस्तित्व को बांधे हुए है। पदार्थ भी संगठित नहीं हो सकता, अगर कोई ऊर्जा आकर्षण की न हो। एक पत्थर का टुकड़ा आप देखते हैं, अरबों अणुओं का जाल है। वे अणु बिखर नहीं जाते, भाग नहीं जाते, छिटक नहीं जाते, किसी केंद्र पर, किसी आकर्षण पर बंधे हैं। वैज्ञानिक खोज करता है, आकर्षण दिखाई पड़ने वाला नहीं है। लेकिन बंधे हैं, तो खबर मिलती है कि आकर्षण है।

हम एक पत्थर को आकाश की तरफ फेंके तो वापस जमीन पर गिर जाता। हजारों —हजारों साल तक आदमी के पास कोई उत्तर नहीं था कि क्यों गिर जाता है। लेकिन न्यूटन को सुझा कि जरूर जमीन खींच लेती होगी। वह जो खिंचाव है न्यूटन को भी नहीं पड़ा है। वह खिंचाव किसी ने कभी नहीं देखा है, केवल पत्थरों को हमने नीचे गिरते देखा है; परिणाम देखा है, वृक्ष से पत्ता गिरता है और नीचे आ जाता है। आप छलांग लगाये पहाड़ से और जमीन पर आ जाएंगे। हर चीज जमीन की तरफ गिर जाती है, खिंच जाती है। कोई प्रबल आकर्षण, कोई कशिश है, कोई ग्रिविटेशन जरूर पीछे काम कर रहा है। जो दिखाई नहीं पड़ता।

न्यूटन की खोज कीमती सिद्ध हुई, क्योंकि जीवन का बहुत सा उलझाव उसकी खोज के कारण साफ हो गया जमीन में कशिश है, कोई मैग्रेटिज्य है, कोई आकर्षण है, कोई खिंचाव है। पदार्थ के तल पर खिंचाव को विज्ञान स्वीकार करता है, यद्यपि खिंचाव को कभी किसी ने देखा नहीं है। हमने केवल खिंचाव का परिणाम देखा है। हमने देखा है कि एक मैग्नेट को रख दें, तो लोहे के टुकड़े खिंचे चले आते हैं। खिंचाव नहीं दिखाई पड़ता, लोहे के टुकड़े खिंचते हुए दिखाई पड़ते हैं। चुंबक दिखाई पड़ता है, लोहे के टुकड़े दिखाई पड़ते हैं, वह जो शक्ति खींचती है, वह दिखाई नहीं पड़ती है, वह अदृश्य है। शक्ति मात्र अदृश्य है।

लेकिन जब चुंबक खींच लेता है, तो वैज्ञानिक कहता है, खिंचाव का काम जारी है। जब जमीन खींच लेती है, तो वैज्ञानिक कहता है, खिंचाव का काम जारी है। जब एक पत्थर के अणु बिखर नहीं जाते, तो उसका अर्थ है, वे कहीं न कहीं सेंटर्ड हैं, कोई न कोई केंद्र उन्हें बांधे हुए है। वह केंद्र दिखाई नहीं पड़ता। वह केंद्र अनुमानित है। लेकिन एक बात विज्ञान को साफ हो गई है कि उस केंद्र के दो बिंदु हैं; एक जिसे धन बिंदु कहें, एक जिसे ऋण बिंदु कहें, पाजिटिव और निगेटिव कहें। उन दोनों के बीच आकर्षण है।

अगर पदार्थ के तल पर हम मनुष्य की भाषा का उपयोग करें, तो कहें कि पदार्थ में भी स्त्रैण और पुरुष जैसे बिंदु हैं। पदार्थ भी स्त्री और पुरुष में विभाजित है, और उन दोनों के आकर्षण से ही सारे अस्तित्व का खेल है।

पदार्थ से ऊपर उठें, तो इसी आकर्षण की दूसरी अभिव्यक्ति हमें स्त्री और पुरुष में दिखाई पड़ती है। पदार्थ से ऊपर उठें, तो जीवन भी इसी ऊर्जा से बंधा हुआ चलता हुआ मालूम पड़ता है। स्त्री और पुरुष के भीतर भी जीवन की ऊर्जा एक—दूसरे को आकर्षित करती है। वही आकर्षण जीवन प्रवाह है।

अगर पदार्थ बंधा है किसी आकर्षण से, तो जीवन भी किसी से बंधा है जगत में वह आकर्षण सेक्स या यौन के नाम से प्रकट होता है। यौन, विद्‌युत—आकर्षण का ही दूसरा रूप है जीवन। जब चुंबकिय उर्जा जीवन को उपलब्ध हो जाती है, तो यौन निर्मित होता है।

उससे और उपर चले। तो मनुष्य यौन से ही प्रभावित नहीं होता, कुछ ऐसे प्रभाव भी है जिनसे यौन का कोई भी संबंध नहीं है। उन प्रभाव को हम प्रेम कहते है।

पदार्थ के बीच जो आकर्षण है वह है विद्‌युत। दो शरीरों के बीच जो आकर्षण है वह यौन दो मनों के बीच जो आकर्षण है, वह है प्रेम। यौन से भी मनसविद राजी हैं। और प्रेम के संबंध में भी

वैज्ञानिक न राजी हों, मनसविद न राजी हों, लेकिंन कवि, साहित्यकार, कलाकार, चित्रकार—वे सब, जिनका सौंदर्य से संबंध है—वे राजी हैं। वे मानते हैं कि प्रेम भी एक प्रगाढ़ ऊर्जा है और उसके परिणाम भी प्रत्यक्ष होते हैं।

लेकिन न तो हम जमीन के आकर्षण को देख सकते हैं, और न हम यौन के आकर्षण को देख सकते हैं; अनुभव कर सकते हैं। वैसे ही हम प्रेम के आकर्षण को भी नहीं देख सकते हैं। उसे भी अनुभव ही कर सकते हैं।

ये तीन सामान्य आकर्षण हैं, एक और चौथा आकर्षण है। मैंने कहा, दो पदार्थों के बीच, निर्जीव पदार्थों के बीच जो आकर्षण है, वह विद्‌युत है; या चुंबकीय ऊर्जा है। दो शरीरों के बीच जो जैविक, बायोलाजिकल ग्रेविटेशन है, वह यौन है। दो मनों के बीच जो आकर्षण है, वह प्रेम है। लेकिन दो आत्माओं के बीच जो आकर्षण है, उसका नाम श्रद्धा है। वह चौथा आकर्षण है, और परम आकर्षण है।

जब दो मन एक—दूसरे में आकर्षित होते हैं, तो प्रेम बनता है। जब दो शरीर एक—दूसरे में आकर्षित होते हैं, तो यौन निर्मित होता है। जब दो पदार्थ एक—दूसरे में आकर्षित होते हैं, तो भौतिक कशिश निर्मित होती है। लेकिन जब दो आत्माएं एक—दूसरे में आकर्षित होती हैं, तो श्रद्धा निर्मित होती है।

श्रद्धा इस जगत में श्रेष्ठतम आकर्षण है, और चुंबकीय आकर्षण। इस जगत में निम्नतम आकर्षण है। लेकिन न तो चुंबकीय आकर्षण देखा जा सकता है और न दो आत्माओं के बीच का आकर्षण देखा जा सकता है। जब चुंबकीय आकर्षण जैसी स्थूल बात भी नहीं देखी जा सकती, तो श्रद्धा जैसी बात तो कतई नहीं देखी जा सकती। लेकिन श्रद्धा के भी परिणाम देखे जा सकते हैं।

बुद्ध के पास एक युवक आया है। वह उनके चरणों में झुका है। उसने आख उठाकर बुद्ध को देखा है, वापस चरणों में झुक गया है! बुद्ध ने पूछा, किसलिए आए हो? उस युवक ने कहा कि जिस लिए आया था, वह बात घट गई, हो गई। अब मुझे कुछ पूछना नहीं, कुछ कहना नहीं। बुद्ध ने कहा, लेकिन और लोगों को बता दो, क्योंकि इन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा है।

वहां कोई दस हजार भिक्षुओं की भीड़ थी। किसी को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा था। वह युवक आया था, यह दिखाई पड़ा था। वह बुद्ध के चरणों में झुका था, यह भी दिखाई पड़ा था। बुद्ध का हाथ उस युवक के सिर पर गया था, यह भी दिखाई पड़ा था। उस युवक ने उठकर, खड़े होकर बुद्ध की आंखों में देखा था, यह भी दिखाई पड़ा था। वह वापस चरणों में झुका था कोई धन्यवाद देने, यह भी देखा। उसने जो कहा, वह भी सुना। लेकिन बुद्ध ने कहा, अब तू वह बात भी इन सबको बता दे, जो किसी को दिखाई नहीं पड़ी है। तुझे क्या हो गया है?

उस युवक ने चारों तरफ देखा और उसने कहा कि उसे मैं कैसे कहूं? मैं बदलने के लिए आया था और मैं बदल गया हूं। मैं रूपांतरित होने आया था और मैं रूपांतरित हो गया हूं। मैं किसी क्रांति के लिए आया था कि मेरी आत्मा किसी और जगत में प्रवेश कर जाए, वह प्रवेश कर गई है।

लोगों ने पूछा, लेकिन यह कैसे हुआ त्र: क्योंकि न कोई साधना, न कोई प्रयत्न! यह हुआ कैसे?

उस युवक ने कहा, मैं नहीं जानता। इतना ही मैं जानता हूं कोई अलौकिक प्रेम मेरे और बुद्ध के बीच घटित हो गया है, कोई श्रद्धा जन्म गई है, कोई भरोसा पैदा हो गया है। बुद्ध को देखकर मुझे भरोसा आ गया। उस भरोसे के साथ ही मैं बदल गया। शायद भरोसे की कमी ही मेरी क्रांति में बाधा थी। बुद्ध को देखकर मुझे यह भरोसा आ गया कि जो बुद्ध में हो सकता है, वह मुझ में भी हो सकता है। जो बुद्ध को हुआ है, वह मुझे भी हो सकता है। बुद्ध मेरा भविष्य हैं। जो मैं कल हो सकता हूं वह बुद्ध आज हैं। इस भरोसे के साथ ही जब मैं चरणों में झुका और वापस उठा, तो मैं दूसरा आदमी हो गया हूं।

लोगों को भरोसा नहीं आया, लेकिन देखा कि वह आदमी बदल गया है। और वह आदमी साधारण आदमी नहीं था, हत्यारा था, डाकू था, लुटेरा था। और दूसरे दिन वह आदमी गाव में भिक्षा मागने गया है। और लोगों ने अपनी छतों पर खड़े होकर उसे पत्थर मारे हैं, क्योंकि लोग तो उसे लुटेरा ही देख रहे थे। वह जो घटना घटी थी, वह तो उन्हें दिखाई नहीं पड़ सकती थी कि वह आदमी अब बुद्ध जैसा हो गया

था। वह घटना तो आख के बाहर थी, अगोचर थी। उन्होंने पत्थर मारे हैं, क्योंकि वह हत्यारा था, चोर था, लुटेरा था। गाव उससे पीड़ित रहा है। उसे कौन भिक्षा देगा? पत्थरों के अतिरिक्त उसे भिक्षा में कुछ भी नहीं मिला। वह पत्थरों में दबकर सड़क के किनारे पड़ा हुआ है। बुद्ध भिक्षा मांगने निकले हैं। उन्होंने आकर उसके सिर पर हाथ रखा। उसने आख खोली और बुद्ध ने कहा, कोई पीड़ा तो नहीं हो रही?

उस मरणासन्न व्यक्ति ने कहा, पीड़ा! पीड़ा जिसे हो सकती थी, वह आपके चरणों में मर चुका है। और जिसे पीड़ा नहीं हो सकती, वही अब बाकी बचा है।

बुद्ध ने कहा, लेकिन तुम मर रहे हो।

उस युवक ने कहा, जो मर सकता था, वह आपके चरणों में मर चुका है। और अब जो नहीं मर सकता, वही केवल शेष है।

बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा कि देखो! जिसका तुम्हें भरोसा नहीं आया था, उसका परिणाम देखो।

श्रद्धा के परिणाम देखे जा सकते हैं। जीवन में शक्तियां दिखाई नहीं पड़ती हैं, केवल उनके परिणाम दिखाई पड़ते हैं। इसलिए आपसे मैं कहता हूं आप अगर सोचते हों कि श्रद्धालु हैं, तो इतना काफी नहीं है। आपकी श्रद्धा का एक ही प्रमाण है कि आपका जीवन रूपांतरित होता हो। तो जो आस्तिक कहता है, मैं श्रद्धालु हूं और नास्तिक और उसकी जिंदगी में कोई फर्क नहीं है, तो वह अपने को धोखा दे रहा है। क्योंकि श्रद्धा तो कशिश है, श्रद्धा तो क्रांति है।

तो जो कहता है, मैं श्रद्धालु हूं उसका सबूत एक ही है कि उसका जीवन गवाही दे, उसका अस्तित्व गवाही दे, वह एक विटनेस हो जाए, वह एक साक्षी बन जाए परमात्मा के होने का। लेकिन अगर वह कहता है कि नहीं, मैं श्रद्धा तो करता हूं लेकिन मुझ में और नास्तिक में कोई ऐसे फर्क नहीं है, तो जानना कि श्रद्धा झूठी है। और झूठी श्रद्धा से सच्चा संदेह भी बेहतर है। क्योंकि सच्चा संदेह कभी श्रद्धा तक पहुंच सकता है, लेकिन झूठी श्रद्धा कभी श्रद्धा तक नहीं पहुंच सकती है।

यह जो श्रद्धा है, जैसा मैंने कहा, दो पदार्थों के बीच जो कशिश है, आकर्षण है भौतिक, दो शरीरों के जीवन यौन बन जाता है, दो मनों के बीच सचेतन प्रेम बन जाता है, दो आत्माओं के बीच श्रद्धा हो जाती है। अगर दो पदार्थ आपस में न मिलेतो अस्तित्व बिखर जाए। और अगर दो शरीर आपस में न मिले तो जगत से जीवन बिखर जायेगा। अगर दो मन आपस में न मिलेतो जीवन से सब सौंदर्य बिखर जायेगा।

पदार्थ एक दूसरे को खिंचते है, इसलिए आस्तित्व संगठित है। आर्गनाइज्ड है। चाहे चाँद तारे घूमते हो और सूरज के आस—पास पृथ्वी चक्कर मारती' हो और चाहे परमाणु घूमते हों, जहां भी पदार्थ है, उसका कारण पदार्थ को आपस में बांधने वाली ऊर्जा है।

हमारी सदी पूछती है, ईश्वर कहां है? असल में हमें पूछना इसलिए कि पत्नी से भी नीचे गिरा, कुर्सी ज्यादा मूल्यवान है। पत्नी चाहिए, श्रद्धा कहां है? क्योंकि श्रद्धा न हो, तो ईश्वर का कोई कुर्सी पर चढ़ाई जा सकती है। बच्चे कुर्सी पर चढ़ाए जा सकते हैं।

अनुभव नहीं होगा। श्रद्धा न हो, तो ईश्वर न होने जैसा हो जाएगा। ईश्वर के प्रकट होने के लिए जिस आकर्षण की जरूरत है, वह श्रद्धा है।

और हर आकर्षण सृजनात्मक है। पदार्थ खिंचता है, तो जगत निर्मित हो जाता है। अभी तक वैज्ञानिक नहीं समझा पाए कि पृथ्वी कैसे बन गई! अब तक वे नहीं समझा पाए कि चांद—तारे कैसे बन गए! अनुमान हैं बहुत, लेकिन सारे अनुमानों के बीच एक आधार है, और वह आधार यह है कि जरूर किसी ऊर्जा के कारण यह सारा संगठन फलित हुआ है, किसी शक्ति के कारण। उसके नाम कुछ भी दिए जा सकते हैं।

अगर दो शरीर संयुक्त न हों, तो जीवन की धारा बिखर जाती है। इसलिए यौन का, सेक्स का प्रबल आकर्षण है। लेकिन आदमी आदमी होकर भी पहले आकर्षण से भी ऊपर नहीं उठ पाता, तो आखिरी आकर्षण तक पहुंचना बहुत मुश्किल है। हममें से अधिक लोग यौन से भी नीचे जीते हैं। यह सुनकर आपको कठिनाई होगी। हममें से बहुत—से लोग हैं, जिनको यौन का आकर्षण भी ऊपर है अभी। जो पदार्थ के आकर्षण पर जीते हैं।

अब एक आदमी रुपए इकट्ठे करने के लिए जी रहा है, वह अभी यौन के आकर्षण तक भी ऊपर नहीं उठा है। अभी वह पदार्थ के आकर्षण से बंधा है। अभी जब वह रुपए हाथ में रखता है, तो जो आनंद उसे अनुभव होता है, वह दो पदार्थों के बीच जो आकर्षण है, उसका ही आनंद है।

इसलिए धन के पीछे जो पागल है, वह पहले आकर्षण में जी रहा है। इस लिए लोभी काम से संयोग ले भी नीची अवस्था है। लोभ, ग्रीड सेक्स से भी नीचे की अवस्था है', ध्यान रखना। और बहुत—से लोग हैं ऐसे जो धन के लिए सेक्स को कर्बान कर सकते हैं। और शायद

मन में सोचते हो का काम कर रहे है। की तरफ जा रहे हैं। वे यौन से भी नीचे गिर रहे है। यौन की बलि चढा देते हैं। वो बिलकुल ही स्थूल आकर्षण में पड़े है।

एक आदमी है जिसको कुर्सी का मोह है, पद का मोह है, सिंहसान का मोह है, वह कुर्सी के आकर्षण पर जी रहा है। इसलिए राजनीतिज्ञ अकसर अपनी की फिक्र छोड़ सकता है। इसलिए नहीं कि वह भी बुद्ध जैसा हो गया है कि पत्नी को छोड़ सकता है,

इसलिए कि पत्नी से भी नीचे गिरा; कुर्सी ज्यादा मूल्यवान है। पत्नी कुर्सी पर चढ़ाई जा सकती है। बच्चे कुर्सी पर चढ़ाइ जा सकती है। वह पहला स्थूल आकर्षण है। वह पहला स्थूल आकर्षण है।

धन, पद, बहुत स्थूल आकर्षण हैं। वे आकर्षण वैसे ही हैं, जैसे चुंबक के पास लोहा खिंचता है। ऐसे ही हम खिंचे चले जाते हैं। ध्यान रखना, आप चुंबक नहीं हैं। जब आप धन की तरफ खिंचते हैं, तो ध्यान रखना, धन आपकी तरफ कभी नहीं खिंचता है। आप ही धन की तरफ खिंचते हैं। धन चुंबक होता है। ध्यान रखना, धन पुरुष हो जाता है, आप स्त्रैण हो जाते हैं।

इसलिए धन को प्रेम करने वाला रुपए को ऐसे देखता है, जैसे अपने प्रेमी को। वह उसका परमात्मा है। रुपए को छूता है ऐसे, जैसे किसी जीवित चीज को भी उसने कभी नहीं छुआ है। रुपए को उलट—पलटकर देखता है!

और हम सबको पता है। स्त्रियों को पता है। इसलिए स्त्रियां अपने शरीर की उतनी फिक्र नहीं करती हैं, जितनी अपने गहनों की फिक्र करती हैं। क्योंकि आस—पास जो लोग हैं, वे पदार्थ से आकर्षित होते हैं। अभी शरीर का भी आकर्षण दूर है।

इसलिए स्त्री अपने शरीर को गंवा सकती है, लेकिन अपने हीरे को नहीं खो सकती। उसके हाथ में उतना आकर्षण नहीं मालूम पड़ता उसे, जितना हीरे की अंगूठी में मालूम पड़ता है। और उसकी समझ एक लिहाज से सही है। क्योंकि जब भी कोई उसके हाथ को देखता है, तो सौ में से नब्बे मौके पर हाथ को देखने वाले बहुत कम लोग हैं, हीरे की अंगूठी को देखने वाले ज्यादा लोग हैं। इसलिए अगर कुरूप हाथ भी हो और हीरे की अंगूठी हो, तो आपको हाथ का कुरूप होना दिखाई नहीं पड़ता। हीरे की अंगूठी का सौंदर्य हाथ पर छा जाता है। इसलिए कुरूप व्यक्ति आभूषणों से अपने को लादता चला जाता है। असल में कुरूपता ही केवल आभूषण के प्रति आकर्षित होती है, क्योंकि वह और नीचे के तल का आकर्षण है।

पुरुष भी भलीभांति जानते हैं कि उनका बड़ा मकान एक स्त्री को आकर्षित कर सकता है। उनका बैंक बैलेंस एक स्त्री को आकर्षित कर सकता है। उनकी बड़ी कार एक स्त्री को आकर्षित कर सकती है। इसलिए पुरुषों को भी अपने शरीर की भी उतनी चिंता नहीं है, जितनी अपनी कार की है, जितनी अपने मकान की है, जितनी अपनी तिजोड़ी की है। क्योंकि आदमी के जिस समाज में हम जी रहे हैं, वह पदार्थ के तल पर आकर्षित हो रहा है, और श्रद्धा बहुत लंबी यात्रा है फिर।

पदार्थ से ऊपर उठें, बड़ी कृपा होगी, लोभ से ऊपर उठें। कम से कम जीवित व्यक्ति में आकर्षित हों, मृत पदार्थों में नहीं। यह भी बड़ी क्रांति है। कुछ लोग जीवित व्यक्तियों में आकर्षित होते हैं, लेकिन यौन के बाहर उनका आकर्षण नहीं जाता। एक—दूसरे के शरीर तो मिलते हैं, लेकिन एक—दूसरे के मन कभी भी नहीं मिल पाते हैं।

इसलिए जिन मुल्कों में तलाक की सुविधा हो गई है, उन मुल्कों में विवाह अब बच नहीं सकता। क्योंकि मन तो कहीं मिलते ही नहीं, तन ही मिलते हैं। और तन जल्दी ही बासे, और जल्दी ही उबाने वाले हो जाते हैं।

एक ही शरीर कितनी बार भोगा जा सकता है? और एक ही शरीर कितनी देर तक आकर्षक हो सकता है? और एक ही शरीर कितनी देर तक खींचेगा? फिर वह खिंचाव भी एक ऊब और बोर्डम हो जाती है। और मन तो मिलते नहीं।

इसलिए पश्चिम में, जहां तलाक सुविधापूर्ण होता चला जा रहा है, विवाह बिखरता चला जा रहा है। उन्नीस सौ में अमेरिका में चार शादियों में एक तलाक होते थे, अब चार शादियों में तीन तलाक की नौबत है। सिर्फ पचास साल में! और पचास साल, मैं आपको भरोसा दिलाता हूं तलाक समाप्त हो जाएंगे, क्योंकि विवाह समाप्त हो जाएगा। तलाक बच नहीं सकते ज्यादा दिन तक, क्योंकि तलाक को बचाने के लिए विवाह जरूरी है। और विवाह ही बचने वाला नहीं है। क्या कारण है गुड शरीर का आकर्षण यौन है, और मन का तो आकर्षण पैदा ही नहीं हो पाता।

हमारे पास मन जैसी कोई चीज भी है, और हम कभी किसी के मन से भी आकर्षित होते हैं, तो ही हमें प्रेम का अनुभव शुरू होगा। प्रेम, शरीर—मुक्त दो मन के बीच आकर्षण है। प्रेम मैत्री है।

लेकिन हमें प्रेम का अनुभव नहीं है। मित्रता दुर्लभ होती चली गई है। और प्रेम का ही पता न हो, तो श्रद्धा बहुत कठिन हो जाएगी। मन का प्रेम मित्रता को जन्म देता है।

चौथा जो आकर्षण है, श्रद्धा, वह गुरु और शिष्य के बीच क्रा संबंध है। किसी की आत्मा इतनी आकर्षक हो जाती—उसका मन भी मूल्य का नहीं, उसका शरीर भी मूल्य का नहीं, उसके पास जो पदार्थगत कुछ भी हो, वह भी किसी मूल्य का नहीं—बस उस व्यक्ति का अस्तित्व, उसका होना ही मूल्यवान हो जाता है। इस मूल्य का भी एक जोड़ और एक संबंध है।

पदार्थ के तल पर निगेटिव और पाजिटिव मिलते हैं, वे भी स्त्री—पुरुष हैं। शरीर के तल पर यौन संयुक्त होता है, वे भी स्त्री—पुरुष हैं। यह आपको जानकर कठिनाई होगी कि जब दो मनों का भी मेल होता है, तो उसमें एक मन स्त्रैण और एक मन पुरुष जैसा होता है। असल में जहां भी मेल घटित होता है, जहां भी मिलन होता है, वह। स्त्री और पुरुष का अंश मौजूद होता है। और जब श्रद्धा जन्मती है, तब भी—आत्मा के तल पर भी—स्त्री और पुरुष का अंश मौजूद रहता है।

स्त्री और पुरुष का विभाजन शारीरिक ही नहीं है, जैविक ही नहीं है, सारा अस्तित्व बंटा हुआ है। इसलिए कृष्ण को प्रेम करने वाले भक्तों ने अगर कहा है कि एक ही पुरुष है जगत में, कृष्ण, तो उसका कारण है।

अगर मीरा ने वृंदावन के मंदिर में पुजारी को कहा है, क्योंकि उस पुजारी ने नियम ले रखा था कि किसी स्त्री को मंदिर में प्रवेश नहीं करने देगा। और मीरा जब नाचती हुई उस मंदिर के द्वार पर पहुंच गई, तो द्वार बंद कर दिए गए। और लोगों ने खबर दी कि मंदिर के पुजारी जो हैं, गोस्वामी जो हैं, वे स्त्री को भीतर प्रवेश नहीं करने देते हैं, आप लौट जाएं। मीरा ने कहा, इतनी खबर पुजारी तक पहुंचा दो, मैं तो सोचती थी कि जगत में केवल एक ही पुरुष है, कृष्ण। गोस्वामी भी पुरुष हैं? उनसे इतना पूछ आएं।

द्वार खुल गए। गोस्वामी मीरा के चरणों में गिर पड़ा। क्योंकि गोस्वामी को संदेश मिल गया। गोस्वामी को खयाल आ गया कि भक्त होकर कृष्ण का, वह पुरुष कैसे हो सकता है? एक आत्मिक तल पर कृष्ण पुरुष हो गए और गोस्वामी उनका भक्त है, तो स्त्रैण हो गया।

स्त्रैण और पुरुष शब्द का मैं प्रयोग कर रहा हूं। पुरुष वह है, जो खींचता है; स्त्री वह है जो समर्पित होती है। गुरु और शिष्य के बीच समर्पण का यहीं संबंध है। इस समर्पण के बाद वैसी बातें हो सकती है, जो अन्यथा नहीं हो सकती।

तो कृष्ण अब एक बहुत गुरु गंभीर बात अर्जुन से कह रहे है। सुनकर सिर चकराता मालूम पडे इस बात को कृष्ण भी इसके पहले नहीं कह सकते थे। जब पक्की हो गई बात और अर्जुन श्रद्धा से भर गया है, समर्पित है; उसके ह्रदय के द्वार खुले है, संदह की दीवालें गिर गई हैं; शंकाएं —कुशंकाए निषेद हो गई है। अब आतुर है। ठीक वैसे ही, जैसे कभी कोई स्त्री प्रेम के किसी क्षण में पुरूष को अपने भीतर लेने को आतुर होती है। प्रेम के किसी में जैसे स्त्री पुरुष को अपने द्वारा पुन: जन्माने को आतुर होती है। प्रेम के किसी क्षण में जैसे स्त्री अपने भीतर नए जीवन के लिए, नए जीवन को जन्म देने के लिए, गर्भाधान के लिए, पुरुष के प्रति समग्ररूपेण समर्पित होती है। ऐसे ही श्रद्धा से भरा हुआ चित्त गुरु के प्रति अपने सब द्वार खोल देता है, ताकि गुरु की ऊर्जा उसमें प्रविष्ट हो जाए और जीवन रूपांतरित हो, और एक नए जीवन का जन्म हो सके।

मैंने कहा कि जब दो पदार्थ मिलते हैं, तब भी नई चीज निर्मित हो जाती है। अगर आक्सीजन और हाइड्रोजन मिल जाते हैं, तो पानी निर्मित हो जाता है। जब एक 'स्त्री और पुरुष का मिलन होता है, तो एक तीसरे जीवन का जन्म हो जाता है। जब दो प्रेम से भरे हुए मन मिलते हैं, तो इस जगत में सौंदर्य के, आनंद के बड़े फूल खिलते हैं। और जब प्रेम से दो व्यक्तियों का मिलन होता है, तब भी वे दो व्यक्ति भी रूपांतरित हो जाते हैं। अगर आपने कभी प्रेम की पुलक अनुभव की है, तो आपने तत्काल पाया होगा, आप दूसरे आदमी हो गए हैं।

विनसेंट वानगाग के संबंध में मैंने पढ़ा है। वह एक बड़ा डच चित्रकार था। उसे किसी स्त्री ने कभी कोई प्रेम नहीं किया। कुरूप था। और मन को प्रेम करने वाले तो खोजने कठिन हैं। गरीब था। और धन को प्रेम करने वाले तो चारों तरफ हैं। उसे किसी ने कोई प्रेम् नहीं दिया। वह जवान हो गया, उसकी जवानी भी उतरने के करीब आने लगी। उसे कभी किसी ने प्रेम की नजर से नहीं देखा। वह चलता था तो ऐसे, जैसे मुर्दा चल रहा हो, अपना बोझ खुद खींचता हो। अपने ही पैर उठाने पड़ते, तो लगता कि किसी और के पैर उठा रहा है। आँख उठाकर देखता तो ऐसे, जैसे आंखों की पलकों पर पत्थर बंधे हो।

वह जहां नौकरी करता था वह मालिक भी परेशान हो गया था उसके आलस्य को देखकर उसक़े तमस को देखकर। मालिक सोचता था इतने तमस की क्या जरूरत है? इतने आलस्य की, इतने प्रमाद की। बैठा तो बैठा ही रह जाता। उठने की भी कोई प्रेरणा नहीं थी। सोता तो सोया रह जाता। सुबह किसलिए उठूं? इसका भी कोई कारण नहीं था।

लेकिन एक दिन मालिक देखकर चकित हुआ कि वानगाग न मालूम कितने वर्षो के बाद स्नान करके, मालूम कितने महीनों के बाद कपड़े बदलकर शायद जीवन में पहली दफा गीत गुनगुनाता हुआ दुकान में प्रविष्ट हुआ। उसने पूछा, आज क्या हो गया है तुम्हें? कोई चमत्कार! तुम और गीत गुनगुनाओगे! और तुमने क्या स्नान भी किया है? और क्या तुमने ताजे कपड़े भी पहन लिए हैं?

वानगाग ने कहा कि हौ, किसी ने मुझे आज प्रेम से देख लिया है! किसी के प्रेम का मैं पात्र हो गया हूं!

अब यह आदमी दूसरा है। प्रेम से गुजरकर दोनों व्यक्तियों का पुनर्जन्म हो जाता है।

श्रद्धा से गुजरकर जो होता है, वह आत्यंतिक क्रांति है। श्रद्धा से गुजरकर पुराना तो मर ही जाता है, नए का ही आविर्भाव हो जाता है। प्रेम में तो पुराना बदलता है, श्रद्धा में पुराना मरता है और नया आता है। प्रेम में एक कंटिन्यूटी है, सातत्य है। श्रद्धा में डिसकंटिन्यूटी है; सातत्य टूट जाता है। श्रद्धा के बाद आप वही नहीं होते, जो पहले थे। आप दूसरे ही होते हैं। दोनों के बीच कोई संबंध भी नहीं होता; दोनों के बीच कोई रेखा भी नहीं होती। पुराना बस समाप्त हो जाता है, और नया आविर्भूत हो जाता है।

श्रद्धा इस जगत में सबसे बड़ी छलांग है। छलांग का मतलब होता है, पुराने से कोई संबंध न रह जाए। इसलिए श्रद्धा जब भी किसी जीवन में घटित होती है, तो इस जगत में सबसे बड़ी क्रांति घटित होती है। और सब क्रांतिया बचकानी हैं, सिर्फ आत्मक्रांति ही आधारभूत क्रांति है।

इस क्रांति के द्वार पर खड़ा देखकर कृष्ण ने अर्जुन से कहा, हे अर्जुन, मेरे अव्यक्त स्वरूप से यह सब जगत परिपूर्ण है।

अब ये सब बातें उलटी हैं। कबीर की उलटबासी के संबंध में आपने सुना होगा। कबीर बहुत उलटी बातें कहते हैं, जो नहीं हो सकतीं। कहते हैं कि नदी में आग लग गई, जो नहीं हो सकता। कहते हैं कि मछलियां घबड़ाकर दरख्तों पर चढ़ गईं, जो नहीं हो सकता। लेकिन कबीर इसलिए कहते हैं कि इस जगत में जो नहीं हो सकता, वह हो रहा है—यहीं, आंखों के सामने। जो हो सकता है, वह तो हो ही रहा है; वह महत्वपूर्ण नहीं है। और जो उसको ही देख पाता है, जो हो रहा है, वह अंधा है। जो नहीं हो सकता है, वह भी हो रहा है। जिसको कोई तर्क नहीं कहेगा कि हो सकता है, वह भी हो रहा है। कोई गणित जिस निष्पत्ति को नहीं देगा, वह भी हो रहा है। इस जगत में अनहोना भी हो रहा है। वही इस जगत में ईश्वर का सबूत है। वही चमत्कार है। वही मिरेकल है।

तो बड़ी अनहोनी बात कृष्ण कहते हैं। वे कहते हैं, मेरे अव्यक्त स्वरूप से यह सब जगत परिपूर्ण है।

अब यह जगत है व्यक्त, दि मैनिफेस्ट। और कृष्ण कहते हैं, थ्रू दिस मैनिफेस्ट, माई अनमैनिफेस्ट इज मैनिफेस्टेड। यह जो प्रकट है जगत, यह जो व्यक्त है, यह जो दिखाई पड़ रहा है, यह जो न साकार है, यह जो सगुण है, यह जो रूप से भरा है, इसके भीतर मेरा अरूप, मेरा निर्गुण, मेरा निराकार, मेरा अव्यक्त, मेरा अदृश्य प्रकट हो रहा है।

अब ये दोनों बातें सही नहीं हो सकती हैं हमारे गणित से। हमारी बुद्धि से ये दोनों बातें सही नहीं हो सकती हैं। सीधी बात कहनी चाहिए। अव्यक्त का अर्थ है, जो प्रकट नहीं होता, जो प्रकट हुआ ही नहीं कभी। तो जगत से प्रकट कैसे होगा? और अगर जगत से प्रकट हो रहा है, तो उसे अव्यक्त कहने की क्या जरूरत है? दो में से कुछ एक करो। तर्क अगर होगा, तो कहेगा, दो में से कुछ एक करो। या तो कहो कि यह जो प्रकट हुआ है, यही मैं हूं प्रकट हुआ; और या कहो, यह जो प्रकट हुआ है, यह मैं नहीं हूं; अप्रकट हूं मैं। लेकिन कृष्ण कहते हैं, यह जो प्रकट हुआ है, इसमें मैं ही व्याप्त हूं; मैं ही इसमें भरा हूं; मैं ही इसमें परिपूर्ण हूं। रूप के भीतर मेरा ही अरूप है। आकार के भीतर मेरा ही निराकार है। दृश्य के भीतर मैं ही अदृश्य हूं।

यह हमें कठिनाई में डालता है। लेकिन इसे समझना पड़े। श्रद्धा हो, तब तो यह तत्काल समझ में आ जाता है, समझना नहीं पड़ता। श्रद्धा न हो, तो इसे थोड़ा समझना पड़े। इसे थोड़ी चेष्टा करनी 'पड़े कि क्या प्रयोजन होगा ऐसी उलटी बात कहने का? और फिर यह उलटी बात आगे बढ़ती ही चली जाती है। वे इसे और उलटाते चले जाते हैं।

हमारी बुद्धि की सोचने की जो व्यवस्था है, हमारी बुद्धि की जो कैटेगरीज हैं, हमारे सोचने के जो नियम हैं, उन नियमों में ही बुनियादी भूल है। उन नियमों के कारण, जो जीवन में हो रहा है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता।

जैसे अगर मैं यह कहूं कि जन्म भी मैं हूं और मृत्यु भी मैं, तो गणित और तर्क के लिहाज से गलत है। क्योंकि अगर मैं जन्म हूं तो मृत्यु कैसे हो सकता हूं? जन्म और मृत्यु तो विपरीत हैं।

हमारे सोचने में विपरीत हैं, वस्तुत: विपरीत नहीं हैं। अस्तित्व में जन्म और मृत्यु जुड़े हैं, एक हैं। जन्म, मृत्यु का ही पहला छोर है; और मृत्यु, जन्म का ही दूसरा। जन्म लेकर हम करते क्या हैं सिवाय मृत्यु तक पहुंचने के! जन्म और मृत्यु दो चीजें नहीं हैं। विपरीत तो हैं ही नहीं, दो भी नहीं हैं। दो तो हैं ही नहीं; भिन्न भी नहीं हैं। एक ही चीज के दो छोर हैं। जन्म एक छोर है, मृत्यु दूसरा छोर है—उसका, जिसे हम जीवन कहते हैं।

लेकिन सोचने में मृत्यु दुश्मन और जन्म मित्र मालूम पड़ता है। तो जन्म के समय हम बैंड—बाजे बजाकर स्वागत कर लेते हैं; और मृत्यु के समय रो— धोकर विदा कर देते हैं।

शायद हमें खयाल हो कि हंसना और रोना भी विपरीत चीजें हैं, तो फिर हम गलती में हैं। हमारी भाषा और सोचने के नियम की भूल है। अगर आप रोते ही चले जाएं, तो थोड़ी ही देर में रोना हंसने में बदल जाएगा। प्रयोग करके देखें। यह तो कोई बहुत कठिन प्रयोग नहीं है। रोते ही चले जाएं, रुके ही मत, एक क्षण आएगा कि आप पाएंगे, रोना समाप्त हो गया और हंसने का जन्म हो गया है! हंसते चले जाएं, रुके ही मत, तो आप पाएंगे कि हंसना विलीन हो गया और रोना शुरू हो गया।

इसलिए ग्रामीण स्त्रियां भी जानती हैं कि बच्चों को ज्यादा हंसने नहीं देतीं। कहती हैं, अगर ज्यादा हंसेगा, तो फिर रोएगा। इसलिए हंसने में ही रोक लेना उचित है। लेकिन हमारी भाषा में हंसना और रोना विपरीत है; जन्म और मृत्यु विपरीत है; अंधेरा और प्रकाश विपरीत है, बचपन और बुढ़ापा विपरीत है, सर्दी और गर्मी विपरीत है।

यह भाषा की भूल है। यह तर्क की भूल है। ये विपरीत हैं नहीं! ऐसा कहीं प्रकाश देखा है आपने, जो अंधेरे से न जुड़ा हो? ऐसा कहीं कोई अंधेरा देखा है आपने, जो प्रकाश से न जुड़ा हो? सगे—साथी हैं, संगी हैं, ऐसा भी कहना ठीक नहीं है। एक ही चीज के दो छोर हैं। अगर यह खयाल में आ जाए, तो कृष्ण का सूत्र इतना बेबूझ नहीं मालूम होगा।

लेकिन इस सूत्र ने बड़ी कठिनाइयांद दी है। इस बात ने बड़ी कठिनाइयां दी हैं कि परमात्मा सगुण है या निर्गुण। कितना उपद्रव, कितने विवाद, नामसझी का कोई अंत नहीं पड़ता। और जिन्हें हम सोचते हों कि समझदार वह भी बैठे कर रह विवाद, कि परमात्मा निर्गुण है या सगुण।

सगुण के उपासक हैं वे कहते कि निर्गुण की बात ही मत करो, निर्गुण के उपासक हैं, वे कहते हैं, कि सगुण की सब बकवास। आकार को मानने वाले हैं, तो मूर्ति बनाकर बेठे है। निराकार को मानने वाले हैं, तो मूर्तियां तोड्ने में लगे है।

मुसलमान हैं, वे निराकार को मानने वाले है। उन्होने कितनी मूर्तियां मिटा दीं दुनिया से! बनाने वालों ने जिनी मेहनत नहीं कि, उन बेचारों ने उससे भी ज्यादा मेहनत की मिटाने में! बनाने वाले भी इतनी फिक्र नहीं करते मूर्ति की, जितनी मिटाने वाले को करनी पड़ती है। मिटाने वाला जान की जोखिम लगा देता है, मूर्ति को मिटा देता है, क्योंकि परमात्मा निराकार है।

लेकिन कैसे मूर्तियां मिटाओगे? बनाने वाले बनाए चले जाते हैं। जिन्होंने मूर्तियां बनाईं, उनका कोई हिसाब है? भारत में हम समझते हैं कि जितने आदमी हैं, उससे कम परमात्मा नहीं हैं, उससे कम परमात्मा की मूर्तियां नहीं हैं। पहले तैंतीस करोड़ आदमी हुआ करते थे, तो तैंतीस करोड़ देवता थे हमारे पास। इधर आदमियों ने तो थोड़ी संख्या बढ़ा ली है, पता नहीं देवता क्या कर रहे हैं!

बनाने वाले बनाए चले जाते हैं, क्योंकि वे कहते हैं, सगुण है, साकार है, रूपवान है। मिटाने वाले मिटाए चले जाते हैं।

लेकिन भाषा की भूल इतनी महंगी पड़ सकती है! जिसे हम सगुण कहते हैं, वह निर्गुण का ही एक छोर है। जिसे हम निर्गुण कहते हैं, वह सगुण का ही एक छोर है। सगुण और निर्गुण दो विपरीत घटनाएं नहीं, एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। जिसे हम रूप कहते हैं, वह अरूप का ही एक हिस्सा है।

इसे ऐसा समझें कि अरूप का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ में आ जाता है, उसे हम रूप कहते हैं। और रूप का भी जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ के बाहर चला जाता है, उसे हम अरूप कहते हैं। सगुण? जिसे हम नाप लेते हैं, तौल लेते हैं, वह सगुण हो जाता है। निर्गुण? जो हमारी नाप—तौल के पार निकल जाता है, तो निर्गुण हो जाता है।

मेरे घर में आंगन है, तो मेरे आंगन का अपना आकाश है, दीवाल है आँगन की मेरा आकाश पड़ोसी के आकाश से जुदा है, भिन्न है। अगर पड़ोसी मेरे आकाश में आना चाहे, तो मैं इनकार करूंगा। मेरा आकार मेरे आँगन का आकाश!

लेकिन इससे क्या आकाश विभाजित होता है? कितनी ही हम दीवाल खड़ी करे इससे सिर्फ हमारी सीमा बनती है देखने की। लेकिन दीवाल के पार का आकाश और मेरे आंगन के आकाश में क्या कोई खंड हो जाता है, कोई, कोई टूट हो जाती है?

मेरी दिवाल मेरी ही आँख के लिए बाधा बनती है, आकाश के लिए नहीं। धयान रखे मेरी दिवाल मेरी ही आंख की सीमा बनती है; आकाश की नहीं। आकाश दो हिस्सों में बंट जात है; आकाश नहीं बंटता, मेरे आँगन का आकाश उस आकाश का ही हिस्सा है। बहार है, और जो बाहर है, वह मेरे आँगन के ही आकाश का विस्तार है।

जितने भी विपरीत शब्द हैं हमारे पास, वे सभी एक ही अस्तित्व के छोर हैं। इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे अव्यक्त स्वरूप से यह सब जगत परिपूर्ण है। मेरा निराकार इन सब आकारों में छिपा है। मेरा निर्गुण इन सब गुणों में प्रकट हुआ है। मेरा परमात्मा ही इस पदार्थ का आधार है। और सब भूत मुझमें स्थित हैं। और यह जो सारा जगत दिखाई पड़ रहा है, यह मुझमें स्थित है, .मुझमें ही ठहरा हुआ है। और तब तत्काल एक विपरीत बात वे कहते हैं—विपरीत हमें दिखाई पड़ती है—और सब भूत मुझमें स्थित हैं, लेकिन मैं उनमें स्थित नहीं हूं।

सब भूत मुझमें हैं, लेकिन मैं उनमें नहीं हूं यह कैसे होगा? अगर सब भूत परमात्मा में स्थापित हैं और अगर परमात्मा ही सब में प्रकट हो रहा है, तो फिर यह कहना कि मैं उनमें नहीं हूं, हमारे तर्क को नई दुविधा दे देगा।

श्रद्धा को कठिनाई नहीं है, क्योंकि श्रद्धा प्रश्न नहीं उठाती। श्रद्धा आर—पार देख लेती है, ट्रासपैरेंट है। वह देख लेगी कि ठीक है; कुछ अड़चन नहीं है। बिलकुल ठीक है।

झेन फकीर बोकोजू के पास एक जिज्ञासु आया है और उस जिज्ञासु ने पूछा कि परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग क्या है?

बोकोजू चुपचाप बैठा रहा और फिर उसने खिड़की के बाहर झांककर देखा और कहा कि देखो! सूरज ढलने लगा, सांझ होने के करीब है।

कोई संबंध न था! उस आदमी ने पूछा था, ईश्वर को पाने का मार्ग क्या है? और यह आदमी खिड़की के बाहर हाथ उठाकर बोला, देखो, सांझ होने लगी, सूरज ढलने के करीब है। उस आदमी ने पैर छुए और चला गया।

एक दूसरा आदमी बैठा था, वह हैरान हो गया। यह बोकोजू तो पागल है ही, वह जो आ गया था, वह महापागल मालूम पड़ता है! उसने जो प्रश्न पूछा था कि ईश्वर को पाने का मार्ग क्या है? हद्द पागल आदमी था! और इसने जो उत्तर दिया! कुछ लेन—देन ही नहीं दोनों में! कोई संबंध नहीं! कोई दूर की भी संगति नहीं। कहां ईश्वर को पाने का मार्ग! और क्या मतलब इससे कि सूरज डूबता है और सांझ हो रही है!

उस आदमी ने कहा कि मुझे भी एक सवाल पूछना है, लेकिन कृपा करके ऐसा जवाब मत देना। मुझे यह पूछना है कि इस आदमी ने जो पूछा, उसका क्या हुआ?

बोकोजू ने कहा कि जवाब दे दिया ग:या। और केवल दे ही नहीं दिया गया, जवाब पहुंच भी गया है।

उस आदमी ने कहा, जवाब मेरी समझ में नहीं आया। जवाब था ही नहीं, पहुंच कैसे सकता है? सूरज डूब रहा है, इससे क्या लेना—देना है उसकी जिज्ञासा का?

बोकोजू ने कहा, बेहतर हो कि तू उस आदमी से जाकर पूछ कि सवाल का जवाब मिल गया है या नहीं?

वह आदमी बाहर गया उस आदमी को खोजने। बाहर ही, द्वार के पास ही, वृक्ष के नीचे वह आदमी आख बंद करके ध्यान में बैठा था। उसे हिलाया और पूछा कि जवाब मिल गया है?

उस आदमी ने कहा, जवाब मिल गया है। सूरज डूबने के करीब है, मेरा जीवन भी डूबने के करीब है। और बोकोजू ने मुझे कह दिया है कि अगर जीवनभर की व्यर्थता भी तेरे लिए परमात्मा को पाने का मार्ग नहीं बन सकी, तो अब और क्या मार्ग बनेगा? अगर जीवनभर का अनुभव भी तुझे परमात्मा के दरवाजे पर नहीं ले आया है, तो अब और किस रास्ते से तू आ सकेगा? और मौत करीब है, सूरज डूबने के करीब है, सांझ होने लगी है। अब तू खो मत समय को।

उस आदमी ने पूछा, आप यहा क्या कर रहे हैं?

तो उस आदमी ने कहा कि अब मैं डूबने की तैयारी कर रहा हूं। जीवनभर मैंने जीने की तैयारी की थी, वह व्यर्थ गई है। अब मैं अपने हाथ से डूबने की तैयारी कर रहा हूं। जिस तरह वहां बाहर सूरज डूब रहा है, इसी तरह भीतर मैं भी डूब जाऊं, यही उनका संकेत है।

और सुबह जब सूरज उग रहा था दूसरे दिन, तब भी वह आदमी उसी झाड़ू के नीचे बैठा था। बोकोजू बाहर आया। वह तीसरा आदमी भी रातभर मौजूद रहा कि यह क्या हो रहा है! सब बात बेक हो गई थी। बोकोजू सुबह बाहर आया। उसने उस आदमी को—जो ध्यान में रातभर बैठा रहा था—हिलाया और पूछा कि कुछ खबर दो।

उस आदमी ने आख खोलीं। और उस आदमी ने कहा कि सूरज उग रहा है। सुबह होने के करीब है। बोकोजू ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि अब तू जा सकता है।

उस आदमी ने कहा कि मैं अगर यहां ज्यादा रुका—तीसरे आदमी ने—तो मैं पागल हो जाऊंगा, इसका डर है। यह क्या हो रहा है?

यह एक और तरह की भाषा है, जो श्रद्धा समझ पाती है। उस आदमी ने कहा कि सूरज उगने लगा है। वह तो डूब गया, उसे छोड़ ही दिया, जो मैं था। अब दूसरे का ही जन्म हो रहा है; रास्ता मिल गया है।

कृष्ण कहते हैं, ये सब मुझमें स्थित हैं, ये सारे भूत, लेकिन मैं उनमें स्थित नहीं हूं।

यह इंगित है, और महत्वपूर्ण है। श्रद्धा तो सीधा समझ लेगी; विचार को थोड़ा— सा चक्कर काटना पड़ेगा। जो भी विराटतर है, वह क्षुद्रतर में प्रविष्ट भी हो जाए, तो भी प्रविष्ट नहीं होता। एक छोटा—सा वर्तुल मैं खींचूं एक छोटा सर्किल, और फिर एक बड़ा सर्किल उसके चारों तरफ बनाऊं, तो यह कहना तो बिलकुल ठीक है, बड़ा सर्किल यह कह सकता है कि छोटा सर्किल मुझमें स्थित है, फिर भी मैं उसमें स्थित नहीं हूं। क्योंकि छोटा सर्किल तो पूरा ही बड़े सर्किल में उपस्थित है, लेकिन बड़ा सर्किल छोटे सर्किल के बाहर भी फैला हुआ है।

तो जीवन का एक अनिवार्य नियम है कि क्षुद्र तो विराट में स्थित होता है, लेकिन विराट क्षुद्र में नहीं। इसे ऐसा समझें, एक का आदमी कह सकता है कि मैं बच्चे में मौजूद हूं बच्चा मुझमें स्थित है, फिर भी मैं बच्चे के बाहर हूं। एक के आदमी में बचपन भी छिपा होता है, जवानी भी छिपी होती है। उन सबको उसने अपने में समा लिया है, फिर भी वह कुछ ज्यादा होता है, समथिंग मोर। उनसे कुछ फैला होता है। उसकी परिधि बड़ी है।

जो भी छोटा है, वह बड़े में समाया होता है, लेकिन बड़ा उस छोटे में समाया नहीं होता। छोटे से भी बड़ा प्रकट होता है, फिर भी समाया नहीं होता। सागर कह सकता है कि सभी नदियां मुझमें समाई हुई हैं, फिर भी मैं नदियों में नहीं समाया हुआ हूं।

अर्थ इतना ही है, तर्क और विचार की दृष्टी से जो विराट है वह क्षुद्र के पार है। क्षुद्र से प्रकट भी होता है तो भी क्षुद्र के पार है। यह जो पारगामिता है, ट्रांसेंडेंस है, ये जो सदा पार होना है। बियांडनेस है, इसका सूत्र है यह इसका मूल्य है इसका अर्थ है, वह हमारे खयाल में आ सकेगा?

और वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं है। पहले कहा वे सब भूत मुझमें स्थित हैं। और अब तत्क्षण एक पंक्ति भी नहीं पूरी हो पाई और कृष्ण कहते हैं, और वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं है।

किंतु मेरे योग को देख, मेरी माया को देख जो समस्त भूतों को धारण—पोषण करने वाला होकर भी मैं भूतो में स्थित नहीं हूं। क्योंकि जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला वायु सदा ही आकाश में स्थित है, वैसे ही संपूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं, ऐसा जान।

एक के बाद दूसरी पंक्ति पहले को खंडित करती चली जाती है। एकदम अतर्क्य वक्तव्य है। जो कहते हैं एक क्षण, दूसरे क्षण खंडित कर देते हैं। जो दूसरें क्षण कहते हैं, तीसरी पंक्ति में उसके पार निकल जाते हैं। क्या कहना चाहते हैं? क्या इशारा है? क्योंकि जो कहा है, वह अतर्क्य है। शायद यही कहना चाहते हैं कि मैं अतर्क्य हूं।

इसे समझ लें। इस वक्तव्य का सार भाव यही है कि कृष्ण यह कह रहे हैं कि तू समझने से समझ सके, ऐसा मैं नहीं हूं। तू जानने से जान सके, ऐसा मैं नहीं हूं। तू पहचानने से पहचान सके, वह मैं नहीं हूं। तू जानना छोड़, तू पहचानना छोड़, तू समझ छोड़, तू गणित छोड़, तू तर्क छोड़, तो तू मुझे जान सकता है, क्योंकि मैं अतर्क्य हूं।

अतर्क्य का अर्थ है, मैं रहस्य हूं। रहस्य का अर्थ है, कोई भी सिद्धात, कोई भी नियम मुझे नहीं घेर पाएगा। मैं पारे की तरह हूं। मुट्ठी तू बांधेगा तर्क की और मैं बिखरकर बाहर छिटक जाऊंगा। जब तक तू नहीं बांधेगा, तब तक शायद मुझे पाए भी कि मैं हूं; जैसे ही तू मुट्ठी बांधेगा, मैं छिटक जाऊंगा। बुद्धि जैसे ही जीवन के सत्य को पकड़ना चाहती है, सत्य छिटक जाता है पारे की तरह। तो तू मुझे बांधने की कोशिश मत कर।

कृष्ण ने अब तक जो अनुभव किया है, वह यही है कि अर्जुन उन्हें बांधने की कोशिश कर रहा है। अर्जुन ने सब तरह से कोशिश की है। क्योंकि अगर अर्जुन कृष्ण को बांध ले तर्क में, विचार में, तो इस युद्ध से छुटकारा हो सकता है।

क्योंकि कृष्ण कहते है कि यह सब माया है, तो अर्जुन कहना चाहता है। अगर सब माया है, तो मुझे इसमें क्यों उलझाते हैं? कृष्ण कहते है कि ये कोई मरते नहीं मारने से; तो अर्जुन कहेगा कि जब ये मरते ही नहीं मारने से तो मारने से भी क्या सार है? कृष्ण कहते है कि तू

अपने अंश के और प्रतिष्ठा के लिए लड़, तो यश और प्रतिष्ठा तो सब अहंकार है, और आप ही तो समझाते है कि अहंकार ही तो बाधा है! अगर कृष्ण कहते हैं कि धर्म के लिए तुझे लड़ना है तो अर्जुन कहेगा कि मुझ से क्या धर्म की स्थापना हो सकेगी जब आप ही मौजूद है, तो धर्म की स्थापना उतने से काफी है। अगर कृष्ण है कि यह जीवन आसार है, तो अर्जुन चाहता है कि उसे छुटकार दो। ताकि मैं एकांत में जाकर समाधि में लीन हो जाऊं।

कृष्ण कुछ भी कहें, अर्जुन उन्हें बांध लेना चाहता है। उस बांधने में ही उसे अपना छुटकारा दिखाई पड़ता है। अगर कृष्ण फंस जाएं, जो कह रहे हैं उसी में, तो अर्जुन कृष्ण से जीत जा सकता है।

एक बहुत मजे की बात है कि अगर यह चर्चा बिलकुल तर्कयुक्त ढंग से चले, तो कृष्ण की हार निश्चित है। अगर यह ठीक नियम से खेल चले तर्क के, तो कृष्ण की हार निश्चित है। अर्जुन सुनिश्चित जीतेगा।

कृष्ण ने सब तर्कों के जवाब दिए हैं। एक—एक तर्क को काटने की कोशिश की है। अर्जुन ऐसी जगह आ गया है कि अब और तर्क उठाने का उसका मन नहीं है। तो कृष्ण तत्काल अपना बेबूझपन प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि अब मैं तुझे बता दूं वह, जैसा मैं हूं। अब तक तू जो कह रहा था, तो मैं भी खेल रहा था। अब तक तू

जो पूछ रहा था, तो मैं भी जवाब दे रहा था। लेकिन वह शतरंज का खेल था। मैं देख रहा था, तू किसलिए पूछ रहा है, तो क्या जवाब देना जरूरी है, वह मैं दे रहा था। अब मैं तुझे वही बताता हूं जो मैं हूं। यह जो दिखाई पड़ रहा है, इसमें मैं न दिखाई पड़ने वाले की तरह छिपा हूं। यह सारा जगत मुझमें ठहरा हुआ है, और इसमें मैं नहीं हूं; और फिर भी मैं तुझसे कहता हूं कि यह जगत भी मुझमें ठहरा हुआ नहीं है; और फिर भी मैं तुझसे कहता हूं कि मैं इस जगत में समाया हुआ हूं।

अर्जुन का सिर घूम जाता। जो भी विचार से चलेगा, उसका घूमेगा। श्रद्धा नहीं घूमती है। श्रद्धा इतनी शक्तिशाली है कि कृष्ण भी उसे डांवाडोल नहीं कर सकते। इतनी बात कृष्ण ने अगर पहले कही होती, तो अर्जुन अब तक हजार सवाल उठा दिया होता। वह चुप है। वह समझने की कोशिश कर रहा है। समझने से ज्यादा वह कृष्ण को पीने की कोशिश कर रहा है। कृष्ण क्या कह रहे हैं, यह मूल्यवान नहीं रहा अब। कृष्ण क्या हैं, उनकी प्रेजेंस, उनकी मौजूदगी, उनका होना, वह अपने द्वार खोलकर उनको अपने भीतर समा रहा है। कृष्ण क्या कह रहे हैं, यह अब सवाल नहीं है बहुत महत्वपूर्ण। क्यों कह रहे हैं! क्या कह रहे हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। कौन कह रहा है!

इसलिए अर्जुन चुपचाप पी रहा है। जिन बातों में एक—एक पद पर संकट होना चाहिए, और संदेह होना चाहिए, उन्हें वह चुपचाप पीए जा रहा है। उसे कहीं कोई विरोध जैसे दिखाई भी नहीं पड़ रहा है।

ध्यान रखें, यह विरोध हों सकता है दो कारणों से दिखाई न पड़े। मैंने गीता के कई सतत पाठी देखे हैं, उन्हें भी नहीं दिखाई पड़ता। उसका कारण यह नहीं है कि उनकी श्रद्धा इतनी है कि उन्हें इसमें विरोध नहीं दिखाई पड़ता। वे इतनी बुद्धि भी नहीं लगाते कि विरोध दिखाई पड़े। पढ़ते चले जाते हैं। पढ़ते—पढ़ते आदत हो जाती है। और जो बीच में विरोध है स्पष्ट, वह भी दिखाई नहीं पड़ता। सुनते रहते हैं, विरोध दिखाई नहीं पड़ता।

विरोध न दिखाई पड़ना दो तरह से संभव है। एक तो श्रद्धा इतनी प्रगाढ़ हो कि विरोध के बीच में वह जो आदमी खड़ा है, वही दिखाई पड़े, विरोध के पार वह जो चेतना खड़ी है, वही दिखाई पड़े; और या फिर बुद्धि इतनी कम हो कि पहले वक्तव्य में और दूसरे वक्तव्य में विरोध है, यह भी दिखाई न पड़े।

बुद्धि की कमी को श्रद्धा की गहराई मत समझ लेना। बहुत बार बुद्धि का उथलापन श्रद्धा की गहराई समझ ली जाती है। श्रद्धा की गहराई बुद्धि के उथलेपन का नाम नहीं है! श्रद्धा की गहराई बुद्धि से मुक्ति है।

इसे पढ़ना। पहले तो विरोध खोजने की कोशिश करना। सब तरह से विरोध देखने की कोशिश करना। और जब बुद्धि थक जाए जैसा कि मैं कुछ दो—तीन बातें कहूं तो खयाल में आ जाए।

इस सदी के मध्य में विज्ञान ने एक नया सिद्धात खोजा। कहें खोजा, या कहना चाहिए, खोज में आ गया अचानक। जैसे ही परमाणु की खोज हुई, तो विज्ञान को पता चला कि परमाणु के जो घटक, इलेक्ट्रांस हैं, वे बड़े अदभुत हैं, रहस्यपूर्ण हैं। रहस्यपूर्ण इसलिए हैं कि हमारे पास कोई शब्द ही नहीं कि हम उनको बताएं कि वे क्या .हैं। किन्हीं वैज्ञानिकों ने खबर दी कि वे कण हैं। और किन्हीं वैज्ञानिकों ने खबर दी कि वे कण नहीं हैं, तरंग हैं। और तब किन्हीं वैज्ञानिकों ने खबर दी कि वे दोनों एक साथ हैं, कण भी और तरंग भी।

कण का मतलब होता है कि जो कभी तरंग नहीं हो सकता। तरंग का मतलब होता है कि जो कभी कण नहीं हो सकती। अगर मैं कहूं कि मैंने आपकी दीवाल पर एक बिंदु बनाया, यह बिंदु भी है और लकीर भी, प्याइंट भी है और लाइन भी। तो आप कहेंगे, क्या कह रहे हैं आप! दो में से एक ही बात हो सकती है, अन्यथा युक्लिड बेचारे का क्या होगा? ज्यामेट्री का क्या होगा? आप क्या कहते हैं! अगर मैं कहूं

कि यह बिंदु भी है और रेखा भी, दोनों एक साथ। तो आप कहेंगे, कृपा करें! यह दोनों एक साथ हो नहीं सकता। और अगर मैं खींचना भी चाहूं ऐसी कोई चीज तख्ते पर, तो खींच नहीं सकता, जो दोनों एक साथ हो। या तो बिंदु होगा, या रेखा होगी।

रेखा का मतलब ही है, बहुत—से बिंदु सतत, बहुत—से बिंदु शृंखला में। अगर यह बिंदु है, तो रेखा नहीं हो सकती। अगर यह रेखा है, तो बिंदु नहीं हो सकता। बिंदु का मतलब ही है कि जो और विभाजित न किया जा सके। रेखा तो विभाजित की जा सकती है। लेकिन वैज्ञानिक बड़ी मुश्किल में पड़ गए। युक्लिड को मानें कि इस इलेक्ट्रान को मानें? क्या करें? और यह इलेक्ट्रान है कि युक्लिड की फिक्र ही नहीं करता, ज्यामिति की फिक्र नहीं करता, गणित के नियम नहीं मानता; और दोनों तरह का व्यवहार करता है! बिहेक बोथ वेज साइमल्टेनियसली। कोई शब्द नहीं है हमारे पास। कण—तरंग, इसको क्या नाम दें? कण—तरंग कहें! दोनों विपरीत शब्द हैं। वैज्ञानिक बड़े पेशोपस में थे कि क्या करें।

लेकिन तथ्य को तो मानना ही पड़ेगा, चाहे युक्लिड के ही खिलाफ जाता हो। अंततः यही हुआ कि युक्लिड को छोड़ देना पड़ा; तथ्य को ही मानना पड़ा।

आइंस्टीन से किसी ने पूछा है कि यह तो नियम के विपरीत है! तो आइंस्टीन ने कहा, हम क्या करें? कहना चाहिए, नियम ही तथ्य के विपरीत है। नियम बदला जा सकता है, तथ्य नहीं बदला जा सकता। नियम बदला जा सकता है, नियम हमारा बनाया हुआ है। तथ्य नहीं बदला जा सकता है; तथ्य हमारा बनाया हुआ नहीं है। युक्लिड को हारना पड़ेगा, क्योंकि तथ्य यह है।

विपरीत एक साथ मौजूद है जीवन में। उसी तथ्य को भौतिकी इस इलेक्ट्रान के व्यवहार में पाई, कि जीवन एक साथ मौजूद है।

फ्रायड ने अपने अंतिम जीवन के क्षणों में अनुभव किया कि आदमी के भीतर जीवन की लालसा तो है ही। मृत्यु की भी लालसा है। जिंदगी भर वह कहता था, आदमी के जीवन में एक ही खास चीज है, लिबिडो। लिबिडो उसके लिए शब्द था जीवेषणा। आदमी जीना चाहता है, लेकिन आखरी उम्र में जीवन का अध्ययन जीवनभर करने के बाद उसे लगा कि यह बात अधूरी है। आदमी सिर्फ जीना ही नहीं चाहता आदमी साथ ही मरना चाहता है। यह चाह भी आदमी के भीतर छीपी है।

अब बड़ी मुश्किल हुई। क्या ये दोनों चाहे एक साथ भीतर छिपी हैं? क्या यह आदमी दोनो चाहे है। फ्रायड खुद परेशान हुआ, क्योंकि वह तर्कयुक्त गणित में भरोसा करता था। उसे कठिनाई मालूम पड़ी कि आदमी में दौ चाहे कैसे हो सकती है, या तो जीने की चाह हो या मरने की चाह हो ये समझ में आता है कि एक आदमी में अभी जीने की चाह है, फिर बाद में मरने की चाह आ जाए, यह समझ में आ सकता है, लेकिन दोनों एक साथ!

वही, जो भौतिकविद पहुंचे पदार्थ में, मनसविद पहुंच गए मनुष्य की वासना में, तो पाया कि दोनों वासनाएं एक साथ मौजूद हैं। और अब जो और गहरे जा रहे हैं लोग, वे अनुभव करते हैं कि उन्हें दो वासनाएं कहना गलत है। आदमी के भीतर एक ही वासना है, जो जीने और मरने की दोनों है। तो जब तक अच्छा लगता है, तो आदमी उस वासना की व्याख्या करता है कि मैं जीना चाहता हूं। जब अच्छा नहीं लगता, तो उसी वासना की व्याख्या करता है कि मैं मरना चाहता हूं।

बूढ़े आदमी कहते हुए सुने जाते हैं कि भगवान, अब हमें उठा ले! तो ऐसा मत समझना कि कुछ बदलाहट हो गई है उनमें, कि कोई क्रांति हो गई है उनमें। वही चाह विफल होकर, असफल होकर, हारकर, पराजित होकर, जरा—जीर्ण होकर अब मृत्यु की भाषा बोल रही है। वही चाह है।

अभी कोई आ जाए और कहे कि एक नया यंत्र बन गया है। इस दरवाजे से घुसो, उधर से निकलो, जवान हो जाते हो! वह का आदमी कहेगा, भगवान! अभी थोड़ा ठहरना। मैं इस यंत्र से जरा गुजरकर एक बार देख लूं। अगर ऐसा होता हो, तो अभी मरने की ऐसी कुछ जल्दी नहीं है!

क्या हुआ? ये चाहें दो नहीं हैं। लेकिन भाषा में बड़ी कठिनाई है। दो ही कहना पडेगी। ये एक ही हैं। मनसविद हमारे भीतर खोज कर—करके एक और तीसरे तथ्य पर पहुंचे हैं। आपको खयाल में आ जाए कि वैपरीत्य वैपरीत्य नहीं है। मनसविद कहते हैं कि हम जिस व्यक्ति को प्रेम करते हो, उसी को घृणा भी करते हैं।

यह जब पहली दफा उदघाटन हुआ, तो यह पहली दो बातों से भी ज्यादा मन को दबाने वाली बात है। क्योंकि मां को अगर कोई कहे कि तू अपने बेटे को प्रेम भी करती है और घृणा भी, साथ ही, तो कोई मां राज़ी नहीं होगी। लेकिन फ्रायड कहता है कि उसका न राजी होना केवल उसके भीतर के भय को बताता है। वह जानती है गहरे में कि, यह सच है।

अगर किसी प्रेमी को हम कहे तू जिस प्रेयसी के लिए मरा जा रहा है, उसी को कल मार भी सकता है। अभी उसके लिए अमृत की तलाश कर रहा है। कल इसी दुकान से उसी के लिए जहर

भी खरीद सकता है। और कल तो बहुत दूर है, मनसविद कहते हैं, इसी क्षण में भी प्रेम और घृणा दोनों साथ ही मौजूद हैं। पर हमें कठिनाई है। क्योंकि हमारे लिए प्रेम और घृणा विपरीत बातें हैं, अलग— अलग।

ऐसा नहीं है। इसलिए प्रेम क्षणभर में घृणा बन सकता है, और घृणा क्षणभर में प्रेम बन सकती है। जो आकर्षण है, वह विकर्षण बन सकता है। जो विकर्षण है, वह आकर्षण बन सकता है। वे बदलने योग्य हैं, एक्सचेंजेबल हैं, और लिक्विड हैं, तरल हैं, एक—दूसरे में बह जाते हैं। सच तो यह है कि वे दो नहीं हैं, एक ही हैं।

कृष्ण यही कह रहे हैं कि मैं दोनों हूं। जहां—जहां तुझे वैपरीत्य दिखाई पड़े, वह दोनों मैं हूं।

इस संबंध में हिंदू चिंतन बहुत अनूठा है। दुनिया के किसी धर्म ने भी द्वंद्व को इतनी गहराई से आत्मसात नहीं किया। इसलिए मैं कहता हूं कि आइंस्टीन के लिए या फ्रायड के लिए हिंदू चिंतन जितनी सहजता से आत्मसात कर सकता है, उतना क्रिश्चियन चिंतन आत्मसात नहीं कर सकता है। क्योंकि क्रिश्चियनिटी या इस्लाम द्वंद्व को मानकर चलते हैं।

यह भी खयाल में ले लें। कल मैंने आपसे कहा था, दो धाराएं हैं, एक यहूदी और एक हिंदू। शेष धाराएं उनकी शाखाएं हैं। यहूदी धारा जीवन को द्वंद्व में तोड़कर चलती है। भगवान है एक, शैतान है एक; दोनों दुश्मन हैं। अच्छाई है एक, बुराई है एक, दोनों में .दुश्मनी है। पाप है एक, पुण्य है एक, दोनों विपरीत हैं। नर्क है एक, स्वर्ग है एक; दोनों में विरोध है। सिर्फ हिंदू चितना द्वंद्व को आत्मसात करती है। इसलिए हमने कुछ अदभुत चीजें बनाईं। जैसे—जैसे मनुष्य की समझ बढ़ेगी, उन चीजों की गरिमा और महत्ता भी समझ में आएगी।

हम अकेली कौम हैं इस जमीन पर, जिन्होंने परमात्मा के विपरीत एक बुराई का परमात्मा खड़ा नहीं किया। खड़ा ही नहीं किया। शैतान की, हमारी चितना में, कोई गुंजाइश नहीं है। मगर यह बड़ा कठिन काम है। ईसाई और मुसलमान एक लिहाज से सीधे और सरल हैं, साफ हैं। जटिलता नहीं है। क्योंकि जो—जो बुराई है, वह शैतान पर छोड़ देते हैं; और जो—जो भलाई है, वह परमात्मा पर रख लेते हैं। इसलिए उनका परमात्मा एकदम भला है। अंग्रेजी में जो शब्द गॉड है, वह गुड का ही रूपांतरण है। वह जो शुभ है, वही परमात्मा है। और जो अशुभ है, वही शैतान है।

लेकिन हम क्या करेंगे? हमारे परमात्मा को दोनों होना पड़ेगा एक साथ, परमात्मा भी और शैतान भी। इसलिए हमने एक कल्पना की है, जो बहुत गहरी है। वह यह है कि परमात्मा निर्माता भी है और विध्वंसक भी। ईसाइयत कहेगी, परमात्मा बनाता है, शैतान मिटाता है। हम कहते हैं, परमात्मा दोनों ही काम करता है; वही बनाता है, वही मिटाता है।

हमने अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा बनाई है। हमने शिव की प्रतिमा बनाई है, जिसमें वे आधे पुरुष हैं और आधे स्त्री। दुनिया में कोई ऐसी कल्पना नहीं कर सकता। एक ही व्यक्ति दोनों कैसे हो सकता. है? या तो स्त्री हो या पुरुष हो। लेकिन दोनों हैं, दोनों एक साथ। इसलिए कृष्ण यह भी कहते हैं कि यह सारा संसार मुझमें समाया हुआ है और फिर भी मैं इसमें नहीं हूं। अगर कृष्ण से कोई पूछे कि ये जो पाप हो रहे हैं, इनके संबंध में आपका क्या खयाल है? तो कृष्ण कहेंगे, सारे पापियों में भी मैं समाया हुआ हूं और फिर भी मैं उनमें नहीं हूं। और सारे पाप मेरे ही भीतर हो रहे हैं और फिर भी मैं उनमें नहीं हूं।

यह जो द्वंद्वातीत, ट्रांसेंडेंटल, दोनों को स्वीकार करके भी उनके पार होने की बात है, यही भारतीय धर्म का गुह्यतम सूत्र है। इसलिए हमारा परमात्मा, हमारी जो परमात्मा की धारणा है, वह दुनिया के दूसरे लोगों को बहुत अजीब मालूम पड़ती है। उनकी कल्पना में नहीं आती है कि यह कैसी बात है! हमारे मुल्क में भी ऐसे लोग हैं, जिनकी समझ में नहीं आती।

जैसे कृष्ण का ही व्यक्तित्व है, यह जैनों की समझ में नहीं आ सकता। क्योंकि वे कहेंगे, यह आदमी कैसा है? यह बांसुरी भी बजा सकता है, यह युद्ध के मैदान पर भी खड़ा हो सकता है! यह अहिंसा की परम बात भी कह सकता है और हिंसा के बड़े युद्ध में अर्जुन को जाने की सलाह देता है! सलाह ही नहीं देता, फुसलाता है। और इतने ढंग से फुसलाता है कि किसी सेल्समैन ने कभी किसी दूसरे को नहीं फुसलाया होगा। उसको धक्का देता है कि जा और जूझ जा, बिलकुल बेफिक्र रह! और एक अजीब सूत्र देता है; उससे कहता है, बेफिक्री से मार; क्योंकि आत्मा कभी मरती ही नहीं!

यह जो द्वंद्वातीत अतिक्रमण की क्षमता है, यह गहनतम खोज है। इस सूत्र में कृष्ण यही कह रहे हैं कि तू मेरे रूप को दो विरोधों में मत बांट। दोनों में मैं मौजूद हूं—रूप में भी, अरूप में भी, मूर्त में भी, अमूर्त में भी; पदार्थ में भी, परमात्मा में भी—मैं ही हूं। और फिर भी मैं तुझसे कहता हूं कि इन सबमें होकर भी मैं बाहर रह जाता हूं। इन सबके बीच में खड़े होकर भी मैं इनमें डूब नहीं जाता हूं। इसे आप अनुभव कर सकते हैं। यहां आप भीड़ में बैठे हुए हैं, भीड़ में बिलकुल डूबे हुए हैं। फिर भी अगर आपको थोड़ी—सी भी ध्यान की क्षमता हो, आख बंद कर लें, अपने भीतर ध्यान में हो जाएं, तो आप कह सकते हैं कि मैं भीड़ में मौजूद हूं और फिर भी भीड़ में नहीं हूं।

आप जंगल में चले जाएं और ध्यान की बिलकुल क्षमता न हो, एक वृक्ष के नीचे बैठ जाएं; कोई वहां नहीं है, निराट सुनसान है, आख बंद करें, भीड़ मौजूद है! तब आपको वहां कहना पड़ेगा, भीड़ यहां बिलकुल नहीं है, फिर भी मैं भीड़ में मौजूद हूं।

इस भीड़ में बैठकर भी आप भीड़ के बाहर हो सकते हैं। तब आपको एक जटिल सत्य का अनुभव होगा, भीड़ में हूं भीड़ में समाया हुं बैठा हूं चारों तरफ भीड़ है, फिर भी मैं भीड़ में नहीं हूं। तब आपको खयाल में आएगा कि यह द्वंद्वातीत अतिक्रमण क्या है! यह नान—डुअल ट्रांसेंडेंस क्या है! यह कृष्ण किस गहन पहेली की बात कर रहे हैं!

वे यह कह रहे हैं, मैं ही लड़ता हूं, मैं ही लड़ाता हूं; मैं ही भागता हूं? मैं ही भगाता हूं; और फिर भी मैं इस सब में नहीं हूं।

लेकिन यह ध्यान की या श्रद्धा की, समाधि की जो परम अवस्था है, तभी खयाल में आती है। तभी खयाल में आती है।

एक सूफी फकीर मरने के करीब था। चिकित्सक उसे दवा दे रहे हैं। वह दवा पी रहा है। लेकिन चिकित्सक को उसकी आंखों को देखकर शक हुआ कि वह दवा नहीं पी रहा है। चिकित्सक ने कहा कि आप दवा पी तो जरूर रहे हैं, लेकिन आपकी आंखों से ऐसा लग रहा है कि आपको कोई प्रयोजन नहीं है।

उस फकीर ने कहा, तुम्हारे लिए दवा पी रहा हूं; मैं दवा नहीं पी रहा हूं। दवा तो पी ही रहा है, लेकिन उसने कहां तुम्हारे लिए दवा पी रहा हूं। मैं दवा नहीं पी रहा हूं।

अगर कोई मोहम्मद के हाथ में तलवार को देखकर पूछता कि आप यह तलवार क्यों लिए हुए है। तो शायद वो भी कहते, तुम्हारे लिए हुं। मेरे हाथ में तलवार नहीं है, इसलिए मोहम्मद ने अपनी तलवार पर लिख रखा था "शांति"। शांति मेरा संदेश है।

पागलपन है! तलवार पर, शांति मेरा संदेश है। उलटी हो गई बात। कृष्ण जैसी हो गई। तलवार पर लिखा कि शांति मेरा संदेश है, और कोई जगह नहीं मिलती लिखने को। इसलाम शब्द का अर्थ होता है शांति।

लेकिन मोहम्मद ठीक कह रहे है तलवार उनकी तलवार के लिए नहीं उठी है। और तलवार उनके हाथ में है ही नहीं। मगर यह कठिन है। यह तो एक गहन अनुभव हो, तो ही खयाल में आ सकता है। कुछ प्रयोग करें, तो समझ में आएगा। कुछ थोड़े—से प्रयोग करें, तो आसान हो जाएगा।

जैसे मैंने कहा, यहां भीड़ में बैठे हैं। एक क्षण को बदल लें ध्यान, भूल जाएं भीड़ को। भीड़ खो गई; आप अकेले हो गए। भीड़ फिर भी रहेगी, आप अकेले हो गए। भोजन कर रहे हैं। समझ लें, जान लें कि शरीर में भोजन जा रहा है, आप में नहीं। शरीर में भोजन जाता रहेगा; आप बाहर हो गए।

कोई आपको चांटा मार रहा हो, तब समझें कि पदार्थ से पदार्थ टकराया; हाथ चेहरे से लगा, मैं दूर ही खड़ा रह गया हूं; मुझे छुआ नहीं जा सका। तब चांटे की आवाज भी होगी, गाल पर निशान भी आ जाएगा, वह आदमी तृप्त होकर भी लौट जाएगा और आप भीतर अछूते बाहर खqऊए रह जाएंगे! थोड़े प्रयोग करें, तो यह पहेली खयाल में आ सकती है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
जगत एक परिवार है(अध्याय—9)—प्रवचन—तीसरा

सूत्रः

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये युनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।7।।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य धिसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृल्लमवशं क्कृतेर्वशात्।।8।।

न च मां तानि कमगॅण निबक्ष्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्त तेषु कर्मसु।।9।।
और हे अर्जुन कल्य के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति की प्राप्त होते हैं अर्थात मेरी प्रकृति में लय होते हैं। और कल्य के आदि में उन्हें मैं फिर रचता हूं।

अपनी त्रिगुणमयी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के वश से परतंत्र हुए हम संपूर्ण भूत समुदाय को बारंबार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूं।

हे अर्जुन उन कर्मों में आसक्तिरहित और उदातीन के सद्दश स्थित हुए मुझ परमात्मा को वे कर्म नहीं बांधते हैं।

स सूत्र के निकट पहुंचने के लिए हम दो—चार मार्गों से यात्रा करें, तो आसान होगा। यह सूत्र, मनुष्य के चिंतन में जो मूलभूत प्रश्न है, उससे संबंधित है। आदमी ने निरंतर जानना चाहा है, कैसे यह सृष्टि निर्मित होती है? कैसे विलीन होती है? कौन इसे बनाता? कौन इसे सम्हालता? किस में यह विलीन होती है? कोई है इसे बनाने वाला या नहीं है? इस प्रकृति का कोई प्रारंभ है, कोई अंत है? या कोई प्रारभ नहीं, कोई अंत नहीं? इस प्रकृति में कोई प्रयोजन है, कोई लक्ष्य है, जिसे पाने के लिए सारा अस्तित्व आतुर है, या यह लक्ष्यहीन एक अराजकता है? यह जगत एक व्यवस्था है या एक अराजक संयोग है? और इस प्रश्न के उत्तर पर जीवन का बहुत कुछ निर्भर करता है, क्योंकि जैसा उत्तर हम स्वीकार कर लेंगे, हमारे जीवन की दशा भी वही हो जग़रगी।

ऐसे विचारक रहे हैं, जो मानते हैं कि जीवन एक संयोग, एक एक्सिडेंट मात्र है। कोई व्यवस्था नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है, कहीं पहुंचना नहीं है, कोई कारण भी नहीं है, सिर्फ जीवन एक दुर्घटना है। ऐसी द्दष्टि को जो मानेगा, वह जो कह रहा है, वह सच हो या न हो, उसका जीवन जरूर एक दुर्घटना हो जाएगा। वह जो कह रहा है, वह सारे जगत को प्रभावित नहीं करेगा, लेकिन उसके अपने जीवन को निश्चित ही प्रभावित करेगा।

यदि मुझे ऐसा लगता हो कि यह सारा विस्तार, यह पूरा ब्रह्माड एक संयोग मात्र है, तो मेरे अपने जीवन का केंद्र भी बिखर जाएगा। तब मेरे जीवन की सारी घटनाएं भी संयोग मात्र हो जाएंगी। फिर मैं बुरा करूं या भला, मैं जीऊं या मरूं, मैं किसी की हत्या करूं या किसी पर दया करूं, इन सब बातों के पीछे कोई भी प्रयोजन, कोई सूत्रबद्धता नहीं रह जाएगी। ऐसा जिन्होंने कहा है, उन्होंने जगत को अराजक बनाने में सुविधा दी है।

और कठिनाई यह है कि चाहे कोई विचारक कितना ही कहे कि जगत अराजक है, खुद उसकी चेतना इस बात को स्वीकार नहीं कर पाती। क्योंकि ऐसै विचारक जब अपना प्रस्ताव करते हैं कि जगत अराजक है, तो इसे भी बहुत तर्कयुक्त ढंग से सिद्ध करते हैं। ऐसे विचारक भी जब यह कहते हैं कि जगत अराजक है, तो इसकी भी सुसंगत व्यवस्था निर्मित करते हैं। वे एक सिस्टम बनाते हैं। अगर आप उनका विरोध करेंगे, तो वे आपके विपरीत तर्क उपस्थित करेंगे। वे आपके तर्कों का खंडन करेंगे। वे अपने तर्कों का समर्थन करेंगे। लेकिन उन्हें शायद खयाल नहीं आता कि अगर जगत एक अराजकता है, तो किसी को भी समझाने का कोई प्रयोजन नहीं है, और फिर न कोई सही है और न कोई गलत।

अगर जगत एक अराजकता है, एक अनार्की है, एक केआस है, तो फिर मैं आपको समझाऊं कि सही क्या है, तो मैं मूढ़ हूं। क्योंकि अराजकता में सही कुछ भी नहीं हो सकता है। सही और गलत व्यवस्था में होते हैं।

फिर अगर मैं कहूं कि मैं ही सही हूं और आप गलत हैं, तो मैं अपनी ही बात का खंडन कर रहा हूं। क्योंकि सही और गलत किसी प्रयोजन से होते हैं। अगर मैं कहूं कि यह रास्ता गलत है, और साथ ही यह भी कहूं कि यह रास्ता कहीं पहुंचता नहीं है। क्योंकि अगर रास्ता कहीं भी नहीं पहुंचता है तो रास्ता गलत और सही हो हीं नहीं सकता। क्योंकि रास्ते का सही और गलता होना इस पर निर्भर होता है कि मंजिल मिलेगी या नहीं, अगर मंजिल है ही नहीं, तो सभी रास्ते समान है, न वह गलत है और न सही हैं। क्योंकि कोई रास्ता कहीं भी पहुंचाता नहीं है, इसलिए जांचिएगा कैसे, मापिएगा कैसे कौन सही है कौन गलत है?

जो कहते हैं कि जगत अराजक है वह भी सिद्ध करना चाहते हैं कि हम जो कह रहे हैं, वह सत्य है, अराजकता में कोई सत्य असत्य नहीं हो सकता। सत्य और असत्य व्यवस्था की बातें है। इसलिए मैं कहता हूं जिन्होंने ऐसा कहां है कि वह भी व्यवसथा को स्वीकार करते हैं। उनकी चेतना भी गहन रूप में व्यवस्था को अस्वीकार नहीं कर पाती। अव्यवस्था से वे भी राजी नहीं हो पाते हैं। अब तक ऐसा कोई भी जगत में व्यक्ति नहीं हुआ है, जो अव्यवस्था के लिए अंतर्मन से राजी हो। अगर आप ऐसे व्यक्ति को भी जाकर छुरा उसके हाथ में भोंक दें, तो वह भी पूछेगा, क्यों? तुमने छुरा मुझे क्यों मार दिया है?

लेकिन अगर जगत अराजक है, तो क्यों का प्रश्न अनुचित है। यहां घटनाएं घटती हैं, बिना किसी कारण के। तो मैं कह सकता हूं कि यह संयोग है कि मेरे हाथ में छुरा है, तुम्हारा हाथ करीब है। और यह संयोग है कि मेरा हाथ तुम्हारे हाथ में छुरे को भोंकता है। इसमें कोई कारण नहीं है। लेकिन अराजक आदमी भी पूछेगा कि छुरा मुझे क्यों मारा गया है? वह भी जानना चाहता है कारण।

मैं आप से यह कह रहा हूं कि मनुष्य की चेतना ही ऐसी है कि वह व्यवस्था को अस्वीकार नहीं कर सकती है। विचार में भी अस्वीकार करे, तो भी अव्यवस्था के लिए भी व्यवस्था निर्मित करेगी। अगर कोई आदमी यह भी कहे कि जगत नहीं 'है, तो इसे भी वह सिद्ध करने में लग जाता है। अगर वह यह कहे कि यह सब झूठ है, जो है, तो भी वह इसे सिद्ध और सत्य करने में लग जाता है। इससे एक भीतरी बात की खबर मिलती है।

पश्चिम में एक विचारक हुआ, बर्कले। बर्कले कहता है कि जगत एक स्वप्न है, एक विचार, बाहर कोई जगत नहीं है। लेकिन वह भी लोगों को समझाने जाता है कि मैं जो कहता हूं वह ठीक है।

वह किन्हें समझाने जाता है? अपने ही विचारों को? अपने ही सपनों को? अपने ही सपने के पात्रों को? और जब कोई उसको मानकर राज़ी हो जाते है और ताली बजाता है, तो वह प्रसन्न होता है। अपने ही सपनों के पात्रों से सुनी गई तालियों से प्रसन्न होता है? और जब कोई राज़ी नहीं होता और इनकार करता है, तो वह दुखी और पीडित होता है।

वह कहता भला हो जगत मेरा विचार है लेकिन उसकी चेतना स्वयं भी इसे नहीं मान पाती है।

आप क्या कहते है ये बहुत महत्वपूर्ण नहीं है, आपका अंतर्चित्त क्या स्वीकार करता है वह महत्वपूर्ण है।

तो एक द्वार आपको कहूं और वह पहला द्वार यह है कि मनुष्य की चेतना स्वभावत व्यवस्था को स्वीकार करती है। इस जगत में अगर कोई व्यवस्था है। तो ही हम तृप्त हो सकते हैं। अगर इस जगत में कोई व्यवस्था नहीं है, तो हम तृप्त नहीं हो सकते हैं; क्योंकि हमारे प्राणों की गहराई से व्यवस्था की मांग है। इस माग का ही परिणाम ईश्वर की धारणा है।

ईश्वर की धारणा का अर्थ है कि जगत एक व्यवस्था है, एक कास्मास है, केआस नहीं। यहां जो भी हो रहा है, वह प्रयोजनपूर्वक है। और यहां जो भी हो रहा है, उसका कोई गंतव्य है। और यहां जो भी हो रहा है, उसके पीछे कोई सुनियोजित हाथ हैं। यहां जो भी दिखाई पड़ रहा है, वह कितना ही सांयोगिक हो, सांयोगिक नहीं है, कार्य और कारण से आबद्ध है।

ईश्वर की धारणा का जो मौलिक आधार है, वह पहला आधार यही है कि मुनुष्य कुछ भी करे, विचार कुछ भी करे, विचार व्यवस्था के पार नहीं जा सकता है। विचार स्वयं ही व्यवस्था का आधार है। विचार व्यवस्था की मांग है। सोचने का अर्थ ही है कि प्रयोजन है, अन्यथा सोचने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। समझाने का अर्थ है, क्योंकि कोई प्रयोजन है।

और हम जहां भी देखें, वहां जीवन में व्यवस्था के चरण सब जगह दिखाई पड़ते हैं। छोटे—से परमाणु से लेकर आकाश में घूमते हुए विराट महाकाय ताराओं की तरफ हम आंख उठाएं, चाहे क्षुद्रतम में और चाहे विराटतम में, एक गहन, निबिड़ योजना परिलक्षित होती है।

एडिंगटन ने अपने मरने के पहले लिखा है—और एडिंगटन तो विशुद्ध वैज्ञानिक चिंतक था—उसने लिखा है कि जब मैंने अपना विचार शुरू किया जगत के बाबत, तो मैं सोचता था, जगत वस्तुओं का एक समूह है। लेकिन जीवनभर की निरंतर खोज के बाद अब मुझे ऐसा लगता है, जगत वस्तुओं का समूह नहीं, विचार की एक व्यवस्था है। एडिंगटन ने कहा है कि नाउ दि वर्ल्ड लुक्स 'मोर लाइक ए थाट दैन लाइक ए थिंग।

वस्तु में और विचार में क्या फर्क है? वस्तु अलग—अलग टुकड़ों में भी हो सकती है, लेकिन विचार सदा एक संयोजना में होता है। विचार का एक पैटर्न है। विचार के भी भीतर एक आर्गेनिक यूनिटी, एक सावयव एकता है। इसे थोड़ा खयाल में ले लें, तो इस सूत्र को समझना आसान हो जाए।

'यह मेरा हाथ है। ये मेरे हाथ की पांच अंगुलियां हैं। यह मेरा पैर है। यह मेरा सिर है। यह मेरा शरीर है। अगर ये सब वस्तुएं हैं, तो इनके भीतर कोई ऐक्य नहीं हो सकता। लेकिन मेरे मन में विचार !, उठता है, और मेरा हाथ उस विचार को पूरा करने के लिए उठ जाता है। मेरे मन में कामना उठती है, और मेरे पैर चलने को तत्पर हो जाते हैं। मेरी आंख देखती है, और मेरे कान, जो मेरी आंख देखती है, उसे सुनने को उत्सुक हो जाते हैं। मेरे पैर और मेरी आंख में, और मेरे कान में, और मेरे हाथ में, और मेरे मन में एक अंतर्व्यवस्था है, एक इनर सिस्टम है। ये सिर्फ जोड़ नहीं हैं। ये सिर्फ जोड़ नहीं हैं कि हाथ मेरे पैर से जुड़ा है, पैर मेरे शरीर से जुड़े हैं। ये सिर्फ जोड़ नहीं हैं। इन सबके भीतर बहती हुई कोई एकता है। उस एकता का नाम आर्गेनिक यूनिटी है।

ईश्वर की धारणा इस बात की घोषणा है कि यह जगत भी वस्तुओं का समूह नहीं, एक अंतर—ऐक्य है। एक इनर यूनिटी इस सारे जगत के भीतर दौड़ रही है। अगर वृक्ष उग रहा है और आकाश में तारे चल रहे हैं, वर्षा हो रही है और नदिया सागर की तरफ भाग रही हैं, सूरज सुबह उग रहा है और चांद रात को आकाश में यात्रा करता है—यह सब का सब अलग— अलग घटनाओं का जोड़ नहीं है। इन सारी घटनाओं के बीच जैसे मेरे शरीर में मेरी एकता व्याप्त है, इन सबके बीच कोई अंतर्व्यवस्था व्याप्त है। उस अंतर्व्यवस्था का नाम ईश्वर है।

ईश्वर व्यक्ति नहीं है, ईश्वर अंतर्व्यवस्था है। समस्त व्यक्तियों के बीच जो अंतर्व्यवस्था है, उसका नाम ईश्वर है, समस्त वस्तुओं के बीच जो जोड्ने वाली कड़ी है।

अब यह मजे की बात है कि अगर मेरे हाथ को काट दें, तो मेरा हाथ कटकर गिर जाएगा, मेरा शरीर अलग हो जाएगा, लेकिन दोनों के बीच की जोड्ने वाली कड़ी दिखाई नहीं पड़ेगी। पकड़—में भी नहीं आएगी। अब तक तो नहीं आ सकी है। और जितना गहरे जो जानते हैं, वे कहते हैं, कभी पकड़ में नहीं आ सकेगी। वह अंतर्व्यवस्था अद्दश्य है।

यह तो निश्चित है कि मेरे हाथ और मेरे बीच कोई अंतर—कड़ी है, तभी मेरे मन में विचार कंपता है और मेरा हाथ सक्रिय हो जाता है। विचार और मेरे हाथ में भी कोई जोड़ है। लेकिन हाथ को काटते हैं, तो हाथ में और मेरे शरीर में जो जोड़ है, वह तो दिखाई पड़ता है—नसे दिखाई पड़ती हैं, मसल्स दिखाई पडते हैं, स्नायु, हड्डियां दिखाई पड़ती हैं—लेकिन मेरे हाथ और मेरे विचार में जो जोड़ है, वैह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता! वह जोड़ है जरूर। क्योंकि इधर। मैं सोचता हूं उधर मेरा हाथ सक्रिय हो जाता है।

जब कभी वह जोड़ खो जाता है, तो हम कहते हैं, आदमी को लकवा लग गया, पक्षाघात हो गया। अब वह सोचता है कि मेरा हाथ उठे और हाथ नहीं उठता। तो वह आदमी कहता है, मैं पैरालाइज्ड हो गया।

लेकिन इस जगत में जो लोग व्यवस्था को नहीं देखते, वे एक पैरालाइज्ड जगत देख रहे हैं; एक पक्षाघात, एक लकवे से लगा हुआ जगत है उनका। इसलिए नास्तिक जिस जगत को देखता है, वह पैरालाइज्ड है। उसमें अंतर्व्यवस्था उसे दिखाई नहीं पड़ रही है। और ध्यान रहे, जिसका जगत पैरालाइज्ड है, वह खुद भी उसके साथ पैरालाइज्ज हो जाएगा। जिसका जगत एक मुर्दा जोड़ है, वह आदमी भी अपने भीतर एक मुर्दा जोड़ हो जाएगा। उसकी आत्मा बिखर जाएगी। जिसे इस जगत में आत्मा नहीं दिखाई पडती, उसे अपने भीतर भी आत्मा दिखाई नहीं पड़ेगी; क्योंकि तब वह भी एक वस्तुओं का जोड़ है। जैसा कि चार्वाक ने कहा है कि आदमी केवल वस्तुओं का जोड है, उसके भीतर आत्मा जैसी कोई भी वस्तु नहीं है। अगर हम आदमी को काटें, तो यह बात सच है। अगर आदमी को तोड़े, तो यह बात सच है। हमें कहीं भी वह अंतर्व्यवस्था दिखाई नहीं पडेगी। वह अंतर्व्यवस्था अदृश्य है और इसलिए परमात्मा अदृश्य है।

पहली बात, परमात्मा से प्रयोजन है, इस सारे जगत के भीतर एक जीवंत जोड़ है। यहां एक पत्ता भी नहीं हिलता, जब तक कि पूरे जगत का उसे साथ न हो। यहां अगर मैं एक शब्द बोलता हूं, तो यह शब्द मैं ही नहीं बोलता, बोल नहीं सकता हूं; अलग, अकेला, अलग—थलग जगत से मैं नहीं हूं। एक शब्द भी यहां बोला जाएगा, बोला जा सकता है तभी, जब पूरे जगत का उसे सहयोग हो, जब पूरी अंतर्व्यवस्था साथ हो।

'आपकी आंख खुलेगी भी नहीं, अगर सूरज ढल जाए, समाप्त हो जाए। आपकी सांस चलेगी भी नहीं। अकर सूरज मर जाए। दस करोड़ मील दूर जो सूरज है, उसके साथ आपकी सांस जुड़ी है। जिस दिन सूरज समाप्त हो जाएगा, उस दिन हम समाप्त जायेंगे और हमें पता भी नहीं चलेगा कि सूरज समाप्त हो गया। क्योंकि पता चलने के लिए भी हम बचेंगे नहीं। हमें कभी पता नहीं चलेगा कि सूरज समाप्त हो गया। क्योंकि सूरज समाप्त हुआ तत्क्षण हम समाप्त हो जाएंगे।

सारा जगत एक अंतर—संयोंग, एक अंतर—संबंध है। कहें कि जगत एक परिवार है।

ईश्वर की मान्यता का अर्थ है जगत को एक परिवार के रूप में देखना। ईश्वर को इनकार करने का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति एटामिक हो गया, आणविक हो गया अब जगत एक परिवार नही है, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं है; और कहीं कोई संबंध नहीं है।

ध्यान रहे, मनुष्य की चेतना इसे स्वीकार नहीं करती है। परम नास्तिक भी अपने जीवन में व्यवस्था को खोजता है। और परम नास्तिक भी व्यवस्था की मांग करता है।

मैं एक नास्तिक को जानता हूं। मेरे. पड़ोसी थे। विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। दर्शनशास्त्र के ही प्रोफेसर हैं। अक्सर मेरे पास आते थे। कहते थे, जगत में कोई व्यवस्था नहीं है। कहते थे, जगत सिर्फ परमाणुओं का जोड़ है। इसके भीतर कोई अंत:स्थूत, कोई धागा नहीं है। जैसे कि माला में मनके डले होते हैं और भीतर एक अनस्थूत धागा उनको जोड़े होता है, ऐसा कोई धागा इस जगत में नहीं है, क्योंकि उसी धागे का नाम ईश्वर है। मनके ही मनके हैं, कहीं कोई जोड़ नहीं है। और सब चीजें सायोगिक हैं।

वे कहते थे कि जैसे हम एक टाइपराइटर पर एक बंदर को बिठा दें और वह ठोंकता रहे टाइपराइटर को, अनंतकाल तक ठोंकता रहे, तो गीता भी निर्मित हो सकती है। क्योंकि एक संयोग ही है; गीता भी शब्दों का एक संयोग है। अगर एक बंदर अनंतकाल तक—हम सिर्फ कल्पना कर लें—एक बंदर अनंतकाल तक टाइपराइटर को बैठकर ठोंकता रहे बिना कुछ जाने, तो भी अनंत—अनंत संयोगों में एक संयोग गीता भी होगी। क्योंकि आखिर गीता है क्या? शब्दों का एक संयोग है। एक दफे में गीता निर्मित नहीं होगी, हजार दफे में नहीं होगी, करोड़ दफे में नहीं होगी। हम सोचें अनंतकाल तक वह बंदर और टाइपराइटर दोनों लगे हुए हैं, तो अनंत—अनंत संयोगों में एक संयोग गीता भी होगी।

यह गाणितिक बात है। यह प्रोबेबिलिटी है। इसमें कोई शक नहीं है। यह हो सकता है। लेकिन फिर भी गीता को पढ़कर ऐसा मालूम नहीं पड़ता कि यह एक संयोग है। फिर भी ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि किसी आदमी ने अचानक इन शब्दों को जोड़ दिया है। इन शब्दों के भीतर अनस्यूत धागा पड़ता है। लेकिन वे मानने को राजी नहीं थे। मैंने उन्हें न मालूम कितने—कितने रूपों से समझाया होगा, लेकिन वें मानने को राज़ी ही नहीं है।

जो मानने को राज़ी नहीं है! वह बहरा हो जाता है, वह सुनना बंद कर देता है। तब फिर मेरे पास एक ही उपाय था, और वह उपाय मैंने उनसे किया। मैं उनसे असंगत बातें करने लगा। वे पूछते आकाश की, मैं जमीन का जवाब देता। वे ईश्वर की चर्चा उठाते, मैं मशीन की बात करता वे किसी के मरने की खबर देते, और मैं किसी के विवाह की चर्चा छेड़ता। वे मुझसे कहने लगे, आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? मैं कुछ कहता हूं आप कुछ कहते हैं! इन दोनों में कोई संबंध नहीं है!

मैंने उनसे कहा, आपका मन भी संबंध की तलाश करता है? आप भी एक व्यवस्था की खोज करते हैं? आपको व्यवस्था का खयाल छोड़ देना चाहिए। जब कोई व्यवस्था ही नहीं है, तो आप मरने की खबर दें, मैं विवाह की चर्चा करूं, इससे अड़चन क्या है? लेकिन आपकी भी अपेक्षा है कि आपने मरने की खबर दी, तो मैं मरने की खबर के संबंध में ही बात करूं। इतनी व्यवस्था की मांग आप भी करते हैं!

हमारी चेतना व्यवस्था की मांग किए ही चली जाती है। अगर कल रास्ते पर वे मुझे मिले थे और मैंने नमस्कार किया था और आज नहीं किया, तो उनका मन दुखी होता है। मैंने उनसे पूछा, दुखी होने की क्या जरूरत है? कल यह संयोग था कि नमस्कार हुई। आज यह संयोग है कि नमस्कार नहीं होती। दोनों के बीच कोई संबंध कहां है? तब उनका बहरापन टूटना शुरू हुआ। और उन्हें खयाल आना शुरू हुआ कि मांग तो मेरी भी व्यवस्था की ही है। चेतना व्यवस्था को मतो ही चली जाती है। व्यवस्था चेतना की गहरी प्यास है। ईश्वर उसका अंतिम उत्तर है। ईश्वर का अर्थ है, हम जगत को एक व्यवस्था मानते हैं। यहां कुछ भी अकारण नहीं है। इसलिए कृष्ण कहते हैं कि कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को ही प्राप्त हो जाते हैं, मेरी प्रकृति में लय हो जाते हैं। और कल्प के प्रारंभ में उन्हें मैं पुन: निर्मित करता हूं।

इसे हम दूसरे दरवाजे से भी चलें।

ऐसा अगर हो, मनुष्यता नष्ट हो जाए। कल कोई युद्ध हो—और अगर राजनीतिज्ञों की कृपा रही, तो होगा ही—मनुष्यता कल नष्ट हो जाए, आदमी समाप्त हो जाए, और फिर किसी अनजाने ग्रह से मनुष्यता के इस मरघट पर कोई यात्री उतरें। अगर उन्हें माइकलएंजलो के हाथ की बनी हुई कोई तस्वीर मिल जाए, तो वे क्या करें?

दो ही उपाय हैं। या तो वे सोचें कि किसी ने इसे बनाया होगा। क्योंकि इतने अनुपात में, इतने सुसंयोजन में, इतनी लयबद्ध, रंगों के साथ इतनी व्यवस्था, रूप का अवतरण, रंगों में निराकार की पकड़—यह आकस्मिक नहीं हो सकती, को—इसिडेंटल नहीं हो सकती। ऐसा नहीं है कि रंग पड़ गए होंगे केनवस पर और यह चित्र बन गया होगा।

एक तो रास्ता यह है कि वे इस चित्र की व्यवस्था को देखकर सोचें कि किसी ने इसे निर्मित किया होगा। और दूसरा रास्ता यह है कि वे सोचें कि यह बन गई होगी।

लेकिन अगर एक चित्र हाथ में लगे, तो संयोग की बात भी हो सकती है। लेकिन फिर उन्हें मूर्तियां मिलें, खजुराहो के मंदिर मिलें, कि कोणार्क की मूर्तियां मिलें। और वे जमीन के कोने—कोने पर घूमते रहें और उन्हें अनेक यंत्र मिलें, और अनेक व्यवस्थाएं मिलें, तब भी अगर वे यही कहे चले जाएं कि यह संयोग की बात है! यह संयोग की बात है कि यह जो रेडियो का यंत्र पड़ा है, संयोग की बात है कि अनंत—अनंत काल में अनेक— अनेक चीजों के मिलने से निर्मित हो गया होगा।

लेकिन अगर एक रेडियो हो, तब भी यह संभव हो सकता है। जमीन पर बहुत रेडियो मिलें, रेल के इंजन मिलें, उजडे हुए कारखाने मिलें, जगह—जगह व्यवस्था के लक्षण मिलें, जगह—जगह बनाने वाले की खबर मिले, तब भी अगर वे यात्री जिद्द किए जाएं, तो वह जिद्द उनकी नासमझी होगी।

जमीन के इंच—इंच पर और प्रकृति के इंच—इंच पर और विश्व के इंच—इंच पर बनाने वाले की छाप है। यहां एक भी चीज निष्प्रयोजन नहीं मालूम पड़ती। और प्रत्येक चीज के भीतर एक गहन अनुपात है। अगर हम इनकार करे चले जाएं, तो हम अपने ही हाथ अपने को अंधा बनाते हैं।

देखें, चारों तरफ आंखें खोलकर देखें। बीज को बोते हैं जमीन में। बीज को तोड़कर देखें, तो वृक्ष का कोई नक्‍श दिखाई नहीं पड़ता, कोई ज्यू—प्रिंट दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन अब वैज्ञानिक मानते हैं कि बीज में क्यू—प्रिंट है ,— नहीं तो यह वृक्ष निकलेगा कैसे? एक छोटे—से बीज में तोड़कर देखने पर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन इस बीज को जमीन में बो देते हैं और वृक्ष अंकुरित होता है; हर कोई वृक्ष नहीं, एक विशिष्ट वृक्ष अंकुरित होता है। इस वृक्ष की शाखाएं हर वृक्ष जैसी नहीं होतीं। इसकी अपने ही ढंग की शाखाएं होंगी, अपने ही ढंग के पत्ते होंगे, अपने ही ढंग के फूल खिलेंगे। और आश्चर्य की बात यह है कि जब यह वृक्ष संपूर्ण होगा, तो जिस बीज को हमने बोया था, वही बीज करोड़ों होकर वापस निकल आएगा। हर कोई बीज नहीं, वही बीज करोड़ों होकर फिर प्रकट हो जाएगा!

एक बीज के भीतर भी ब्लू—प्रिंट है। एक बीज के भीतर भी व्यवस्था है। एक बीज के भीतर भी भविष्य की पूरी रूप—रेखा है। एक मां के पेट में बच्चे ने गर्भ लिया है। वह जो पहला अणु है बच्चे का, उसके भीतर पूरा का पूरा ब्लू—प्रिंट है। उस व्यक्ति का पूरा का पूरा

जीवन विकसित होगा; उस सब की कहानी छिपी है। उस सब के मूल निर्देश सूत्र छिपे हैं, सारे सुझाव छिपे हैं। और शरीर उन सारे सुझावों को मानकर चलेगा। उस व्यक्ति की आँख का रंग क्या होगा, यह उस छोटे—से अणु में छिपा है, जो खाली आंख से देखा नहीं जा सकता। उस व्यक्ति की कितनी बुद्धि होगी, कितनी मेधा होगी, कितना आई क्यू होगा, वह उस छोटे—से अण में छिपा है। जिसको बुद्धि लाख उपाय करे, तो भी पता नहीं लगा पा सकती। वह व्यक्ति कितनी उम्र का हो सकेगा, कितनी उम्र का होकर मरेगा, उस व्यक्ति को कौन—सी खास बीमारियां हो सकती हैं, वह सब उस छोटे—से बीज में छिपा है।

अगर इतने छोटे—से बीज में यह वृक्ष का सारा क्यू—प्रिंट छिपा होता है; अगर छोटे—से मनुष्य के अणु में, सेल में, उसके पूरे जीवन की कथा छिपी होती है। तो क्या यह सोचना गलत है कि इस पूरे जगत का भी कोई क्यू—प्रिंट होना चाहिए? क्या यह सोचना गलत है कि इस सारे जगत की भी मूल व्यवस्था किसी अणु में छिपी हो गुड उस अणु का नाम ही परमात्मा है। यह जो इतना बड़ा विराट जगत है, इस सारे जगत के फैलाव की भी मूल व्यवस्था कहीं होनी चाहिए।

कृष्ण कहते हैं, मैं ही इसे सृजन करता और मैं ही फिर इसे अपने में लीन कर लेता हूं।

इसे समझें। एक बीज से वृक्ष निर्मित होता है और फिर वृक्ष पुन: बीजों में लीन हो जाता है। प्रथम और अंतिम क्षण सदा एक होते हैं। जहां से यात्रा शुरू होती है, वहीं यात्रा पूर्ण हो जाती है। बीज से शुरू होती है यात्रा, बीज पर समाप्त हो जाती है।

इस सारे विराट अस्तित्व को अगर हम एक इकाई मान लें, तो इस इकाई का भी मूल कहीं छिपा होना चाहिए। लेकिन हम बीज को तोड़ते हैं, तो वृक्ष नहीं मिलता। और अगर हम आदमी के अणु को तोड़े, उसके सेल को, कोष्ठ को तोड़े, तो भी उसमें आदमी नहीं मिलता। तो एक बात साफ होती है कि बीज में वृक्ष छिपा है, लेकिन किसी अदृश्य ढंग से; किसी ऐसे ढंग से कि जब तक प्रकट न हो जाए तब तक उसका पता ही नहीं चलता।

ईश्वर का भी पता हमें तभी चलना शुरू होता है, जब किन्हीं अर्थों में वह हमारे लिए प्रकट होने लगता है। तब तक पता नहीं चलता। इसलिए सैद्धांतिक रूप से अगर भी ले कि जगत में ईश्वर है, तब भी उसका कोई प्रयोजन नहीं जब तक कि वह प्रकट न होने लगे; वह अदृश्य हमें दिखाई न पड़ने लगे। उस बीज में से वृक्ष निकलने न लगे, फूल न खिलने लगें, तब तक हमें उसका पूरा एहसास, उसकी पूरी प्रतीति नहीं 'होती।

लेकिन यह धारणा उपयोगी है, क्योंकि यह धारणा हो, तो उस प्रतीति की तरफ चलने में आसानी हो जाती है। और हम उसी तरफ यात्रा कर पाते हैं, जिस दिशा को हम अपने संकल्प में उन्मूक्त कर लेते हैं। जिस दिशा को हम बंद कर देते हैं, उस तरफ यात्रा कठिन हो जाती है।

पश्चिम में एक विचारक अभी था, जिसका पश्चिम पर बहुत प्रभाव पड़ा, एडमंड लूसेल्ड। उसका कहना है, मनुष्य का पूरा जीवन एक इनटेशनलिटी है। मनुष्य का पूरा जीवन एक गहन तीव्र इच्छा है। तो जिस दिशा में मनुष्य अपनी गहन तीव्र इच्छा को लगा देता है, वही दिशा खुल जाती है, और जिस दिशा से अपनी इच्छा को खींच लेता है, वही बंद हो जाती है।

तो अगर एक चित्रकार चित्रकार होना चाहता है, तो अपने समस्त प्राणों की ऊर्जा को उस दिशा में संलग्न कर देता है। एक मूर्तिकार मूर्तिकार होना चाहता है, एक वैज्ञानिक वैज्ञानिक होना चाहता है। लेकिन अगर आप कुछ भी नहीं होना चाहते, तो आप ध्यान रखिए, आप कुछ भी नहीं हो पाएंगे, क्योंकि आप किसी भी यात्रा पर अपनी चेतना को संगृहीत करके गतिमान नहीं कर पाते। आपके भीतर इनटेशनलिटी, आपके भीतर संकल्प का आविर्भाव ही नहीं हो पाता। तो आप एक लोच—पोच व्यक्ति होते हैं, जिसके भीतर कोई केंद्र नहीं होता। बिना रीढ़ की, जैसे कोई शरीर हो बिना रीढ़ की हड्डी का, वैसी आपकी आत्मा होती है बिना रीढ़ की।

यह जगत भी अपने समस्त रूपों में एक गहन इच्छा की सूचना देता है। यहां कोई भी चीज अकारण होती मालूम नहीं हो रही है। यहां प्रत्येक चीज विकासमान होती मालूम पड़ती है।

डार्विन ने जब पहली बार विकास का, इवोल्यूशन का सिद्धात जगत को दिया, तो पश्चिम में विशेषकर ईसाइयत ने भारी विरोध किया। क्योंकि ईसाइयत का खयाल था कि विकास का सिद्धात धर्म के खिलाफ है। लेकिन हिंदू चिंतन सदा से विकास के सिद्धात को धर्म का अंग मनता रहा है।

असल में विकास के कारण ही पता चलता है कि जगत में परमात्मा है। विकास के कारण ही पता चलता है कि जगत किसी गहन इच्छा से प्रभावित होकर गतिमान हो रहा है। जगत ठहरा हुआ नहीं है, स्टैटिक नहीं है डायनैमिक है। यहां प्रत्येक चीज बढ़ रही है, और प्रत्येक चीज ऊपर उठ रही है। चीजें ठहरी हुई नहीं हैं, चीजों के तल रूपांतरित हो रहे हैं। और यह जो विकास है, इररिवर्सिबल है, यह पीछे गिर नहीं जाता। एक बच्चे को हम दुबारा बच्चा कभी नहीं बना सकते। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि विकास सुनिश्चित रूप से उसकी आत्मा का हिस्सा हो जाता है।

आप जो भी जान लेते हैं, उसे फिर भुलाया नहीं जा सकता। आपने जो भी जान लिया, उसे फिर मिटाया नहीं जा सकता। क्योंकि वह आपकी आत्मा का सुनिश्चित हिस्सा हो गया। वह आपकी आत्मा बन गई। इसलिए इस जगत में जो भी हम हो जाते हैं, उससे नीचे नहीं गिर सकते।

अगर यह संयोग मात्र है, तो ठीक है। एक का किसी दिन सुबह उठकर पाए कि बच्चा हो गया! एक इतनी सुबह उठे और पाए कि सब अंधकार हो गया; अज्ञान ही अज्ञान छा गया! एक मूर्तिकार सुबह उठकर पाए कि उसकी छेनी—हथौड़ी को हाथ पकड़ नहीं रहे, हाथ छूट गए हैं! उसे कुछ खयाल ही नहीं आता कि कल वह क्या था!

नहीं, हमारा आज हमारे समस्त कल और अतीत के ज्ञान और अनुभव को अपने में समा लेता है, निविष्ट कर लेता है। न केवल अतीत को निविष्ट कर लेता है, बल्कि भविष्य की तरफ पंखों को भी फैला देता है।

जगत एक सुनिश्चित विकास है, एक कांशस इवोल्यूशन। अगर जगत विकास है, तो उसका अर्थ है कि वह कहीं पहुंचना चाह रहा है। विकास. का अर्थ होता है, कहीं पहुंचना। जीवन कहीं पहुंचना चाह रहा है। जीवन किसी यात्रा पर है। कोई गंतव्य है, कोई मंजिल है, जिसकी तलाश है। हम यूं ही नहीं भटक रहे हैं। हम कहीं जा रहे हैं। जाने— अनजाने, पहचानते हों, न पहचानते हों, हमारा प्रत्येक कृत्य हमें विकसित करने की दिशा में संलग्न है।

और ध्यान रहे, हमारे जीवन में जब भी आनंद के क्षण होते हैं, तो वे वे ही क्षण होते हैं, जब हम कोई विकास का कदम लेते हैं। जब भी हमारी चेतना किसी नए चरण को उठाती है, तभी आनंद से भर जाती है। और जब भी हमारी चेतना ठहर जाती है, अवरुद्ध हो जाती है, उसकी गति खो जाती है और कहीं चलने को मार्ग नहीं मिलता, तभी दुख, तभी पीड़ा, तभी परतंत्रता, तभी बंधन का अनुभव होता है। मुक्ति का अनुभव होता है विकास के चरण में।

जब बच्चा पहली दफा जमीन पर चलना शुरू करता है, तब आपने उसकी प्रफुल्लता देखी है? जब वह पहली दफा पैर रखता है जमीन पर, और पहली दफा डुलता हुआ, कंपता हुआ, घबड़ाया हुआ, भयभीत, झिझकता हुआ, पहला कदम उठाता है, और जब पाता है कि कदम सम्हल गया और जमीन पर वह खड़े होने में समर्थ है, तो आपको पता होना चाहिए विकास का एक बहु,त बड़ा कदम उठ गया है। यह सिर्फ पैर चलना हीं नहीं है, आत्मा को एक नया भरोसा मिला, आत्मा को एक नई श्रद्धा मिली; आत्मा ने पहली दफा अपनी शक्ति को पहचाना। अब यह बच्चा दुबारा वही नहीं हो सकेगा, जो यह घुटने के बल चलकर होता था। अब यह दुबारा वही नहीं हो सकेगा। अब यह सारी दुनिया भी इसको घुटने के बल झुकाने में असमर्थ हो जाएगी। एक बड़ी ऊर्जा का जन्म हो गया।

इसलिए जब कोई हार जाता है, तो हम कहते हैं, उसने घुटने टेक दिए। घुटने टेकना हारने का प्रतीक हो जाता है। लेकिन कल तक यह बच्चा घुटने टेककर चल रहा .था। इसे पता ही नहीं था कि मैं क्या हो सकता हूं मैं भी खड़ा हो सकता हूं, अपने ही बल मैं भी चल सकता हूं। यह दुनिया की पूरी की पूरी ताकत, सारी दुनिया की शक्ति भी चेष्टा करे, तो मुझे गिरा नहीं पाएगी।

इस बच्चे के भीतर इनटेशनलिटी, एक तीव्र इच्छा का जन्म हो गया। जिस दिन यह बच्चा पहली बार बोलता है और पहला शब्द निकलता है इसका—तुतलाता हुआ, डांवाडोल, डरा हुआ—उस दिन इसके भीतर एक नया कदम हो गया। जिस दिन बच्चा पहली बार बोलता है, उसकी प्रफुल्लता का अंत नहीं है। अपने को अभिव्यक्त करने की आत्मा ने सामर्थ्य जुटा ली।

इसलिए बच्चे अक्सर एक ही शब्द को—जब वे बोलना शुरू करते है—तो दिनभर दोहराते हैं। हम समझते हैं कि सिर खा रहे हैं, परेशान कर रहे हैं, वे केवल अभ्यास कर रहे हैं अपनी स्वतंत्रता का। वह जो उन्हें अभिव्यक्ति मिली है, वे बार—बार उसको छूकर देख रहे हैं कि ही, मैं बोल सकता हूं! अब मैं वही नहीं हूं—मौन, बंद। अब मेरी आत्मा मुझसे बाहर जा सकती है। नाउ कम्युनिकेशन इज पासिबल। अब मैं दूसरे आदमी से कुछ कह सकता हूं। अब मैं अपने में बंद कारागृह नहीं हूं। मेरे द्वार खुल गए!

वह बच्चा सिर्फ अभ्यास कर रहा है। अभ्यास ही नहीं कर रहा है, वह बार—बार मजा ले रहा है। वह जिस शब्द को बोल सकता है, उसे बोलकर वह बार—बार मजा ले रहा है। वह कह रहा है कि ठीक! अब यह बच्चा दुबारा वही नहीं हो सकता, जो यह एक शब्द बोलने के पहले था। एक नई दुनिया में यात्रा शुरू हो गई। विकास का एक चरण हुआ।

न केवल हम ठहरे हुए ही नहीं हैं, हम प्रतिपल विकासमान हैं। और एक—एक व्यक्ति ही नहीं, पूरा जगत विकासमान है। यह जो विकास की अनंत धारा है, अगर है, तो ही जगत में ईश्वर है। क्योंकि ईश्वर का अर्थ है—टेल्हार्ड डि चार्डिन ने एक शब्द का प्रयोग किया है, दि ओमेगा प्याइंट। अंग्रेजी में अल्फा पहला शब्द है और ओमेगा अंतिम। अल्फा का अर्थ है, पहला; ओमेगा का अर्थ है, अंतिम। चार्डिन ने कहा है कि गॉड इज दि ओमेगा ज्वाइंट। ईश्वर जो है. वह अंतिम बिंदु है विकास का। विकास की अंतिम संभावना, विकास का जो अंतिम रूप है, विकास की जो हम कल्पना कर सकते हैं, वह ईश्वर है।

ईश्वर का अर्थ है कि यह जगत किसी एक सुनिश्चित बिंदु की तरफ यात्रा कर रहा है। कितना ही हम भटकते हों, और कितना ही मार्ग से च्युत हो जाते हों, और कितने ही गिरते हों, कितने ही खाई—खड्ड हों, लेकिन इन सारे खाई—खड्डों, इन सारी गिर जाने की संभावनाओं के बावजूद भी हम उठते हैं, बढ़ते हैं; और कोई दिशा है, जहां हम खिंचे चले जा रहे हैं। आदमी की चेतना विकसित होती चली जा रही है।

इसे हम ऐसा समझें। अस्तित्व, जो है हमारे चारों तरफ, उसका नाम है। अस्तित्व से भी महत्वपूर्ण और कीमती, और अस्तित्व में जो केंद्रीय है, वह है जीवन। लाइफ इज सेंट्रल इन एक्सिस्टेंस। क्यों?

एक पत्थर पड़ा है, पत्थर कितना ही खूबसूरत हो; और पास में एक फूल खिल रहा है, और फूल कितना ही बदसूरत हो, तो भी फूल पत्थर से कीमती है। क्यों? फूल विकासमान है, फूल जीवंत है, पत्थर मुर्दा है। फूल बढ़ रहा है। पत्थर की कोई संभावना नहीं है, फूल की संभावना है। पत्थर कल भी पत्थर रहेगा; फूल आज कली है, कल खिलेगा। फूल विकासमान है, डायनैमिक है।

अस्तित्व का जो केंद्र है, वह जीवन है। कहें हम ऐसा कि अस्तित्व जीवन के लिए है। एक्सिस्टेंस इज फार लाइफ। अस्तित्व का अंत है जीवन। अस्तित्व का लक्ष्य है जीवन। लेकिन जीवन भी किसी के लिए है। जीवन में अगर हम खोजें कि क्या है केंद्रीय, तो हम पाएंगे, चिंतन, मनन, विचार, मन।

जैसे अस्तित्व का केंद्र है जीवन, ऐसे जीवन का केंद्र है विचार। इसलिए एक फूल खिल रहा है, कितना ही खूबसूरत हो; और एक मोर नाच रहा है, कितनी ही उसकी नृत्य। हो; लेकिन एक छोटा—सा मूढ़ बच्चा भी उसके पास बैठा है तो यह बच्चा ज्यादा मूल्यवान है। यह बच्चा कुरूप हो, तो भी फूल से ज्यादा मूल्यवान है। और यह बच्चा बिलकुल मूढ़ हो, तो भी मोर से ज्यादा मूल्यवान है! क्यों? क्योंकि इस बच्चे के पास एक भीतरी संभावना है, जो फूल के पास और मोर के पास नहीं है। इस बच्चे के पास भीतर एक मन की संभावना है, कितनी ही छोटी, लेकिन एक और नई संभावना का द्वार खुल गया है। यह विकास के एक ऊपर के तल पर खड़ा हो गया है।

पत्थर पड़ा है। पत्थर से फूल एक कदम ऊपर है; विकासमान है। फूल से यह बच्चा एक कदम ऊपर है, क्योंकि यह विकासमान ही नहीं है, यह मनन की क्षमता से भी भरा है; यह सोच भी सकता है। माइंड इज सेंट्रल टु लाइफ। मन जीवन का केंद्र है। लेकिन मन कितना ही विकसित हो, एक आइंस्टीन बैठा हो, जिसके पास विकसित से विकसित मन है, जिसने जगत को कीमती सिद्धात दिए, शक्ति दी, विज्ञान दिया। लेकिन पास में ही एक साधारण—सा मनुष्य बैठा हो ध्यान में लीन, तो आइंस्टीन से ज्यादा कीमती है। एक साधारण—सा व्यक्ति ध्यान में लीन बैठा हो, तो आइंस्टीन से ज्यादा कीमती है।

क्यों? क्योंकि उसने और एक नया चरण पूरा किया। अब वह मन में ही नहीं जीता, मन को भी शात करने पर, विचार के भी खो जाने पर जो चेतना शेष रह जाती है, उसमें जीता है।

कांशसनेस इज सेंट्रल टु माइंड, मन का भी केंद्र चैतन्य है। चैतन्य शिखर है। अस्तित्व आधार है, चैतन्य शिखर है। लेकिन चैतन्य का भी प्रयोजन क्या? एक आदमी बैठा है शात, मन के विचार खो गए, अशांति खो गई, सब खो गया। शात है बिलकुल। चेतना से भरा है। लेकिन उसके पास ही एक दूसरा आदमी बैठा है, जो सिर्फ शात ही नहीं है—मात्र शाति निषेध है, नकार है, अभाव है—जो केवल शात ही नहीं है, जो परमात्मा के अनुभव से नाच उठा है।

गॉड इज सेंट्रल टु कांशसनेस। अकेले शात हो जाना निषेध है। मन तो खो गया, लेकिन नया कुछ अवतरित नहीं हुआ है। लेकिन चेतना जब परमात्म से भर जाए और चेतना जब दिव्यता से भर जाए तो अब एक नया रंग, एक नया आनंद, एक एक्सटैसी, एक वर्षा अमृत की हो गई है। यह शिखरों में भी शिखर है।

ये पांच—अस्तित्व, जीवन, मन, ध्यान, परमात्मा। और समझ में आने की बात होगी, आसान हो जाएगा—अगर परमात्मा पीक है, शिखर है हमारा सबका, हमारे अस्तित्व का, तो जो अंत में प्रकट होता है, वह पहले ही मौजूद होना चाहिए, अन्यथा प्रकट नहीं हो सकता। इसे थोड़ा समझना कठिन होगा।

लेकिन अंत में वही प्रकट होता है, जो प्रथम में मौजूद होता है, यह जीवन के शाश्वत नियमों में एक है। अगर फूल में से अंत में बीज निकलते हैं, बीज से अंत में बीज निकलते हैं, वृक्ष से अंत में बीज निकलते हैं, तो वे बीज खबर देते हैं कि प्रथम में भी बीज ही रहा होगा।

आपने या माली ने एक पौधा लगाया। यह माली मर जाएगा। इसके बेटे इस वृक्ष में आए हुए बीजों को बटोरेंगे। फिर भी वे कह सकते हैं कि बीज चूंकि अंतिम है, इसलिए बीज प्रथम में भी रहे होंगे। क्योंकि अंतिम वही होता है, जो प्रथम में मौजूद था। अंत में वही तो प्रकट होता है, जो पहले से छिपा था। अंत प्रथम की अभिव्यक्ति है।

तो जैसा चार्डिन ने शब्द उपयोग किया है, ओमेगा, अंत। बट ओमेगा इज आल्सो दि अल्फा। वह जो पहला है, वही अंतिम है। तो अगर ईश्वर जीवन की परम शिखर अनुभूति है, तो निश्चित ही वह प्रथम भी मौजूद होगी। इसलिए कृष्ण के इस सूत्र को अब हम् समझें, तो आसानी हो जाएगी।

कहते हैं, कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं। वे यह कह रहे हैं कि कल्प के अंत में सभी कुछ अंततः ईश्वरीय हो जाता है, एवरीथिंग बिकम्स डिवाइन। अंत में—अंत का अर्थ है, यह परम जो स्थिति होगी विकास होते—होते, यात्रा चलते—चलते, जो आखिरी मंदिर आएगा, उसमें पत्थर भी, प्राण भी, सभी कुछ मुझ में लीन हो जाता है। क्योंकि मैं ही प्रथम और मैं ही अंतिम हूं। कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं, अर्थात मेरी प्रकृति में लय हो जाते हैं। मेरा जो स्वभाव है, मेरा जो होना है, मेरा जो अस्तित्व है, अंत में सभी कुछ उसमें लीन हो जाता है।

इसलिए कल्प को दो तरह से देखें। उसको सिर्फ अंत ही न समझें, उसे लक्ष्य भी समझें। वह दोहरे अर्थों में अंत है। वह समाप्ति भी है, वह पूर्णता भी। और हर पूर्णता समाप्ति होती है। हर समाप्ति पूर्णता नहीं होती, लेकिन हर पूर्णता समाप्ति होती है।

जब सारा जीवन विकसित होकर प्रभु के पास पहुंच जाता है, तो जगत तिरोहित हो जाता है, सिर्फ परमात्म—चेतना शेष रह जाती है। यह एक कल्प का अंत है।

कृष्ण कहते हैं, और कल्प के प्रारंभ में मैं उनको फिर रचता हूं; फिर उनका निर्माण करता हूं।

ध्यान रहे, यह निर्माण भी विकास की यात्रा है। यह निर्माण भी फिर पुराने जैसा नहीं होता। यह निर्माण भी और एक अगला कदम है। यह फिर से निर्माण, फिर एक अगला कदम है।

अपनी त्रिगुणमयी प्रकृति को अंगीकार करके, स्वभाव के वश से परतंत्र हुए इस संपूर्ण भूत समुदाय को बारंबार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूं।

और जो भी रचना घटित होती है, कृष्ण कह रहे हैं, वह रचना प्रत्येक के कर्मानुसार घटित होती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जो करता है, वैसा ही हो जाता है। और प्रत्येक भूत समुदाय जो—जो करके गुजरता है, वही करना उसकी आत्मा बनती चली जाती है। और वही आत्मा उसके नए जन्म का रूप देती है। वही आत्मा, वही कर्मों का समुच्चित रूप उसके नए जन्म का ब्लू—प्रिंट है। न केवल व्यक्ति के लिए, वरन समस्त जगत के लिए भी।

यह समस्त जगत जब पुनः निर्मित होगा, तो इस जगत ने जो भी किया, जो भी पाया, जो भी अनुभव, जो भी यात्रा का फल, वह सब का सब पुनः बीज बन जाता है।

जब एक वृक्ष में बीज लगते हैं, तो क्या होता है? वृक्ष का सारा अनुभव, वृक्ष की सारी यात्रा, वृक्ष का सारा जीवन बीज में पुनः प्रविष्ट हो जाता है। सार में, इसेंस में सब बीज में छिप जाता है। फिर बीज जमीन में पड़ता है। फिर वृक्ष का जन्म होता है।

इस संबंध में एक बात और समझ लेनी जरूरी है कि भारतीय, हिंदू चिंतन जगत को एक वर्तुलाकार यात्रा मानता है। ईसाई चिंतन जगत की यात्रा को रेखाबद्ध यात्रा मानता है। ईसाई चिंतन का खयाल है कि समय एक रेखा में चलता है, सीधा, बिलकुल सीधा—लीनियर कंसेप्ट आफ टाइम—सीधा। लेकिन हिंदू चिंतन मानता है कि समय एक वर्तुल में चलता है, सर्कुलर। जैसे गाड़ी का चाक घूमता है, ऐसा समय घूमता है।

अब यह आश्चर्य की बात है कि हिंदू चिंतन की जो धारणा है, वही वैज्ञानिक है; क्योंकि इस जगत में कोई भी गति सीधी नहीं होती। तो समय की भी होने का कोई कारण नहीं है। इस जगत में समस्त गतियां सर्कुलर हैं। चाहे जमीन सूरज का चक्कर लगाती हो, और चाहे सूरज महासूर्यों का चक्कर लगाता हो, चाहे यह आकाश के इतने अनंत—अनंत तारे चक्कर लगाते हैं किसी धुरी का, चाहे एक परमाणु को हम तोड़े, तो परमाणु के जो इलेक्ट्रान और न्यूट्रान हैं, वे चक्कर लगाते हैं। जहां भी गति है, गति सर्कुलर है।

और अब तक जगत में ऐसी कोई गति नहीं मिली है, जो लीनियर हो, जो रेखाबद्ध हो। समय की गति तो देखी नहीं जा सकती, समय को पकड़ा नहीं जा सकता। अगर समय की गति पकड़कर हम नाप—जोख करते, तो तय हो जाता कि ईसाई जैसा सोचते हैं, वह सही है; या हिंदू जैसा सोचते हैं, वह सही है! लेकिन समय को तो पकड़ा नहीं जा सकता, समय को देखा नहीं जा सकता, फिर कैसे तय करें?

तो हिंदू का चिंतन गहरा मालूम पड़ता है। वह कहता है, तुम मुझे कोई एकाध भी ऐसी गति बता दो, जो पकड़ी जा सकती हो, जो सीधी हो, रेखाबद्ध हो। जितनी गतिया मनुष्य को पता हैं, सभी वर्तुल हैं। तो हिंदू कहता है, फिर जो गति हमें दिखाई नहीं पड़ती, ज्यादा उचित है कि हम मानें, वह भी वर्तुल होगी। कोई कारण नहीं है उसके रेखाबद्ध होने का। हिंदू मानता है कि गति मात्र वर्तुलाकार है।

बच्चा है, यह वर्तुल का पहला बिंदु है। इसलिए अक्सर के जो हैं, फिर बच्चों जैसे हो जाते हैं—जैसे। बच्चे नहीं हो जाते, बच्चों जैसे हो जाते हैं—निरीह, असहाय—पुन:। एक वर्तुल पूरा हुआ। हिंदू कहता है कि बच्चे और के के बीच सीधी रेखा नहीं है, वर्तुलाकार है। इसलिए पैंतीस साल के करीब आदमी वर्तुल के शिखर पर होता है, फिर गिरना शुरू हो जाता है। फिर वापस आने लगा। कब में पहुंचते—पहुंचते वह वहीं पहुंच जाता है, जहां अपने घर के झूले में था—वापस। और अगर हम गौर से देखें, तो दिखाई पड़ेगा कि का धीरे— धीरे, धीरे— धीरे बच्चे जैसा निरीह होता चला जाता है; बच्चे से भी ज्यादा निरीह। क्योंकि बच्चे पर तो कोई दया भी करता था। अब उस पर कोई दया करने वाला भी नहीं मिलता। क्योंकि लोग समझते हैं, वह का है, उस पर क्या दया करनी! इसलिए भारत ने जो खयाल दुनिया को दिया था कि बच्चे से भी ज्यादा चिंता वृद्ध की करना, उसके पीछे कारण था। उसके पीछे कारण था कि वृद्ध दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन वह बच्चे जैसा हो गया है। बच्चे को हम माफ कर देते हैं, अगर वह नाराज हो। के को हम माफ नहीं कर पाते, अगर वह नाराज हो।

लेकिन भारत की बहुत गहरी समझ थी, और वह यह थी कि बच्चे को तुम चाहे माफ मत भी करना, क्योंकि अभी बच्चे को कुछ पता भी नहीं है कि माफ किया जाता है कि नहीं किया जाता है, लेकिन के को तो बिलकुल माफ कर देना। माफ ही मत कर देना, मान लेना कि वही ठीक है, तुम गलत हो। क्योंकि उसे भी खयाल है कि वह का है, लेकिन उसकी प्रकृति उसे बिलकुल बच्चे जैसी

हो गई है। वर्तुल पूरा हो गया है। वह बच्चे ही जैसी नासमझिया करेगा, लेकिन समझदारी के खयाल के साथ करेगा।

इसलिए का कठिन हो जाता है। बच्चे जैसी ही नासमझिया करेगा। बच्चे जैसी ही जिद्द के आदमी में वापस लौट आती है। वैसा ही हठधर्मीपन आ जाता है। और एक और खतरा साथ हो गया होता है, क्योंकि उसे खयाल होता है कि वह बच्चा नहीं है। तो के निरंतर कहते हैं कि मैं कोई बच्चा नहीं हूं। उसे खयाल यह होता है कि वह का है; उसे सारे जीवन का अनुभव है। और उसे पता नहीं कि प्रकृति उसे वापस वर्तुल की पूर्णता की स्थिति पर ले आई है। क्योंकि मृत्यु वहीं होती है, जहां जन्म होता है। वह बिंदु बिलकुल एक है। इसलिए वापस प्रकृति उसको ला रही है। मगर अनुभव, मन, स्मृति, उसे कहती है, वह सब जानता है, और व्यवहार वह ऐसा करता है, जैसे कुछ न जानता हो।

तो उसका व्यवहार उसके ही बच्चों को अखरने लगता है। उसके बच्चों को लगता है कि काम तो ऐसे करते हो, जैसे कुछ न जानते हो। और बातें ऐसी करते हो, जैसे सब जानते हो! इसलिए बच्चों को भी सहना मुश्किल हो जाता है।

लेकिन भारत की समझ थी कि बूढ़े के साथ ऐसे ही व्यवहार ' करना जैसे वह बच्चा है। उसकी हठधर्मी सही है। वह गलत हो, इससे कोई चिंता मत करना। वह ठीक हो कि गलत हो, हमेशा उसे ठीक मान लेना। वह गलत भी करे, तो भी उसके चरणों में सिर रख देना। वह वापस लौटता हुआ वर्तुल है। बच्चे से ज्यादा दयनीय है। बच्चे में तो अभी शक्ति जगेगी। अभी तो बच्चा शक्ति का स्रोत है। का तो चुक गया। उसकी शक्ति खो गई। इसलिए पूरब ने बूढ़े को जो आदर दिया है, उसके पीछे बड़ी सूझ है, खयाल है, कारण है। सारी गतियां वहीं शुरू होती हैं, वहीं अंत होती हैं।

कृष्ण कहते हैं, सब मुझमें लीन हो जाता है और फिर मुझसे पुन: रचा जाता है। यह रचना जगत के कर्मानुसार, भूतों के कर्मानुसार घटित होती है।

इस संबंध में भी पूर्वीय चिंतन अति वैज्ञानिक है। क्योंकि पूरब मानता है, अकारण कुछ भी घटित नहीं होता। जो भी होगा, वह कारण से बंधा होगा। अगर इस पूरे जगत को हम एक व्यक्ति मान लें, तो इस पूरे जगत के एक कल्प का जो कर्म होगा, वही कर्म इसके नए कल्प की शुरुआत होगी। यह विशाल है बात, और मस्तिष्क पकड़ नहीं पाएगा। लेकिन बूंद को भी समझ लें, तो सागर समझ में आ जाता है।

आप आज जो भी हैं, वह आपके समस्त कलों का जोड़ है। और कल आप जो होंगे, उसमें आज और जुड़ जाएगा। आप जो बोलेंगे, जो सोचेंगे, जो होंगे, जो व्यवहार करेंगे, जो करेंगे और जो नहीं करेंगे, वह भी—वह आपके समस्त सार से निकलेगा। आपके पूरे जीवन के कर्मों के सार से निकलेगा। एक अर्थ में यह सेल्फ प्रपोगेटिंग, स्वचालित व्यवस्था है। इससे अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं है। अगर हम इस सारी बात को, पूरे जगत को एक व्यक्ति मान ले. तो पूरे जगत में भी ऐसा ही घटित होगा।

हे अर्जुन, उन कर्मों में आसक्तिरहित और उदासीन के सदृश स्थित रहते हुए वे कर्म मुझे नहीं बांधते हैं।

यह अंतिम सूत्र खयाल में ले लेने जैसा है। क्योंकि यह सवाल उठ सकता है कि अगर व्यक्ति कर्म करता है, तो अपने कर्मों से बंध जाता है, और अगर परमात्मा भी जगत को रचता है, बनाता है, मिटाता है, सम्हालता है, तो क्या ये कर्म उसे नहीं बांधते होंगे? क्या ये कर्म

उसका बंधन न बन जाते होंगे? क्या ये कर्म फिर उसके लिए भी कारागृह निर्माण न करते होंगे? अगर व्यक्ति बंध जाता है, तो होगा वह महाव्यक्ति, लेकिन उसके महाकर्म भी तो उसे बांधने वाले सिद्ध होंगे।

इसलिए क्या ने कहा है कि यह सब करता हूं, अनासक्त। किस कर्म में व्यक्ति अनासक्त रह सकता है? सिर्फ व्यक्ति खेल में अनासक्त रह सकता है, बाकी सभी कर्मों में आसक्त हो जाता है। सिर्फ खेल में अनासक्त रह सकता है। हम तो खेल में भी नहीं रह सकते हैं। क्योंकि हमारे लिए खेल भी कर्म बन जाता है। अगर दो आदमियों को ताश खेलते देखें, तो उनके माथे पर ऐसी सिकुड़ने पड़ी होती हैं, जैसे जीवन—मरण का सवाल है। दो आदमियों को शतरंज खेलते देखें, तो जैसे इसी खेल पर सब कुछ निर्भर है। इस जगत का पूरा भविष्य, इनके इस खेल पर निर्भर है! यह जो शतरंज के सिपाहियों को यहा से वहा उठाकर रख रहे हैं, सारे प्राण उनके खिंचे हैं! उनका ब्लड प्रेशर नापे, बढ़ जाएगा। उनकी छाती की धड़कन बढ़ जाएगी। उनका एक घोड़ा मरेगा, कि एक हाथी मरेगा, तो न मालूम कितनी पीड़ा और कितना क्या हो जाएगा!

इस शतरंज के खेल पर बैठा हुआ आदमी भी खेल में नहीं है। यह भी कर्म हो गया! और अगर हार जाएगा, तो रातभर सो नहीं सकेगा। रातभर शतरंज चलती रहेगी। फिर रखता रहेगा, सोचता रहेगा। शतरंज के जो बड़े खिलाड़ी हैं, वे कहते हैं कि शतरंज में वही जीत सकता है, जो पांचवीं चाल तक को पहले से सोच ले—पांचवीं चाल! अभी मैं यह चलूंगा, यह उत्तर आएगा; तब मैं यह चलूंगा, तब यह उत्तर आएगा। ऐसे पांच को जो पहले से सोच ले, वही शतरंज में कुशल हो सकता है।

निश्चित ही है, कुशल शतरंज में होगा कि नहीं होगा, एक बात पक्की है, पागल हो जाएगा।

तो मैंने सुना है कि इजिप्त का एक सम्राट शतरंज खेलते—खेलते पागल हो गया। बड़ा खिलाड़ी था। सब इलाज किए गए, वह ठीक न हो सका। तो फिर मनसविदों ने कहा कि अब एक ही उपाय है कि इससे भी बड़ा शतरंज का खिलाड़ी कोई मिले, तो शायद यह ठीक हो जाए। बहुत खोज की गई, आखिर एक आदमी मिल गया। उसने मना किया। बहुत प्रलोभन दिए गए प्रलोभन में आकर वह चला आया। क्योंकि पागल के साथ वह शतरंज खेलने को तैयार नहीं होना चाहता था। ऐसे तो शतरंज का खेल ही पागल करने वाला है, फिर पागल खिलाड़ी भी सामने हो! तो वह खेलना नहीं चाहता था। लेकिन सम्राट का मामला था, बड़े प्रलोभन थे। लाखों रुपए का कहा गया, आ गया।

कहते हैं, सालभर यह खेल चला। सम्राट ठीक हो गया; लेकिन वह जो खेलने आया था, वह पागल हो गया! वह गरीब आदमी था। फिर उससे बड़ा खिलाड़ी खोजना भी मुश्किल था। और उतना वह पुरस्कार भी नहीं दे सकता था। वह पागल ही मरा।

शतरंज भी आदमी खेलता है, तो भारी तनाव! और अगर तनाव न हो, दो आदमी ताश खेलते हों, तनाव ज्यादा न रहा हो, तो खीसे से कुछ निकालकर दाव पर लगा लेते हैं। क्योंकि ये रुपए जो हैं, ये तत्काल किसी भी खेल को काम में परिवर्तित कर देते हैं। तो थोड़ा आदमी दाव लगा लेता है। थोड़ा ही सही, तो फिर खेल में रस आ जाता है।

रस क्यों आ जाता है खेल में? खेल में रस ही नहीं है आपको, जब तक कि कर्म न बन जाए। जब तक आसक्ति न बने, तब तक रस नहीं है। रुपए के साथ जुड़ते ही आसक्ति जुड़ जाती है। रुपया सेतु का काम कर जाता है। अनासक्त कर्म तो एक ही हो सकता है, जैसे छोटे बच्चे खेलते हैं।

बुद्ध ने कहा है कि गुजरता था एक नदी के किनारे से। बच्चों को रेत के घर बनाते देखा, रुककर खड़ा हो गया। इसलिए खड़ा हो गया कि बच्चे भी रेत के घर बनाते हैं और के भी। थोड़ा इनके खेल को देख लूं। रेत के ही घर थे। हवा का झोंका आता, कोई घर खिसक जाता। किसी बच्चे का धक्का लग जाता, किसी का घर गिर जाता। किसी का पैर पड़ जाता, किसी का बना—बनाया महल जमीन पर हो जाता। बच्चे लड़ते, गाली देते, एक—दूसरे को मारते। किसी ने किसी का घर गिरा दिया हो, तो झगड़ा तो सुनिश्चित है। सारे झगड़े ही घरों के हैं। किसी का धक्का लग गया, किसी का घर गिर गया। किसी ने बड़ी मुश्किल से तो आकाश तक पहुंचाने की कोशिश की थी; और किसी ने चोट मार दी, और सब जमीन पर गिर गया!

तो बुद्ध खड़े होकर देखते रहे। बच्चे एक—दूसरे से लड़ते रहे। झगड़ा होता रहा। फिर सांझ होने लगी। फिर सूरज ढलने लगा। फिर किसी ने नदी के किनारे आकर जोर से आवाज लगाई कि तुम्हारी माताएं तुम्हारी घर राह देख रही हैं; अब घर जाओ! जैसे ही बच्चों ने यह सुना, अपने ही बनाए हुए घरों पर कूद—फांद करके, उनको गिराकर, वे घर की तरफ चल पड़े।

बुद्ध खड़े थे, देखते रहे। उन्होंने कहा, जिस दिन हम अपने सारे जीवन को रेत के खेल जैसा समझ लें, और जिस दिन खयाल हमें आ जाए कि अब यह खेल समाप्त हुआ, पुकार आ गई वहां से असली घर की, अब उस तरफ चलें, तो उस दिन हम भी इनको गिराकर इसी तरह चले जाएंगे। अभी लड़ रहे थे कि मेरे घर को गिरा दिया, अब खुद ही गिराकर भाग गए हैं!

बच्चे जैसे रेत के घर बनाकर खेल खेल रहे हों, वैसे ही जब कोई व्यक्ति जीवन को खेल बना ले, तो अनासक्त हो जाता है। परमात्मा के लिए जीवन एक खेल है।

ध्यान रहे, इसलिए हमने जो शब्द प्रयोग किया है, वह है, लीला। उसका अर्थ है, प्ले।

पृथ्वी पर किसी दूसरे धर्म ने जगत के निर्माण को लीला नहीं कहा है। ईसाई ईश्वर अति गंभीर है। इसलिए छः दिन में उसने इतना कठिन काम किया कि सातवें दिन विश्राम किया। ईसाई ईश्वर की धारणा है कि संडे जो है, वह विश्राम का दिन है। इसलिए हाली—डे है, इसलिए छुट्टी है। क्योंकि छः दिन में ईश्वर ने दुनिया बनाई, फिर वह इतना थक गया, इतना परेशान हो गया कि सातवें दिन उसने विश्राम किया। वह सातवें दिन इसीलिए ईसाई अभी भी काम करना पसंद नहीं करता। कि जब भगवान तक सातवें दिन काम नहीं करता, तो हमें तो करना ही नहीं चाहिए!

लेकिन ईसाई जो धारणा है ईश्वर की, वह बहुत सीरियस है, गंभीर है। तभी तो थक गया। और ये कृष्ण कभी नहीं कहेंगे कि मैं थकता हूं। ये कहते हैं, कल्पों के बाद भी मैं हूं। फिर सब मुझ में लीन हो जाते हैं, मैं फिर रचता हूं। ये फिर मुझ में लीन हो जाते हैं, मैं फिर रचता हूं—एड इनफिनिटम। इसका कोई हिसाब नहीं है। ये थकते ही नहीं। इन्होंने कोई हाली—डे नहीं मनाया। इसका कुछ कारण होगा। ये बहुत गंभीर नहीं मालूम पड़ते, नहीं तो थक जाते।

हिंदू धारणा ईश्वर की, गंभीर धारणा नहीं है। बहुत प्रफुल्लित, बहुत खेल जैसी धारणा है। इसलिए हमने जगत को लीला कहा है। लीला अनूठा शब्द है। दुनिया की किसी भाषा में इसका अनुवाद 'नहीं किया जा सकता। क्योंकि अगर हम कहें प्ले, तो वह खेल का अनुवाद है। लीला परमात्मा के खेल का नाम है। और दुनिया में किसी धर्म ने चूंकि परमात्मा को कभी खेल के रूप में देखा नहीं, इसलिए लीला जैसा किसी भाषा में कोई शब्द नहीं है। लीला अनूठे रूप से भारतीय शब्द है। इसका कोई उपाय नहीं है। अगर हमें करना भी हो कोशिश, तो उसको डिवाइन प्ले। लेकिन वह शब्द नहीं बनते।

लीला काफी है। उसमें ईश्वर को जोड़ना नहीं पड़ता। लीला शब्द पर्याप्त है। उसका मतलब यह है कि यह सारा का सारा जो सृजन है, यह कोई गंभीर कृत्य नहीं है। यह एक आनंद की अभिव्यक्ति है। यह सारा जो विकास है, यह कोई सिर—माथे पर सलवटें पड़ी हों ईश्वर के, ऐसा नहीं है। यह एक नाचता हुआ, यह एक मौज से चलता हुआ प्रवाह है। यह भारी चिंता नहीं है, यह मौज है।

इसे थोड़ा खयाल में ले लें, क्योंकि यह बहुत उपयोग का है। और जिस दिन कोई व्यक्ति अपने जीवन को भी लीला बना लेता है, उसी दिन मुक्त हो जाता है, उसी दिन वह ईश्वरीय हो जाता है, उसी दिन वह ईश्वर हो जाता है।

जब तक आपका जीवन काम है, तब तक आप एक गुलाम हैं, अपनी ही चिंताओं के, अपनी ही गंभीरता के। अपनी ही गंभीरता के पत्थरों के नीचे दबे जा रहे हैं। ये पहाड़ जो आपके सिर पर हैं, आपकी ही गंभीरता के हैं। उतार दें इन पहाड़ों को। जीवन को एक खेल समझें, एक आनंद, तो फिर सिर पर कोई बोझ नहीं है। फिर आप जीवन से नाचते हुए गुजर सकते हैं। फिर आपके होंठ पर भी बांसुरी हो सकती है। फिर आपके प्राण में भी गीत हो सकता है। और जिस दिन आपके_ प्राण में भी यह लीला का भाव उदय होगा, उस दिन आप इस सूत्र को समझ पाएंगे कि यह पूरा का पूरा जगत उस परमात्मा के लिए भी लीला है।

और ध्यान रहे यह जगत इतना सुंदर इसीलिए है कि उस परमात्मा के लिए लीला है। यह इतना सुंदर नहीं हो सकता, अगर यह उसके लिए काम हो। सभी काम कुरूप हो जाते हैं। सभी काम कुरूप हो जाते हैं।

एक नर्स एक बच्चे की सेवा करती है, तब वह काम होता है, और एक मां जब अपने बच्चे को खिलाती है, तब वह खेल होता है, वह लीला होती है, काम नहीं होता। वह उसका आनंद है। इसलिए जब एक मां अपने बच्चे के साथ खेल रही होती है, तब एक अनूठा सौंदर्य प्रकट होता है। और जब एक नर्स भी उस बच्चे के साथ खेल रही होती है, तब एक कुरूपता प्रकट होती है। उस कुरूपता का कारण नर्स नहीं है, बच्चा नहीं है, उस कुरूपता का कारण काम है। जिस जगह भी काम आ जाएगा, वहीं चित्त उदास हो जाता है। और जहां खेल आ जाता है, वहीं चित्त नृत्य से भर जाता है।

लेकिन अगर हम अपने महात्माओं की तरफ देखें, तो हमें शक होगा। इनको देखें अगर हम, तो हमें लगेगा, ये तो भारी उदास हैं! अगर इन्हीं महात्माओं की तरफ से परमात्मा की तरफ जाना हो, तो हमें मानना चाहिए, परमात्मा तो सतत रो ही रहा होगा! महात्मा ही अगर उसका दरवाजा हैं, तो ये महात्मा तो ऐसे मरे हुए बैठे हैं कि जीवन की कोई पुलक इनमें मालूम नहीं होती। ये तो अपने भीतर जैसे मरघट लिए हुए हैं, ताबूत हैं, कब्रें हैं।

जीसस ने इस शब्द का उपयोग किया है। जीसस ने कहा है कि ये धर्मगुरु! तुम सफेद ताबूत हो। तुम पुती—पुताई सफेद कब्रें हो। तुममें जो स्वच्छता दिखाई पड़ रही है, वह केवल ऊपर की पुताई है, भीतर तुम सड़ी हुई लाशें हो।

महात्मा का उदास होना जरूरी है। महात्मा हंसता हुआ मिले, तो भक्त चले जाएंगे। क्योंकि महात्मा में हम प्रफुल्लता देखने को राजी नहीं हैं। हमने धर्म को एक गंभीर कृत्य बना लिया है। हमने धर्म को इतना गंभीर कृत्य बना लिया है कि उसमें ईश्वरीय तत्व तो विलीन ही हो जाएगा।

इसलिए आज अगर कृष्ण जैसा आदमी हमारे बीच हो, तो आप यह मत सोचना कि आप कृष्ण के पैर छू सकोगे। आप नहीं छू सकोगे। क्योंकि अगर यह कृष्ण चौरस्ते पर खड़े होकर चौपाटी पर बांसुरी बजाता मिल जाए, तो आप पुलिस में खबर करोगे! आप कहोगे, यह हमारा कृष्ण नहीं है। यह क्या बात है! कृष्ण और बांसुरी बजा रहे हैं? वह तो आप किताब में पढ़ लेते हो, तो टाल जाते हो। यू कैन टालरेट। अगर चौपाटी पर बजाए, तो बहुत मुश्किल हो जाएगी।

क्योंकि हम सबकी आदत मुर्दा महात्माओं को देखने की हो गई है। जितना मरा हुआ आदमी हो, उतना बड़ा महात्मा मालूम होता है। जीवन की जरा—सी पुलक दिखाई न पड़े। और क्षुद्रतम बातों को भी वह गंभीरता दे देता है। और कृष्ण जैसे व्यक्ति विराटतम बातों को भी गैर—गंभीर आनंद दे देते हैं। क्षुद्रतम बातों को! वह पूछेगा कि यह खाना कितनी देर का बना है? यह ब्राह्मण ने बनाया है कि नहीं बनाया? इसको किसी स्त्री ने तो नहीं छू दिया?

यह महात्मा है! यह खाने तक को प्रफुल्लता से नहीं ले सकता। यह खाने में भी गणित रखता है! यह पूछता है कि घी कितने पहर का है? इतने पहर से ज्यादा हो गया, तो फिर घी नहीं ले सकता! यह दूध गाय का है कि नहीं?

यह जो बुद्धि है, यह जीवन को लीला नहीं बना सकती। यह जीवन को अति गंभीर बना देती है। अगर एक स्त्री बैठी हो, उठ जाए, तो यह महात्मा पूछेगा, स्त्री को उठे हुए इस जमीन से कितनी देर हुई? क्योंकि उसके हिसाब हैं, गणित हैं, कि स्त्री जब यहां से उठ जाए, तब इतनी देर तक भी उसका प्रभाव उस जमीन के टुकड़े पर रहता है। तो तब तक महात्मा वहा नहीं बैठेगा। अगर आप रुपया महात्मा को देंगे, तो वह अपने हाथ में नहीं लेगा; छोड़ भी नहीं सकता। वह एक शिष्य को साथ में रखेगा, उसको दिलवाएगा! क्योंकि रुपया लेना पाप है। लेकिन बिना रुपए लिए भी नहीं चल सकता, तो यह पाप दूसरे से करवाता रहेगा!

ये जो गुरु—गंभीर लोग हैं, हिंदू धर्म के प्राण इन्होंने ले डाले। हिंदू धर्म जमीन पर अकेला हंसता हुआ धर्म था और जिसमें हंसने की प्रगाढ़ क्षमता थी। उदासी जिसका लक्ष्य न था, आनंद जिसका गंतव्य था। लेकिन मूल सूत्र खो जाते हैं। और अक्सर ऐसा होता है कि हम वही करने लगते हैं, जो हम करना चाहते हैं।

जीवन को लीला की दृष्टि से देखा जा सके, तो कृष्ण का यह सूत्र आपको स्पष्ट हो जाएगा कि कैसे कोई जीवन—शक्ति इतने विराट जाल को रचते हुए दूर खड़े रहकर देख सकती है, अनासक्त!

इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह मुझे बांधता नहीं है। क्योंकि बांधती है आसक्ति, कर्म नहीं। और अगर कर्म अनासक्त हो, तो बंधन नहीं होता है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
विराट की अभीप्सा—(अध्याय—9)—प्रवचन—चौथा

सूत्र:

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयतेसचाराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्धइयीश्वर्त्से।। 10 ।।।
अवजानीन्त मां मूढ़ा मानुषी तनुमख्सिम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।। 11 ।।

मोघाशा मोघकर्माणो मोख्ताना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मौहिनौं श्रिताः ।। 12 ।।
और हे अर्जुन मुझ अधिष्ठता की उपस्थिति मात्र से यह मेरी प्रकृति अर्थात माया चराचर— सहित सर्व जगत को रचती है और इस ऊपर कहे हुए हेतु से ही यह जगत

बनता—बिखरता रहता है।

ऐसा होने पर भी संपूर्ण भूतों के महान ईश्वर रूप मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते है। जो कि वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान वाले अज्ञानीजन राक्षसों के और असुरों के जैसे मोहित करने वाली प्रकृति अर्थात

तामसी स्वभाव को ही धारण किए हुए हैं।

इस सूत्र में बहुत—सी बातें कही गई हैं महत्वपूर्ण, विचार के लिए भी, साधना के लिए भी, गहरी और ऊंची भी। पहली बात। परमात्मा जगत का सृजन करता हो, तो कैसे करता होगा? क्या वैसे ही, जैसे कुम्हार अपने चके पर बर्तन रचता है? या वैसे, जैसे मूर्तिकार अपनी छेनी से पत्थर को काटता और मूर्ति को रचता है? या वैसे ,. जैसे एक कवि शब्दों की संयोजना करता और गीत को रचता है? परमात्मा का सृजन किस विधि का है?

इस सूत्र में एक बहुत गहरी बात कही गई है। और जो लोग विज्ञान को थोड़ा समझते हैं, उन्हें समझनी बहुत आसान हो जाएगी। क्योंकि विज्ञान मानता है कि कुछ ऐसा सृजन भी है, जब करने वाला कुछ भी नहीं करता, केवल उसकी मौजूदगी ही सृजन हो जाती है। वितान उसे कैटेलिटिक एजेंट कहता है। उसके बिना घटना नहीं घटती; उसकी मौजूदगी से ही घटना घट जाती है, वह स्वयं कुछ करता नहीं।

जैसे अगर हाइड्रोजन और आक्सीजन को हम मिलाएं, तो पानी नहीं बनेगा, यद्यपि पानी को हम तोड़े, तो हाइड्रोजन और आक्सीजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता है। अगर हम पानी को तोड़े, तो हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलते हैं, लेकिन हाइड्रोजन और आक्सीजन को साथ रख दें, तो पानी नहीं बनता। यह बड़ी अजीब बात है! क्योंकि पानी को तोड्ने पर हाइड्रोजन और आक्सीजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता, इसलिए स्वभावत: हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से पानी बन जाना चाहिए।

लेकिन एक चीज खो रही है, एक मिसिंग लिंक है। हाइड्रोजन और आक्सीजन तब तक नहीं मिलते, जब तक बिजली मौजूद न हो। अगर विद्‌युत मौजूद हो, तो आक्सीजन और हाइड्रोजन मिल जाते हैं और पानी बन जाता है।

और मजे की बात यह है कि बिजली मौजूदगी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करती, वह पानी में सम्मिलित नहीं होती। अगर सम्मिलित होती, तो जब हम पानी को तोड़ते, तो बिजली भी मिलनी चाहिए। लेकिन पानी को तोड्ने पर हाइड्रोजन और आक्सीजन ही मिलते हैं। अगर बिजली मौजूद न हो, तो भी घटना नहीं घटती। बिजली मौजूद हो, तो बिजली प्रवेश नहीं करती, लेकिन उसकी मौजूदगी से ही घटना घट जाती है। जस्ट प्रेजेंस। मौजूदगी प्रविष्ट हो जाती है, बिजली प्रविष्ट नहीं होती।

इसे थोड़ा समझ लें। और मौजूदगी को तो तोड़कर पाया नहीं जा सकता। जब हम पानी को तोड़ेंगे, तो बिजली मौजूद थी पानी बनते वक्त, उसकी मौजूदगी को हम पानी से नहीं निकाल सकते हैं। परमात्मा की मौजूदगी से जगत रचता है, कृष्ण यह कह रहे हैं। वह यह कह रहे हैं कि मैं कैटेलिटिक एजेंट हूं। मैं बनाता नहीं, मेरा होना ही सृजन का सूत्रपात है।

यह बहुत गहरी बात है। और होना भी यही चाहिए। क्योंकि परमात्मा को भी अगर घड़े की तरह निर्माण करना पडे जगत को, तो कुम्हार से बड़ी उसकी हैसियत नहीं है फिर। अगर उसे भी कार्य में संलग्न होना पड़े, तो उसका मतलब यह हुआ कि जिस पर वह काम कर रहा है, उस पर उसकी पूरी मालकियत नहीं है। पूरी मालकियत का मतलब यह होता है कि इशारा भी न करना पड़े और काम हो जाए। मौजूदगी काफी होनी चाहिए।

अगर पिता अपने घर वापस लौटे और बेटे की तरफ आंख से इशारा करना पड़े कि मेरे पैर छु मैं तेरा पिता हूं मेरा आदर कर; तो वह पिता नहीं रहा। उसकी मौजूदगी ही आदर बन जानी चाहिए। वह मौजूद है, तो आदर घट जाना चाहिए।

एक शिक्षक अपने वर्ग में आए और 'ठोंककर टेबल पर विद्यार्थियों को शांत करे, तो उसका अर्थ यह है कि वह शिक्षक है ही नहीं। उसका कमरे में प्रवेश ही शाति हो जानी चाहिए। उसकी मौजूदगी काफी होनी चाहिए।

शिक्षक आते हैं, वे मुझे कहते हैं, गुरुओं का कोई सम्मान नहीं रहा। तो मैं उनसे पूछता हूं जब भी कोई गुरु होता है, तो सम्मान जरूर होता है। गुरु ही न रहे होंगे। अगर तुम कहते हो, गुरुओं का कोई सम्मान न रहा, तो मुझे शक होता है कि गुरु ही न रहे होंगे। क्योंकि गुरु का मतलब ही यह होता है कि वह मौजूद है, तो सम्मान की घटना घटती ही है, उसे घटाना नहीं पड़ता 1 उसके लिए आयोजन नहीं करना पड़ता। गुरु की परिभाषा ही यह होनी चाहिए कि जिसकी मौजूदगी में आदर उत्पन्न हो। अगर गुरु को भी आदर उत्पन्न करना पड़े, तो वह आदमी गुरु तो नहीं है, और कुछ भी होगा। क्योंकि जो उत्पन्न करना पड़े, वह कृत्रिम हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, मेरी मौजूदगी में रचना का सिलसिला शुरू होता है। मैं बनाता भी नहीं, यह मेरा कृत्य नहीं है, यह मेरी उपस्थिति मात्र, मेरे मौजूद होते ही जीवन चल पड़ता है।

सुबह सूरज निकलता है, फूल खिल जाते हैं। ऐसा सूरज एक—एक फूल पर आकर फूल को खिलाता नहीं है। बस, उसकी मौजूदगी! पक्षी गीत गाने लगते हैं। अब सूरज एक—एक पक्षी की गर्दन पकड़कर गीत गवाता नहीं है। बस, उसकी मौजूदगी! नींद टूट जाती है, आंखें खुल जाती हैं, जागरण फैल जाता है। सूरज किसी के द्वार पर आकर खटखटाता नहीं, कि उठो! बस, उसकी मौजूदगी।

लेकिन इससे भी गहरी बात है, कैटेलिटिक एजेंट। सूरज की तो किरणें आती हैं। नहीं दरवाजा खटखटाती होंगी, फिर भी किसी सूक्ष्म तल पर दरवाजा खटखटाती हैं। और नहीं एक—एक कली को सूरज पकड़कर खोलता है, फिर भी उसकी किरणें आकर एक—एक कली को सहलाती हैं। और नहीं पक्षियों की गर्दन दबाता है कि गीत गाओ, फिर भी उसकी किरणें कोई गहरा संस्पर्श देती हैं और पक्षी के कंठ से गीत फूट पड़ता है। नहीं, आपको झकझोरता नहीं है कि उठो! लेकिन फिर भी किसी गहरे रासायनिक तल पर उसकी किरणों की मौजूदगी हवा में आक्सीजन को बढ़ा देती है, और आक्सीजन का बढ़ जाना आपके भीतर एक झकझोर ले आता है और आपको उठ जाना पड़ता है।

कैटेलिटिक एजेंट और भी सूक्ष्म बात है। इतना भी नहीं करता। बस, सिर्फ मौजूद होता है। एंड दि प्रेजेंस वर्क्स, सिर्फ मौजूदगी ही काम करती है;. रासायनिक प्रवेश नहीं होता। इसलिए हम पीछे, जो निर्माण है अगर उसे तोड़े, तो जिसकी मौजूदगी में हुआ था, उसे हम कभी भी न खोज पाएंगे।

इसलिए जगत को हम कितना ही खोजें, हम परमात्मा को न खोज पाएंगे। इसलिए विज्ञान ठीक कहता है कि हम बहुत खोजते हैं, लेकिन परमात्मा मिलता नहीं। और जब तक न मिले, तब तक विज्ञान माने भी कैसे! उसकी बात भी ठीक है। क्योंकि हम हर चीज को खोज लेते हैं, परमात्मा कहीं मिलता नहीं। और अगर यह उसका सृजन है, तो कहीं न कहीं उसकी सृष्टि में उसको मिलना ही चाहिए। लेकिन अगर कृष्ण का यह सूत्र याद रखा जाए, तो विज्ञान अधैर्य नहीं दिखाएगा। क्योंकि विज्ञान भलीभांति जानता है कि कैटेलिटिक एजेंट भी होते हैं, और उनकी मौजूदगी से घटनाएं घटती हैं। फिर घटी हुए घटना को तोड्ने से कैटेलिटिक एजेंट को नहीं पाया जा सकता।

तो क्रिएटर की तरह नहीं, स्रष्टा की तरह नहीं, उपस्थिति मात्र काम करती हो, ऐसे कैटेलिटिक एजेंट की तरह मैं इस जगत को निर्मित करता हूं।

यदि यह ठीक है, तो विज्ञान उसी दिन परमात्मा को अनुभव कर पाएगा, जिस दिन विज्ञान सृजन की प्रक्रिया में मौजूद हो, सृष्टि से उसे कभी खोजा नहीं जा सकता।

ध्यान रखें, यह और थोड़ा गहरे जाने की जरूरत पड़ेगी। सृष्टि का अर्थ है, जो बन गई चीज। तो बन गई चीज से उसे कभी नहीं खोजा जा सकता, क्योंकि उसकी उपस्थिति से बनी है। उसके हाथ की कोई छाप नहीं है उस पर। उसके हस्ताक्षर नहीं हैं। तो हम कितने ही डिटेक्टिब्स लगाएं, और हम कितने ही जासूस लगाएं, कहीं कोई छाप उसकी मिलती नहीं है। फूल खिलता है, उसकी कोई छाप मिलती नहीं। पहाड़ बनते हैं, मिट जाते हैं, उसकी कोई छाप मिलती नहीं। चांद—तारे जन्मते हैं, खो जाते हैं, उसकी कोई छाप मिलती नहीं। जो चीज बन गई है, उसमें उसकी छाप नहीं मिलेगी।

इसलिए विज्ञान असमर्थ मालूम पड़ता है। वह करीब—करीब से गुजर जाता है और परमात्मा की कोई झलक नहीं मिलती। और जब तक स्पष्ट प्रमाण न मिलें, तब तक विज्ञान की अपनी मजबूरी है, वह स्वीकार नहीं कर सकता।

परमात्मा की झलक किसको मिलती है? परमात्मा की झलक उसको मिलती है, जो सृष्टि में खोजने नहीं जाता, बल्कि सृजन की प्रक्रिया में मौजूद होता है।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि कभी किसी कवि को झलक मिल जाती है उसकी; वैज्ञानिक को नहीं मिल पाती। कभी किसी मूर्तिकार को भी उसकी झलक मिल जाती है। कभी किसी नृत्यकार को भी उसकी झलक मिल जाती है। ध्यानी को सदा उसकी झलक मिलती रही है। ये सारे के सारे लोग सृजन की प्रक्रिया में मौजूद होते हैं।

इसे हम ऐसा समझें। रवींद्रनाथ को जब भी कोई गीत जन्मता, तो वे खाना—पीना बंद कर देते थे—बंद हो जाता था। खा—पी नहीं सकते थे। द्वार—दरवाजे बंद कर लेते थे। मिलना—जुलना बंद कर देते थे—बंद हो जाता था। मिल नहीं सकते थे। होंठ बंध जाते थे। बोलने की असमर्थता हो जाती थी। द्वार—दरवाजे बंद करके, भूखे। वे सो नहीं सकते थे। जब भी कोई गीत उनमें जन्म लेता था, तो जब तक वह पूरा जन्म न ले ले, तब तक वे और कुछ भी नहीं कर सकते थे। मनाही थी कि जब रवींद्रनाथ अपने कमरे में बंद होकर कुछ लिखते हों, तो कोई आस—पास न आए।

कभी ऐसा भी हो जाता था—क्योंकि सृजन के क्षणों के लिए कोई प्रेडिक्यान, कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती—रवींद्रनाथ बैठे हैं, मित्र पास बैठे हैं, या शिष्य पास बैठे हैं, और अचानक उनकी आंखें बंद हो गईं, और गीत का जन्म शुरू हो गया। तो लोगों को खबर थी कि

चुपचाप हट जाना है। वहा फिर जरा भी बाधा नहीं डालनी है। इतना भी नहीं कहना है कि अब मैं जाऊं! क्योंकि इतना भी उस भीतर हो रही रचना की प्रक्रिया में बाधा बन जाएगी।

गुरदयाल मलिक ने लिखा है कि मैं नया—नया गया था। नियम तो मुझे पता था, लेकिन मन में एक अभिलाषा भी थी कि जब सच में ही गीत जन्मता है, तब मैं भी छिपकर देख लूं कि रवींद्रनाथ को होता क्या है!

पांच—सात मित्र बैठकर गपशप करते थे और रवींद्रनाथ अपने हाथ से चाय बनाकर उनको पिला रहे थे। अचानक उनके हाथ से प्याली छूट गई। सब लोग चुपचाप वहा से अधूरी चाय पीए उठ गए। लोगों ने मलिक को भी इशारा किया। मन तो नहीं था उठने का, लोग नहीं माने तो उन्हें भी उठ जाना पड़ा।

लोग तो चले गए, मलिक बाहर दीवाल के पास छिपकर बैठ गए। रवींद्रनाथ की आंखों से आंसू बहने लगे, और उनके शरीर में एक पुलकन और एक सिहरन का दौर शुरू हो गया। जैसे ' रोआं—रोआं किसी अज्ञात ऊर्जा से भर गया हो, और जैसे रोएं—रोएं में कोई सूक्ष्म स्पंदन प्रवेश कर रहे हों। कोई अनूठी शक्ति ने सारे कमरे को घेर लिया है, ऐसा मलिक को भी अनुभव होने लगा। कोई मौजूदगी!

जैसे कभी—कभी आपको भय लगता है, लगता है, कोई मौजूद है और दिखाई नहीं पड़ता। ऐसे ही मलिक भी घबड़ा गए। घबड़ाहट दोहरी थी। एक तो यह थी कि मैं अपराध कर रहा हूं; मुझे यहां रुकना नहीं चाहिए। और दूसरी घबड़ाहट यह थी कि चारों तरफ कोई मौजूद हो गया था। वह जगह खाली न रही थी।

घड़ी दो घड़ी, फिर मलिक के पैर बंध गए। अब वे भागना भी चाहते हैं, वहा से हट भी जाना चाहते हैं, लेकिन अब हट भी नहीं सकते, किसी चीज ने जैसे कि जमीन से कशिश बांध ली। आंखें झपकाना चाहते हैं, झपकती नहीं हैं। श्वास जैसे ठहर गई हो। वहा कोई विराट जैसे उतर आया चारों तरफ। सारा स्थान किसी की उपस्थिति से भर गया। रवींद्रनाथ डोल रहे हैं, जैसे कोई वृक्ष हवाओं में डोलता हो। कि रवींद्रनाथ नाच रहे हैं, जैसे कोई मोर आषाढ़ में नाचता हो। कि रवींद्रनाथ के भीतर कुछ हो रहा है, जैसे किसी मां के गर्भ से बच्चे का जन्म हो रहा हो।

रात गहरी होने लगी, और रवींद्रनाथ वैसी ही अवस्था में हैं। फिर वे स्वस्थ हुए, वापस हुए। और जैसे ही वे स्वस्थ और वापस हुए, मलिक के पैर जमीन से जैसे छूट गए, वे भागे। बाद में उन्होंने रवींद्रनाथ से जाकर दूसरे दिन पूछा कि अपराध मेरा क्षमा हो। रात मैं चोरी छिपे खडा रह गया था। ऐसा लगा कि आप तो मिट गए, कोई और मौजूद हो गया था!

रवींद्रनाथ ने कहा कि मैंने अब तक स्वयं कुछ भी नहीं लिखा है। जब मैं मिट जाता हूं, तभी कोई मुझसे लिखवा जाता है। जब मैं नहीं होता हूं तभी कोई मुझसे गा जाता है। और मैं लाख कोशिश करूं, कितने ही सुंदर शब्दों को जमाऊं, तुकबंदी तो बन जाती है, लेकिन काव्य का जन्म नहीं होता। काव्य का जन्म तो तभी होता है, जब मैं मिट जाता हूं, जड़—मूल से खो जाता हूं।

अगर रवींद्रनाथ को इस काव्य के जन्म के क्षण में ही ईश्वर का अहसास हो, तो हो सकता है। क्योंकि जब भी जगत में कोई चीज सृजित होती है, कहना चाहिए, इन दि मोमेंट आफ क्रिएशन.; नाट ' व्हेन इट हैज बीन क्रिएटेड, पैदा हो गई तब नहीं, सृजित हो गई तब नहीं, जब सृजन हो रही होती है, इन दि वेरी प्रोसेस, प्रक्रिया में होती है; जब जन्म हो नहीं गया होता, जन्म हो रहा होता है, तब कभी—कभी उसकी झलक मिल जाती है। क्योंकि उसकी मौजूदगी के बिना किसी भी चीज का जन्म नहीं होता है। उसकी मौजूदगी के बिना, उस कैटेलिटिक के मौजूद हुए बिना, एक कविता भी जन्मती नहीं है।

कभी—कभी सर्जकों को उसकी प्रतीति होती है, उसका कारण यह है। और जिस कवि को कवि के अंतरतम में सृजन का यह अनुभव न हुआ हो, वह तुकबंद है, कवि नहीं है। उसने शब्दों को जोड़ना सीख लिया है। उसकी कविता कंस्ट्रक्यान है, क्रिएशन नहीं। कपोजीशन है, क्रिएशन नहीं। उसने जोड़—तोड़ बना ली है। वह भाषा जानता है, वह भाषा का खेल जानता है। वह नियम जानता है। वह शब्दों को बिठा लेता है। लेकिन उसने कभी काव्य का जन्म नहीं देखा है।

इसलिए हम अपने मुल्क में कवियों की दो कोटियां करते रहे हैं। एक कोटि कवियों की वह थी, जो शब्दों को निर्माण कर लेते थे, जमा लेते थे, उनको हम कवि कहते थे। एक वे भी कवि थे, जिनके भीतर कविता का जन्म होता था, उनको हम ऋषि कहते थे। ऋषि का अर्थ कवि है। लेकिन फर्क थोड़ा—सा है। ऋषि हम उसे कहते हैं, जो मिट गया और जिसने जन्म होते अपने भीतर किसी चीज को देखा। कभी, सृजन के किसी क्षण में उसकी झलक मिल सकती है, क्योंकि हर सृजन में वह मौजूद होता है। कभी आपने खयाल किया हो, जब कोई स्त्री पहली दफा गर्भवती होती है, तो उसके सौंदर्य में शरीर के पार की कोई चीज उतरनी शुरू हो जाती है! असल में मां बने बिना स्त्री सौंदर्य के पूरे निखार को कभी उपलब्ध नहीं होती है। जब उसके भीतर कोई जन्म हो रहा होता है, कोई सृजन हो रहा होता है, तब उसके आस—पास परमात्मा की छबि और मौजूदगी अनिवार्य है।

अगर स्त्रियां इस सत्य को जान लें कि जब उनके भीतर कुछ निर्मित हो रहा है, तब वे परमात्मा के अति निकट होती हैं, अगर वे क्षण उनके ध्यानपूर्ण हो जाएं, तो एक स्त्री को अलग से साधना करने की कोई भी जरूरत नहीं है। उसका मां होना ही उसकी साधना हो जा सकती है।

पुरुष इस लिहाज से वंचित है, स्त्री इस लिहाज से बहुत गरिमा युक्त है। क्योंकि पुरुष के भीतर कुछ भी निर्माण नहीं होता, सृजन नहीं होता, स्त्री के भीतर कुछ सृजन होता है। स्त्री के भीतर सृजन की प्रक्रिया गुजरती है। और छोटा—मोटा सृजन नहीं होता। एक फूल जब खिलता है पौधे पर, तो सारा पौधा सुंदर हो जाता है। क्यों? क्योंकि फूल का सृजन हुआ। लेकिन जब जीवन का श्रेष्ठतम फूल, मनुष्य, किसी स्त्री के भीतर निर्मित होता है, तो स्वभावत: उसका सारा व्यक्तित्व एक अनोखे सौंदर्य से भर जाता है। उस क्षण परमात्मा बहुत निकट है।

इसलिए मातृत्व एक गहरी धार्मिकता। इसलिए जिस दिन स्त्री मां नहीं होना चाहेगी, उस दिन स्त्री का धार्मिक होना असंभव हो जाएगा।

मैंने कहा कि स्त्री को यह सुलभ है कि उसके भीतर सृजन की प्रक्रिया घटती है। जैसे इस पूरे जगत के गर्भ में किसी दिन सारे चांद—तारे पैदा हुए, एक बहुत छोटे—से रूप में स्त्री के भीतर जीवन पुन: निर्मित होता है; बार—बार निर्मित होता है।

यह उसका गौरव भी है, यह उसकी दुविधा भी है। क्योंकि इसी कारण स्त्री कुछ और सृजन नहीं कर पाती। स्त्री कोई अच्छे गीत नहीं निर्मित कर पाई। उसने कोई अच्छी मूर्तियां नहीं बनाईं। स्त्री के नाम पर कोई बड़ी कला नहीं है। स्त्री किसी धर्म को जन्म नहीं दे पाई। स्त्री ने कोई भी ऐसा अनूठा काम किया हो सृजन का? वह नहीं किया। उसका कुल कारण इतना है कि उसके भीतर सृजन की इतनी बड़ी घटना घटती है कि उसे बाहर सृजन का खयाल नहीं आता है। यह दुर्भाग्य भी है। अगर भीतर की सृजन की घटना में ईश्वर का अनुभव न हो पाए और बाहर सृजन की क्षमता टूट जाए, तो यह दुर्भाग्य भी है।

पुरुष ने बहुत कुछ सृजन किया है। मनसविद कहते हैं, पुरुष कमी अनुभव करता है भीतर, इसलिए बाहर से पूर्ति करता है सृजन करके। इसलिए जब एक माइकलएंजलो एक चित्र निर्मित कर लेता है, जब एक मोजार्ट एक गीत की तरंग, एक संगीत की लय तय कर लेता है, या तानसेन जब एक राग को जन्म दे देता है, या जब एक महावीर एक जीवन के नए आयाम को पैदा कर देते हैं, या जब एक बुद्ध एक नया द्वार खोल देते हैं, तब इन्हें जो प्रतीति और जो तृप्ति होती है, वह प्रतीति और तृप्ति सृजन की है।

ध्यान रहे, जहां भी सृजन की क्षमता है, वहां परमात्मा का अनुभव आसान है। इसलिए नान—क्रिएटिव, असृजनात्मक लोग परमात्मा को कभी अनुभव नहीं कर पाते।

लेकिन बड़ी हैरानी की बात है। अनेक लोग हैं, जो परमात्मा की खोज में जाते हैं और बिलकुल गैर—सृजनात्मक हो जाते हैं। हमारे मुल्क में तो बहुत लोग हैं। हमारे मुल्क में तो कुछ ऐसा है कि जो व्यक्ति परमात्मा की खोज में जाता है, उसका सृजन से कोई संबंध ही नहीं रह जाता।

और ध्यान रहे, सृजन निकटतम है, जहां से उसकी प्रतीति हो सकती है। इसलिए अगर एक साधु सृजन छोड्कर और मुर्दे की भांति जीने लगता है, तो उसे परमात्मा का अनुभव नहीं हो पाएगा,

कठिन हो जाएगा। क्योंकि सृजन की घड़ी में परमात्मा की मौजूदगी अनिवार्य है। उसकी मौजूदगी के बिना कहीं भी सृजन नहीं होता। वह कैटेलिटिक एजेंट है। जहां भी कुछ पैदा होगा, वह सदा मौजूद होता है। उसके बिना पैदा ही नहीं होता। और जहां भी विध्वंस होगा, वहा वह सर्वाधिक दूर होता है।

ध्यान रहे, जितना सृजनात्मक क्षण हो, उसकी निकटता होती है। जितने विध्वंस का क्षण हो, उससे उतनी ही ज्यादा दूरी हो जाती है। इसलिए महावीर ने अगर हिंसा को अधर्म कहा है, तो उसका कारण है। उसका कुल कारण इतना है कि जब भी हम विध्वंस कर रहे होते हैं, तब हम परमात्मा से सर्वाधिक दूरी के बिंदु पर होते हैं। अगर इसे इस भांति समझेंगे, तो अहिंसा का नया अर्थ खयाल में आएगा। इसे ऐसा समझें, हिंसा का अर्थ है विध्वंस; अहिंसा का अर्थ है सृजन।

लेकिन नासमझ लोगों का कोई हिसाब रखना मुश्किल है। नासमझ लोगों ने अहिंसा का अर्थ लिया है कि हिंसा मत करो, अपने को रोककर बैठ जाओ। उनकी अहिंसा सृजनात्मक या क्रिएटिव नहीं है, मुर्दा, मरी—मराई है। हिंसा विध्वंस है, तो अहिंसा को सृजन होना चाहिए। तो ही अहिंसा उसक़े विपरीत होगी।

अगर मैं चींटियां न मरे, ऐसा सम्हल—सम्हलकर निकल जाऊं, मैं फूल न तोडु क्योंकि हिंसा हो जाएगी; मैं किसी को चोट न पहुंचाऊं कि हिंसा हो जाएगी; मैं चलना—फिरना, सब गति रोक दूं क्योंकि हिंसा हो जाएगी; मैं अपने मुंह पर पट्टियां बाध लूं कि कहीं श्वास में कोई जीव—जंतु न मर जाए; मैं पानी छानकर पी लूं कि कहीं कोई हिंसा न हो जाए; मैं रात का भोजन बंद कर दूं—यह सब ठीक है। लेकिन

यह बिलकुल गैर—सृजनात्मक है, नान—क्रिएटिव है। इतना काफी नहीं है कि चींटी न मरे, अपर्याप्त है। जरूरी है कि मेरे द्वारा जीवन को जन्म मिले। इतना काफी नहीं है कि कोई मुझसे मरे न, इतना जरूरी है कि मेरे द्वारा जीवन को गति मिले, जीवन बढ़े और फैले। इतना काफी नहीं है कि मैं फूल न तोडू; यह जरूरी है कि मैं फूल लगाऊं, फूल मेरे द्वारा खिले।

जब तक अहिंसा सृजनात्मक न हो, तब तक नपुंसक होती है। और इस मुल्क की अहिंसा नपुंसक हो गई है, इंपोटेंट हो गई है। क्योंकि उसका अर्थ हो गया है, यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो! डोंट उसका स्वर हो गया है। तो इससे इतना तो हुआ कि विध्वंस मत करो, लेकिन क्या करो, उसका कोई स्वर नहीं है।

परमात्मा की गहनतम प्रतीति सृजन के क्षण में होती है, क्योंकि उसके बिना सृजन नहीं हो सकता।

तो कृष्ण कहते हैं, मैं मौजूद, मेरी मौजूदगी काफी है। हे अर्जुन! मेरी उपस्थिति मात्र से प्रकृति सर्व जगत को रच लेती है। और इस ऊपर कहे गए कारण से ही जगत बनता और बिखरता रहता है। मैं कुछ करता नहीं हूं। मुझे कुछ करना नहीं पड़ता है। मुझे हिलना भी नहीं पड़ता है। मुझे वासना भी नहीं करनी पड़ती है। मुझे इच्छा भी नहीं करनी पड़ती है। बस, मेरा होना ही सृजन है।

अगर हम इसे ऐसा कहें, तो बहुत आसान हो जाएगा। हम सदा कहते रहे हैं, गॉड इज दि क्रिएटर, ईश्वर स्रष्टा है। बेहतर हो, हम कहें, गॉड इज दि क्रिएटिविटी, ईश्वर सृजन की प्रक्रिया है, ईश्वर सृजनात्मकता है। व्यक्ति कम, प्रक्रिया ज्यादा। व्यक्ति कम, प्रवाह ज्यादा। क्योंकि व्यक्ति तो रुका हुआ हो जाता है, प्रवाह सतत गतिमान है। और व्यक्ति की तो सीमा हो जाती है, प्रवाह की कोई सीमा नहीं है।

तो परमात्मा एक सृजन का प्रवाह है। और जहां उसकी मौजूदगी है, वहीं अनंत—अनंत रूपों में सृजन प्रकट होने लगता है। जीवन का खेल उसकी मौजूदगी का आनंद है। उसके मौजूद होते ही जीवन उत्सव से भर जाता है। उसके मौजूद होते ही राग— रंग; उसके मौजूद होते ही फूल खिल उठते हैं और गीत का जन्म हो जाता है।

जहां भी कुछ जन्म रहा हो, वहां मौन होकर बैठ जाना, परमात्मा निकट है। एक कली फूल बन रही हो, तो भागे हुए मंदिर मत चले जाना!

मगर पागलों का जगत है। फूल जन्म रहा है, वहा वे खड़े भी न होंगे! बल्कि उस कली को तोड़कर भागेंगे मंदिर की तरफ, परमात्मा को चढ़ा देने के लिए!

अच्छा होता कि वहीं बैठ जाते, जब कली फूल बन रही थी। वहां परमात्मा ज्यादा संभव था, बजाय उस मंदिर के, जहां आप फूल को तोड़कर ले आए हैं। पता ही नहीं।

जहां भी कोई चीज पैदा हो रही हों—सुबह का सूरज जन्म ले रहा हो या रात का आखिरी तारा डूब रहा हो; सुबह आ रही हो, भोर पैदा हो रही हो; या सांझ का पहला तारा उग रहा हो—वहा रुक जाना! पवित्र मंदिर बहुत करीब है; वहीं है, वहा ठहर जाना! वहा शांत, उस सृजन के साथ एक हो जाना! तो उसकी उपस्थिति अनुभव में आनी शुरू हो जाएगी।

इसलिए यह हमारी सदी परमात्मा से दूर हो गई मालूम पड़ती है, उसका कारण यह है कि हम आदमी की बनाई हुई चीजों से इस बुरी तरह घिर गए हैं कि सृजन का कोई सवाल ही नहीं है! क्योंकि आदमी की बनाई हुई चीजों में ग्रोथ तो होती नहीं। आप एक मकान बनाते हैं, वह बढ़ता तो है नहीं। आप एक कार ले लेते हैं, वह बढ़ती तो है नहीं। आदमी की बनाई हुई कोई भी चीज में ग्रोथ तो होती नहीं, विकास तो होता नहीं, जन्म तो होता नहीं। आदमी की तो सब बनाई हुई चीजें मुर्दा हैं; उनमें जीवन की कोई धारा तो है नहीं।

तो बड़े मकान हैं सीमेंट—कांक्रीट के, वे आकाश को छू रहे हैं। उनके पास आदमी कितनी ही देर खड़ा रहे, परमात्मा की प्रतीति नहीं हो पाएगी, क्योंकि वहा कुछ भी तो जन्म नहीं हो रहा है। सीमेंट—कांक्रीट, जैसे मृत्यु का साकार रूप! जैसे मुर्दा होने का इससे ज्यादा और कोई अच्छा ढंग नहीं हो सकता!

आदमी जितना आदमी की बनाई चीजों से घिर जाता है, उतना ही उसे जन्म के क्षण में खड़ा होना मुश्किल हो जाता है, उतना ही वह सृजन के करीब नहीं रह जाता।

अभी लंदन में सर्वे हुआ, तो दस लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने खेत नहीं देखा है। पांच लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने गाय नहीं देखी है।

अगर ये बच्चे बड़े होकर पूछें कि परमात्मा कहां है? तो कोई कठिनाई है? जिन्होंने गाय नहीं देखी, जिन्होंने खेत नहीं देखा, अगर ये कल कहें कि परमात्मा कहां है? तो इनके प्रश्न में कोई आपको बुराई मालूम पड़ती है? इनका प्रश्न बिलकुल स्वाभाविक है, क्योंकि जीवन को इन्होंने कहीं भी बढ़ते हुए नहीं देखा। चीजों की दुनिया देखी है, सृजन की दुनिया नहीं देखी।

तो फिर स्वाभाविक है, अगर ये कविता भी लिखेंगे, तो उसमें रेल का इंजन आएगा, आकाश के तारे नहीं आएंगे। ये कविता लिखेंगे, तो उसमें भी मिल की चिमनियां आएंगी, खिलते हुए फूल नहीं आएंगे। अगर ये चित्र भी बनाएंगे—जैसा कि पिछले पचास साल की पूरी चित्रकला कहेगी—अगर ये चित्र भी बनाएंगे, तो उन चित्रों में भी अखबार की कटिंग काट—काटकर चिपका देंगे, कोलाज कहेंगे! उसमें भी आदमी की जो—जो विकृतियां हैं, वे उभरकर सामने आएंगी।

पिकासो के चित्रों को अगर देखा जाए, तो वे हमारे मन की पूरी कथा हैं। लेकिन उनमें फूल खिलते मालूम नहीं पड़ेंगे; उनमें कोई चीज बढ़ती हुई मालूम नहीं पड़ेगी; उनमें किसी का जन्म होता हुआ मालूम नहीं पड़ेगा। स्वाभाविक है। क्योंकि हम एक अस्वाभाविक वस्तुओं के जगत में घिरकर जी रहे हैं, जहां कोई चीज पैदा नहीं होती; हर चीज बनाई जाती है। जहां किसी चीज का जन्म नहीं होता, जहां हर चीज सिर्फ जोड़ी जाती है।

आदमी को प्रभु को खोजना हो, तो सृजन के निकट ही उसे खोज सकता है।

ऐसा होने पर भी संपूर्ण भूतों के महान ईश्वर रूप मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग, मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं।

मूढ़ एक पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ मूर्ख नहीं होता, यह पहले समझ लें। मूढ़, मूर्ख से भी खतरनाक अवस्था है। मूर्ख का मतलब होता है, जिसे पता नहीं है, छ्रू का मतलब होता है, जिसे पता नहीं है, लेकिन जो सोचता है कि उसे पता है।

इस फर्क को ठीक से समझ लें।

मूर्ख वह है, जिसे पता नहीं है। उसे क्षमा किया जा सकता है। उसे पता ही नहीं है। अज्ञानी है। लेकिन यह अज्ञान सिर्फ अभाव है। इसमें उसे कसूरवार नहीं ठहराया जा सकता। पता नहीं है। एक छोटा बच्चा है। छोटा बच्चा मूर्ख ही हो सकता है, मूढ़ कभी नहीं हो सकता। मूढ़ होने के लिए जरा ज्यादा उम्र होना जरूरी है। छोटा बच्चा मूर्ख ही हो सकता है, मूढ़ कभी नहीं हो सकता। वह सुविधा बूढ़ों के लिए ही है, मूढ़ होने की। तो जितनी ज्यादा उम्र हो, उतना आदमी ज्यादा मूढ़ हो सकता है। क्योंकि उसे पता बिलकुल नहीं है, लेकिन ऐसा पता लगने लगता है जीवनभर के अनुभव से कि मुझे पता है।

ईश्वर को जो इनकार करने वाले लोग हैं, वे अज्ञानीजन नहीं हैं। वे वे लोग हैं, जिन्हें खयाल है कि वे ज्ञानी हैं। स्वयं को ज्ञानी मानने का जिन्हें खयाल है, वे छ्रू हो सकते हैं। मूढ़ का मतलब है, अज्ञान अकेला नहीं, धन अहंकार भी। अज्ञान.अहंकार, तो मूढ़ता पैदा होती है। मूढ़ता का मतलब है कि मैं जानता हूं; और मुझे कुछ भी भीतर पता नहीं है। लेकिन मेउा अहंकार कैसे स्वीकार करे कि मैं नहीं जानता हूं!

आप अपनी तरफ सोचें, तो आपको पता चलेगा, मूर्खता बड़ी बीमारी नहीं है, मूढ़ता बड़ी बीमारी है। कितने सवाल हैं, जिनके जवाब आप देते हैं, बिना जाने हुए!

अगर छोटा बच्चा अपने बाप से पूछता है कि ईश्वर है? बाप को बिलकुल पता नहीं है। लेकिन वह या तो कहता है, है; या कहता है, नहीं है। कोई भी जवाब दे, लेकिन एक जवाब कभी नहीं देता कि मुझे पता नहीं है। यह मूढ़ता है।

लेकिन एक छोटे बच्चे के सामने बाप कैसे यह माने कि मैं नहीं जानता हूं! पर उसे पता नहीं है, यह बच्चा कितने दिन छोटा रहेगा? थोड़े दिन में इसे पता चल जाएगा कि यह बाप झूठ बोलता रहा है। इसलिए अगर हर बेटा उम्र पाने के बाद बाप का आदर छोड़ देता है, तो उसका कुल कारण इतना है, बाप के द्वारा की गई बेईमानिया, जो बचपन में बच्चे के साथ की गई हैं। क्योंकि उस वक्त तो बाप ने बड़ा मजा लिया ज्ञानी होने का। फिर जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह पाता है, यह बाप भी उतना ही अज्ञानी है जितना मैं! इसको भी कुछ पता नहीं है। इसने नाहक ही झूठी ज्ञान और झूठा अहंकार मेरे ऊपर थोपा। तो आदर खो जाएगा।

सिर्फ वही बाप अपने बेटे का आदर पाने में समर्थ हो सकता है, जो ईमानदार है। ईमानदार का अर्थ है, जो मूढ़ नहीं है, जो मूढ़ता नहीं करता। क्या जरूरत है! जो हमें पता नहीं है, कह दें कि पता नहीं है। जो हमें पता है, कह दें कि पता है। इसमें जो आदमी डावांडोल होता है, वह मूढ़ है।

कृष्ण कहते हैं, ऐसा होने पर भी—कि परमात्मा की मौजूदगी ही सारे जीवन की सृजनात्मकता है, कि उससे ही सारा जीवन गतिमान है, कि उससे ही सारा जीवन परिपूर्ण है, कि वही है जीवन

का मूल, कि वही उसकी आत्मा है—ऐसा होने पर भी, मूढ़ लोग चारों तरफ यह सब देखकर भी, इस चारों तरफ जीवन को अनुभव करके भी, अपनी मूढ़ता नहीं छोड़ते मालूम पड़ते हैं।

जब भी कोई व्यक्ति ईश्वर के संबंध में बिना जाने वक्तव्य देता है, तब वह अपने ही साथ नहीं, औरों के साथ भी अपराध कर रहा है। लेकिन हम क्षुद्र बातों के संबंध में कहीं ज्यादा सही वक्तव्य देते हैं। जितनी विराटतर होती है बात, उतने ही हमारे वक्तव्य झूठे होते चले जाते हैं। जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, वे उनको समझाए चले जाते हैं, जो उनसे पूछने चले आए हैं।

एक महिला मेरे पास आती थीं। महत्वाकांक्षी हैं। अधिक लोग हैं। और जब पुरुष महत्वाकांक्षी होते हैं, तो उतना अस्वाभाविक उपद्रव नहीं होता। जब स्त्रियां महत्वाकांक्षी होती हैं, तो भारी उपद्रव होता है। क्योंकि स्त्री स्वभावत: महत्वाकांक्षी नहीं है। इसलिए जब कोई महत्वाकांक्षी स्त्री होती है, तो फिर पुरुष उससे जीत नहीं सकते। क्योंकि वह पागल की तरह होती है। फिर उसके सामने टिकना बहुत मुश्किल है।

आती थीं देवी। बहुत महत्वाकांक्षी हैं। गुरु बनने की महत्वाकांक्षा है। तो मुझसे आकर निरंतर वह एक ही बात पूछती थीं।

यह नहीं पूछती थीं, मैं क्या करूं? वह मुझसे पूछती थीं, मैं दूसरों को क्या करवाऊं? यह नहीं पूछती थीं कि मेरे मन को शाति कैसे मिले? वह मुझसे पूछती थीं, दूसरे लोग बहुत अशांत हैं, उनको शाति कैसे दी जाए? यह नहीं पूछती थीं कि उन्हें कुछ समझना है। वह यही पूछती थीं कि दूसरों को समझाना है, तो कैसे समझाया जाए?

ऊपर से देखने पर लगेगा, बड़ी सेवा की भावना है। मैं उनको कहा भी कि पहले समझो, दूसरों को समझाना महत्वपूर्ण नहीं है। तुम्हें समझ आ जाएगी, तो उसकी मौजूदगी ही दूसरों को समझाने का कारण हो जाएगी। पहले शांत हो जाओ। तुम शांत हो जाओगी, तो तुम्हारे पास जो भी आएगा, वह उस शाति से आकर्षित होगा। वह शाति संदेश बन जाएगी। पर उनका कोई रस ही नहीं था। उनका कोई रस स्वयं में नहीं था।

यह भी मूढ़ आदमी का बुनियादी लक्षण है, उसका स्वयं में, स्वयं के विकास में, सृजन में, स्वयं के रूपांतरण में कोई रस नहीं होता। उसकी उत्सुकता दूसरों में बहुत होती है। असल में वह दूसरों

को मैनिपुलेट करने में, दूसरों को चलाने में रस लेता।

यह बहुत हैरानी की बात है कि जब हम दूसरों को दबाते हैं, तो हम अच्छे ढंग से भी दबा सकते हैं। बुरे लोग बुरे ढंग से दबाते हैं, अच्छे लोग अच्छे ढंग से दबाने लगते हैं। और बुरे आदमी से तो छुटकारा भी कर सकते हो, अच्छे आदमी से छुटकारा बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह इतने प्रेम से दबाता है आपकी गर्दन कि जिसका कोई हिसाब नहीं है! वह इतने भले मन से दबाता है कि आप यह भी नहीं कह सकते कि मेरी गर्दन घुटी जा रही है! इसलिए भले लोग बुरे लोगों से भी बुरे सिद्ध होते हैं।

उन महिला को एक ही रस था कि दुनिया में क्रांति लानी है, दुनिया को सुधारना है। रोज मेरे पास कोई न कोई आता है, जिसको दुनिया को ठीक करने का खयाल पकड़ जाता है। अपने को ठीक करने की बात मूढ़ता से छुटकारा दिला सकती है; दूसरों को ठीक करने की बात गहरी मूढ़ता में फंसा देती है।

मैंने उन्हें समझाया, उनकी समझ के बाहर थी बात। वह मुझसे पूछती थीं कि मेरी कुंडलिनी जग गई है या नहीं? आप कह दो। मैंने उनको कहा कि अगर जग जाएगी, तो तुम्हें पता चल जाएगा। मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं है। पूछती हो, उसका मतलब ही यह होता है कि नहीं जगी है।

जिस दिन मैंने उनसे यह कहा, उसी दिन से उन्होंने आना बंद कर दिया। अब मुझे पता चला है कि वह दूसरों की कुंडलिनी जगा रही हैं। और इतना ही नहीं कि वह जगा रही हैं, दूसरों की कानी भी शुरू हो गई है! वह और कठिन बात है। मूढ़ता का कोई अंत नहीं है!

कृष्ण कहते हैं कि ऐसे मूढ़ लोग, चारों तरफ मैं मौजूद हूं तो भी अनुभव नहीं कर पाते। चारों तरफ सब जगह मैं मौजूद हूं? तो भी अनुभव नहीं कर पाते। वे कहते हैं, सामने आ जाओ, तो हम पहचानें!

सदा से नास्तिकों ने यह कहा है। यह बहुत समझने जैसा है। सदा से नास्तिकों ने कहा है, अगर परमात्मा है, तो सामने आ जाए! वह सब जगह सामने है। वही है, और दूसरा कोई भी नहीं है। लेकिन नास्तिक सदा कहता रहा है कि वह सामने आ जाए, तो हम मान लें। और मजे की बात यह है कि कृष्ण कहते हैं कि जब मेरे जैसा व्यक्ति सामने आ जाता है, कहते हैं कि जब मैं सामने खड़ा हो जाता हूं तो वे ही मूढ़ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं। अगर मैं सामने आ जाऊं, तो वे कहते हैं कि अरे! तुम तो

आदमी ही हो! तुम भगवान कैसे? अगर मैं सामने न आऊं, तो वे कहते हैं, सामने आ जाओ। क्योंकि अगर तुम हो, तो प्रकट हो जाओ। अगर मैं प्रकट हो जाऊं, तो वे मूढ़जन कहते हैं कि तुम? तुम तो ठीक हमारे ही जैसे हो! तुम भगवान कैसे?

एक बात तय है कि भगवान चाहे अप्रकट रूप से सब तरफ मौजूद हो, और चाहे प्रकट रूप से आपके सामने खड़ा हो जाए, अगर मूढ़ता की दृष्टि है, तो दोनों हालत में वह दिखाई नहीं पड़ सकता है। इसलिए सवाल यह नहीं है कि वह सामने है या नहीं, सवाल यह है कि भीतर मूढ़ता है या नहीं।

आप खुद ही सोचो! आपको भी कई दफे लगा होगा कि भगवान सामने हो, तो अभी मान लूं। लेकिन जरा यह सोचो कि अगर भगवान सामने हो, आप मान लोगे?

अति कठिन है। बहुत कठिन है। कठिनाइयों के कारण हैं। वे मूढ़ता की अनेक सीढ़ियां उसके कारण हैं। उनको हम थोड़ा समझ लें।

पहली बात, अपने से जो श्रेष्ठ है, उसे देखना बहुत मुश्किल है। मुश्किल नहीं, असंभव कहना चाहिए, करीब—करीब असंभव। क्यों? क्योंकि जहां तक हमारी चेतना गई है, उसके पार हमारी आंख उठ नहीं सकती। जो हम हैं, वहीं तक हम देख सकते हैं।

इसे ऐसा समझें, आप चल रहे हैं, पास से चींटियों का एक समूह जा रहा है। आपको खयाल है, चींटियों को आपके होने का पता भी नहीं चल सकता! ही, चींटियों को एक ही ढंग से पता चल सकता है कि आपका पैर पड़ जाए और वे मर जाएं; और समझें कि कोई विपत्ति आ गई। लेकिन एक मनुष्य हमारे पास से गुजर रहा है, यह चींटियों को पता नहीं चल सकता। क्योंकि मनुष्य को देखने के लिए कम से कम मनुष्य की चेतना चाहिए।

हम केवल समान तल पर अनुभव कर सकते हैं। श्रेष्ठ जो है, वह हमारी आंख से ओझल हो जाता है। आप चींटी को देख सकते हैं, चींटी आपको नहीं देख पाती। ऊंचाई से नीचे देखना आसान है, क्योंकि आप उस रास्ते से गुजर चुके हैं। लेकिन नीचाई से ऊपर देखना असंभव है।

आप गीता लेकर बैठे पढ़ रहे हैं। आपका कुत्ता भी आपके पास बैठकर पूंछ हिला रहा है। क्या किसी भी तरह हम कल्पना कर सकते हैं कि उसे गीता का पता चल रहा होगा, जो आप हाथ में लिए बैठे हैं?

आप चाहे जोर—जोर से दोहरा रहे हों, तो भी कुत्ता बैठकर अपनी मक्सियां उड़ाता रहेगा। उसकी चेतना में कहीं से भी, यह आपका जो जोर से पाठ चल रहा है, प्रवेश नहीं करेगा। अगर आप गीता को छोड्कर चले जाएं, तो गीता उसे दिखाई पड़ सकती है, पर गीता की तरह नहीं। हो सकता है, वह उससे खेलने लगे। हो सकता है, उसे फाड़ने लगे। हो सकता है, उसे मुंह में दबाकर बाहर घूमने निकल जाए। वह गीता के साथ कुछ कर सकता है, लेकिन गीता का उसे कोई बोध नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है, उसकी चेतना बंद है।

चेतना वहीं तक देख पाती है, जहां तक विकसित होती है। तो परमात्मा अगर सामने भी मौजूद हो जाए, तो भी हम उसे समझ नहीं पा सकते, हम उसे देख नहीं पा सकते। हमारी हालत उसके सामने वैसी ही है, जैसी हमारे सामने एक चींटी की हो जाती है। उसका जो परमात्म रूप है, वह हमारी आंखें कैसे पकड़े? जहां तक हमारी चेतना का विकास नहीं है, वहां हम देख कैसे पाएंगे? हम वही देख पाते हैं, जो हम हैं।

इसलिए अगर कृष्ण भी सामने खड़े हों, तो हमें कृष्ण में आदमी दिखाई पड़ेगा भलीभांति। और हम गलत नहीं हैं। हम गलत नहीं हैं। जहां तक कृष्ण में आदमी दिखाई पड़ता है, हम बिलकुल सही हैं। गलती हमारी वहा शुरू होती है कि आदमी के पार हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। आदमी का दिखाई पड़ना तो बिलकुल ठीक है। कृष्ण आदमी तो हैं ही, लेकिन तब हम सब जोड़ लगाकर कहते हैं कि आदमी तो दिखाई पड़ते हैं, लेकिन भगवान कहीं दिखाई नहीं पड़ते। और जब आदमी दिखाई पड़ते हैं, तो हमारे अहंकार को कष्ट होगा बहुत कि हम सामने खड़े आदमी को, मांस—हड्डी के आदमी को, इसको हम भगवान मान लें! तो हमारे अहंकार को भारी पीड़ा होगी।

ध्यान रहे, पहला सूत्र हमारी मूढ़ता का यह है कि जो हमें दिखाई पड़ता है, उसके पार हम झांकने को भी तैयार नहीं होते। दिखाई तो पड़ेगा ही नहीं, झांकने को भी तैयार नहीं होते। तैयारी भी नहीं दिखाते कि हम उसके पार भी देखने के लिए तैयार हैं, बल्कि हम गैर—तैयारी दिखाते हैं। वह हमारी मूढ़ता है।

हम कहेंगे कि कहां! भगवान तो दिखाई नहीं पड़ता? बल्कि हम सब तरह से सिद्ध करेंगे कि भगवान है ही नहीं। क्योंकि हम कहेंगे कि इस आदमी को कल मैंने देखा था। प्यास लगी थी, तो यह कह रहा था, पानी लाओ! भगवान को पानी की क्या जरूरत? हमने देखा, यह आदमी भोजन कर रहा था। भगवान को भोजन की क्या जरूरत? धूप पड़ती है, तो कृष्ण को भी पसीना आ जाता है। भगवान को पसीने की क्या जरूरत?

हम हजार कसौटियां रखेंगे। और सब कसौटियों से हम सिद्ध करेंगे कि यह आदमी भगवान नहीं है, आदमी ही है। और जब हम सिद्ध कर लेंगे कि यह आदमी है, तो हम को बड़ी तृप्ति होगी। यह हमारी मूढ़ता है।

मजा यह है कि इस सिद्ध करने से हमें कुछ मिलेगा नहीं। अगर यह सही भी है कि यह आदमी ही है और हमने सिद्ध कर लिया कि आदमी है, तो भी हमें मिलेगा क्या? यह हमारी मूढ़ता है।

दूसरी बात सोचें, हो सकता है, यह भगवान न हो। लेकिन हम इस सिद्ध करने में न पड़े कि यह भगवान नहीं है। बल्कि यह कहता है, तो हम थोड़ा खोज में लगें विधायक रूप से; मूढ़ता को तोड़ने में लगें। कोशिश करें कि यह आदमी कहता है कि ही, भगवान प्रकट हुआ है, तो देखें, चलें, थोड़ा आगे बढ़े। थोड़ी अपनी चेतना को ऊपर उठाएं। थोड़ी अपनी जगह छोड़े। थोड़ा अपना पर्सपेक्टिव, अपना परिप्रेक्ष्य बदलें। देखें कि शायद यह आदमी ठीक कहता हो।

तो मैं आपसे कहता हूं कि यह भगवान न भी हो, तो भी यह खोज आपकी चेतना को बड़ा कर जाएगी। अगर यह हो, तब तो बात ही अलग। अगर यह न भी हो, तो भी इस खोज में आप ऊपर उठ जाएंगे।

मूढ़ता हमारी कहती है कि सिद्ध करो, यह नहीं है। लेकिन हमें पता नहीं कि इसे हम सिद्ध करके कि नहीं है, केवल अपने विकास की संभावनाओं को अवरुद्ध कर रहे हैं, एक द्वार बंद कर रहे हैं। यह सवाल नहीं है महत्वपूर्ण कि यह है या नहीं, हम इसे देखने की कोशिश करें।

बुद्ध के पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हमें तो कोई ऐसी बात नहीं दिखाई पड़ती। महावीर के पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम आपको तीर्थंकर नहीं मान सकते।

न मानने से महावीर की कोई हानि नहीं होती। महावीर किसी वोट की तलाश में नहीं हैं कि कितने लोग मानते हैं। तो महावीर आपसे हाथ जोड़कर नहीं कहेंगे कि मानो कि मैं तीर्थंकर हूं! क्योंकि अगर तुमने न माना, तो मैं कहीं का न रह जाऊंगा! तुम्हारे मत पर तो मेरा' सब दारोमदार है। तुम मुझे मानो। न बुद्ध आपसे हाथ जोड़कर कहेंगे कि मैं बुद्ध हूं मुझे मानो। न कृष्ण कहेंगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप मानते हैं कि नहीं मानते। उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता।

लेकिन आपका न मानना, आपके लिए अवरोध हो जाता है। वे हैं या नहीं, यह भी गौण है, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है। अगर कोई व्यक्ति पत्थर को भी भगवान मानकर चल पड़े, तो पत्थर भगवान होगा कि नहीं होगा, यह सवाल नहीं है, वह आदमी जरूर ऊपर उठना शुरू हो जाएगा। यह सवाल उस आदमी के अपने अंतर्विकास का है। और हम जितने विराटतर को मान लेते हैं, उतने विराटतर तक पहुंचने की हमारी चेतना का मार्ग साफ हो जाता है।

इसे हम ऐसा देखें, अगर मूढ़ न हो आदमी, अमूढ़ हो, तो वह क्या करेगा?

मूढ़ आदमी कहेगा कि कृष्ण को भूख लगती हमारे जैसी, तो यह आदमी है। कृष्ण को भी कांटा गड़ता, खून निकलता, तो ये हमारे जैसे आदमी हैं। भगवान हम न मानेंगे। यह मूड का तर्क है।

अमूढ़ का तर्क इससे उलटा होगा, यही, लेकिन दिशा बदल जाएगी। वह कहेगा, कृष्ण को भी भूख लगती है और ये भगवान हो सकते हैं; मुझे भी भूख लगती है, मैं भी भगवान क्यों नहीं हो सकता हूं! यह अमूढ़ आदमी का तर्क है। वही है, तर्क में कोई फर्क नहीं है। लेकिन दिशा बिलकुल बदल गई है। वह कहेगा, कृष्ण के भी पैर में कांटा गड़ता है, तो खून निकलता है; मेरे पैर में भी कांटा गड़ता है, तो खून निकलता है। अगर कृष्ण भगवान हो सकते हैं, तो मैं भगवान क्यों नहीं हो सकता हूं!

कृष्ण की मनुष्यता कृष्ण के भगवान होने में बाधा नहीं बनेगी अमूढ़ के लिए; कृष्ण की मनुष्यता स्वयं की मनुष्यता के पार जाने का द्वार बन जाएगी।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, मूढ्जन मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं।

वे अपने को श्रेष्ठ नहीं समझ पाते मेरे कारण, अपने कारण मुझको भी तुच्छ समझते हैं। वह अपने को श्रेष्ठ समझने का एक मौका उन्हें था कि वे अपनी दीनता से मुक्त हो जाते, कि महिमा से भर जाते, कि गौरवान्वित हो जाते, कि देखते कि मेरी क्या अनंत संभावना है; कि उनका बीज भी भरोसे से भर जाता, कि आशाएं उनमें भी खिल जातीं; कि अभीप्सा उनकी भी जग जाती, दूर का आकाश उनको भी अपने पास मालूम होने लगता, अनंत की दूरी मिट जाती, अगर वे यह देखते कि ठीक मेरे जैसा मनुष्य भी भगवान है। लेकिन वे ऐसा नहीं

देखते। वे ऐसा देखते हैं कि अच्छा, मेरे जैसा मनुष्य भगवान का दावा कर रहा है! धोखेबाज है, तुच्छ है। ऐसा दावा नहीं करना चाहिए; यह बात ठीक नहीं है!

मूढ़ता अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का नाम है। लेकिन अपने पैर पर कोई कुल्हाड़ी नहीं मारता। मारने वाला तो यही समझता है कि दूसरे के पैर पर मार रहे हैं। लेकिन कृष्ण के पैर पर कुल्हाड़ी मारने का कोई उपाय नहीं है। सब कुल्हाड़ी आखिर में अपने ही पैर पर पड़ जाएगी। इसलिए वे मूढ़ कह रहे हैं। कह रहे हैं, मुझे तुच्छ समझने में मैं तुच्छ नहीं हो जाता हूं लेकिन मुझे तुच्छ समझने में तुम्हारी जो गरिमा की संभावना थी, वह खो जाती है। बुद्ध को देखकर यह सोचने की जरूरत नहीं है कि बुद्ध को ज्ञान हुआ या नहीं। बुद्ध को देखकर यह देखने की जरूरत है कि बुद्ध को हो सका है, तो मुझे भी हो सकता है। यह भरोसा।

बुद्ध की आंखों में झांककर अपने भविष्य में झांकने का नाम ज्ञान है; और अपने तराजू पर रखकर बुद्ध को तौल लेने का नाम मूढ़ता है। बुद्ध को दरवाजा बनाओ। हम बुद्ध को तो दरवाजा नहीं बनाते, अपने को दीवाल बनाकर खड़े हो जाते हैं।

फिर आदमी की मूढ़ता का जो केंद्र है, वह उसका अहंकार है, ईगो है। इसलिए दूसरी बात, जब भी कोई आदमी हमें किसी के खिलाफ कुछ कहे, हमारे मन में बड़ी प्रफुल्लता होती है। इसे खयाल करना।

अगर कोई आदमी किसी के संबंध में कुछ बुराई करे, तो हमारे हृदय का फूल ऐसे खिल जाता है, जैसे वर्षा हो गई, नई सब ताजगी आ गई भीतर। जैसे कोई किसी की निंदा करे हमारे कान में, तो ऐसा लगता है कि कोई संगीत बजने लगा! प्राण नाचने लगते हैं।

इसलिए मजे की बात है, जब भी हमसे कोई किसी की जिंदा करे, हम कभी इसकी फिक्र में नहीं पड़ते कि यह सही है या गलत? हम मान लेते हैं। निंदा में कोई तर्क करता ही नहीं। अगर कोई आदमी आकर आपको मेरे बाबत कहे कि वह आदमी चोर है, तो आप एक गवाह तक न पूछेंगे उससे कि कोई गवाह है? आप कहेंगे, मैं तो पहले ही जानता था, पहले ही से पता था। एक गवाह की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। फिर यह भी न सोचेंगे आप कि यह जो आदमी बोल रहा है, कहीं यह खुद तो चोर नहीं है। न, यह भी न सोचेंगे। क्योंकि इस वक्त ऐसी बातें सोचना शोभनीय नहीं है। इस वक्त इस आदमी पर शक करना बिलकुल ही अशोभन है। संदेह करना ही नहीं, इस वक्त तो श्रद्धा एकमात्र मार्ग है।

जब कोई किसी की निंदा कर रहा हो, तो हमारे चित्त ऐसे श्रद्धावान हो जाते हैं! क्यों? क्योंकि दूसरा अच्छा है, इससे हमारे अहंकार को पीड़ा पहुंचती है। क्योंकि ऐसा लगता है, फिर मैं? दूसरा बुरा है, हमारा अहंकार आनंदित होता है कि बिलकुल ठीक। अगर सारी दुनिया बुरी है, तो फिर मैं ही अच्छा बच रहता हूं!

तो हम सारी दुनिया बुरी है, ऐसा मानकर चलते हैं। जिनके बाबत हमें अभी पता नहीं है, उनके बाबत भी हम समझते हैं कि सिर्फ पता नहीं है, बाकी होंगे तो बुरे ही। भला आदमी तो कोई हो नहीं सकता, यह हमारी अंतर्निहित आस्था है। यह हमारी आस्तिकता है। सारा जगत बुरा है। किसी का पता चल गया है, किसी का अभी पता नहीं चला है। यह सारा जगत बुरा है।

तो जिसका पता नहीं चला है, उसके बाबत हम अपने मन में संदेह रखते हैं कि आज नहीं कल! आप एक दिन धोखा दे सकते हैं, दो दिन धोखा दे सकते हैं, कोई भी आदमी सदा तो धोखा नहीं दे सकता! आज नहीं कल कलई खुल ही जाएगी। आज नहीं कल वस्त्र झांककर हम देख ही लेंगे कि तुम भी नंगे हो। कब तक डाके रहोगे!

तो हम यह भाव रखते हैं। और जैसे ही किसी का पता चल जाता है, हम प्रसन्न हो जाते हैं। हम जानते हैं कि यह तो हम पहले ही जानते थे। यह हमारा अंतर्निहित विश्वास था। यह तो हमारी अंतरात्मा की पहले से ही दृढ़ आस्था थी कि यह आदमी बुरा है। लेकिन जब कोई आदमी किसी के बाबत कहता है कि वह भला है, अच्छा है, तो हमारा मन मानने का नहीं करता। सुन भी लें, तो टालरेट करते हैं। सह लेते हैं कि ठीक है, होगा। होगा भी। दूसरी चर्चा छेड़ो! कोई दूसरी बात करें।

और अगर कोई ज्यादा जिद्द करे कि नहीं, भला है ही। संत है। महात्मा है। फलां है, ढिका है। तो हम कहेंगे, कोई गवाही है? किसने कहा? कौन कहता है? जो कहते हैं, उनकी नैतिकता का

कुछ पक्का है? तुमने कैसे जाना? क्या प्रमाण हैं?

जब भी कोई किसी की भलाई की बात करे, तो हमें पीड़ा होती है मानने में, क्योंकि हमारी अंतर्निहित निष्ठा के विपरीत है। यह हमारी मूढ़ता है।

क्योंकि मजा यह है इस मूढ़ता का कि जितना ही हम सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं कि सारी दुनिया बुरी है, उतना ही हमारे अच्छे होने का उपाय बंद हो जाता है। जब सारी दुनिया बुरी है, तो मुझे अच्छे होने का कोई भी कारण नहीं रह जाता। जब आप सुबह से अखबार पढ़ते हैं और देख लेते हैं कि कितनी औरतें भगाई गईं, कितनी हत्याएं की गईं, कौन—कौन कालाबाजारी में पकड़े गए, तब भीतर—भीतर कोई खड़ा खुश होने लगता है। वह कहता है कि सारी दुनिया ऐसी है।

इसका मतलब यह है कि हम बिलकुल निश्चित रह सकते हैं। हम जैसे हैं, निश्चित रह सकते हैं। अभी तक न हमने किसी की औरत भगाई। सोचा है, भगाई नहीं है! तो सोचने में क्या ऐसी बुराई है, जब लोग भगा ही रहे हैं! तो विचार मात्र कोई इतना बुरा नहीं है। यह सब कालाबाजारी हो रही है, हत्याएं हो रही हैं, सब हो रहा है। भीतर एक तृप्ति होती है कि हम काफी अच्छे हैं। और जिसको यह तृप्ति हो जाती है कि मैं काफी अच्छा हूं उसने आत्महत्या कर ली अपनी।

अच्छा आदमी कभी भी तृप्त नहीं होता अपनी अच्छाई से, बुरा आदमी सदा ही अपनी अच्छाई से तृप्त होता है। अच्छा आदमी सदा एक डिसकटेंट में जीता है, एक असंतोष में, कि मैं और अच्छा, और अच्छा, और अच्छा कैसे होता चला जाऊं! बुरा आदमी सदा संतोषी होता है अपने बाबत, भीतर के बाबत, कि मैं बिलकुल अच्छा हूं। और तब बुरा आदमी रोज—रोज नीचे गिरता जाता है। अगर आज वह पहले नर्क में राजी है, तो कल दूसरे में राजी हो जाएगा; परसों तीसरे नर्क में उतरकर राजी हो जाएगा। अच्छा आदमी पहले स्वर्ग में भी खड़ा हो, तो राजी नहीं होता है कि यह स्वर्ग है। वह दूसरे स्वर्ग की आकांक्षा रखता है। दूसरे में पहुंच जाए, तो तीसरे की आकांक्षा रखता है। वह बढ़ता चला जाता है। ध्यान रहे, वह आदमी मूढ़ है, जो सारी दुनिया को बुरा सिद्ध करने में लगा है। क्योंकि अंततः यह सारी दुनिया की बुराई लौटकर उसकी अपनी बुराई हो जाएगी, और उसके विकास का कोई उपाय न रह जाएगा।

अमूढ़ उसे कहते हैं, जो सारी दुनिया के भले होने का भरोसा रखता है। जिसकी अंतर्निहित आस्था इस बात की है कि सब लोग भले हैं। और अगर कभी किसी आदमी की बुराई की खबर मिलती है, तो भी वह यह नहीं कहता कि वह आदमी बुरा है। इतना ही कहता है, आदमी भला है, लेकिन भले आदमी से भी भूल—चूक हो जाती है। आदमी तो भला ही है। तो भला आदमी भी कभी भटक जाता है। अंतर्निहित आस्था उसकी भलाई की है। वह सारी दुनिया में चारों तरफ भलाई को खड़ा हुआ देखता है। तब उसे अपनी बुराई दिखाई पड़नी शुरू होती है। तब वह अनुभव करता है, इस दुनिया में शायद सबसे पिछडा हुआ मैं ही हूं! तब उसके विकास की संभावना, उत्क्रांति, उठ सकता है ऊपर।

लेकिन हमारी मूढ़ता का कोई अंत नहीं है। हम सिद्ध करने में लगे रहते हैं कि कृष्ण भगवान हैं या नहीं, कि बुद्ध भगवान हैं या नहीं, कि महावीर भगवान हैं या नहीं, कि जीसस ईश्वर के पुत्र थे या नहीं, या यह दावा झूठा है! यही तो झगड़ा था। जीसस के बाबत यहूदियों ने झगड़ा खडा किया कि वे ईश्वर के पुत्र नहीं हैं; इसलिए सूली दी। और दो—ढाई हजार साल से ईसाई मिशनरी, ईसाई धर्मगुरु सिद्ध करने में लगा है कि वे ईश्वर के पुत्र हैं।

ध्यान रहे, जब हम बहुत सिद्ध करने में लग जाते हैं कि फलां आदमी ईश्वर का पुत्र है, तब भी हम गवाही देते हैं कि भरोसा हमें है नहीं। सिद्ध बहुत करने का मतलब भी यही होता है। अगर एक आदमी दिनभर कहे कि मैं सदा सच बोलता हूं मैं सदा सच बोलता हूं मैं झूठ कभी नहीं बोलता, तो आप पक्का समझना कि वह आदमी चौबीस घंटे झूठ बोलने से पीड़ित है। ये इतनी गवाही की कोई जरूरत नहीं है।

ठीक है; अगर यह अंतर्निहित आस्था है कि एक आदमी ईश्वर है, तो ठीक है। यह हमारा विकास बन जाना चाहिए। इसे मैं दूसरे को समझाने जाने की कोई जरूरत नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है कि आपको पक्का न हो, .तो आप दूसरे को समझाने की कोशिश करते हैं। तो अगर ईसाई मिशनरी समझाता फिरता है लोगों को कि ईश्वर का पुत्र है जीसस; जब दूसरे की आँख में झलक आ जाती है भरोसे की, तो उसको भी लगता है कि होगा, जरूर होगा। क्योंकि इतने लोग भी मानने लगे हैं! उसे खुद भी कोई भरोसा नहीं है। क्योंकि भरोसा आत्मक्रांति बन जाता है।

यहूदियों को भरोसा नहीं है। वे सूली पर लटकाते हैं। ठीक सूली पर लटकाने के पहले पायलट ने जीसस से पूछा है, तुम सच—सच मुझे कह दो, क्या तुम ईश्वर के पुत्र हो?

इसे कैसे कहा जा सकता है! और अगर जीसस कह भी दें, तो कौन मानता है? ये कृष्ण चिल्लाकर कह रहे हैं, कौन मानता है? कोई मानने को तैयार नहीं होता।

नहीं मानने का गहरा कारण यह है कि हम ऊपर उठने को तैयार नहीं हैं। और ये बातें खतरनाक हैं। इनको मानें, तो ऊपर उठना पड़ेगा। हम बचाव कर रहे हैं। ये सब डिफेंस मेजर हैं। हम कहते हैं, ये बुद्ध, कुछ भी नहीं हैं। क्योंकि अगर ये कुछ हैं, तो फिर मुझे आत्मग्लानि पैदा होगी। फिर मुझे पीड़ा होगी शुरू, फिर मुझे संताप होगा कि अगर ये बुद्ध इतने परम आनंद में हो सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं हो सकता हूं। तो फिर मुझे ग्लानि शुरू होगी। तो मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता। मैं कहता हूं यह सब बनावट है, यह सब

दिखावा है। यह आदमी बन—ठनकर, शांत होकर, आंख बंद करके बैठ गया है। कुछ हुआ—बुआ नहीं है। भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर कुछ भी नहीं है।

क्यों? बुद्ध के भीतर प्रवेश करके देखा, कि कृष्ण के भीतर प्रवेश करके देखा, कि यह आदमी भगवान है या नहीं हैं?

नहीं, देखने की जरूरत नहीं है। हम देखने के पहले ही जानते हैं कि नहीं है। यह हमारा जानना हमारी मूढ़ता है। और यह मूढ़ता बड़ी महंगी पड़ गई है।

इसलिए एक बहुत मजे की घटना घटती है। वह घटना यह है कि इस जगत में हम कृष्ण, बुद्ध या महावीर जैसे लोगों को उनके मरने के बाद ही उनको भगवान मान पाते हैं, जिंदा में नहीं मान पाते। क्योंकि मरने के बाद कई आसानियां हो जाती हैं। पहली आसानी तो यह हो जाती है कि उनका मनुष्य रूप सामने नहीं रह जाता।

अब जैन मान सकते हैं कि महावीर के पसीने में सुगंध आती है। अब मान सकते हैं। लेकिन अगर महावीर सामने होते, तो मुश्किल पड़ती; इसको प्रमाणित करना पड़ता। अब मान सकते हैं, क्योंकि अब इसमें कोई झगड़ा नहीं है, इसमें कोई झंझट नहीं है। इसमें कोई झंझट नहीं है, इसमें अब कोई झगड़ा नहीं है।

इसलिए मुर्दा व्यक्तियों को भगवान मान लेना बहुत आसान है।

आसान इसलिए है कि उनकी मनुष्यता हमारे सामने से तिरोहित हो गई होती है। राम पर उनके गांव के धोबी को भी भरोसा नहीं था कि यह आदमी भगवान है। अब हम आराम से राम को भगवान मान सकते हैं। अब हमें तकलीफ नहीं है। अब मनुष्य रूप तिरोहित हो गया है। इसलिए अब हमें यह सोचने की सुविधा नहीं है कि वे भी हमारे जैसे मनुष्य हैं, भगवान कैसे हो सकते हैं!

फिर जैसे समय बीतता है, हम कथाएं गढ़ते चले जाते हैं। और उन कथाओं में हम यह कोशिश करते हैं कि किसी भी तरह से उनका मनुष्य रूप तिरोहित हो जाए। हमारी सारी कथाएं उनके मनुष्य रूप को तिरोहित करने का उपाय हैं। यह सिद्ध हमको करना पड़ता है बाद में कि वे मनुष्य नहीं थे, सिर्फ मनुष्य रूप में दिखाई पड़ रहे थे। फिर सब तरह से हम सिद्ध करते हैं। यह सारा सिद्ध करना हमारी उस मूढ़ता का ही हिस्सा है। जब वे मनुष्य रूप में सामने होते हैं, तो हमें तकलीफ होती है, क्योंकि उस रूप को असिद्ध नहीं किया जा सकता।

बुद्ध भी बीमार पड़ते हैं। यह बुद्ध का भक्त, जो उनको भगवान मानता हो, उसे बड़ी तकलीफ देता है। बुद्ध भी बीमार पड़ते हैं! बुद्ध को तो बीमार नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि बुद्ध कोई मनुष्य तो नहीं हैं!

फिर बाद में उसे कथाएं गढ़नी पड़ती हैं कि बुद्ध इसलिए बीमार पड़े कि उन्होंने किसी भक्त की बीमारी अपने ऊपर ले ली। इसलिए बीमार पड़े। या बुद्ध इसलिए बीमार पड़े कि उन्होंने सारे जगत की बीमारियां अपने में लेकर उनका सबका छुटकारा कर दिया।

जीसस को सूली लगी, तो भक्तों को खयाल था कि उनको मरना नहीं चाहिए सूली पर, क्योंकि अगर मर गए, तो फिर भगवान कैसे! मनुष्य रूप दिक्कत डाल रहा है। जीसस मर गए, तो भक्तों को बड़ी तकलीफ हुई। तो कथा बाद में गढनी शुरू हो गई कि वे तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित हो गए, रिसरेक्ट हो गए!

अगर यह मान लिया जाए कि वे तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित हो गए, तो वे फिर कब मरे? इसका ईसाइयों के पास कोई जवाब नहीं है। फिर वे मरे कब? अगर वे तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित हो गए और देखे गए, तो फिर वे मरे कब? फिर उन्हें दुबारा तो मरना चाहिए! कोई उत्तर नहीं है।

क्यों? हुए जीवित या नहीं, यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन आज दो हजार साल बाद इससे भरोसा मिलता है कि वे भगवान थे। सूली लगा दी, फिर भी जीवित हो गए। आदमी नहीं थे, आदमी होता तो मर जाता।

सूली जब लग रही थी, तब भक्त देख रहे थे आशा से कि कोई चमत्कार होगा! आखिरी क्षण में जीसस कोई खेल दिखाएंगे!

वही आदमी की मूढ़ता! आदमी भगवान को नहीं मानता, चमत्कार को मानता है। चमत्कार हो, तो उसे लगता है कि चलो, कुछ तो अपने से अलग है, कुछ भिन्न है। हाथ से राख निकाल देता है, ताबीज निकाल देता है; जरूर कुछ बात है!

आदमी से मतलब नहीं है। यह आदमी राख से भी दो कौड़ी का हो, तो चलेगा, लेकिन राख निकाल देता है हाथ से! मदारीगिरी से मतलब है। तो मदारी को हम चाहे एक दफा भगवान मान भी लें, हालांकि मन में हम जानते रहेंगे कि जरूर किसी ट्रिक से, कहीं चोगे वगैरह में छिपा रखी होगी—मन में। लेकिन जब तक खुल न जाए, तब तक कुछ कहना ठीक नहीं है। कहीं ताबीज निकाला होगा, क्योंकि स्विस मेड घड़ी अगर हाथ से निकलती हो, तो बिना छिपाए नहीं निकलेगी। हम जानते हैं कि स्विस मेड है; हाथ से निकल कैसे रही है!

ऐसे एक महात्मा बंबई में किसी के घर ठहरे होंगे। वे जब चले गए तो वह महिला मेरे पास आई और उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। मैं तो सारे अपने मित्रों, परिवारों, संबंधियों को सबको उनका भक्त बना दी। सिर्फ इसीलिए कि वे घड़ी, ताबीज न मालूम क्या—क्या निकाल देते हैं। इस बार बड़ी मुश्किल हो गई है। वे गए हैं और उनका बैग घर में रह गया है। उसमें दो सौ स्विस मेड घड़ियां हैं।

तो मैंने उससे पूछा कि तुझे पहले पक्का भरोसा था?

उसने कहा, भरोसा तो नहीं था। शक तो होता था भीतर कि जरूर कहीं न कहीं घड़ी छिपी होगी। अब प्रमाणं मिल गया।

तो अब तू क्या करेगी?

उसने कहा कि अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ी हूं। जिनको मैंने उनका भक्त बनाया, उनको भी मैं कहती हूं तो वे कहते हैं, तेरा दिमाग खराब हो गया है!

मैंने उससे पूछा कि तू जिनको कहती है, उनके कोई निहित स्वार्थ तो नहीं हैं?

उसने कहा, हैं। किसी का लड़का बीमार है; किसी को नौकरी नहीं मिल रही है, किसी का बाप पागल हो गया है; किसी का कुछ हो गया है।

तो अगर यह सिद्ध हो जाए कि वे बाबा चमत्कार जो कर रहे हैं, झूठा है, तो इनके लड़के की नौकरी का क्या होगा? इनकी बीमारी का क्या होगा? फलाने को कैंसर है, उसका क्या होगा?

तो मैंने कहा, तू ठहर! जब लड़के को नौकरी मिल जाए तब तू बताना जाकर। तब वे कहेंगे, हमको पहले से ही पता था। अभी उनका इनवेस्टमेंट है। अभी चमत्कार में थोड़ा न्यस्त स्वार्थ है। कृष्ण को आप न मानेंगे! कृष्ण को आप मान सकते हैं, अगर कोई चमत्कार हो। चमत्कार को मान सकते हैं। क्योंकि हमारी मूढ़ता चमत्कार और मदारीगिरी से प्रभावित होती है। चमत्कार हम देख सकते हैं, हमारे तल पर होता है। हाथ खाली है और राख गिर गई! अब इसमें कोई दिक्कत नहीं है। कोई चेतना ऊपर उठाने की जरूरत नहीं है। यह तो हमारी आंख में भी दिख जाता है कि हाथ खाली था और राख गिर गई। तो चमत्कार हो गया।

जो चमत्कार आपको चमत्कार मालूम पड़ता है, वह आपकी चेतना को ऊपर उठाने वाला सिद्ध नहीं हो सकता। वह आपकी बुद्धि जहां है, वहीं दिख जाता है। बड़ा चमत्कार तो यह है कि हम अपनी मनुष्यता से ऊपर उठकर थोड़ा देख पाएं, तो हमें क्या जैसे व्यक्ति का रूप दिखाई पड़ना शुरू हो।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, वे मुझे तुच्छ समझते हैं, क्योंकि मैं मनुष्य के शरीर में खड़ा हूं।

वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान वाले अज्ञानीजन राक्षसों के और असुरों के जैसे मोहित करने वाली प्रकृति अर्थात स्वभाव को ही धारण किए हुए हैं।

एक आखिरी बात, मनुष्य अनिर्मित, अपूर्ण चेतना है। जानवरों के पास पूरा व्यक्तित्व है। एक गाय पूरी गाय है, एक कुत्ता पूरा कुत्ता है; आदमी पूरा आदमी कभी नहीं हो पाता। आदमी कम—ज्यादा होता रहता है। आदमी आदमी की तरह पैदा नहीं होता, आदमी उसे बनना होता है। आदमी में विकास है। एक कुत्ता कुत्ते की तरह पैदा होता है। फिर आप किसी कुत्ते से यह नहीं कह सकते कि तुम अधूरे कुत्ते हो, या कम कुत्ते हो। कोई अधूरा कुत्ता नहीं है, कोई कम कुत्ता नहीं है। सब कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। वह जो कुत्तापन है, वह सबको मिला हुआ है एक—सा।

लेकिन आदमी से हम कह सकते हैं कि तुम थोड़े कम आदमी हो। किसी से हम कह सकते हैं कि तुम थोड़े ज्यादा आदमी हो। किसी से हम कह सकते हैं कि तुम्हारी आदमियत का क्या हुआ? किसी कुत्ते से कह सकते हैं कि तुम्हारे कुत्तेपन का क्या हुआ? कोई अर्थ नहीं है। व्यर्थ की बात है। कुत्ता हमेशा कुत्ता है। उसमें कभी कोई गड़बड़ नहीं होती।

आदमी इस जगत में अपूर्ण व्यक्तित्व है, बाकी सबके पास पूरा व्यक्तित्व है। इस लिहाज से बड़ी कठिनाई है। वह कठिनाई यह है कि आदमी पूरा आदमी न होने से, चाहे तो जानवरों से भी नीचे गिर सकता है। और यही उसकी गरिमा भी है कि वह चाहे तो आदमी से भी ऊपर, देवताओं से भी ऊपर उठ सकता है।

इसलिए, आपको यह बात इसलिए कह रहा हूं कि जानवरों में राक्षस कोई भी नहीं होता, क्योंकि जानवरों में देवता कोई भी नहीं होता। आदमी आदमी भी हो सकता है; नीचे गिर जाए तो राक्षस भी हो सकता है; ऊपर उठ जाए, तो देवता भी हो सकता है। आदमी एक संक्रमण व्यवस्था है। आदमी सुनिश्चित नहीं है, सृजन में, प्रक्रिया में है। तो आदमी दोनों तरफ जा सकता है।

और ध्यान रहे कि जीवन में ठहराव नहीं होता। अगर आप ईश्वर की तरफ नहीं जा रहे हैं, तो आप राक्षस की तरफ जाने लगेंगे। क्योंकि जाना पड़ेगा ही; रुकाव नहीं है। जीवन में एक गति है। जाना तो पड़ेगा ही। आप रुक नहीं सकते। आप यह नहीं कह सकते कि मैं जहां हूं वहीं ठहर जाऊंगा। आप कहीं हैं नहीं। जीवन एक गति है। आपको चलना तो पड़ेगा ही। इसमें कोई चुनाव नहीं है। अगर आप ऊपर की तरफ नहीं जा रहे हैं, तो आप नीचे की तरफ जाने लगेंगे।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि यह जो तुच्छ समझने वाली दृष्टि है, मुझे, ईश्वर अगर साकार खड़ा हो, तो तुच्छ समझती है, निराकार हो, तो कहती है, कहां है? यह जो बुद्धि है, यह जो मूढ़ता वाली बुद्धि है, यह राक्षसों जैसी हो जाती है, आसुरी हो जाती है। और फिर अपने ही—अपने ही—हाथ से बनाए गए अंधकार में अपने को डुबाती चली जाती है।

परमात्मा का कहीं भी लक्षण मिले? कहीं भी जरा—सी झलक मिले, उसे इनकार मत करना। क्योंकि वह तुम्हारे विकास का रास्ता है। कहीं बुराई बिलकुल पक्की भी हो, प्रमाणित भी हो, तो भी संदेह जारी रखना। क्योंकि उसे मान लेना, तुम्हारे गिरने का उपाय हो जाएगा। शैतान बिलकुल दरवाजे पर भी आकर बैठ जाए घर के, तो भी समझना कि नहीं है। और परमात्मा कहीं भी दिखाई न पड़े, तो भी जानना कि यहीं है। क्योंकि उसकी यह प्रतीति तुम्हारे भीतर जो हो सकता है विकास, उसके लिए सहयोगी होगी।

श्रेष्ठ को स्वीकार कर लेना, न दिखाई पड़ता हो तो भी; अश्रेष्ठ को इनकार कर देना, बिलकुल प्रत्यक्ष हो तो भी। तो ही मनुष्य ऊपर की ओर गति कर पाता है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
दैवी या आंसुरी धारा—(अध्याय—9) प्रवचन—पाँचवाँ

सूत्र:

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवौं प्रकृतिमश्रिताः।
भजज्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।13।।
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्‌ययुक्‌ता उपासते।।14।।
परंतु हे पार्थ दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन है, वे तो मेरे को अब भूतों का सनतन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूय जानकर अनन्य मन से युक्‌त हुए निरंतर भजते हैं।

और वे दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरंतर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए, और मेरे को बारंबार नमस्कार करते हुए, सदा मेरे ध्यान में युक्त हुए अनन्य भक्‌ति से मुझे उपासते हैं।

मनुष्य की मूढ़ता के संबंध में थोड़ी बातें और जान लेनी जरूरी हैं। क्योंकि उन्हें जानकर ही हम आज के सूत्र में प्रवेश कर सकेंगे। तीन लक्षण कृष्ण ने मूढ़ता के और कहे हैं, वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान वाले।

इन तीन शब्दों को ठीक से समझ लेना उपयोगी है। क्योंकि व्यर्थ आशा में जो उलझा हुआ है, वह सार्थक आशा करने में असमर्थ हो जाता है। व्यर्थ ज्ञान में जो उलझा है, सार्थक ज्ञान की ओर उसकी आंख नहीं उठ पाती। व्यर्थ कर्म में जो लीन है, वह उस कर्म को खोज ही नहीं पाता, जिसकी खोज से समस्त कर्मों के बंधन से मुक्ति संभव है।

व्यर्थ आशा क्या है? और हम सब जिस आशा में जीते हैं, उसमें हमने कभी कोई सार्थकता पाई है? सभी आशा में जीते हैं। आशा के बिना जीना तो कठिन है। आशा के सहारे ही जीते हैं। आशा का अर्थ है भविष्य। अतीत तो दुख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दे जाता। अपने अतीत को लौटकर देखें, तो दुख का एक समूह, दुख की एक राशि मालूम पड़ती है, विफलताओं का एक ढेर, सभी सपनों की राख। पीछे लौटकर देखें, तो कोई कणभर को भी आनंद की कोई झलक नहीं दिखाई पड़ती है।

अगर मनुष्य को अतीत के सहारे ही जीना हो, तो मनुष्य इसी क्षण गिर जाए और जी न सके। क्योंकि अतीत में कुछ भी तो नहीं है, जो प्रेरणा बने। अतीत में कुछ भी तो नहीं है, जो सहारा बने। अतीत में कुछ भी तो नहीं है, जो जीवन को आगे ले जाने के लिए गति दे।

तो अतीत से हम जी नहीं सकते, क्योंकि अतीत में हमारा कोई अनुभव जीवन का नहीं है। अतीत तो दुख की एक लंबी कथा है। फिर भी हम जीते हैं, तो हमारे जीने की प्रेरणा कहां से आती होगी? पीछे से तो यह धक्का आता नहीं है। निश्चित ही यह खिंचाव आगे से आता होगा। भविष्य हमें खींचता है, और भविष्य के खिंचाव में हम चलते हैं। अतीत के धक्के में नहीं, भविष्य के खिंचाव में, भविष्य के आकर्षण में। भविष्य के आकर्षण का नाम आशा है। आशा का अर्थ है, जो कल नहीं हुआ, वह आने वाले कल में हो सकेगा। जो कल नहीं मिला, वह कल मिलेगा। जो पीछे संभव नहीं हुआ, वह भी आगे संभव हो सकता है। इस संभावना का जो सपना है, वही हमें जिलाता है। अतीत व्यर्थ गया, कोई हर्ज नहीं; भविष्य में सार्थकता मिल जाएगी। असफलता लगी हाथ में अब तक, लेकिन कल सफलता के फूल भी खिल सकते हैं। यह संभावना, यह आशा हमें खींचती चली जाती है। आशा के वश हम जीते हैं।

उमर खय्याम ने अपने एक गीत की कड़ी में कहा है कि मैंने लोगों को दुख झेलते देखा और फिर भी जीते देखा! लोगों को पीड़ा पाते देखा और फिर भी जीवेषणा से भरा देखा, तो मैं बहुत चिंतित हुआ। इतना दुख है कि समस्त मनुष्य—जाति को आत्महत्या कर लेनी चाहिए। दुख इतना है कि जीवन कभी का असंभव हो जाना चाहिए था। लेकिन जीवन असंभव नहीं होता। दुखी से दुखी व्यक्ति भी जीए चला जाता है।

तो उमर खय्याम ने कहा है कि मैंने पूछा ज्ञानियों से, बुद्धिमानों से, लेकिन कोई उत्तर न पाया। क्योंकि उन ज्ञानियों और बुद्धिमानों को भी मैंने दुख में ही पड़े हुए देखा। और उनके दरवाजे पर, उनके मकान पर, मैं जिस दरवाजे से प्रवेश किया, सब चर्चा के बाद उसी दरवाजे से मुझे वापस आ जाना पड़ा, वही का वही। कोई उत्तर हाथ न आया। सब जगह से निराश होकर एक दिन मैंने आकाश से पूछा कि जमीन पर इतने लोग रह चुके हैं अरबों—अरबों, न मालूम कितने कालों से! आकाश, तूने सबको देखा है। सब दुख में जीए। क्या तू मुझे बता सकता है कि उनके जीने का राज क्या है? सीक्रेट क्या है? इतना दुख, फिर भी आदमी जीए क्यों चला जाता है?

तो उमर खय्याम ने कहा है, आकाश ने एक ही शब्द उच्चारा, आशा, होप। एक ही छोटा—सा शब्द, आशा।

आदमी जीए चला जाता है, दौड़े चला जाता है। कोई स्वप्न पूरा हो सकेगा, इसलिए पैरों में गति बनी रहती है, प्राणों में ऊर्जा बनी रहती है। लेकिन यहीं व्यर्थ आशा को समझ लेना जरूरी होगा। आदमी आशा करता है भविष्य की। जिसे उसने आज अतीत बना लिया है, वह भी कल भविष्य था। आज का दिन बीत गया, अतीत हो गया। कल चौबीस घंटे पहले यह भी भविष्य था और मैंने अपनी आशा का दीया इस चौबीस घंटे पर जला रखा था, आज वह भी अतीत हो गया। लेकिन मैं लौटकर भी न देखूंगा कि कल जो मैंने दीया जलाया था आशा का, वह इन चौबीस घंटों में पूरा हुआ या नहीं!

न, बिना यह फिक्र किए मैं अपने दीए की ज्योति को आगे आने वाले चौबीस घंटों में सरका दूंगा। रोज अतीत होता चला जाएगा समय, और मैं कभी लौटकर यह न देखूंगा कि मेरी आशा व्यर्थ तो नहीं है? क्योंकि रोज समय बीत जाता है और वह पूरी नहीं होती। वृथा आशा का अर्थ है, इस बात की प्रतीति न हो पाए कि जो मैं चाहता हूं वह चाहना ही व्यर्थ है; वह कभी पूरा नहीं होगा। उस चाह का स्वभाव ही अपूर रहना है। जो मैं मांगता हूं, वह कभी नहीं मिलेगा। लेकिन समय का धोखा! हम रोज आगे सरका देते हैं, पोस्टपोन करते चले जाते हैं। और कभी यह नहीं सोचते कि जिसे हम आज अतीत कह रहे हैं, वह भी कभी भविष्य था। उसमें भी हमने आशा के बहुत—बहुत बीज बोकर रखे थे, वे एक भी फलित नहीं हुए एक भी अंकुर नहीं निकला, एक भी फूल नहीं खिला। तो पहली तो आशा की व्यर्थता इससे बनती है कि समय बीतता चला जाता है, लेकिन जो भूल हमने कल की थी, वही हम आज भी करते हैं, वही हम कल भी करेंगे। मौत आ जाएगी, लेकिन हमारी भूल नहीं बदलेगी।

बुद्धिमान व्यक्ति वह है, जो लौटकर यह देखे कि मैं पचास साल जी लिया, कौन—सी आशा पूरी हुई? अगर मैंने चाहा था प्रेम, तो मुझे मिला? अगर मैंने चाहा था सुख, तो मैंने पाया? अगर मैंने चाही थी शाति, तो फलित हुई? अगर मैंने आनंद की आशा बांधी थी, तो उसकी बूंद भी मिली? मैं पचास वर्ष जी लिया हूं मैंने जो भी चाहा था, जो आशाएं लेकर जीवन की यात्रा पर निकला था, जीवन के रास्ते में वह कोई भी मंजिल घटित नहीं हुई। फिर भी मैं उन्हीं आशाओं को बांधे चला जा रहा हूं! कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरी आशाएं ही दुराशाएं हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि जो मैं चाहता हूं वह जीवन का नियम ही नहीं है कि मिले; और वह मैंने चाहा ही नहीं, जो कि मिल सकता था।

हमने क्या चाहा है, उसे हम थोड़ा विस्तार में देखें, तो खयाल में आ जाएगा कि दुराशा कैसी है।

हमने क्या चाहा है? जो भी चाहा है, एक बात पक्की है, वह मिला नहीं है। और ऐसा नहीं कि आपने ही ऐसा किया है। पूछें पड़ोसियों से! इतिहास में पीछे लौटें। पूछें उन सबसे, जिन्होंने यही चाहा है। किसी को भी नहीं मिला है। आज तक एक भी मनुष्य ने यह नहीं कहा है कि मुझे दूसरे से सुख मिल गया हो। लेकिन सभी ने दूसरे से सुख चाहा है। अब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य ने यह नहीं कहा है कि मैं दूसरे से सुख पाने में समर्थ हो गया हूं। जिन्होंने कहा है कि मुझे सुख मिला है, उन्होंने कहा है, सुख मैंने अपने भीतर खोजा, तब मिला। और जब तक मैंने दूसरे के पास से सुख पाने की कोशिश की, तब तक केवल दुख पाया, सुख नहीं मिला।

लेकिन हम सभी दूसरे से सुख चाह रहे हैं। दूसरे बदल जाते हैं, लेकिन दूसरे से सुख चाहना नहीं बदलता। आज मैं एक स्त्री से सुख चाह सकता हूं? कल दूसरी स्त्री से, परसों तीसरी स्त्री से। स्त्रियां बदल जाती हैं। आज मैं बेटे से सुख चाहता हूं कल मित्र से चाहता हूं परसों किसी और से चाहता हूं। आज अपनी मां से सुख चाहता हूं आज अपने पिता से सुख चाहता हूं कल अपनी पत्नी से सुख चाहता हूं लेकिन दूसरा, दि अदर मेरे सुख का केंद्र होता है। और मनुष्य के पूरे इतिहास में एक भी अपवाद नहीं है, एक भी एक्सेप्शन नहीं है, एक भी मनुष्य ने यह नहीं कहा है आज तक कि मुझे दूसरे से सुख मिला। आपको भी नहीं मिला है।

लेकिन एक बड़े मजे की बात है। जब दूसरे से सुख नहीं मिलता, तब आप एक दूसरी भूल करते हैं। और वह दूसरी भूल यह है कि दूसरे से दुख मिला। जब दूसरे से सुख नहीं मिल सकता, तो ध्यान रखना, दूसरे से दुख भी नहीं मिल सकता। भ्रांति एक ही है।

कोई सोचता है, दूसरे से सुख मिल जाए यह हो नहीं सकता। क्योंकि सुख की सारी संभावना स्वयं से खुलती है, दूसरे से नहीं। खुलती ही नहीं। ठीक वैसे ही, जैसे कोई रेत से तेल निकालना चाहे और न निकले। इसमें कोई रेत का कसूर नहीं है। रेत में तेल है ही नहीं। दूसरे में सुख है ही नहीं। लेकिन जब दूसरे में विफलता आती है—जो कि आएगी ही—तो हम सोचते हैं, दूसरे से दुख मिला। यह दूसरी भूल है। क्योंकि जिससे सुख नहीं मिल सकता, उससे दुख भी नहीं मिल सकता।

तब दूसरा सूत्र आपसे कहता हूं। सब दुख स्वयं के कारण मिलते हैं और सब सुख स्वयं के कारण मिलते हैं। सुख और दुख का केंद्र स्वयं की तरफ है। लेकिन हमारी आशा के जो तीर हैं, वे दूसरे की तरफ लगे रहते हैं। यह वृथा आशा है, और ऐसा व्यक्ति मूढ़ है। मूढ़ वह इसलिए कि वह जीवन के नियम को समझ ही नहीं पा रहा है। और जीवन का नियम प्रतिपल प्रकट हो रहा है।

जब भी चाहोगे दूसरे से सुख, तत्काल दुख मिलेगा। यह दुख दूसरे से नहीं मिलता, दूसरे से सुख चाहने के कारण मिलता है। आपने नियम के विपरीत चलने की कोशिश की, इसलिए दुख मिल जाता है। आपने नियम के प्रतिकूल बहने की कोशिश की, टांग टूट जाती है। आपने नियम के प्रतिकूल चलने की कोशिश की, दीवाल से सिर टकरा जाता है। इसमें दीवाल का कसूर नहीं है। दीवाल निकलने के लिए नहीं है। निकलना हो, तो दरवाजे से निकलना चाहिए।

लेकिन अगर आपका एक दीवाल से सिर टकराता है, तो आप तत्काल दूसरी दीवाल चुन लेते हैं कि इससे निकलने की कोशिश करेंगे। और जिंदगी भर दीवालें चुनते चले जाते हैं; और वह जो दरवाजा है, उसे चूकते चले जाते हैं। एक दीवाल से ऊबते हैं, तो दूसरी दीवाल को पकड लेते हैं। दूसरी से ऊबते हैं, तो तीसरी दीवाल को पकड़ लेते हैं। लेकिन दीवाल को नहीं छोड़ते!

हर आदमी दुखी है। दुख का कारण जीवन नहीं है। दुख का कारण जीवन बिलकुल नहीं है। क्योंकि जीवन तो परमात्मा का स्वरूप है। दुख वहा हो नहीं सकता। दुख का कारण है, जीवन के जो शाश्वत नियम हैं, उनकी नासमझी।

जमीन में कशिश है। आप एक झाडू पर से गिर पड़ेंगे, तो टल टूट जाएगी। इसमें न तो झाडू का कोई हाथ है और न जमीन का कोई हाथ है। जमीन तो सिर्फ चीजों को नीचे की तरफ खींचती है। आपको झाडू पर सम्हलकर चढ़ना चाहिए। आप गिरते हैं, तो आप जिम्मेवार हैं ' आप यह नहीं कह सकते हैं कि जमीन की कशिश ने मेरे पैर तोड़ डाले। जमीन को कोई आपसे मतलब नहीं है। आप न गिरे होते, तो जमीन की कशिश भीतर पड़ी रहती। वह नियम आप पर लागू न होता। नियम तो काम कर रहे हैं। जब आप उनके प्रतिकूल होते हैं, तो दुख उत्पन्न हो जाता है, जब उनके अनुकूल होते हैं, तो सुख उत्पन्न हो जाता है।

ध्यान रखें, सुख का एक ही अर्थ है, जीवन के नियम के जो अनुकूल है, वह सुख को उपलब्ध हो जाता है। दुख का एक ही अर्थ है कि जीवन के नियम के जो प्रतिकूल है, वह दुख को उपलब्ध हो जाता है। अगर आप दुखी हैं। तो स्मरण कर लें कि आप जीवन के आधारभूत नियम के प्रतिकूल चल रहे हैं। कभी भूल—चूक से अगर आपको सुख की कोई झलक मिलती है, तो वह इसीलिए मिलती कि कभी भूल—चूक से आप जीवन के नियम छ अनुकूल पड़ जाते हैं। कभी भूल से आप दीवाल से निकलना भूल जाते हैं और दरवाजे से निकल जाते हैं। या कभी ऐसा हो जाता है कि आप दरवाजे को दीवाल समझ लेते हैं और निकल जाते हैं। लेकिन जब भी सुख फलित होता है, तो नियम की अनुकूलता से।

वृथा आशा का अर्थ है, नियमों के प्रतिकूल आशा। जैसा मैंने उदाहरण के लिए आपसे कहा, दूसरे से सुख मिल सकता है, यह एक वृथा आशा है। इसका चुकता परिणाम दुख होगा। और जब दुख होगा, तो हम कहेंगे, दूसरे से दुख मिल रहा है। हम अपनी भ्रांति नहीं छोड़ेंगे, यह मूढ़ता है। दुख मिल रहा है, सबूत हो गया कि मैंने जो चाह की, वह नियम के प्रतिकूल थी।

दूसरे से कुछ भी नहीं मिल सकता है। दूसरे से मिलने का कोई उपाय ही नहीं है। इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, वह हम अपने ही भीतर खोदकर पाते हैं।

और दूसरी तरफ से समझने की कोशिश करें। प्रत्येक व्यक्ति अपने चारों ओर आशाओं का, इच्छाओं का एक जाल बुनता है। अगर आशाएं टूटती हैं, जाल टूटता है, इच्छाएं पूरी नहीं होतीं, तो वह समझता है कि परमात्मा नाखुश है, भाग्य साथ नहीं दे रहा है। लेकिन वह यह कभी नहीं सोचता कि मैंने जो जाल बुना है, वह जाल गलत है।

भाग्य हर एक के साथ है। भाग्य का अर्थ है, जीवन का परम नियम, दि अल्टिमेट ला। भाग्य सबके साथ है। जब आप भाग्य के साथ होते हैं, तो सफल हो जाते हैं। जब आप भाग्य के विपरीत हो जाते हैं, तो असफल हो जाते हैं। भाग्य किसी के विपरीत नहीं है। लेकिन हमारे जाल में ही बुनियादी भूलें होती हैं। थोड़ा अपने जाल की तरफ देखें।

एक आदमी चाहता है कि धन मुझे मिल जाए, तो मैं धनी हो जाऊंगा। भीतर एक निर्धनता का बोध है हर आदमी को, एक इनर पावर्टी है। हर आदमी को लगता है भीतर, मेरे पास कुछ भी नहीं है; एक खालीपन, एंप्टीनेस, रिक्तता है। भीतर कुछ भी नहीं है। इसे कैसे भर लूं! इस रिक्तता को भरने की दौड़ शुरू होती है।

कोई आदमी धन से भरना चाहता है। गलत जाल रचना शुरू कर दिया। क्योंकि ध्यान रहे, धन भीतर नहीं जा सकता, और भीतर है निर्धनता। और धन बाहर रह जाएगा। धन भीतर जाता ही नहीं। इसलिए एक बड़े मजे की घटना घटती है, जितना धन इकट्ठा होता है, उतनी भीतर की निर्धनता और प्रकट होने लगती है। इसलिए अमीर आदमी से ज्यादा गरीब आदमी जमीन पर खोजना मुश्किल है। इसलिए कई बार ऐसा हुआ कि अमीरों के बेटे—बुद्ध और महावीर—अमीरी को छोड़कर सड़क पर भीख मांगने चले गए। यह बड़े मजे की बात है! जैसे ही किसी मुल्क में अमीरी बढ़ती है, वैसे ही उस मुल्क में एक भीतरी दीनता का भाव गहन हो जाता है। जब तक मुल्क गरीब होता है, तब तक भीतरी गरीबी का पता नहीं चलता। आज पश्चिम के सभी विचारक आंतरिक दरिद्रता की बात करते हैं। चाहे सार्त्र, चाहे कामू चाहे हाइडेगर, वे सभी यह कहते हैं कि आदमी भीतर बिलकुल खाली है, एंप्टी है। इसको हम कैसे भरें?

गरीब आदमी को पता चलता है, पेट खाली है; अमीर आदमी को पता चलता है, आत्मा खाली है। पेट को भरना बहुत कठिन नहीं है, आत्मा को भरना बहुत कठिन है। असल में पेट खाली होता है, तो आत्मा के खाली होने का खयाल ही नहीं उठ पाता। इसलिए असली गरीबी तो उस दिन शुरू होती है, जिस दिन यह बाहरी गरीबी मिटती है। उस दिन असली गरीबी शुरू होती है।

एक और गहरी गरीबी है। उस गरीबी को भरने का भाव मन में होता है। क्योंकि खाली कोई भी नहीं रहना चाहता। खाली होना पीड़ा है। भरापन चाहिए, एक फुलफिलमेंट चाहिए।

कैसे उसको भरें? आदमी धन इकट्ठा करने में लग जाता है। नियम की भूल हुई जा रही है। धन इकट्ठा हो जाएगा, तो भी भीतर भर नहीं सकता। क्योंकि बैंक बैलेंस किसी भी तरह इनर बैलेंस नहीं बन सकता। वह तिजोड़ी में भरता जाएगा। आत्मा में कैसे धन जाएगा?

तो जो आदमी धन इकट्ठा करके सोचता हो कि मैं भरापन पा लूं वह वृथा आशा कर रहा है। अगर असफल हुआ, तब तो असफल होगा ही; अगर सफल हुआ, तो भी असफल हो जाएगा।

इसको और ठीक से समझ लें।

अगर असफल हुआ, धन न कमा पाया, तब तो असफल होगा ही। क्योंकि जीवन दुख से भर जाएगा, फ्रस्ट्रेशन से, विषाद से, कि इतनी कोशिश की और धन भी न कमा पाया! और अगर सफल हो गया, तो और भी बड़ी असफलता अनुभव होगी कि धन कमा लिया; पूरा जीवन गंवा दिया; और धन का ढेर लग गया; और मैं तो खाली का खाली हूं!

कठिनाई धन में नहीं है, बुराई धन में नहीं है। धन का कोई कसूर नहीं है। आपको नियम की समझ नहीं है। आप उससे भरना चाहते थे भीतर की कमी को, जो भीतर नहीं जा सकता! इसमें धन का क्या कसूर है? फिर यह पागल धन को गालियां देना शुरू करेगा। दूसरी भूल शुरू हुई। फिर यह धन को गाली देना शुरू करेगा कि धन पाप है, कि धन बुरा है, कि धन मैं छूना नहीं चाहता। यह वही की वही भूल है। धन का इसमें कोई कसूर नहीं है। धन क्या कर सकता है? धन बाहर की चीज है, बाहर के काम आ सकता है। उसे भीतर भरने की कोशिश आपकी भूल थी, धन का कोई कसूर न था।

तीसरी तरफ से देखें।

एक आदमी यश पाना चाहता है, प्रतिष्ठा पाना चाहता है, अहंकार पाना चाहता है—जाना जाए कि वह कोई है! एक अर्थ में ठीक है। खोज है यह भी आंतरिक। हर आदमी जानना चाहता है, वस्तुत: मैं कौन हूं। यह बिलकुल भीतरी भूख है। जानना चाहता है, मैं कौन हूं। लेकिन गलत रास्ते पर जा सकता है। बजाय यह जानने के कि मैं कौन हूं दूसरों को जनाने चल पड़े कि मैं कौन हूं। तो उपद्रव शुरू हो गया! बजाय जानने के कि मैं कौन हूं क्योंकि मैं कौन हूं यह तो भीतरी खोज है, दूसरों को जनाने की कोशिश कि मैं कौन हूं...।

जरा देखें, किसी राजनीतिज्ञ को आपका धक्का लग जाए, तो वह आपकी तरफ आंख उठाकर कहेगा, जानते नहीं, मैं कौन हूं? उसको खुद भी पता नहीं है। लेकिन जब वह कह रहा है, जानते नहीं, मैं कौन हूं तो उसका मतलब है कि अखबार में रोज फोटो छपती है, फिर भी जानते नहीं, मैं कौन हूं! अभी न भी होऊं मिनिस्टर, तो कोई हर्ज नहीं। पहले मिनिस्टर रह चुका हूं भूतपूर्व हूं एक्स मिनिस्टर हूं! जानते नहीं, मैं कौन हूं!

आदमी जानना चाहता है स्वयं कि मैं कौन हूं यह उसकी भीतरी भूख है। लेकिन नियम की भूल हो सकती है। और तब वह आदमी दूसरों को जनाने निकल पड़ेगा कि मैं कौन हूं। जिंदगी बीत जाएगी दूसरों को समझाते—समझाते कि मैं यह हूं, मैं यह हूं। और आखिर में वह पाएगा, अगर सफल हो गया, तो भी असफल हो जाएगा। आखिर में पाएगा, सबने जान लिया है कि मैं कौन हूं—प्रधानमंत्री हूं कि राष्ट्रपति हूं कि यह हूं या वह हूं—और मुझे खुद तो अभी तक पता ही नहीं चला कि मैं कौन हूं। तब एक भारी विफलता हाथ लगेगी। अगर असफल हुआ, तो असफल होगा। अगर सफल हुआ, तो भी असफल हो जाएगा।

वृथा आशा का अर्थ है, सफलता संभव ही नहीं है। चाहे जीतो, चाहे हारो, हार निश्चित है। सफलता संभव ही नहीं है। तो दुनिया में जो लोग। बहुत यश पा लेते हैं, बड़ी पीड़ा से भर जाते हैं। जिंदगी भर कोशिश की यश को कमाने के लिए। अखबारों की कटिंग काटकर घर में रख लेते हैं। फाइल बना लेते हैं। फिर कोई पूछता ही नहीं। फिर एक वक्त आता है कि सब जान लेते हैं। अब बात समाप्त हो गई। भीतर कुछ घटित नहीं होता। भीतर कुछ घटित नहीं होता।

इसलिए बहुत प्रतिष्ठित लोग भीतर बहुत अप्रतिष्ठा में मरते हैं। बहुत यशस्वी लोग भीतर बड़ी हीनता के बोध से भर जाते हैं; बड़ी इनफीरिआरिटी पकड़ लेती है। सब जानते हैं उन्हें, वे खुद ही अपने को नहीं जानते हैं! सब पहचानते हैं उन्हें, खुद ही वे अपने को नहीं पहचानते हैं! सारी दुनिया उन्हें जान लेती है, और वे अपने से अपरिचित खड़े हैं! पीड़ा पैदा होगी। वृथा आशा!

तो कृष्ण कहते हैं, मूढ़ता का पहला लक्षण, वृथा आशा।

वृथा कर्म। ऐसे कर्म हैं, जो वृथा हैं, लेकिन हम किए चले जाते हैं। वृथा कर्म से अर्थ है, ऐसा कर्म, जिससे सिवाय अहित के और कुछ भी नहीं होता। उदाहरण के लिए, आप जानते हैं, क्रोध वृथा कर्म है, लेकिन रोज किए चले जाते हैं। रोज करते हैं, रोज पछता भी लेते हैं। रोज मन में तय भी कर लेते हैं कि अब नहीं करूंगा, क्योंकि वृथापन समझ में आता है। लेकिन घड़ी दो घड़ी भी नहीं बीत पाती है कि क्रोध फिर होता है।

इस कर्म से आपको कोई फायदा नहीं होता। कभी किसी को नहीं हुआ। हो नहीं सकता है। क्योंकि क्रोध का अर्थ है, दूसरे की गलती के लिए अपने को सजा देना। एक आदमी ने मुझे गाली दे दी, यह गलती उसकी है। क्रोध मैं कर रहा हूं सजा मैं अपने को दे रहा हूं। वृथा कर्म का अर्थ है, गलती किसी और की, अपराधी कोई और, सजा कोई और भुगत रहा है।

बुद्ध को किसी ने गाली दी। बुद्ध ने सुन ली और अपने रास्ते पर चलने लगे। बुद्ध के भिक्षु आनंद ने कहा, इस आदमी ने गाली दी है, इसको कुछ उत्तर नहीं देते हैं?

बुद्ध ने कहा, मैंने बहुत समय पहले से दूसरों की गलतियों के लिए अपने को सजा देना बंद कर दिया है। दूसरे ने गलती की, गाली देना उसका काम है, वह जाने। मैं कहां आता हूं? दे, न दे; वजनी गाली दे, कम वजनी गाली दे; ताकत लगाए न लगाए। उसने मेहनत की। गांव से यात्रा करके रास्ते तक आया गाली देने, दे दी। उसने अपना काम पूरा किया, वह लौट गया। मेरा क्या लेना—देना है? न मैंने उसे गाली देने को उकसाया, न मैंने उसे प्रेरित किया। मेरा कोई संबंध ही नहीं है। मैं असंबंधित हूं। मैंने बहुत समय पहले दूसरों की गलतियों के लिए अपने को सजा देना बंद कर दिया है। क्योंकि क्रोध मैं करूं, जलूंगा मैं, आग मेरे भीतर उठेगी। रोआं—रोआं मेरा झुलस जाएगा। प्राण मेरे कंप उठेंगे। रक्तचाप मेरा बढ़ेगा। रात मुझे नींद नहीं आएगी। और यह आदमी, हो सकता है, गाली देकर मजे से सो जाए। इसने अपना काम पूरा कर लिया।

वृथा कर्म का अर्थ है, जिससे सिवाय हानि के और कुछ भी नहीं होता, लेकिन फिर भी हम किए चले जाते हैं। क्यों किए चले जाते हैं? एक यात्रिक आदत के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। एक मूर्च्छा, एक निद्रा पकड़े हुए है, और किए चले जाते हैं। कल भी किया था, आज भी किया है। सौ में निन्यानबे मौके हैं कि कल भी करेंगे। जीवनभर—अगर आप अपने वृथा कर्मों का अनुपात जोड़े, तो आपको पता चलेगा कि आपका पूरा जीवन वृथा कर्मों का एक जोड़ है।

अहंकार के लिए हम कितने कर्म करते रहते हैं! शायद हमारे जीवन का निन्यानबे प्रतिशत हिस्सा ऐसे कर्मों में संलग्न होता है, जिससे हम अपने अहंकार को मजबूत करके दूसरों को दिखाना चाहते हैं। चाहे हम कपड़े पहनते हों, चाहे हम मकान बनाते हों, चाहे हम अपनी पत्नी को गहने से लाद देते हों, इन सबके पीछे, इस सारी दौड़ के पीछे, एक मैं को प्रकट करने की चेष्टा चल रही है कि मैं हूं। और मैं साधारण नहीं हूं नोबडी नहीं हूं समबडी हूं। इस मैं को मजबूत करने की कोशिश चल रही है। इस कोशिश में हम सारा जीवन गंवा देते हैं। एक आदमी बड़ा मकान बनाता है, सिर्फ इसलिए कि दूसरों के मकानों को छोटा करके दिखा दे। समझ लीजिए, दिखा भी दिया। दूसरों के मकान छोटे भी हो गए, आपका मकान बड़ा हो गया। होगा क्या? इससे क्या फलित होगा?

यह छोटे बच्चे जैसी दौड़ है। छोटे बच्चे अक्सर अपने बाप के पास टेबल पर ऊपर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं, मैं आपसे बड़ा हो गया। अगर आपके मकान के बड़े होने से आप पड़ोसी से बड़े होते हैं, तो इस बच्चे के तर्क में कोई गलती नहीं है। तब तो जो छिपकली आपकी छत पर चल रही है, वह आपसे बड़ी हो गई! अगर मकान ऊंचा होने से आप बड़े हो सकते, तो बड़ा होना एकदम आसान था। तब तो आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं, बड़ी मुश्किल हो गई। तब तो उनके ऊपर और बादल उड़ रहे हैं, बड़ी मुश्किल हो गई। और चांद—तारे हैं; कहा तक ऊपर जाइएगा? और कहीं ऊंचाई, भौतिक ऊंचाई, भीतरी ऊंचाई से कोई संबंध रखती है?

अक्सर उलटा होता है। अक्सर यह होता है कि भीतरी ऊंचाई से भरा हुआ आदमी बाहरी ऊंचाई की चिंता ही नहीं करता। क्योंकि इतना आश्वस्त होता है भीतरी ऊंचाई से कि बाहरी ऊंचाई से क्या फर्क पड़ता है! इसलिए अक्सर अगर बाप से उसका बेटा कुर्सी पर चढ़कर कहे कि मैं तुमसे बड़ा हो गया, तो बाप खुश होता है, और कहता है, बिलकुल ठीक, जरूर बड़े हो गए। अगर बाप से बेटा कुश्ती लड़ता है, तो बाप चित जमीन पर लेट जाता है, बेटे को जीत जाने देता है। क्योंकि खुद की जीत इतनी सुनिश्चित है कि उसे सिद्ध करने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। बेटे को हराने में भी क्या अर्थ है? हारा ही हुआ है।

लेकिन अगर बाप कभी ऐसा मिल जाए—और बहुत बाप मिल जाएंगे, जो छोटे—से बेटे को दबाकर उसकी छाती पर बैठ जाएंगे कि मैं तेरा बाप हूं तू मुझे हराने की कोशिश कर रहा है?

यह जो छाती पर बेटे की बैठा हुआ बाप है, यह हार गया। इसे भरोसा ही नहीं है, बाप होने का भी भरोसा नहीं है। जो गुरु अपने शिष्य को हराने में लगा हो, वह हार गया। गुरु की तो गुरुता इसमें है कि शिष्य अगर लड़ने आ जाए तो वह हार जाए और कह दे कि बैठ जाओ मेरी छाती पर; जीत गए तुम।

जितना आश्वासन हो अपने भीतर की स्थिति का, यथार्थ का, उतनी ही बाहर की बातें बेमानी हो जाती हैं। लेकिन हम जो कर्म कर रहे हैं, वे बाहर की बातों के लिए हैं। हम सफल भी हो जाएंगे, तब हम पाएंगे कि वृथा हुआ कर्म, वृथा हुई दौड़।

नेपोलियन भी मरते वक्त वैसा ही दीन और दरिद्र है, सिकंदर भी मरते वक्त वैसा ही दीन और दरिद्र है, जैसा कोई बड़े से बड़ा भिखारी हो सकता है।

यह सारे जीवन की दौड़ का क्या हुआ? क्या है निष्पत्ति? यह इतना कर्म, इतने विराट कर्म का आयोजन, फल क्या है? इतनी दौड़— धूप, पहुंचना कहां होता है? पसीना बहुत बह जाता है, हाथ तो कुछ आता नहीं है!

कृष्ण इसे वृथा कर्म कहते हैं। क्या कहते हैं, यह कर्म व्यर्थ है। मूढ़जन व्यर्थ कर्म करते रहते हैं।

सार्थक कर्म क्या है? सार्थक कर्म का अर्थ है, व्यर्थ कर्म से कितना ही हम कुछ करें, कभी कुछ नहीं निकलता; और सार्थक कर्म से अभी निकलता है और यहीं निकलता है। व्यर्थ कर्म से कभी कुछ नहीं निकलता। और सार्थक कर्म से अभी निकलता है, यहीं निकलता है, कल की प्रतीक्षा नहीं करनी होती।

जैसा मैंने कहा, जब आप क्रोध करते हैं, तो आप भीतर जल जाते हैं। रास्ते पर चलते हुए एक अनजान बच्चे की तरफ देखकर आप मुस्कुरा देते हैं, तो भीतर आप खिल जाते हैं। एक आदमी रास्ते पर चला जा रहा है, उसका सामान गिर जाता है, आप उठाकर दे देते हैं और अपने रास्ते पर चले जाते हैं। यह कृत्य बहुत छोटा है, लेकिन भीतर बहुत अर्थ रखता है। कृत्य बिलकुल छोटा है। एक आदमी का छाता गिर गया है और आपने उठाकर दे दिया और अपने रास्ते पर चले गए। कहीं कोई विराट कर्म नहीं हो गया है। कोई अखबारों में इसकी खबर नहीं छपेगी। इतिहास में कोई लेखा—खोजा नहीं होगा।

लेकिन जो आदमी दूसरे के छाते के लिए झुक जाता है, उठाकर हाथ में दे देता है और चल पड़ता है, इसके भीतर इसी वक्त कुछ हो गया। दूसरे के लिए इतना करने का जो सदभाव है, वह भीतर आनंद को इसी क्षण जन्म दे जाता है—इसी क्षण, कल के लिए नहीं रुकना पड़ेगा।

लेकिन हम किसी का छाता भी इतनी आसानी से उठाकर नहीं दे सकते। छाता उठाकर हम खड़े होकर देखेंगे कि धन्यवाद देता है या नहीं। तब हमने व्यर्थ आशा शुरू कर दी। और हम चूक गए एक मौका, एक शुद्ध प्रेम के कृत्य का, ए प्योर एक्ट आफ लव। मौका चूक गए। हमने धन्यवाद में उसको भी बेच दिया। अपेक्षा ने उसे भी नष्ट कर दिया।

सार्थक कर्म वह है, जो हमारी आत्मा से सहज फलित होता है और जिस कर्म में अनिवार्य रूप से प्रेम मौजूद होता है। व्यर्थ कर्म वह है, जो हानिकर है, और जिसमें अनिवार्य रूप से क्रोध मौजूद रहता है, या अहंकार मौजूद रहता है; या ईर्ष्या मौजूद रहती है। वे सब एक ही बीमारी के अलग— अलग नाम है।

सार्थक कर्म अगर हमारे जीवन में बढ़ जाएं, तो हमें कल के लिए आशा नहीं रखनी पड़ती, आज ही हम धनी हो जाते हैं। लेकिन सार्थक कर्म को पहचानने का क्या रास्ता है? एक ही रास्ता है, जो कर्म इसी क्षण सारे प्राण को आनंद से भर जाए—इसी क्षण।

और ध्यान रहे, इसी क्षण केवल वे ही कृत्य आपके प्राण को आनंद से भर सकते हैं, जिन्हें पुराने धर्मशास्त्रों में पुण्य कहा है। पाप का अर्थ है, वृथा कर्म, जिससे कभी कोई निष्पत्ति न होगी। पुण्य का अर्थ है, ऐसा कर्म, जो अभी आनंद से भर जाता है।

लेकिन हम ऐसे बेईमान हैं और ऐसे चालाक हैं कि हम पुण्य को भी वृथा कर्म की कोटि में बना लिए हैं, रख दिए हैं। हम अगर पुण्य भी करते हैं, तो इसलिए कि आगे कुछ मिले। एक आदमी अगर एक पैसा भी दान करता है, तो वह पक्का कर लेता है कि इसके कितने गुना ज्यादा मुझे स्वर्ग में मिलेगा।

व्यर्थ हो गया। पुण्य का शुद्ध कृत्य, किसी आदमी को एक पैसा देने का, यह छोटा—सा कृत्य भी बहुत बड़ा हो सकता था, अगर इसके पीछे कोई मांग न होती, इसके पीछे अगर कोई आशा न होती, कोई अपेक्षा न होती। सिर्फ इस घडी में एक आदमी पीड़ा में था और मैंने, चूंकि मेरे पास था, दे दिया था। इससे ज्यादा इसमें कुछ भी न होता, तो यह पुण्य का कृत्य था और एक फूल की तरह मेरे जीवन में खिल जाता और इसकी सुगंध कभी भी समाप्त न होती। और यह फूल कभी भी मुर्झाता नहीं। और यह मेरे प्राणों की। अनिवार्य संपत्ति हो जाती।

धन से प्राण नहीं भरे जा सकते, लेकिन ऐसे फूल इकट्ठे होते चले जाएं, तो प्राण भर जाते हैं। और फुलफिलमेंट, एक भरापन अनुभव होने लगता है।

लेकिन मैं चूक गया। मैंने पहले पक्का कर लिया कि यह एक पैसा जो मैं दे रहा हूं इसका कितने गुना मुझे मिलेगा। मैंने इसको भी भविष्य में खींच दिया। मैंने इसे भी वासना बना दिया। मैंने इसमें भी भविष्य को निर्मित कर लिया और आशा निर्मित कर ली। अब मैं दुख पाऊंगा। यह क्षण भी मैंने खोया, यह पैसा भी मैंने खोया, और अब यह भविष्य मुझे दुख देगा। क्योंकि कोई स्वर्ग इसके उत्तर में मिलने वाला नहीं है। स्वर्ग इतना सस्ता नहीं है।

पुण्य से स्वर्ग नहीं मिलता; पुण्य स्वयं स्वर्ग है। तो पुण्यों के जोड़ से स्वर्ग नहीं मिलता, पुण्य में होना ही स्वर्ग में होना है। पुण्य! एटामिक एक्ट का नाम है; एक—एक आणविक कृत्य। बस, मुझे आनंद था, बात समाप्त हो गई। इसके आर—पार नहीं देखना है। लेकिन हम हमेशा आशा में जीते हैं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक टर्किश स्नानगृह में स्नान !? करने गया। यात्रा से आया था, फटे—पुराने उसके कपड़े थे, धूल—धंवास से भरा था। शक्ल पर भी धूल थी, लंबी यात्रा की थकान थी, दीन—हीन उसके कपड़े थे। तो टर्किश बाथ के सेवकों ने समझा कि कोई गरीब आदमी है।

स्वभावत:, जहां आशा में आदमी जीता है, वहां अमीर की सेवा की जा सकती है, गरीब की सेवा नहीं की जा सकती। होना तो उलटा चाहिए कि गरीब की सेवा हो, क्योंकि वह सेवा की ज्यादा उसे जरूरत है। अमीर को उतनी जरूरत नहीं है, उसे सेवा मिलती ही रही होगी। लेकिन आशा का जो जगत है।

नौकर—चाकरों ने उस पर कोई ध्यान ही न दिया। फटी—पुरानी तौलिया उसे दे दी; क्योंकि पुरस्कार की कोई संभावना न थी। उपयोग में लाया हुआ साबुन उसे दे दिया। पानी की भी किसी ने चिंता नहीं की कि गरम है कि ठंडा है। मालिश करने वाले ने भी ऐसे ही हाथ फेरा, जैसे जिंदा आदमी पर हाथ न फेरता हो।

नसरुद्दीन सब देखता रहा। स्नान करके बाहर निकला। कपड़े पहने। किसी नौकर को आशा ही नहीं थी कि इससे कुछ टिप भी मिलेगी, कोई पुरस्कार भी होगा। लेकिन उसने अपने खीसे से उस देश की जो सबसे कीमती स्वर्णमुद्रा थी, वह बाहर निकाली। प्रत्येक नौकर को एक—एक स्वर्णमुद्रा दी, और अपने रास्ते पर चल पड़ा। अवाक रह गए नौकर। छाती पीट ली दुख से। दुख से कह रहा हूं! छाती पीट ली दुख से। क्योंकि अगर इसकी सेवा ठीक से की होती, तो आज पता नहीं क्या हो जाता! स्वर्णमुद्रा कभी किसी ने नहीं दी थी। नवाब भी वहां से गुजरे थे, वजीर भी वहां से गुजरे थे। एक—एक नौकर को एक—एक स्वर्णमुद्रा किसी ने कभी भेंट न दी थी। और इतनी सेवा की थी! और यह आदमी सब को मात कर गया। छाती पर सांप लोट गया। उस रात नौकर सो नहीं सके। बार—बार यही खयाल आया, बड़ी भूल हो गई। अगर ठीक से सेवा की होती—सेवा तो की ही नहीं उस आदमी की—अगर ठीक से सेवा की होती, तो पता नहीं क्या दे जाता!

मुल्ला नसरुद्दीन दूसरे दिन फिर उपस्थित हुआ। और भी फटे—पुराने कपड़े थे, और भी धूल— धंवास से भरा था। लेकिन ऐसे उसका स्वागत हुआ, जैसे सम्राट का हो। जो श्रेष्ठतम तेल था उनके पास, निकाला गया। जो श्रेष्ठतम साबुन थी, वह आई। नए ताजे तौलिए आए। गरम पानी आया। घंटों उसकी सेवा हुई। घंटों उसे नहलाया गया। वह शांत, जैसे कल नहाता रहा, वैसे ही नहाता रहा। जाते वक्त, जब

जाने लगा, अपने खीसे में हाथ डाला। नौकर सब हाथ फैलाकर आशा में खड़े हो गए। जो उस देश का सबसे छोटा पैसा था, वह उसने एक—एक पैसा उनको भेंट दिया!

छाती पर पत्थर पड़ गया। वे सब चिल्लाने लगे कि तुम आदमी पागल तो नहीं हो! यह तुम क्या कर रहे हो? कल जब हमने कुछ भी नहीं किया, तुमने. स्वर्णमुद्राएं दीं! और आज जब हमने सब कुछ किया, तो ये पैसे तुम दे रहे हो?

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, यह कल का पुरस्कार है। आज का पुरस्कार कल दे चुका हूं।

उस रात भी नौकर नहीं सो सके!

हम जो भी अपेक्षाएं बांधकर जीते हों। कुछ भी हो जाए, कुछ न करें और स्वर्णमुद्रा मिल जाए, तो भी दुख होता है। कुछ करें, स्वर्णमुद्रा न मिले, तो भी दुख होता है। अपेक्षा में दुख है, अपेक्षा में पीड़ा है।

कृष्ण कहते हैं, और वृथा ज्ञान वाले।

वृथा ज्ञान क्या है? जो ज्ञान अपने काम न आए, वह वृथा है। और हम सबके पास ऐसा—ऐसा ज्ञान है, जो काम कभी भी नहीं आता। दुनिया में ज्ञान की कोई भी कमी नहीं है। शायद जरूरत से

ज्यादा है। और हर आदमी के पास पर्याप्त मात्रा में है, जरूरत से ज्यादा है। इसलिए हरेक बांटता रहता है, हर किसी को बांटता रहता है।

इस दुनिया में जितने मुक्तहस्त होकर हम ज्ञान बांटते हैं, और कोई चीज नहीं बांटते। हालांकि कोई लेता नहीं आपके ज्ञान को, पर आप बांटते चले जाते हैं। क्योंकि दूसरे के पास भी पहले से ही काफी है। कोई किसी की सलाह नहीं मानता। इस दुनिया में जो सबसे ज्यादा दी जाती है चीज, वह सलाह है। और जो सबसे कम ली जाती है, वह भी सलाह है। कोई नहीं मानता, लेकिन आप बाटे चले जाते हैं।

यह ज्ञान, जो आप बांटते फिरते हैं, आपके किसी काम आया है कभी? इसका आपने कभी कोई उपयोग किया? यह ज्ञान कभी आपके जीवन का अंतरंग हिस्सा बना? यह ज्ञान आपकी बीइंग, आपकी आत्मा बना? यह ज्ञान कभी आपके हृदय में धड़का और आपके खून में बहा? यह ज्ञान कभी आपके मस्तिष्क की मज्जा बन पाया? या बस कोरे शब्द हैं, जो आपके भीतर गूंजते रह जाते हैं? आप एक ग्रामोफोन रिकार्ड हैं?

जरा खयाल करेंगे अपनी बुद्धि का तो आपको पता लगेगा कि बिलकुल ग्रामोफोन रिकार्ड हैं। कुछ है, जो डाल दिया जाता है भीतर, फिर आप उसे बाहर डालते रहते हैं। यह ज्ञान वृथा है। क्योंकि जो ज्ञान जीवन को रूपांतरित न कर जाए, आपके खुद ही काम न आए, वह इस दुनिया में किसी और के काम न आ सकेगा। ज्ञान वही सार्थक है, जिसे जानने से ही मेरे जीवन में रूपांतरण हो।

ज्ञान का अर्थ ही है, जो क्रांति हो जाए! जानूं और बदल जाऊं। जानूं और बदलू न, जानकर भी वही रह जाऊं, जो अनजाने में था, अज्ञान में था, तो इस ज्ञान और अज्ञान में फर्क क्या है?

आप गीता पढ़ जाएं और वही के वही आदमी रहें, जो गीता पढ़ने के पहले थे, तो इस गीता के साथ जो मेहनत हुई, वह व्यर्थ गई। और इस गीता ने जो आपको दिया, वह बेकार है, दो कौड़ी का भी नहीं है। क्योंकि आप वही के वही हैं, कहीं कोई फर्क नहीं हुआ।

मैं देखता हूं गीतापाठी हैं, चालीस साल से गीता पढ़ रहे हैं। यहां बंबई में कई सत्संगी हैं, वे रोज सुबह से उठकर सत्संग करते रहते हैं। नियमित करते रहते हैं। कौन वहां बोल रहा है, कौन नहीं बोल रहा है, इससे भी कोई प्रयोजन नहीं है, सत्संग करना उनका धंधा है। अपना रोज सुबह सत्संग कर आते हैं। वह वैसे ही, जैसे कोई आदमी रोज सुबह उठकर चाय पीता है, कोई रोज सुबह उठकर सिगरेट पीता है, ये सत्संग करते हैं!

चालीस साल से ये सत्संग कर रहे हैं। शायद सिगरेट पीने वाले को कुछ असर भी हुआ हो, कैंसर हो गया हो, टी बी हो गई हो, वह भी इनको नहीं हुआ। कुछ नहीं हुआ इन्हें। ये सत्संग से ऐसे बचकर निकल जाते हैं! और इनको करवाने वाले लोग भी बैठे हुए हैं कि वे इनको करवाते रहते हैं! वे भी इनको करवाते रहते हैं! उनको भी इससे प्रयोजन नहीं है।'

कुछ हैं, जिनको सत्संग करवाना ही है, वह उनकी बीमारी है। कुछ हैं, जिनको सत्संग करना ही है, वह उनकी बीमारी है। ये दोनों तरह के बीमार मिल जाते हैं, फिर चलता रहता है ज्ञान का लेन—देन! कहीं कोई फल नहीं होता। ही, एक फल होता दिखाई पड़ता है कि धीरे— धीरे ये सुनने वाले सुनाने वाले बन जाते हैं, यह एक फल दिखाई पड़ता है! जो सुनते रहे काफी दिन, फिर इतना ज्ञान इकट्ठा हो जाता है कि अब उसका क्या करें मे तो ज्ञान का एक ही उपयोग मालूम पड़ता है कि दूसरे को ज्ञानी बनाओ! स्वयं से उसका कोई लेना—देना नहीं है।

अपने भीतर आप जांच करना, कौन—सा ज्ञान है, जिसने आपको छुआ हो, जिसने आपको स्पर्श किया हो, जिसके बाद आप वही आदमी न रह गए हों, जो आप पहले थे, रत्तीभर भी बदल गया हो कुछ!

कुछ बदलता दिखाई नहीं पड़ता हो, तो कृष्ण कहते हैं, यह वृथा ज्ञान है। ऐसा ज्ञानी व्यक्ति, ऐसा वृथा ज्ञानी मूढ़ है। थोड़ा—सा ज्ञान काफी है, जो बदले। ऐसी आग को घर में जलाकर भी क्या करेंगे, जिससे आंच भी न निकलती हो! एक प्याली चाय भी बनानी हो, तो न बनती हो! और जला रहे हैं जिंदगी भर से, और घर में चिल्लाते फिर रहे हैं कि आग जल रही है! कुछ नहीं होता।

थोड़ा—सा इंचभर भी जीवन बदलता हो, ऐसे ज्ञान की तलाश करनी चाहिए; और ऐसे ही ज्ञान पर भरोसा करना चाहिए; और ऐसे ही ज्ञान को भीतर जाने देना चाहिए। व्यर्थ के ज्ञान को भीतर नहीं जाने देना चाहिए क्योंकि भीतर कचरा भरने के लिए स्थान नहीं है। जो बहुत कचरा भीतर भर लेता है, फिर कभी सार्थक भी दरवाजे पर आ जाए तो वह कचरे की वजह से भीतर नहीं जा सकता।

ऐसा मैं देखता हूं बहुत लोगों को। वे मेरे पास आकर कभी कहते हैं कि यह बात तो ठीक लगती है, लेकिन पहले जो बातें सुनी हैं, उनकी वजह से बड़ी मुश्किल हो रही है!

मैं उनसे कहता हूं कि अगर पहली सुनी बातों ने तुम्हारी जिंदगी बदल दी हो, तो मेरी बात को भूल जाओ! और अगर पहली सुनी बातों ने तुम्हारी जिंदगी न बदली हो, तो कचरे की तरह उनको बाहर फेंक दो! इतनी हिम्मत रखनी चाहिए कि जिस जान से मेरे में कोई अंतर नहीं पड़ा, उसे मैं बाहर उतारकर रख सकूं। जिस दवा से कोई फायदा न हुआ हो, बल्कि बीमारी और सघन हो गई हो, उस दवा को कब तक लेते रहिएगा?

लेकिन बड़े खतरनाक बीमार भी हैं दुनिया में! वे बीमारी को ही नहीं पकड़ लेते, दवा तक को जोर से पकड़ लेते हैं! वे कहते हैं, एक दफे बीमारी रहे कि जाए, लेकिन दवा को हम न छोड़ेंगे!

दवा को कोई पकड़ ले, तो उस मरीज को क्या कहिएगा? यह पागल हो गया। ज्ञान पकड़ने की चीज नहीं है, रूपांतरित होने की है, बदलने की है, आत्मक्रांति की है, ट्रासफामेंशन की है।

तो कृष्ण कहते हैं, वह ज्ञान वृथा है, जिस ज्ञान से कोई अंतर नहीं पड़ता। ऐसा व्यक्ति मूढ़ है। वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान से भरे हुए मूढ़जन.।

इसके बाद वे दूसरे हिस्से में उनकी बात करते हैं, जो मूढ़ नहीं हैं। वे कहते हैं, हे पार्थ, दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन, मुझको सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त हुए निरंतर भजते हैं।

इसमें दो बातें समझ लेने की हैं। एक तो दैवी प्रकृति के आश्रित हुए—यह कीमती हिस्सा है।

इस जगत में ऊपर की तरफ जाने वाला प्रवाह है, नीचे की तरफ जाने वाला प्रवाह है। आप जिस प्रवाह को चुन लेते हैं, वही प्रवाह आपके जीवन को गतिमान करने लगता है। इस जीवन में पूरब की तरफ भी हवाएं चलती हैं, और पश्चिम की तरफ भी। जब पश्चिम की तरफ हवाएं चलती हैं, तब अगर आप अपनी नाव को खोल देते हैं, तो आप पश्चिम की तरफ पहुंच जाते हैं। इस जगत में पूरब की तरफ भी हवाएं चलती हैं। जरा प्रतीक्षा करें और नाव का पाल तब खोलें, जब पूरब की तरफ हवाएं चलती हैं, तो आप पूरब पहुंच जाते हैं।

प्रतिपल जीवन में नीचे की तरफ जाने वाली हवाएं भी बहती हैं और ऊपर की तरफ जाने वाली हवाएं भी बहती हैं। आप जिन हवाओं का सहारा ले लेते हैं, आप उसी यात्रा पर निकल जाते हैं। जब कोई आपको गाली देता है, तब यह हवा दूसरी तरफ जा रही है। अगर आपने अभी पाल खोल दी अपनी नाव की, तो आप क्रोध के जगत में उतर जाएंगे। यह आपका जिम्मा है, यह गाली देने वाले का नहीं है। इस जगत में सब हो रहा है, यह आप पर निर्भर है। जब कोई शांत ध्यान में बैठा है, तब भी एक हवा दूसरी तरफ बह रही है। काश, आप भी इसके पास शांत होकर थोड़ी देर बैठ जाएं, तो शायद आपकी नाव किसी दूसरी यात्रा पर निकल जाए।

बुद्ध एक गांव में बहुत बार गए। उस गांव में एक दुकानदार है। मित्र उसको कहते हैं कि बुद्ध आए हैं। वह कहता है कि अभी तो दुकान पर बहुत ग्राहक हैं। कभी बुद्ध आते हैं, वह कहता है, इस बार तो लड़के की शादी है। कभी बुद्ध आते हैं, वह कहता है कि आज तो मौसम ठीक नहीं है; आज बाहर न जा सकूंगा। कभी कहता है, आज तबियत खराब है।

तीस वर्ष बुद्ध उस गाव से अनेक बार गुजरे, लेकिन वह आदमी यही कहता रहा, कभी यह कारण है, कभी वह कारण है। लेकिन इस आदमी को कोई जाकर गाली दे, ग्राहकों को छोड्कर दरवाजे से बाहर निकल आएगा। कोई इसको गाली दे, धुआंधार वर्षा हो रही हो, फिक्र छोड़ देगा। कोई इसको गाली दे, बीमार हो, मर भी गया हो, तो फिर से प्राण आ जाएंगे; बाहर निकल आएगा कि किसने गाली दी? लेकिन बुद्ध इसके गांव से गुजरते हैं, तो यह। तीस साल तक कोई न कोई बहाना खोजता रहता है।

मैं पटना में था, वहां के कलेक्टर मुझे रात ग्यारह बजे मिलने आए। तो मैंने उनसे कहा कि अब तो मैं सोने जा रहा हूं बिस्तर पर बैठ गया हूं आप देख ही रहे हैं। बस, अब सिर रखने की देर थी और आप आ गए हैं। आप कल सुबह आठ बजे आ जाएं। उन्होंने कहा, आठ बजे तो मैं आ ही नहीं सकता, क्योंकि आठ बजे तो मैं सोकर ही नहीं उठता।

मैंने उनको कहा कि नौ बजे आ जाएं, क्योंकि फिर नौ से ग्यारह मैं उलझा रहूंगा। उन्होंने कहा, नौ बजे मैं बिलकुल नहीं आ सकता। क्या तकलीफ है?

उन्होंने कहा, नौ बजे तक तो मैं स्नान वगैरह करके कोर्ट जाने की तैयारी करता हूं।

तो मैंने उनको कहा कि आप पांच बजे आ जाएं। उन्होंने कहा कि पांच बजे भी नहीं आ सकता, क्योंकि साढ़े चार बजे तो दफ्तर से लौटता हूं थका—मादा होता हूं।

तो मैंने उनसे पूछा कि आप मुझसे मिलना चाहते हैं कि मैं आपसे मिलना चाहता हूं? कौन किससे मिलना चाहता है, यह तय हो जाए! अनेक लोग ऐसे हैं, वे कहते हैं कि हम तो इसी वक्त नाव छोड़ेंगे; हवा को पूरब की तरफ ले जाना चाहिए। हवा को पूरब की तरफ जाना है कि आपको पूरब की तरफ जाना है?

फिर मैंने उनसे कहा कि सोना छोड़ नहीं सकते पंद्रह मिनट पहले; स्नान पंद्रह मिनट पहले कर नहीं सकते; दफ्तर से थककर आए, तो मिलने आ नहीं सकते। तो यह जो आप कहते हैं कि मुझे परमात्मा की तलाश है, यह परमात्मा लास्ट आइटम मालूम पड़ता है! यह आखिरी, फेहरिस्त में आखिरी मालूम पड़ता है। क्योंकि नींद भी इससे महत्वपूर्ण है, दफ्तर भी इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है, थकान भी इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है। तो ऐसा मालूम पड़ता है कि परमात्मा पर बड़ा उपकार कर रहे हैं!

कृष्ण कहते हैं, यह मूढ़ता है, यह मूढ़— भाव है।

अमूढ़, बुद्धिमान वह है, जो अपने को दैवी प्रकृति के आश्रित कर लेता है। जो चौबीस घंटे इस खोज में रहता है कि परमात्मा की तरफ कहां हवा बह रही है, मैं उसमें सम्मिलित हो जाऊं। मेरे सहारे तो शायद मैं न जा सकूं। शायद अकेला मेरा इतना बल नहीं; शायद मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं; लेकिन हवा जब बह रही हो, तो मैं सम्मिलित हो जाऊं।

हम भी खोजते हैं हवाएं, लेकिन हम वे हवाएं खोजते हैं, जो हमें नर्क की तरफ ले जाएं। हवाओं का कोई कसूर नहीं है। आप खोल लेते हैं पाल बेवक्त, फिर दुख पाते हैं। समझदार आदमी समय पर पाल खोलना जानता है। और सदा तलाश में रहता है कि कब पाल बंद कर ले, कब पाल को खोल ले; कब नाव को छोड़ दे, कब नाव को रोक ले। थोड़े ही दिन में उसे पता चल जाता है कि इस जीवन में दो धाराएं हैं, दो आकर्षण हैं, दो मैग्नेट्स हैं, जो काम कर रहे हैं।

जैसा मैंने आपको कल कहा कि मनुष्य अपूर्ण है और वह नीचे की तरफ भी जा सकता है, आखिरी नीचाई तक जा सकता है; और वह आखिरी ऊंचाई तक भी जा सकता है। वह निम्नतम हो सकता है और श्रेष्ठतम भी। अब यह उस पर ही निर्भर है कि वह किस धारा के वशीभूत होता है।

दैवी धारा उसे कहते हैं, जो आपके भीतर रोज—रोज दिव्यता को बढ़ाती चली जाए। तो जांचते रहें अपने भीतर कि मैं जिस जीवन में चल रहा हूं उसमें मेरी दिव्यता बढ़ रही है या घट रही है?

अक्सर तो ऐसा होता है कि के लोग कहते हैं कि बचपन बहुत अच्छा था, स्वर्ग था। इसका मतलब क्या हुआ? मैं बूढ़े कवियों को मिलता हूं तो वे गीत गाते हैं बचपन के। वे कहते हैं, बचपन स्वर्ग था। वह शाति! वह निर्दोषता!

तो जिंदगी भर कहा बहे तुम? बचपन तो शुरुआत थी यात्रा की। अब बूढ़े हो गए, अस्सी साल के हो गए, अभी भी कहते हो, बचपन बड़ा निर्दोष था, तो यह पूरी जिंदगी यात्रा तुमने किस दिशा में की? गलत, कहीं तुम उलटे ही बहे। अन्यथा के आदमी को कहना चाहिए कि बचपन निर्दोष था, अब महानिदोंषता फलित हुई है। बचपन आनंद था, लेकिन इस आनंद के सामने कुछ भी नहीं. था, जो आज उतरा है। तब तो यात्रा बढ़ती हुई, तब तो आप दिव्य की ओर बढ़े।

अगर एक आदमी बगीचे की तरफ जाता है, तो बगीचा नहीं भी आता, तो भी बहुत पहले ठंडी हवाएं मालूम पड़ने लगती हैं, तो भरोसा बढ़ता है कि बगीचा करीब होगा। अभी बगीचा नहीं आया, लेकिन फूलों की सुगंध आने लगती है, तो भरोसा बढ़ता है कि बगीचा करीब होगा। अभी बगीचा नहीं आया, लेकिन पक्षियों की चहचहाहट सुनाई पड़ने लगती है, तो भरोसा बढ़ता है कि बगीचा करीब आया। अगर आप बगीचे की तरफ बढ़ रहे हैं, और पक्षियों की आवाज खो जाती है, फूलों की सुगंध आनी बंद हो जाती है, फिर ठंडी हवाओं का भी पता नहीं चलता, तो एक दफा तो रुककर सोचें कि बगीचे की तरफ बढ़ रहे हैं कि बगीचे से विपरीत चले जा रहे हैं?

हम जिसे जिंदगी कहते हैं, वह जिंदगी हमें और घने दुख में ले जाती है। हम जिसे जिंदगी कहते हैं, वह और बड़े नर्कों का द्वार खोलती चली जाती है। तो हम विकसित होते हैं या पतित होते हैं? हम नीचे गिरते हैं या ऊपर उठते हैं?

दैवी धारा का अर्थ है, जहां से भी, जिस परिस्थिति में भी, जिस घटना में भी खड़े हों, वहा तत्काल खोजें कि इसमें दैवता की तरफ जाने का मार्ग क्या है? और मैं आपसे कहता हूं ऐसी कोई घटना नहीं है, जहां दोनों धाराएं मौजूद न हों।

एक आदमी आपको गाली देता है। आप यह भी सोच सकते हैं कि इस आदमी ने गाली दी। अगर ऐसे मैंने बरदाश्त कर लिया, तब तो हर कोई मुझे गाली देने लगेगा। इसका मुंह बंद करना जरूरी है। आपने एक धारा चुनी। आप वहीं खड़े होकर यह भी सोच सकते थे कि इस आदमी ने एक ही गाली दी; सिर्फ गाली ही दी, मुझे मारा नहीं। बड़ी कृपा है। आदमी बड़ा भला है। मार भी सकता था। आपने दूसरी धारा चुनी।

प्रत्येक घटना में दोनों धाराएं मौजूद हैं, चुनाव आपका है। ऐसा आदमी नहीं है बुरे से बुरा, जिसमें परमात्मा की झलक न हो। और ऐसा आदमी नहीं है भले से भला, जिसमें आप शैतान को न खोज लें। चुनाव आपका है। चुनाव बिलकुल आपका है। और जो आप चुनेंगे, वही आपके जीवन का प्रवाह हो जाएगा।

तो कृष्ण कहते हैं, दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन हे

और महात्मा का इतना ही अर्थ होता है कि जो दैवी प्रकृति के आश्रित हुआ, जो अब सब जगह दैवता का मार्ग खोजता है, जो सब जगह मंदिर की तलाश करता है।

मैंने लोगों को मंदिर में जाते देखा है। वहां वे पता नहीं क्या तलाश करते हैं! अगर मंदिर में बैठे हुए लोगों की बातचीत सुनें, तो पता चलेगा कि वे क्या बात कर रहे हैं! साधु समझा रहे हैं, उनके आस—पास बैठी हुई स्त्रियों की बातचीत सुनें कि वे क्या बातचीत कर रही हैं?

स्त्रियां इसलिए कह रहा हूं कि पुरुष तो अब साधुओं को सुनने जाते ही नहीं, इसलिए उनकी बात छोड़ दें। या जाते भी हैं, तो कुछ अपनी पत्नी के पीछे चले जाते हैं, कुछ दूसरों की पत्नियों के पीछे चले जाते हैं! साधु से कुछ लेना—देना नहीं होता।

ये जो बैठे हुए लोग हैं, इनसे पूछें कि वहां किसलिए जाते हैं? क्या बात करते हैं? क्या सोचते हो मंदिर में बैठकर? चर्च में भी बैठकर चिंतन क्या चलता है? मस्जिद में भी भीतर क्या होता रहता है? क्योंकि मस्जिद काम नहीं आएगी; वह जो भीतर हो रहा है, वही काम आएगा।

वेश्या के घर में भी बैठकर अगर भीतर दैवी आश्रित कोई बह रहा हो, तो शायद परमात्मा तक पहुंच जाए। और मंदिर में भी बैठकर अगर भीतर कोई उलटी धारा में जा रहा हो, तो परमात्मा कुछ भी नहीं कर सकता, कोई उपाय नहीं है। आप कहां है, यह सवाल नहीं है। आपकी अंतर्धारा किस ओर बही जा रही है!

मैंने सुना है कि एक साधु और एक वेश्या की एक साथ मृत्यु हुई, एक ही दिन। आमने—सामने घर था। मृत्यु के दूत लेने आए, तो दूत बडी मुश्किल में पड़ गए। उन्हें फिर जाकर हेड आफिस में पता लगाना पड़ा कि मामला क्या है! क्योंकि संदेश में कुछ भूल मालूम पड़ती है। साधु को ले जाने की आज्ञा हुई है नर्क, और वेश्या को आज्ञा हुई है स्वर्ग! तो उन्होंने कहा, इसमें जरूर कहीं भूल हो गई है! साधु बड़ा साधु था, वेश्या भी कोई छोटी वेश्या नहीं थी। मामला सीधा साफ है, गणित में कोई गड़बड़ है। वेश्या को नर्क जाना चाहिए, साधु को स्वर्ग जाना चाहिए।

काश, जिंदगी इतनी सीधी होती, तो सभी वेश्याएं नर्क चली जातीं और सभी साधु स्वर्ग चले जाते। लेकिन जिंदगी इतनी सीधी नहीं है, जिंदगी बहुत जटिल है।

ऊपर से पता लगाकर लौटे। खबर मिली कि वही ठीक आज्ञा है, वेश्या को स्वर्ग ले आओ, साधु को नर्क। उन्होंने पूछा, थोड़ा हम समझ भी लें, क्योंकि हम बड़ी दुविधा में पड़ गए हैं। तो दफ्तर से उन्हें खबर मिली कि तुम जरा नए दूत हो; तुम्हें अनुभव नहीं है। पहले ही दिन डयूटी पर गए थे। पुरानों से पूछो! यह सदा से होता आया है; यही नियम है। फिर भी उन्होंने कहा, थोड़ा हम समझ लें।

तो पता चला कि जब भी साधु के घर में सुबह कीर्तन होता, तो वेश्या रोती अपने घर में। सामने ही घर था। रोती, रोती इस मन से कि मेरा जीवन व्यर्थ गया। कब वह क्षण आएगा सौभाग्य का कि ऐसे कीर्तन में मैं भी सम्मिलित हो जाऊं! मन भी होता, तो कभी द्वार के बाहर निकल आती। साधु के मंदिर के पास कान लगाकर खड़ी हो जाती दीवाल के। लेकिन मन में ऐसा लगता कि मुझ जैसी पापी मंदिर में कैसे प्रवेश करे! तो कहीं साधु को पता न चल जाए, इसलिए चुपचाप छिप—छिपकर कीर्तन सुन लेती। मंदिर की सुगंध उठती, धूप जलती, मंदिर के फूलों की खबर आती, मंदिर का घंटा बजता, और चौबीस घंटे, पूरे जीवन वेश्या मंदिर में रही। चित्त मंदिर में घूमता रहा, घूमता रहा, घूमता रहा। और एक ही कामना थी कि अगले जन्म में चाहे बुहारी ही लगानी पड़े, पर मंदिर में ही जन्म हो। मंदिर के द्वार पर ही!

साधु भी कुछ पीछे न थे वेश्या से। जब भी वेश्या के घर रात राग—रंग छिड़ जाता, आधी रात होती, तो वे करवट बदलते रहते! वे सोचते, सारी दुनिया मजा लूट रही है। हम कहां फंस गए! और

सामने ही, भगवान! सामने के सामने ही आनंद लुटा जा रहा है और एक हम मुसीबत में फंस गए। यह साधुता कहां से ले फंसे! कई बार भाग जाते निकलकर घर से, वेश्या के घर का चक्कर लगा आते। भीतर घुसने की कोशिश भी करते, तो हिम्मत न होती कि मैं साधु, भीतर कैसे जा सकता हूं! कोई देख न ले!

वेश्या मंदिर में रही, साधु वेश्यालय में रहे। देखा किसी ने नहीं यह, क्योंकि यह घटना भीतर की है। और जो बाहर से तौलते हैं, वे नहीं देख पाएंगे।

महात्मा, कृष्ण उसे कहते हैं, जो दैवी प्रवाह में है। जो शुभ की, सौंदर्य की, सत्य की, सब दिशाओं से खोज करता रहता है। जिसका चुनाव शुभ का है। अशुभ दिखाई भी पड़े, तो आंख बंद कर लेता है। शुभ दिखाई न भी पड़े, तो भी देखता है। धीरे — धीरे सारा जगत शुभ हो जाता है।

सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त हुए निरंतर मुझे भजते हैं।

कुछ भी वे करते हों, कुछ भी वे सोचते हों, एक बात निरंतर, सब ओर, मैं उन्हें दिखाई पड़ता हूं। सबमें आत्यंतिक कारण की भांति छिपा हुआ, सबके भीतर सनातन मूल की तरह अप्रकट, सब स्थितियों में, सब दशाओं में मेरा भजन उनके चित्त में अनन्य रूप से चलता रहता है।

और वे दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरंतर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए, तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए और मेरे को बारंबार नमस्कार करते हुए, सदा मेरे ध्यान में युक्त हुए भक्ति से मुझे उपासते हैं।

इसमें दो—तीन बातें समझ लेने की हैं।

एक, परमात्मा है या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है; आप भक्त हो सकते हैं या नहीं, यह महत्वपूर्ण है। इसे फिर से दोहरा दूं? परमात्मा न हो, चलेगा। आप भक्त न हुए, नहीं चलेगा। भगवान मूल्यवान नहीं, भक्त मूल्यवान है।

ऐसा समझें कि भगवान तो खूंटी की तरह है, भक्त टांग दिए कपड़े की भांति है। खूंटी के लिए तो कोई खूंटी नहीं लगाता, कपड़ा टांगने के लिए कोई लगाता है। कपड़ा टांगने को ही न हो, तो खूंटी व्यर्थ है। और कपड़ा टांगने को हो, तो हम किसी भी चीज को खूंटी बना सकते हैं। जिस घर में खूंटी नहीं होती, लोग दरवाजे पर टांग देते हैं, खिड़की पर टल देते हैं, खीली पर टल देते हैं। खूंटी हो, कपड़ा ही न हो, तो क्या टागिएगा? कपड़ा हो, खूंटी न हो, तो कहीं भी टल लेते हैं।

असली सवाल भगवान नहीं है; असली सवाल भक्त है। भगवान तो केवल निमित्त है। क्योंकि उसके बिना भक्त होना मुश्किल हो जाएगा। वह तो केवल सहारा है।

इसलिए योग के जो पुराने शास्त्र हैं, वे बहुत अदभुत हैं। वे कहते हैं कि भगवान भी एक साधन है, वह भी एक उपकरण है, जस्ट ए मीन्स। परम उपलब्धि के लिए, जीवन के परम आनंद की उपलब्धि के लिए भगवान भी एक उपकरण है, एक साधन है। और ऐसे लोग भी हुए हैं, जैसे कि बौद्ध हैं या जैन हैं; वे कहते हैं, भगवान के बिना भी चला लेंगे।

लेकिन भगवान के बिना भक्त होना बहुत मुश्किल है। भगवान के होते हुए भक्त होना मुश्किल है, तो भगवान के बिना भक्त होना बहुत मुश्किल हो जाएगा। महावीर ने चला लिया, लेकिन महावीर के भक्त नहीं चला पाए। उनको फिर महावीर को ही भगवान बना लेना पड़ा। महावीर ने कहा, कोई भगवान की जरूरत नहीं, उपासना काफी है, साधना काफी है, सदभाव काफी है, सत्य काफी है। और कोई जरूरत नहीं है।

महावीर बहुत सबल व्यक्ति हैं, वे बिना भगवान के भक्त हो सके। बड़ा कठिन है। कठिन ऐसा है कि प्रेमी मौजूद न हो, प्रेमिका मौजूद न हो और आप प्रेमी हो सकें। हो सकते हैं; कठिन नहीं है। जब कोई आदमी पूरे प्रेम से भरा होता है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि प्रेमी पास है या नहीं है। न हो, तो भी प्रेम तो मौजूद ही रहेगा। कोई प्रेमी के कारण तो प्रेम पैदा होता नहीं। प्रेम तो भीतर होता है, उसके कारण प्रेमी पैदा होता है। लेकिन हमारा प्रेम तो ऐसा है कि प्रेमी क्षणभर को हट जाए, तो प्रेम खो गया!

वह था ही नहीं। धोखा था, प्रवंचना थी, बहाना था। एक शक्ल थी, एक चेहरा था, कोई अंतर— अवस्था न थी।

बुद्ध बैठे हैं एक जंगल में। कोई निकले या न निकले, रास्ते से कोई गुजरे या न गुजरे, उनकी करुणा तो बरसती ही रहेगी, उनका प्रेम तो झरता ही रहेगा। जैसे निर्जन में एक फूल खिले; रास्ते पर कोई न निकले, तो भी फूल तो खिला ही रहेगा; सुगंध तो फैलती ही रहेगी। फूल यह तो नहीं सोचेगा कि बंद करो दरवाजे, कोई ग्राहक तो दिखाई नहीं पड़ता! फूल कोई दुकानदार तो नहीं है।

ठीक ऐसे ही, प्रेमी भी हो सकता है बिना प्रेम—पात्र के, लेकिन बड़ा कठिन है। प्रेम—पात्र के साथ होते हुए हम प्रेमी नहीं हो पाते, तो बिना उसके बहुत कठिन होगा। कोई महावीर कभी हो सकता कई गीता जाने का मार्ग क्या है? और मैं आपसे कहता हूं ऐसी कोई घटना नहीं है, जहां दोनों धाराएं मौजूद न हों।

एक आदमी आपको गाली देता है। आप यह भी सोच सकते हैं कि इस आदमी ने गाली दी। अगर ऐसे मैंने बरदाश्त कर लिया, तब तो हर कोई मुझे गाली देने लगेगा। इसका मुंह बंद करना जरूरी है। आपने एक धारा चुनी। आप वहीं खड़े होकर यह भी सोच सकते थे कि इस आदमी ने एक ही गाली दी; सिर्फ गाली ही दी, मुझे मारा नहीं। बड़ी कृपा है। आदमी बड़ा भला है। मार भी सकता था। आपने दूसरी धारा चुनी।

प्रत्येक घटना में दोनों धाराएं मौजूद हैं, चुनाव आपका है। ऐसा आदमी नहीं है बुरे से बुरा, जिसमें परमात्मा की झलक न हो। और ऐसा आदमी नहीं है भले से भला, जिसमें आप शैतान को न खोज लें। चुनाव आपका है। चुनाव बिलकुल आपका है। और जो आप चुनेंगे, वही आपके जीवन का प्रवाह हो जाएगा।

तो कृष्ण कहते हैं, दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन है।

और महात्मा का इतना ही अर्थ होता है कि जो दैवी प्रकृति के आश्रित हुआ, जो अब सब जगह दैवता का मार्ग खोजता है, जो सब जगह मंदिर की तलाश करता है।

मैंने लोगों को मंदिर में जाते देखा है। वहां वे पता नहीं क्या तलाश करते हैं! अगर मंदिर में बैठे हुए लोगों की बातचीत सुनें, तो पता चलेगा कि वे क्या बात कर रहे हैं! साधु समझा रहे हैं, उनके आस-पास बैठी हुई स्त्रियों की बातचीत सुनें कि वे क्या बातचीत कर रही हैं?

स्त्रियां इसलिए कह रहा हूं कि पुरुष तो अब साधुओं को सुनने जाते ही नहीं, इसलिए उनकी बात छोड़ दें। या जाते भी हैं, तो कुछ अपनी पत्नी के पीछे चले जाते हैं, कुछ दूसरों की पत्नियों के पीछे। चले जाते हैं! साधु से कुछ लेना-देना नहीं होता।

ये जो बैठे हुए लोग हैं, इनसे पूछें कि वहां किसलिए जाते हैं? क्या बात करते हैं न: क्या सोचते हो मंदिर में बैठकर? चर्च में भी बैठकर चिंतन क्या चलता है? मस्जिद में भी भीतर क्या होता रहता है? क्योंकि मस्जिद काम नहीं आएगी; वह जो भीतर हो रहा है, वही काम आएगा।

वेश्या के घर में भी बैठकर अगर भीतर दैवी आश्रित कोई बह रहा हो, तो शायद परमात्मा तक पहुंच जाए। और मंदिर में भी बैठकर अगर भीतर कोई उलटी धारा में जा रहा हो, तो परमात्मा

कुछ भी नहीं कर सकता, कोई उपाय नहीं है। आप कहां है, यह सवाल नहीं है। आपकी अंतर्धारा किस ओर बही जा रही है!

मैंने सुना है कि एक साधु और एक वेश्या की एक साथ मृत्यु हुई, एक ही दिन। आमने-सामने घर था। मृत्यु के दूत लेने आए, तो दूत बड़ी मुश्किल में पड़ गए। उन्हें फिर जाकर हेड आफिस में पता लगाना पड़ा कि मामला क्या है! क्योंकि संदेश में कुछ भूल मालूम पड़ती है। साधु को ले जाने की आज्ञा हुई है नर्क, और वेश्या को आज्ञा हुई है स्वर्ग! तो उन्होंने कहा, इसमें जरूर कहीं भूल हो गई है! साधु बड़ा साधु था, वेश्या भी कोई छोटी वेश्या नहीं थी। मामला सीधा साफ है, गणित में कोई गड़बड़ है। वेश्या को नर्क जाना चाहिए, साधु को स्वर्ग जाना चाहिए।

काश, जिंदगी इतनी सीधी होती, तो सभी वेश्याएं नर्क चली जातीं और सभी साधु स्वर्ग चले जाते। लेकिन जिंदगी इतनी सीधी नहीं है, जिंदगी बहुत जटिल है।

ऊपर से पता लगाकर लौटे। खबर मिली कि वही ठीक आज्ञा है, वेश्या को स्वर्ग ले आओ, साधु को नर्क। उन्होंने पूछा, थोड़ा हम समझ भी लें, क्योंकि हम बड़ी दुविधा में पड गए हैं। तो दफ्तर से उन्हें खबर मिली कि तुम जरा नए दूत हो; तुम्हें अनुभव नहीं है। पहले ही दिन डयूटी पर गए थे। पुरानों से पूछो! यह सदा से होता आया है; यही नियम है। फिर भी उन्होंने कहा, थोड़ा हम समझ लें। तो पता चला कि जब भी साधु के घर में सुबह कीर्तन होता, तो ! वेश्या रोती अपने घर में। सामने ही घर था। रोती, रोती इस मन से कि मेरा जीवन व्यर्थ गया। कब वह क्षण आएगा सौभाग्य का कि ऐसे कीर्तन में मैं भी सम्मिलित हो जाऊं! मन भी होता, तो कभी द्वार के बाहर निकल आती। साधु के मंदिर के पास कान लगाकर खड़ी हो जाती दीवाल के। लेकिन मन में ऐसा. लगता कि मुझ जैसी पापी मंदिर में कैसे प्रवेश करे! तो कहीं साधु पता न चल जाए, इसलिए चुपचाप छिप-छिपकर कीर्तन सुन। मंदिर की सुगंध उठती, धूप जलती, मंदिर के फूलों की खबर आती, मंदिर का घंटा बजता, और चौबीस घंटे, पूरे जीवन वेश्या मंदिर में रही। चित्त मंदिर में घूमता रहा, घूमता रहा, घूमता रहा। और एक ही कामना थी कि अगले जन्म में चाहे बुहारी ही लगानी पड़े, पर मंदिर में ही जन्म हो। मंदिर के द्वार पर ही!

साधु भी कुछ पीछे न थे वेश्या से। जब भी वेश्या के घर रात। राग-रंग छिड़ जाता, आधी रात होती, तो वे करवट बदलते रहते! वे सोचते, सारी दुनिया मजा लूट रही है। हम कहां फंस गए! और है। इसमें कठिनाई नहीं है। महावीर हो सके, वे पा सके परम अवस्था बिना भगवान की धारणा के, भगवान को पा सके बिना भगवान की धारणा के। लेकिन उनके पीछे का आदमी तो नहीं पा सकेगा, फिर उसे कठिनाई हुई। कोई भगवान नहीं रहा जैन विचार में, तो फिर महावीर को भगवान की तरह मानकर पूजा करनी शुरू करनी पड़ी।

खूंटी तो चाहिए ही। भक्त हुआ नहीं जा सकता बिना भगवान के, भगवान होना चाहिए।

कृष्ण कहते हैं कि ये जो भक्तजन हैं, यह जो भक्ति की धारा है, यह जो सतत अनन्य चिंतन है, यह जो परमात्मा का स्मरण है—उसके नाम का, उसके गुणों का, उसकी स्तुति है—यह भक्त के हृदय को निर्मित करती है।

ठीक वैसे ही, जैसे बीज को हम बो देते हैं। वृक्ष तो बीज में छिपा होता है, वृक्ष बाहर से नहीं आता, वह तो बीज में छिपा होता है, लेकिन अगर पानी न डाला जाए, और अगर सूरज की धूप न मिले, तो वह जो छिपा है, वह भी प्रकट नहीं हो पाता। और अगर प्रकट भी हो जाए, और अगर माली का सहारा न मिले, और माली की सुरक्षा न मिले, तो प्रकट हो जाए, तो भी टूट जाता है।

जो है, वह तो बीज में है, लेकिन गौण सहारे आस—पास खड़े करने होते हैं। एक दिन जरूर बीज इतना बड़ा वृक्ष बन जाता है कि फिर पशुओं का डर नहीं रहता, कि फिर उसे कोई तोड़ सकेगा, इसका भय नहीं रहता। फिर वर्षा न भी हो, तो अब बीज वर्षा के भरोसे नहीं है। अब उसने अपनी जड़ें फैला ली हैं। वह दूर नीचे पाताल तक पहुंच गया है। अब वह अपना पानी खुद खींच सकता है। अब सूरज कुछ दिन न भी निकले, तो वृक्ष को बहुत चिंता नहीं है। अब उसने सूर्य की बहुत—सी ऊर्जा को छिपाकर अपने भीतर राशि—कोष निर्मित कर लिए हैं। अब वह उनसे काम चला लेगा। अब माली भूल भी जाए और छूट भी जाए, तो वृक्ष अब अपनी खुद ही सुरक्षा करने में समर्थ हो गया है। लेकिन बीज ये बातें नहीं कर सकता।

तो महावीर तो वृक्ष जैसे व्यक्ति हैं, इसलिए बिना ईश्वर के चला लेते हैं। कोई कठिनाई नहीं आती। और ईश्वर को पा लेते हैं। लेकिन हम तो छोटे—छोटे बीज हैं, इनके लिए आस—पास बहुत तरह की व्यवस्था चाहिए।

तो कृष्ण कहते हैं, ईश्वर की धारणा, ईश्वर की तरफ उन्मूखता, उपासना उपयोगी है।

उपासना का अर्थ होता है, उसके पास बैठना। उपासना का अर्थ होता है, उसके पास बैठना। कहीं भी बैठे हों, अगर अनुभव करें कि परमात्मा के पास बैठे हैं, तो उपासना हो गई। घर में बैठे हों, कि मंदिर में, कि जंगल में, कहीं भी बैठे हों, अगर उसकी उपस्थिति अनुभव कर सकें, अगर अनुभव कर सकें उसका स्पर्श—कि हवाओं में वही छूता है, और सूरज की किरणों में वही आता है, और पक्षियों के गीत में उसी के गीत हैं, और वृक्षों में जो सरसराहट होती है हवा की, पत्ते जो कंपते हैं, वही कंपता है, सागर की जो लहर हिलती है, यह उसी की तरंगें हैं—अगर ऐसी प्रतीति हो सके, तो उपासना हो गई।

उपासना का अर्थ यह नहीं कि गए मंदिर में, घंटा बजाया, पूजा की; घर लौट आए। ऐसा भी नहीं है कि उसमें उपासना नहीं हो सकती है। उसमें हो सकती है। लेकिन जितनी जल्दबाजी में आदमी घंटे बजाते हैं, उससे शक होता है। जितनी जल्दी में घंटा बजाते हैं, जितनी जल्दी में पूजा—प्रार्थना करते हैं!

और देखें उनकी पूजा—प्रार्थना का जो समय है, वह काफी फ्लेक्सिबल होता है। कभी जब उन्हें फुर्सत होती है, या पत्नी से घर झगड़ा हो गया हो, या दुकान आज बंद हो, या आज अदालत न जाना हो, तो उपासना लंबी हो जाती है। आज जल्दी दफ्तर पहुंचना हो, उपासना सिकुड़कर छोटी हो जाती है। संक्षिप्त में भी निपटा देते हैं। जल्दी से घंटी बजाई है, जल्दी से सब किया है! जो और भी ज्यादा जल्दी में हैं और जिनके पास सुविधा है, वे खुद उपासना नहीं करते, नौकर—चाकर रख लेते हैं, उनसे करवा देते हैं। पंडित हैं, पुजारी हैं, उपासना के लिए आप बीच में दलाल रख लेते हैं। भगवान से आपको लेना—देना है, पंडित—पुजारी को आपसे कुछ लेना—देना है, दोनों के बीच संबंध हो जाता है, समझौता हो जाता है, सौदा हो जाता है। वह कहता है, हमें आप इतना दे देना, हम इतनी उपासना कर देंगे। और आप निश्चित हैं ' कि उपासना चल रही है!

उपासना भी उधार हो सकती है? उपासना का अर्थ है, खुद उसके पास होना। दूसरा उसके पास कैसे होगा? और वह दूसरा भी हो सकता था, उसको उसकी चिंता नहीं है। उसको चिंता आपसे पैसे लेने की है। वह जब उपासना कर रहा है मंदिर में, तब वह गिनती कर रहा है, महीने के कितने दिन बाकी बचे, कि आज तनख्वाह का दिन आ गया कि नहीं आ गया, कि वह देख रहा है, यहां से उपासना करके दूसरे के घर जाना है, फिर तीसरे के घर जाना है। दिन में एक पंडित दस—पांच घरों को निपटा देता है! निपटाना है उसे।

इसलिए ध्यान रहे, पुजारी परमात्मा से जितने दूर रह जाते हैं, उतना शायद ही कोई रह पाता हो। क्योंकि पुजारी को प्रयोजन ही नहीं रह जाता। उसका मतलब कुछ और है। यह उसके लिए धंधा है। उपासना आप उधार नहीं करवा सकते, आपको ही करनी पड़ेगी। और ऐसी उपासना का कोई मूल्य नहीं है कि मंदिर में तो परमात्मा के निकट होते हों और मंदिर के बाहर निकलते ही परमात्मा खो जाता हो। ऐसी उपासना से क्या होगा? अगर वह है, तो सब जगह है। और अगर नहीं है, तो कहीं भी नहीं है, मंदिर में भी नहीं है। अगर नहीं है, तो सब मंदिर व्यर्थ हैं। और अगर है, तो सारी पृथ्वी, सारा जगत उसका मंदिर है।

इन दो के बीच उपासक को चुन लेना चाहिए। या तो वह समझ ले कि वह मंदिर में भी नहीं है; और या फिर वह जान ले कि जहां भी अस्तित्व है, वहीं वह है। और उसकी यह जो खोज चलती रहे, जहां भी वह है।

एक वृक्ष के पास बैठें, तो भी परमात्मा के पास बैठें। और एक पशु के पास खड़े हों, तो भी परमात्मा के पास खड़े हों। एक मित्र पास हो, तो भी परमात्मा पास हो, और एक शत्रु पास हो, तो भी परमात्मा पास हो। आपके लिए वही रह जाए। जितना यह बढ़ता चला जाए विस्तार, जितनी यह प्रतीति उसकी गहन होती चली जाए, उतने ही आप उपासना में रत हो रहे हैं।

उसके गुणों की चर्चा उपयोगी होगी। लेकिन हम गुणों की क्या चर्चा करते हैं? हम उसके गुणों की चर्चा कम करते हैं। हम गुणों की चर्चा में भी अपना हिसाब ज्यादा रखते हैं। मंदिर में मैं सुनता हूं लोगों को जाकर, वे कहते हैं कि हम पापी हैं और तुम पापियों का उद्धार करने वाले। इन्हें उसकी चर्चा से कम प्रयोजन है। इन्हें प्रयोजन इसका है, इनको एक बात का पक्का है कि ये पापी हैं! इसका बिलकुल पक्का नहीं है कि वह पापियों का उद्धार करने वाला है। ये तो केवल अपने पापों से बचाव का उपाय खोज रहे हैं। ये अपने पापों से बचाव का उपाय कर रहे हैं। इन्हें उसमें उत्सुकता नहीं है।

और मजा यह है कि बाहर निकलकर मंदिर के, ये कोई पापों में कमी करने वाले नहीं हैं। अब ये बड़े निश्चित हैं, क्योंकि वह पापियों का उद्धार करने वाला है। अगर ये पाप न करेंगे, तो वह बेचारा किसका उद्धार करेगा! परमात्मा भी खाली पड़ जाए, अनएंप्लायड हो जाए, अगर ये पापी जो हैं, पाप न करें! इसलिए उसको काम में लगाए रखने के निमित्त ये बाहर आकर पाप किए चले जाते हैं। नहीं, कोई उससे प्रयोजन नहीं है। उसके गुणों की स्तुति का मतलब यह नहीं है कि हम एक खुशामद करें। स्तुति खुशामद नहीं है, वह फ्लैटरी नहीं है। और परमात्मा की आप कभी भी खुशामद नहीं कर सकते। क्योंकि खुशामद आप उसी की कर सकते हैं, जिसके और आपके बीच मूल्यों की समानता हो।

आप एक आदमी के पास जाकर कह सकते हैं कि. आप जैसा महान कोई भी नहीं है। और वह खुश होगा, क्योंकि वह अहंकार की तलाश में है। परमात्मा से आप यह कहकर उसे खुश न कर पाएंगे कि आपसे महान कोई भी नहीं है। क्योंकि अहंकार की कोई तलाश नहीं है। और आप कितना भी कहें, वह जितना विराट है, आपके शब्द उतना विराट होना प्रकट न कर पाएंगे। और वह जितना महान है, आपके कोई शब्द उसको छू न पाएंगे। इसलिए आपके कहने का कोई मतलब नहीं है।

उसकी स्तुति का क्या अर्थ है? उसकी प्रार्थना का क्या अर्थ है? उसके गुणों के कीर्तन का क्या अर्थ है?

बडे अलग अर्थ हैं। बड़े अलग अर्थ हैं।

मंसूर निकल रहा है एक गली से, एक सूफी फकीर। फूल खिला है। खड़ा हो गया मंसूर। हाथ जोड़े, आकाश की तरफ देखा। उसके साधकों ने पूछा, यहां किसको हाथ जोड़ रहे हैं? कोई मस्जिद नजर नहीं आती! मैसूर ने कहा, फूल खिला हैं, प्रभु की कृपा! अन्यथा फूल कैसे खिल सकते हैं!

यह कीर्तन है।

सूरज निकला है, मैसूर हाथ जोड़े खड़ा है। साथी कहते हैं, क्या कर रहे हैं? क्या मूर्तिपूजक हो गए! मंसूर कहता है, सूरज निकल रहा है। इतना प्रकाश, इतना प्रकाश, प्रभु की कृपा है!

यह स्तुति है।

मंसूर मर रहा है, उसके हाथ—पैर काट दिए गए हैं। वह आकाश की तरफ आंखें उठाकर मुस्कुरा देता है। भीड़ पूछती है, यह तुम क्या कर रहै हो? दुश्मन इकट्ठे हैं, वे उसको मार रहे हैं। मैसूर कहता है, प्रभु की कृपा है! क्योंकि इधर तुम मुझे मार रहे हो, उधर वह मुझे मिलने को बिलकुल तत्पर खड़ा है। इधर तुम मुझे गिराओगे, उधर मैं उसमें डूब जाऊंगा। प्रभु की बड़ी कृपा है। और शायद तुम सहायता न करते मुझे मारने में, तो मुझे पहुंचने में थोड़ी देर भी हो जाती।

यह स्तुति है।

जीसस को सूली लगै रही है। और सूली पर आखिरी क्षण वे कहते हैं, हे परमात्मा, इन सबको माफ कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं, ये क्या कर रहे हैं!

यह उसका गुणगान है। यह उसका कीर्तन है। यहां भी अनुकंपा ही जीसस को खयाल में आती है।

जीवन में कोई भी अवसर न जाए जब हम उसकी अनुकंपा को अनुभव न करें। दुख हो कि सुख, शाति हो कि अशांति, सफलता मिले कि असफलता, रात हो कि दिन, सूरज उगता हो कि ढलता हो—उसकी अनुकंपा हमें प्रतीत होती रहे, उसके गुणों का एक सरगम हमारे भीतर बजता रहे, तो स्तुति है, तो कीर्तन है। हम जीएं कैसे ही, लेकिन भीतर एक सतत स्मरण उसका बना रहे। उसके स्मरण से हम न चूके, तो उसका स्मरण है।

कृष्ण कहते हैं, ऐसे द्दढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरंतर मेरा कीर्तन करते हुए मुझे बार—बार नमस्कार करते हुए.।

बार—बार कैसे नमस्कार करिएगा? जहां भी आपको उसकी अनुकंपा अनुभव हो—और कहा उसकी अनुकंपा नहीं अनुभव होगी? अनुभव करने की द्दष्टि हो, तो सब जगह उसकी अनुकंपा अनुभव होगी।

मैसूर जा रहा है एक रास्ते से। पैर में पत्थर लग गया है, लहूलुहान हो गया। वहीं बैठकर, हाथ जोड़कर घुटने टेक दिए हैं। साथियों ने कहा, क्या करते हो? पागल हो गए हो! पैर से लहू बह रहा है। मंसूर ने कहा, जहां तक मैं जानता हूं जैसा मे आदमी हूं मुझे फांसी होती तो भी कम था। उसकी कृपा है। फांसी बची, सिर्फ पैर में जरा—सा पत्थर लगा है। जैसा मैं आदमी हूं उसे तो फांसी भी हो, तो कम है। उसकी कृपा है कि फांसी बच गई और पैर में सिर्फ पत्थर लगा है।

अगर आपके पैर में पत्थर लगता, तो मालूम है आपके मुंह से क्या निकलता? आपके मुंह से गाली निकलती। सारी दुनिया उस क्षण में बिलकुल बेकार हो जाती। सारा जीवन असार हो जाता। अगर आपका वश चले, तो आप उस वक्त पूरी दुनिया में आग लगा दें, सब नष्ट— भ्रष्ट कर दें। नहीं चलता वश, बात अलग है। लेकिन भीतर तो सोच लेते हैं। जरा—सा दात में दर्द हो जाए तो जगत में ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता। जरा—सी सिर में पीड़ा हो जाए तो जगत एकदम नास्तिकता से भर जाता है, सब अंधेरा हो जाता है।

यह मंसूर कुछ और ढंग का आदमी है। यह हाथ जोड़कर उससे कह रहा है कि तेरी बड़ी कृपा है। ऐसे तो मैं आदमी ऐसा हूं कि फांसी भी लगे, तो कम है। तूने इतने में ही बचा लिया!

यह उसको बार—बार नमन है। और ऐसे भाव में जो जीएगा सतत, अगर उसकी जिंदगी क्रमश: उस परमात्मा की तरफ बहने लगे, तो.

(किसी व्यक्ति ने उठकर मंसूर के संबंध में कुछ उलटा—सीधा प्रश्न पूछा, निकट बैठे लोगों ने उसे पागल समझ वापस बैठा दिया। इस पर भगवान श्री ने हंसते हुए उसे समझाकर अपनी बात जारी रखी।)

कुछ फिक्र न करिए। कोई मंसूर के प्रेमी आ गए हैं। उन पर नाराज मत हो जाइए। उन पर नाराज हो गए, तो आंसुरी प्रवृत्ति की। तरफ बहना शुरू हो जाता है। उन पर खुश हो जाइए। एक मौका आपको दिया नाराज होने का, अगर नहीं हों, तो यात्रा दूसरी तरफ शुरू हो जाती है।

जीवन प्रतिपल एक चुनाव है। परमात्मा की तरफ, हर जगह से हम खोज लें। अब ये सज्जन आ गए, उनमें भी हम शैतान को देख सकते हैं, उनमें भी हम पागल को देख सकते हैं; उनमें भी हम परमात्मा को देख सकते हैं। हम पर निर्भर करेगा, उन पर निर्भर नहीं है। वे पागल हैं कि नहीं हैं, यह उनकी बात है। लेकिन हम यह देख सकते हैं, उनकी इस वृत्ति में भी हमें एक मौका है, अगर हम उनमें भी उसकी ही अनुकंपा अनुभव करें। उन्होंने सिर्फ कहा, आकर पत्थर ही मार सकते थे। उन्होंने सिर्फ कहा, कुछ और तो किया नहीं। जैसे हम आदमी हैं, इनके साथ कुछ भी किया जाए, तो थोड़ा है।

जीवन में हर घड़ी चुनते रहें, जहां से उसकी स्तुति और उसका स्मरण हो सके, तो एक दिन भीतर वह सघन भाव उपस्थित हो जाता है भक्त का, जो कि द्वार है भगवान के अनुभव के लिए।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
ज्ञान, भकृति, कर्म— अध्याय—9 प्रवचन—छठवां
सूत्र:

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ।।12।।
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमीग्नरहं हुतम्।।13।।
कोई तो मुझ विराट स्वरूय परमत्मा को ज्ञान— यज्ञ के द्वारा पूजन करते हुए एकत्व भाव से अर्थात जो कुछ है सब वासुदेव ही है, हम भाव से उपासते हैं और दूसरे पृथकत्व भाव से अर्थात स्वामी— सेवक भाव से और कोई—कोई अच्छे प्रकार से भी उपासते हैं।

क्योंकि श्रोत—कर्म अर्थात वेदविहित कर्म मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा अर्थात पितरों के निमित्त दिया जाने वाला अन्न मैं हूं औषधि अर्थात सब वनस्पतियां मै हूं एवं मंत्र मैं है घृत मैं हूं अग्नि मैं हूं और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूं।

मार्ग हैं अनेक, गंतव्य एक है। यात्रा—पथ बहुत हैं, यात्री भी बहुत हैं, यात्रा की विधियां भी बहुत हैं, लेकिन जब तक यात्री नहीं मिट जाता, यात्रा—पथ नहीं मिट जाता, यात्रा की विधियां नहीं मिट जातीं, तब तक वह उपलब्ध नहीं होता, जो गंतव्य है।

परमात्मा तक पहुंचने के लिए दो व्यक्तियों के लिए एक ही मार्ग नहीं हो सकता, असंभव है, क्योंकि दो व्यक्ति भिन्न हैं। वे जो भी करेंगे, भिन्न होगा, वे जैसे भी करेंगे, भिन्न होगा। और हमें यात्रा वहां से शुरू करनी होती है, जहां हम हैं।

मैं वहीं से यात्रा शुरू करूंगा, जहां मैं हूं। आप वहां से यात्रा शुरू करेंगे, जहां आप हैं। हमारी यात्रा का प्रारंभिक बिंदु एक नहीं हो सकता, क्योंकि दो व्यक्ति एक ही जगह खड़े नहीं हो सकते। लेकिन यात्रा का अंतिम पड़ाव एक हो सकता है, क्योंकि उस पड़ाव पर व्यक्ति मिट जाते हैं। व्यक्तियों के मिटते ही व्यक्तियों की भिन्नता मिट जाती है।

जब तक मैं व्यक्ति हूं, तब तक मैं जो भी करूंगा वह भिन्न होगा, इस सत्य को न समझ लेने से मनुष्य के धर्म का इतिहास अकारण ही रक्तपात से, अकारण ही हिंसा से, अकारण ही द्वेष से भर गया है।

प्रत्येक को ऐसी प्रतीति हो सकती है कि जिस मार्ग पर मैं जा रहा हूं वह सही है। इस प्रतीति में कोई भूल भी नहीं है। लेकिन जैसे ही यह भ्रांति भी भर जाती है कि जिस मार्ग से मैं जा रहा हूं वही सही है, वैसे ही उपद्रव शुरू हो जाता है। शायद इतने से भी उपद्रव न हो, अगर मैं यह जानूं कि यह मार्ग मेरे लिए सही है। मेरे लिए यही मार्ग सही है। लेकिन अहंकार यहीं तक रुकता नहीं। अहंकार एक निष्कर्ष अनजाने ले लेता है कि जो मेरे लिए सही है, वही सबके लिए भी सही है।

इसलिए धर्मों के नाम से जो उपद्रव है, वह धर्मों का नहीं, अहंकारों का उपद्रव है। मेरा अहंकार यह मानने को राजी नहीं होता कि कोई और ढंग भी सही हो सकता है। यही मानने को तैयार नहीं होता कि मेरे अतिरिक्त कोई और भी सही हो सकता है। तो मेरा ही रास्ता होगा सही, मेरी उपासना पद्धति होगी सही, मेरा शास्त्र होगा सही। लेकिन मेरा यह सही होना तभी मुझे रस देगा, जब मैं सब दूसरों को गलत कर डालूं।

और ध्यान रहे, जो दूसरों को गलत करने में लग जाता है, उसकी शक्ति और ऊर्जा उस मार्ग पर तो चल ही नहीं पाती, जिसे उसने सही कहा है, उसकी शक्ति और ऊर्जा उनको गलत करने में लग जाती है, जिन पर उसे चलना ही नहीं है।

यह उपद्रव और भी गहन हो गया, क्योंकि हमने धर्मों को जन्मजात बना लिया। धर्म जन्मजात नहीं हो सकता। धर्म तो व्यक्तिजात होगा। कोई व्यक्ति पैदाइश से न हिंदू हो सकता है, न मुसलमान हो सकता है, न ईसाई हो सकता है, न जैन हो सकता है। पैदाइश से तो केवल संभावना लेकर पैदा होता है कि धार्मिक हो सकता है या अधार्मिक हो सकता है।

ये दो संभावनाएं होती हैं, ये दो दरवाजे खुले होते हैं—धार्मिक हो सकता है या अधार्मिक हो सकता है। लेकिन हिंदू या मुसलमान या ईसाई पैदाइश से कोई नहीं होता। हो भी नहीं सकता। क्योंकि पिता का धर्म, या पिता की मान्यता खून से बच्चे में प्रवेश नही करती। और हम किसी आदमी की हड्डियों और खून की जांच करके नहीं कह सकते हैं कि ये मुसलमान की हैं, कि हिंदू की हैं, कि जैन की हैं। एक व्यक्ति के शरीर की हम सारी जांच—पड़ताल कर डालें, उसके जीवकोष्ठों में प्रवेश कर जाए, उसके मूल बीज—क्या में उतर जाएं, उसकी भी जांच कर लें, तो धर्म का कोई भी पता नहीं चलेगा।

लेकिन एक उपद्रव पैदा हुआ कि हमने धर्मों को जन्मजात कर लिया है। तो एक मुसलमान के बेटे को मुसलमान होना पड़ता है, एक हिंदू के बेटे को हिंदू होना पड़ता है। जरूरी नहीं है कि यह बात उसके व्यक्तित्व के ढांचे से मेल खाए। तब खतरे होते हैं। तब खतरा बड़ा यह होता है कि जो धर्म उसका मार्ग बन सकता था, वह जन्म से उसे अगर न मिला हो, तो अड़चन पैदा हो जाती है। वह अड़चन गहरी है।

इधर मैं जानता हूं ऐसे लोगों को, जो कि हिंदू के घर में न पैदा होकर अगर मुसलमान के घर में पैदा हुए होते, तो उन्हें लाभ हो जाता। ऐसे लोगों को जानता हूं, जो मुसलमान के घर में पैदा न होकर हिंदू के घर में पैदा होते, तो उनके जीवन में धर्म के फूल खिल जाते। उनके व्यक्तित्व का ढांचा और उनके जन्म के ढाचे का कोई मेल नहीं है।

जन्म एक और बात है) धर्म एक और बात है। जन्म शरीर की बात है, धर्म व्यक्ति के टाइप की खोज है। धर्म व्यक्ति की अंतरात्मा की तलाश है। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही ढंग से अपने धर्म को खोजना चाहिए। स्वधर्म की खोज जन्म से पूरी नहीं होती, स्वधर्म की खोज करनी पड़ती है।

इसलिए एक और घटना घटती है कि सभी धर्म जब पहली दफा अवतरित होते हैं, तो उनमें जो जीवन और जो तेज होता है, वह समय के बीतते—बीतते क्षीण हो जाता है। जब भी कोई नया धर्म अवतरित होता है—नए धर्म का अर्थ है, जब कोई नया टाइप, व्यक्तित्व का कोई नया ढंग परमात्मा की तरफ जाने का मार्ग खोज लेता है, तो एक नए धर्म का सूत्रपात होता है—जब भी कोई नया धर्म पैदा होता है, तो उसमें एक ताजगी, एक प्रफुल्लता, एक जीवन का बहाव होता है।

मोहम्मद के समय में जो इस्लाम की खूबी थी, वह आज नहीं है। हो नहीं सकती। कृष्ण के समय में, .कृष्ण की मौजूदगी में जो कृष्ण के आस—पास घटित हुआ था, वह आज नहीं हो सकता। महावीर के साथ जो पहली दफा जैन हुए थे, उनके बच्चे उसी अर्थों में जैन नहीं हो सकते। क्योंकि महावीर के पास जिन्होंने पहली दफा 'जैन होने का निर्णय लिया था, वह उनका काशस डिसीजन था; वह उनका चेतना से लिया गया संकल्प था। वह उन्होंने चुना था। वह उनकी अपनी निष्ठा थी। वह उधार नहीं थी। वह बाप—दादों से नहीं आई थी। उसके लिए उन्होंने स्वयं खोज की थी।

इसलिए महावीर के आस—पास जो लोग जैन हुए, उनके जैन होने में जो रस था, उनके जैन होने में जो प्राण था, वह किसी जैन के बेटे को नहीं हो सकता। होने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि वह रस और प्राण स्वयं के चुनाव से उत्पन्न होता है।

अगर कोई व्यक्ति गलत मार्ग भी चुन ले अपनी पूरी निष्ठा के साथ, तो मैं कहता हूं वह परमात्मा तक पहुंच जाएगा। क्योंकि निष्ठा पहुंचाती है, मार्ग नहीं। और कोई व्यक्ति अगर उधार निष्ठा से ठीक से ठीक मार्ग भी चुन ले, तो कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता है। क्योंकि निष्ठा पहुंचाती है, मार्ग नहीं। निष्ठा है बल। मार्ग में बल नहीं है, मेरे संकल्प में बल है।

लेकिन जन्म से तो संकल्प मिलता नहीं! जन्म से सिद्धात मिलते हैं, शास्त्र मिलता है, जन्म से शब्द मिलते हैं, संकल्प नहीं मिलता। इसलिए जन्म के साथ जब तक दुनिया में धर्म बंधा रहेगा, तब तक दुनिया अधार्मिक रहने को मजबूर रहेगी, आदमी को अधार्मिक रहना पड़ेगा। क्योंकि हम धार्मिक होने का चुनाव नहीं देते।

इसे ऐसा समझें, मैं मुसलमान घर में पैदा हुआ हूं। अगर वह मार्ग मेरी व्यक्तिगत रुझान में नहीं बैठता, अगर वहां मैं नहीं हूं, जहां से उस मार्ग पर चल सकूं अगर मैं ऐसा नहीं हूं, जो उस मार्ग से संयुक्त हो सके, अगर मुझ में और उस मार्ग में कोई तालमेल नहीं बैठता र तो मेरे सामने एक ही उपाय रह जाता है कि मैं अधार्मिक हो जाऊं।

इस दुनिया में जो इतने अधार्मिक लोग दिखाई पड़ते हैं, इतने अधार्मिक नहीं हैं ये! इनका केवल दुर्भाग्य एक है कि ये जन्म के साथ धर्म को बांधने की चेष्टा में संलग्न हैं। और जब हम बीस—पच्चीस वर्ष तक एक व्यक्ति को एक धर्म की शिक्षा दें, तो वह उसके अंतस—चेतन में प्रवेश कर जाती है, फिर वह धर्म परिवर्तित भी नहीं कर सकता।

अगर एक हिंदू मुसलमान हो जाए, वह लाख उपाय करे मुसलमान होने का, उसके भीतर का हिंदू जो पच्चीस साल तक उसके भीतर निर्मित हुआ है, कभी भी मिट नहीं सकता। कभी भी मिट नहीं सकता, वह उसके भीतर बना ही रहेगा।

एक हिंदू ईसाई हो जाए, लेकिन उसके अंतस—चेतन में जो प्रवेश कर गया है, वह उसकी आधारभूमि रहेगी। उसकी ईसाइयत के नीचे हिंदू का रंग रहेगा। वह चर्च में जीसस को हाथ जोड़ेगा, लेकिन हाथ जोड्ने के ढंग वही होंगे, जो राम के मंदिर में रहे थे। उसका अंतस—चेतन, उसका अनकांशस निर्मित हो चुका है।

अब मनसविद कहते हैं कि सात साल में अंतस—चेतन निर्मित हो जाता है। और सात साल के बाद उसे बदलना असंभव के करीब है। सात साल की उम्र में अंतस—चेतन निर्मित हो जाता है, आधार रख दिए जाते हैं, फिर भवन उसके ऊपर ही उठेगा।

अगर एक व्यक्ति को ऐसे धर्म में जन्म मिल गया, जिससे उसका मेल नहीं खाता—और सौ में से नब्बे मौके पर यह घटना घटेगी। क्योंकि जन्म का धर्म से कोई संबंध नहीं है, धर्म का संबंध संकल्पपूर्वक चुनाव से है। व्यक्ति को धार्मिक होना पड़ता है, धार्मिक कोई पैदा नहीं हो सकता। और यह गौरव की बात है। अगर हम धार्मिक पैदा ही होते हों, तो धर्म बड़ी साधारण बात रह जाएगी। अगर हम धार्मिक इसी तरह होते हों—जैसे बाप से आंख पाते हैं, जैसे बाप से हाथ पाते हैं, जैसे बाप से शरीर का रंग पाते हैं—अगर ऐसे ही हम धर्म भी पाते हों, तो धर्म भी बायोलाजिकल, एक जैविक घटना हो जाएगी।

तब तो इसका अर्थ हुआ कि शरीर ही नहीं, आत्मा भी हम बाप से पाते हैं; जो कि सरासर झूठ है। शरीर मिलता है माता और पिता से, तो शरीर का जो भी है, वह माता—पिता से मिलता है। लेकिन आत्मा माता—पिता से नहीं मिलती, आत्मा की यात्रा अन्यथा है, अलग है।

और आत्मा की यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण मुकाम यह है कि आत्मा हर संकल्प से विकसित होती है। जितना बडा संकल्प, उतनी आत्मा सबल होती है। और धर्म इस जगत में सबसे बड़ा संकल्प है, सबसे बड़ी चुनौती है, सबसे बड़ा अभियान है, दुस्साहस है। क्योंकि अज्ञात में छलांग है, उसकी खोज है, जिसका हमें कोई भी पता नहीं, उस तरफ की यात्रा है, जिस तरफ के हमें कोई संकेत भी नहीं मिलते, उस सागर में उतरना है, जिसका कोई नक्श नहीं है। और एक अनजान में, अपरिचित मार्ग पर भटक जाने का डर है, पहुंच जाने की उम्मीद कम है। इसलिए धर्म सबसे बड़ा साहस है; दुस्साहस है। कमजोर का काम नहीं है धर्म। लेकिन आमतौर से हम देखते हैं, कमजोर धर्म से जुड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। अक्सर ऐसा दिखाई पड़ता है, जितने कमजोर लोग हैं, वे सब धर्म की आड़ में खड़े हो जाते हैं। इन कमजोरों ने ही धर्म को जन्म का हिस्सा बना दिया, क्योंकि सुविधा है उसमें। धर्म को भी चुनने की कठिनाई न रही! इतना भी श्रम न उठाना पड़ेगा अब कि धर्म को चुनें। वह भी जन्म के साथ जुड़कर लेबिल की तरह मिल जाएगा। उसे हमें चुनना नहीं पड़ेगा, खोजना नहीं पड़ेगा, अन्वेषण नहीं करना पड़ेगा, भूल—चूक नहीं करनी पड़ेगी, बच जाएंगे सब भूल—चूक से!

तो फिर एक लेबिल ही मिलेगा, धर्म मिलने वाला नहीं है!

कृष्ण ने कहा है कि स्वधर्म। लेकिन लोग अक्सर समझते हैं कि स्वधर्म का मतलब है, जिस धर्म में पैदा हुए! भूलकर ऐसा मत समझना! कोई धर्म में पैदा होता ही नहीं, धर्म खोजना पड़ता है। यह एक अंतखोंज है। यह एक अंतखोंज है सत्य की, और निजी है। और हर आदमी को खोजना पड़ता है। यह उधार मिलता ही नहीं।

अगर कोई सोचता हो, किसी गुरु से मिल जाएगा, अगर कोई सोचता हो, किसी से मिल जाएगा, तो गलती है। खोजना ही पड़ेगा। खोजेंगे, तो ही गुरु भी मिलेगा। खोजेंगे, तो ही किसी से भी मिलने का मार्ग साफ होगा। लेकिन यह मुरदे हस्तांतरण से नहीं मिलता। कोई ट्रासफर नहीं कर सकता। कोई बाप लिख नहीं जा सकता कि मेरे धन के साथ मैं धर्म भी अपने बेटे को वसीयत में देता हूं। नहीं तो दुनिया में जैसे धन बढ़ गया, ऐसे ही धर्म भी बढ़ गया होता।

दुनिया में धन बहुत बढ़ गया है। दो हजार साल पीछे लौटें, धन ' और कम था। और पांच हजार साल पीछे लौटें, धन और कम था। दुनिया में सब चीजें बढ़ गईं, जिनकी वसीयत हो सकती थी। सिर्फ धर्म नहीं बढ़ा। बल्कि धर्म कम हो गया मालूम पड़ता है। जरूर कहीं कोई फर्क है।

जो भी चीज वसीयत की जा सकती है, वह बढ़ जाएगी। दुनिया की भाषाएं बढ़ गईं, दुनिया का वैज्ञानिक ज्ञान बढ़ गया, दुनिया में किताबें बढ़ गईं, दुनिया के मकान बढ़ गए; दुनिया में आदमी बढ़ गए। दुनिया में सब बढ़ गया है, जो भी वसीयत हो सकती है। क्योंकि बाप दे जाता है बेटे को, तो बाप ने जो भी कमाया था, उसके ऊपर बेटा कमाना शुरू करता है। फिर बेटा उसमें जोड़ देता है, अपने बेटे को दे जाता है। बाप की भी कमाई, अपनी भी कमाई, बेटा वहा से शुरू करता है।

तो जगत में सब चीजें बढ़ती जा रही हैं, प्रोग्रेसिव हैं, गतिमान हैं, सिर्फ एक चीज घटती जा रही है, वह धर्म है। लेकिन शायद आपने कभी सोचा न हो, इसका कारण क्या है? यह धर्म क्यों घटता जा रहा है?

नासमझ हैं, वे कहते हैं कि धर्म इसलिए घट रहा है कि वैज्ञानिकों ने अधार्मिक बातें कर दीं, वे कहते हैं, लोग नास्तिक हो गए; वे कहते हैं, लोग भौतिकवादी हो गए; वे कहते हैं, लोग बिगड़ गए। ये सब बातें गलत हैं। कोई बिगड़ा नहीं है। कोई नास्तिक नहीं हो गया है। किसी भौतिकवादी की बातों से धर्म का कुछ बिगड़ नहीं सकता। और धर्म अगर इतना कमजोर है कि वैज्ञानिक की बातों से मिट जाए और भौतिकवादी की बातों से मिट जाए, तो किसी योग्य भी नहीं है, मिट ही जाना चाहिए। धर्म इतना कमजोर नहीं है। धर्म के घट जाने का कारण और है।

धर्म वसीयत नहीं किया जा सकता। इसलिए आप धर्म के मामले में अपने बाप के कंधे पर खड़े नहीं हो सकते। आपको अपने ही पैर की जमीन खोजनी पड़ती है। इसलिए धर्म में बढ़ती नहीं हो सकती है हर पीढ़ी के साथ। एक ही रास्ता है बढ़ती का कि हर पीढ़ी धर्म को खोजती चली जाए। लेकिन अगर हम अपने बाप की वसीयत पर सोचते हों कि धर्म मिल जाएगा, तो धर्म खो जाएगा। तब हम झूठे धर्म में खड़े रह जाएंगे।

इसलिए कृष्ण ने इस सूत्र में बहुत कीमत की बात कही है। पहली, कि बहुत—बहुत रूपों से मेरी तरफ मार्ग आते हैं। कोई हैं, जो मुझ विराट स्वरूप परमात्मा को ज्ञान के द्वारा पूजते हैं। ज्ञान ही उनका यश है। एकत्व— भाव से, जो कुछ है, सब वासुदेव ही है, ऐसे भाव से उपासते हैं। यह पहला वर्ग है बड़ा।

तीन वर्ग हैं। एक वर्ग है, जिसके व्यक्तित्व का ढांचा ज्ञान का है। इसे हम थोड़ा समझ लें। इसमें भी बहुत शाखाएं होंगी, लेकिन फिर भी एक मोटा विभाजन किया जा सकता है।

एक वर्ग है मनुष्य का, जिसका ढांचा ज्ञान का है। ज्ञान के ढाचे से अर्थ है, ऐसा व्यक्ति जानने को आतुर होता है। ऐसा व्यक्ति अपना जीवन भी गंवा सकता है जानने के लिए। जानना उसका सबसे बड़ा रस है। जिज्ञासा उसका मार्ग है। वह कुछ भी खो सकता है। वह कुछ भी दाव पर लगा सकता है। उसे अगर इतना भर पता चले कि एक इंच ज्यादा मेरा जानना हो जाएगा, तो वह सब कुछ .दांव पर लगा सकता है। अगर आप ऐसे व्यक्ति से पूछें कि जानकर क्या करोगे? तो वह कहेगा, जानकर करने की कोई जरूरत नहीं, जानना काफी है। ऐसा व्यक्ति कहेगा कि जानना पर्याप्त है, नालेज फार नालेज सेक। वह कहेगा, जानना जानने के लिए ही। जानना काफी है, और क्या करना है! बुद्ध जैसा व्यक्ति है, जानना काफी है। उसके लिए जानना ही उसकी आत्मा बन जाती है।

जो जानने की दिशा में चलेगा, वह अंततः पाएगा कि एक ही शेष रहा, क्योंकि ज्ञान का जो अंतिम चरण है, वह अद्वैत है। क्यों ऐसा है, इसे हम थोड़ा समझें।

जब भी हम कुछ जानते हैं, जब भी हम कुछ जानते हैं, तो जानने की घटना में तीन हिस्से टूट जाते हैं। जानने वाला अलग हो जाता है, जिसे जानता है, वह जानी जाने वाली चीज अलग हो जाती है और दोनों के बीच ज्ञान का संबंध घटित होता है। तो ज्ञान तीन हिस्से में टूट जाता है, ज्ञाता, ज्ञेय, और ज्ञान; दि नोअर, दि नोन, एड। ज्ञान तीन हिस्सों में टूट जाता है।

लेकिन ज्ञानी की जो आकांक्षा है, वह किसी चीज को बाहर से जानने' की नहीं है। क्योंकि बाहर से जाना, तो क्या जाना! अगर मैं आपके पास आऊं और आपके चारों तरफ घूमकर आपको जान लूं तो जानने वाले की इच्छा पूर्ण नहीं होगी, क्योंकि यह जानना न हुआ, केवल परिचय हुआ। अगर मैं जाऊं और एक वृक्ष के चारों तरफ चक्कर लगाकर देख लूं तो यह जानना न हुआ; एक्येनटेंस हुआ, पहचान हुई।

तो जानने की जिसकी खोज है, वह इतने से राजी नहीं होगा। वह तो कहेगा, जब तक मैं वृक्ष ही न हो जाऊं, तब तक जानना पूरा नहीं है। क्योंकि जब तक मैं वृक्ष से जरा भी दूर रहूंगा, तब तक बाहरी परिचय रहेगा, भीतरी पहचान नहीं होगी। भीतरी पहचान का तो एक ही रास्ता है कि मैं वृक्ष के फूल को बाहर से न देखूं इस तरह वृक्ष में लीन हो जाऊं कि मैं फैल जाऊं वृक्ष के पत्तों में, शाखाओं में, जड़ों में, फूल में। मैं वृक्ष के भीतर एक हो जाऊं। मुझमें और वृक्ष में रत्तीभर का फासला न रह जाए, तब जानना घटित होगा। तब मैं कह सकूंगा, मैंने वृक्ष को जाना। अगर बाहर से ही जाना, तो इतना ही कह सकूंगा कि वृक्ष की थोड़ी मुझे पहचान है। लेकिन दूरी है इस पहचान में।

तो ज्ञान की प्रक्रिया में टूट जाती है घटना तीन में। लेकिन जो ज्ञान का खोजी है, वह इस कोशिश में रहेगा कि एक दिन ऐसा आए, जब शांता ज्ञेय हो जाए; व्हेन दि नोअर बिकम्स दि नोन, ऑर दि नोन बिकम्स दि नोअर, व्हेन दि आब्जर्वर इज दि आब्जर्ब्द, जब दोनों एक हो जाएं। उसके पहले ज्ञानी की तृप्ति नहीं है।

इसलिए अगर हम ज्ञानी से कहें कि परमात्मा आकाश में है, वह मानने को राजी नहीं होगा। वह तो कहेगा, जब मेरी अंतरात्मा में होगा, तभी मैं मान सकता हूं। या मैं परमात्मा की अंतरात्मा में प्रविष्ट हो जाऊं, तब मैं मान सकता हूं। इसके पहले मेरे मानने का कोई भी उपाय नहीं है।

इसलिए आकाश का परमात्मा इतनी के काम नहीं आएगा। अगर हम कहें कि मंदिर की प्रतिमा में परमात्मा है, तो वह उसे नहीं मान सकेगा। क्योंकि प्रतिमा के आस—पास घूमा जा सकता है, प्रतिमा में प्रवेश कैसे होगा? अगर हम कहें, शास्त्रों में परमात्मा है, तो वह कहेगा, शास्त्रों को पढ़ा जा सकता है, शब्दों को समझा जा सकता है, लेकिन प्रवेश कैसे होगा?

ज्ञानी की आत्यंतिक खोज इस बात के लिए है कि कब मैं उसके साथ एक हो जाऊं, तभी जानूंगा कि जाना। उसके पहले सब जानना फिजूल है। उसके पहले जिसे हम जानना कहते हैं, वह

जानना नहीं है।

बर्ट्रेड रसेल ने ज्ञान के दो हिस्से किए हैं; वे ठीक हैं। बर्ट्रेड रसेल ने कहा है, एक तो ज्ञान है, जिसे हम कहें एक्वेनटेंस, परिचय। और एक वस्तुत: ज्ञान है, जिसे हम नालेज कहें।

परिचय का मतलब है, बाहर से। और ज्ञान का मतलब है, भीतर से।

इसका तो यह अर्थ हुआ कि समस्त विज्ञान परिचय है, क्योंकि काई वैज्ञानिक कितना ही जान ले, बाहर ही खड़ा रहता है। असल में विज्ञान का तो आधार ही यही है कि जानने वाले को बाहर खड़ा रहना चाहिए। यहीं धर्म और विज्ञान के जानने में फर्क पड़ जाता है। वैज्ञानिक बाहर खड़ा रहता है। अपनी प्रयोगशाला में खड़ा है, जांच रहा है। घटना उसकी टेबल पर घट रही है, वह दूर खड़ा देख रहा है। बल्कि वैज्ञानिक का नियम यह है कि दूरी इतनी होनी चाहिए कि अपना भाव प्रविष्ट न हो जाए। वैज्ञानिक को बिलकुल निष्पक्ष होना चाहिए। निष्पक्ष होने के लिए दूरी चाहिए, पर्सपेक्टिव चाहिए, फासला चाहिए। बहुत पास हो जाओ, तो मन का लगाव बन सकता है। लगाव नहीं होना चाहिए। निष्पक्ष, एक जज की हैसियत से दूर खड़े होकर देखते रहो। जो हो रहा है, वही देखो। अपने को उसमें प्रवेश मत करो। अन्यथा तुम वह भी देख सकते हो, जो नहीं हो रहा है, जो तुम चाहते हो, होना चाहिए, वह भी देख सकते हो। इसलिए दूरी रखो, भीतर प्रवेश मत कर जाओ। बी एन आब्जर्वर, बट डोंट बी ए पार्टिसिपेट। निरीक्षक तो रहो, लेकिन भागीदार मत बन जाओ।

इसलिए विज्ञान कभी परमात्मा को नहीं जान पाएगा उन अर्थों में, जिन अर्थों में कृष्ण शानी की बात कर रहे हैं। क्योंकि वहा दूसरी शर्त है। वहां यह शर्त है, डोंट बी जस्ट एन आब्जर्वर, बी ए पार्टिसिपेट। बाहर मत खड़े रहो, भीतर आ जाओ। दूर मत खड़े रहो, दूरी गिरा दो। क्योंकि दूर से तुम जो जानोगे, वह बाहरी पहचान होगी। भीतर आओ, अंतरतम में प्रविष्ट हो जाओ। वहां आ जाओ,जिसके भीतर और जाने का उपाय नहीं है। आखिरी केंद्र पर आ जाओ, परिधि को छोड़ दो। उस केंद्र पर आ जाओ, जिसके भीतर और जाने की सुविधा ही नहीं है। तभी तुम जान पाओगे।

तो ज्ञान एक दिशा है। इस दिशा में बहुत मार्ग जाते हैं, क्योंकि फिर ज्ञान के भी बहुत—बहुत रूप हो जाते हैं। लेकिन मोटे अर्थों में मनुष्य का एक विभाजन है।

जिन लोगों को जानने की खोज है, उनके लिए भक्ति सदा फिजूल मालूम पड़ेगी। कीर्तन हो रहा होगा, तो वे कहेंगे, यह क्या पागलपन है! कोई गीत गा रहा होगा, वे कहेंगे, इससे क्या होगा! 'कोई मंदिर में पूजा करता होगा, तो उन्हें समझ में नहीं पड़ेगी।

दूसरे का मार्ग कभी भी समझ में नहीं पड़ता। लेकिन समझदार उसी का नाम है, जो दूसरे के मार्ग को भी होने की सुविधा देता है, चाहे उसकी समझ में न भी पड़ता हो। जब मैं यह कहूं कि मुझे यह कीर्तन समझ में नहीं पड़ रहा है, तो मैं इतना ही कह रहा हूं कि मुझसे इसका कहीं ताल—मेल नहीं खाता। लेकिन हम जल्दी आगे बढ़ जाते हैं। हम कहते हैं, यह गलत है। वहां भूल शुरू हो जाती है। मेरे लिए गलत होगा, तो भी किसी और के लिए सही हो सकता है। मेरे लिए भ्रांत होगा, मेरे लिए नहीं होगा ठीक, तो भी किसी और के लिए बिलकुल ठीक हो सकता है।

कृष्ण कहते हैं, यह पहला विभाजन है ज्ञान का।

लेकिन जब भी कोई अपने विभाजन के आर—पार जाने लगता है, तो दूसरों को नुकसान पहुंचाना शुरू कर देता है। अपने मार्ग पर चलना तो उचित है, लेकिन दूसरों के मार्गों को विचलित करना : अनुचित है।

बहुत बार ज्ञान के मार्ग पर चलने वाले लोगों ने भक्ति के मार्ग पर जाते हुए लोगों के मार्ग में बड़ी बाधाएं और बड़ी अडचनें खड़ी कर दी हैं, अनजाने ही। क्योंकि उनके लिए जो ठीक नहीं लगता, वे कहते हैं, ठीक नहीं है। लेकिन किसी दूसरे मार्ग पर वह बिलकुल ही ठीक हो सकता है।

कृष्ण कहते हैं, यह जो पहली उपासना है, ज्ञान—यज्ञ का पूजन !, करने वाले जो लोग हैं, वे एकत्व— भाव से, जो कुछ है, परमात्मा है, ऐसी प्रतीति में रमते हैं। यही उनकी उपासना है। वे मुझे सभी में खोज लेते हैं। वे सभी में मुझे देख लेते हैं। वे सब पर्दों को हटा देते हैं और जो पर्दों के भीतर छिपा है, उसकी झलक पा लेते हैं।

यह झलक एक की झलक है, सारे भेद पर्दों के भेद हैं। पर्दे सब हट जाए, तो जो भीतर छिपा है, वह एक है। जैसे हम सब मकानों को गिरा दें, तो सभी मकानों के भीतर से जो आकाश प्रकट होगा, ! वह एक होगा।

लेकिन सब मकान जब तक बने हैं, तब तक सभी मकानों की दीवालों में घिरा हुआ आकाश अलग मालूम पड़ता है। किसी मकान की दीवालें लाल हैं, और किसी की पीली हैं, और किसी की गरीब हैं, और किसी की मकान की दीवालें धनी हैं, और किसी का मकान आकाश छूता है, और किसी का जमीन छू रहा है। बहुत—बहुत फासले हैं। झोपड़े .हैं और महल हैं, वह भीतर छिपा जो आकाश है, अलग—अलग मालूम पड़ता है।

कौन मानने को तैयार होगा कि झोपड़े के भीतर भी वही आकाश है जो महल के भीतर है? कौन 'मानने को तैयार होगा?

कोई मानने को तैयार नहीं होगा। कहेगा कि महल में जो आकाश है, वह बात ही और है। वह स्वर्णमडित है, हीरे—जवाहरातों से सजा है। सुगंध से भरपूर है। उसकी ज्ञान और है, उसका विलास और है। झोपड़े का भी एक गरीब आकाश है, दीन है, दरिद्र है।

लेकिन आकाश भी कहीं भिन्न हो सकता है? झोपड़ा होगा दीन—दरिद्र; महल होगा समृद्ध, लेकिन भीतर जो आकाश है, दोनों के भीतर जो रिक्त स्थान है, वह कैसे भिन्न हो सकता है? लेकिन झोपड़ा भिन्न दिखाई पड़ता है, महल भिन्न दिखाई पड़ता है।

अभिन्नता तब तक न दिखाई पडेगी, जब तक हम झोपड़े और महल को मिटाकर न देखें। झोपड़े को भी मिटा दें, महल को भी मिटा दें, और फिर फर्क करने जाएं कि दोनों के भीतर जो छिपा आकाश था, अब उसमें कुछ भेद रहा? एक दीन, एक समृद्ध! एक गरीब, एक अमीर! एक स्वर्णमडित, एक भिक्षापात्र से भरा!

अब उन आकाशों में कोई भी भेद न रह जाएगा।

ज्ञानी की खोज उसकी खोज है, जो सभी रूपों के भीतर छिपा है, सभी आकारों के भीतर छिपा है। और ज्ञानी जब तक उस निराकार को नहीं खोज लेता, जो सभी आकारों में रमा है, तब तक उसकी तृप्ति नहीं है। इसलिए ज्ञानी अक्सर, साकार की जो पूजा करते हैं, उनके खिलाफ मालूम पड़ेa*aाँ। उसके खिलाफ होने का कारण है, उसकी खोज। उसकी खोज निराकार की है। इसलिए जब आपको देखेगा किसी आकार की कर रहे हैं, तो कहेगा, क्या पागलपन में पड़े हो! उसे खोजो, जो निराकार है!

लेकिन उसे पता नहीं कि कोई और आकार से भी उसकी यात्रा पर जा सकता है। उसकी हम पीछे बात करेंगे।

यह जो निराकार, एकत्व, सब में ही वासुदेव को देख लेने वारना है, समझ लेना चाहिए कि क्या यह मेरा मार्ग है? खोज लेना चाहिए तालमेल बिठाना चाहिए, क्या ज्ञान मेरी खोज है? क्या मैं उस तरह का व्यक्ति हूं जो सब आकारों को गिराकर निराकार की तलाश में लगा हूं? क्या उससे मेरी तृप्ति होगी? क्या वही मेरी आत्मा की अभीप्सा है? वही मेरी प्यास है? अगर नहीं है, तो उस उपद्रव में कभी भी पड़ना नहीं चाहिए। अगर है, तो शेष सब को भूलकर उसमें पूरी तरह लीन हो जाना चाहिए। यह स्वधर्म की खोज है।

कृष्ण कहते हैं, दूसरे पृथकत्व भाव से, द्वैत भाव से, अर्थात स्वामी—सेवक भाव से मेरी उपासना करते हैं।

दूसरा वर्ग है भक्त का। भक्त की खोज बिलकुल भिन्न है। खोज का अंत बिलकुल एक है, खोज का मार्ग बिलकुल भिन्न है। भक्त !, कहता है, जानने से कोई प्रयोजन नहीं। जानने में भक्त को बिलकुल रूखा—सूखापन मालूम पड़ता है। है भी शब्द रूखा। ज्ञान बड़ा रूखा शब्द है। उसमें कहीं कोई रस— धार नहीं बहती। ज्ञान बिलकुल मस्तिष्क की बात मालूम पड़ती है, उसमें हृदय की धड़कन नहीं सुनाई पड़ती। ज्ञान एक गणित का फार्मूला मालूम पड़ता है, किसी फूल का खिलना नहीं।

भक्त कहता है, जानने से क्या होगा? प्रेम! जानना कुछ मतलब का नहीं है। वह कहता है, जब तक मैं उसे प्रेम न कर पाऊं, तब तक मेरी कोई तृप्ति नहीं है। नोइंग नहीं, लविंग। जानना नहीं, उसके प्रेम में डूब जाना।

भक्त कहता है, जानना भी बाहर ही बाहर है, कितने ही भीतर चले जाओ, जानना फिर भी बाहर है। और भक्त ठीक कहती है। अपनी जगह से बिलकुल ठीक कहता है। वह कहता है, जब तक प्रेम में न डूब जाओ, तब तक असली जानना कहां! क्योंकि भक्त कहता है कि प्रेम ही जानने का मार्ग है।

अब इसे ऐसा समझें, एक डाक्टर है, वह एक मरीज के पास खड़ा हुआ है एक घर में। मरीज मरणासन्न है। मर रहा है। डाक्टर उसकी नाड़ी अपने हाथ में लिए हुए खड़ा है, तत्पर। नाडी की एक—एक धड़कन उसकी समझ में आ रही है। मरीज के हृदय की धड़कन उसकी समझ में आ रही है। मरीज के खून की चाल उसकी समझ में आ रही है। मरीज की अवस्था उसके पूरे ज्ञान में है।

पास में ही उस मरीज की पत्नी छाती पीटकर रो रही है। हाथ उसका नाड़ी पर नहीं है मरीज की। हृदय की धड़कन का उसे कुछ पता नहीं है। मरीज की क्या अवस्था है, उसका उसे कोई ज्ञान नहीं है। लेकिन उसके आंसू बहे जा रहे हैं। उसके प्राण संकट में हैं। वह मरीज नहीं मर रहा है, वह खुद मर रही है। इस मरीज के साथ उसका मरना घटित हो रहा है।

इन दोनों के जानने में बड़ा फर्क है। डाक्टर का जानना कितना ही गहरा हो, बहुत गहरा नहीं है। पत्नी का जानना बिलकुल भी नहीं है। इसे कुछ भी पता नहीं है कि घडीभर बाद यह आदमी मर जाएगा कि बचेगा, कि क्या होगा। कि इसके शरीर में क्या कमी है और क्या ज्यादा है, और क्या घट रहा है—इसे कुछ भी पता नहीं है।

गणित का इसे कोई भी पता नहीं है। लेकिन किसी अंतस्तल पर इसे पता है कि घटना समाप्त हो गई। जीवन बुझने के करीब है। इसे कुछ भी पता नहीं है। इसके पास कोई यंत्र जानने के नहीं हैं। लेकिन इसकी अंतस—चेतना आंसुओ से भर गई है। इसकी अंतस—चेतना पर मृत्यु की छाया आ गई है।

डाक्टर समझाता भी है कि घबड़ाओ मत, अभी कोई घबड़ाने की बात नहीं है, लेकिन घबड़ाहट नहीं रुकती। डाक्टर कहता है, मरीज बच जाएगा, तो भी उस स्त्री की आंखों में भरोसा नहीं आता। वह किसी और ही ढंग से जान रही है कि बचना असंभव है।

और ऐसा नहीं कि इसके लिए पास होना ही जरूरी है। ऐसी घटनाएं घटी हैं कि दूर बेटा मर रहा है, हजारों मील दूर, और मां यहां तत्काल हजारों मील दूर फासले पर बोध से भर गई है कि कुछ अघट हो रहा है। अभी तो इस पर वैज्ञानिक भी शोध करते हैं और वे कहते हैं कि इसमें वैज्ञानिक आधार है। क्योंकि जिस बच्चे का हृदय अपनी मां के हृदय के साथ नौ महीने धड़का हो, उन दोनों के हृदय के बीच एक लयबद्धता है। और वह लयबद्धता ऐसी है कि समय और स्थान के फासले को नहीं मानती। और अगर दूर बेटे का हृदय धड़कने लगे और मृत्यु के करीब आ जाए, तो मां के हृदय में भी धड़कन होती है, वह चाहे समझ पाए, चाहे न समझ पाए।

अभी इस पर रूस में बहुत प्रयोग चलते हैं। तो उन्होंने बहुत जमीन के भीतर ले जाकर पशुओं को, जमीन के भीतर पानी में समुद्र में ले जाकर हजारों फीट नीचे; और यहां ऊपर उस पशु के बेटे को मारा जा रहा है या उसके बेटे को कांटा जा रहा है, और वहा उनके पशुओं के हृदय की धडकनें, रक्तचाप का अध्ययन किया, तो वे चकित रह गए। यहां बेटा मरता है और वहा मां के हृदय में सब कुछ उथल—पुथल हो जाती है। यह तो पशुओं की बात है! उधर नीचे उन्होंने मां को मारा है, इधर बेटे को कुछ हो जाता है; बेचैनी हो जाती है, उदासी छा जाती है।

इस पर हजारों प्रयोग हुए हैं। और एक बात उन्होंने तय कर ली है कि प्रेम का अपना एक अलग ही आयाम है, जिसका ज्ञान से कुछ लेना—देना नहीं है।

अब यह पत्नी भी जानती है कुछ, किसी और मार्ग से। यह डाक्टर भी मौजूद है, यह पत्नी भी मौजूद है। यह डाक्टर भी तत्पर है, यह भी उत्सुक है कि यह आदमी बच जाए, लेकिन इसकी बचाने की उत्सुकता एक वैज्ञानिक की उत्सुकता है। यह पत्नी भी उत्सुक है कि यह आदमी बच जाए, लेकिन इसकी बचाने की उत्सुकता एक वैज्ञानिक की उत्सुकता नहीं है।

अगर यह आदमी मर जाएगा, तो डाक्टर भी दुखी होगा। दुखी इसलिए होगा कि केस असफल हुआ। दुखी इसलिए होगा कि दवाएं काम न कर पाईं। दुखी इसलिए होगा कि मेरा निदान उपयोगी न हुआ। दुखी इसलिए होगा कि कहीं कोई गणित में भूल हुई। दुखी इसलिए होगा। यह आदमी जो मर रहा है, उसके लिए एक केस है। इस पत्नी का दुख कुछ और ढंग का होगा। इस आदमी के मरने के साथ यह कभी दुबारा वही नहीं हो सकेगी, जो थी। इस आदमी के मरने के साथ ही उसके भीतर बहुत कुछ मर जाएगा, जो फिर कभी पुनरुज्जीवित नहीं होगा। उसका कोई हिस्सा कट जाएगा और गिर जाएगा।

वहीं हम समझें कि एक तीसरा आदमी भी बैठा हुआ है, वह एक अखबार का रिपोर्टर है। वह खबर लेने आया है कि यह आदमी कब मरे, मैं दफ्तर में जाकर खबर कर दूं। वह भी वहीं मौजूद है। वह भी अपना कागज—कलम लिए बैठा है कि यह आदमी मरे और मैं जल्दी से लिखूं। वह भी उत्सुक है। वह भी उत्सुक है। उसकी उत्सुकता और ही तीसरे ढंग की है। वह सोच रहा है कि किस ढंग से ब्योरा लिखा जाए। किस ढंग से खबर दी जाए। किस ढंग से अखबार के पढ़ने वाले लोग इस पूरी स्थिति को जान पाएंगे, जो यहां घटित हो रही है। डाक्टर से उसके जानने का फासला और भी तीसरे ढंग का है।

एक चौथा आदमी भी वहा मौजूद है, जो एक चित्रकार है। वह भी उत्सुक है इस आदमी में। लेकिन वह प्रतीक्षा कर रहा है कि मौत कब आ जाए। क्योंकि वह मौत पर एक चित्र बनाना चाहता है। और जब मौत इस आदमी के सिर पर उतर आए और इसकी मौत की छाया

इस आदमी को घेर ले, तब वह अनुभव करना चाहता है कि क्या होता है? रंग कैसे बदल जाते हैं? धूप—छाया कैसी भिन्न हो जाती है? वह भी उत्सुक है। वह भी उत्सुक है। लेकिन इन सब की उत्सुकताएं अलग हैं।

अगर हम इन चारों से अलग— अलग पूछें, तो शायद हमें वहम भी हो कि ये एक ही आदमी की खाट के पास मौजूद थे या चार अलग आदमियों के पास मौजूद थे। इन चारों के वक्तव्य बिलकुल अलग होंगे।

शायद वह स्त्री कोई वक्तव्य ही न दे पाए। डाक्टर जो कहेगा, उसकी भाषा मेडिकल साइंस की होगी। पत्रकार जो कहेगा, उसकी खबर—पत्री की भाषा होगी। चित्रकार जो कहेगा, वह कहेगा, रुको! जब तक मेरा चित्र न बन जाए, तब तक कुछ कहना मुश्किल है। मेरा चित्र ही कहेगा।

और इन चारों को, अगर हमें पता न हो कि ये एक ही आदमी के करीब मौजूद थे, तो हम कभी कल्पना न कर पाएंगे कि वह एक ही आदमी था, जिसके. चारों तरफ ये चारों मौजूद थे!

ठीक परमात्मा के चारों तरफ भी हम इसी तरह मौजूद हैं। और हम सबके उससे संबंधित होने के रास्ते अलग हैं। और एक का रास्ता दूसरे के लिए बिलकुल बेबूझ है।

दूसरा रास्ता है, भक्त का। भक्त कहता है, जानने का क्या प्रयोजन? और जानकर भी क्या होगा? हम उसके प्रेम में डूब जाना चाहते हैं। हम उसे जानना नहीं चाहते, हम उसमें लीन हो जाना चाहते हैं। हम जानना नहीं चाहते, जानने में दूरी है। हम तो उसके हृदय में प्रवेश करना चाहते हैं और अपने हृदय में उसे प्रवेश देना चाहते हैं।

अगर भक्त से कोई कहेगा कि एक ही है, तो भक्त को समझ में नहीं आएगा। क्योंकि प्रेम की घटना, अगर एक ही है, तो घटेगी कैसे? प्रेम की घटना के लिए कम से कम दो चाहिए।

मैंने आपसे कहा कि ज्ञान की घटना तभी घटेगी, जब दो मिट जाएं और एक बचे। जब एक बचे, तो ज्ञान की घटना घटेगी। ज्ञान की अनिवार्य शर्त है कि दो—पन मिट जाए और एक ही बचे। प्रेम की शर्त है कि अगर एक ही बचा, तो प्रेम कैसे घटित होगा? तो प्रेम कहता है कि दो!

भक्तों ने गाया है कि नहीं तेरा मोक्ष चाहिए, नहीं तेरा निर्वाण, हमें तेरी वृंदावन .की गली में अगर कुत्ता होने को भी मिल जाए, तो हम तृप्त हैं! पर तेरी गली हो। और जन्मों से हमें छुटकारा नहीं चाहिए। एक ही प्रार्थना है कि जन्मों—जन्मों में जहां भी हम हों, तेरी स्मृति बनी रहे, उतना काफी है।

यह कोई और ही भाषा है। इन दोनों भाषाओं में विरोध है। विरोध होगा। लेकिन ये दोनों भाषाएं एक ही घटना की तरफ खबर देती हैं। भक्त कहता है, दो तो होने ही चाहिए!

अब यह जरा मजे की बात है कि प्रेम में भी एकता घटित होती है, लेकिन वह एकता ज्ञान की एकता से भिन्न भाषा में प्रकट होती है। जैसे, ज्ञान में एकता घटित होती है, जब दो मिट जाते हैं। प्रेम में भी एकता घटित होती है, जब दो ऐसे हो जाते हैं, जैसे एक हों, लेकिन दो बने रहते हैं। प्रेम में भी एकता घटित होती है। दो बने रहते हैं और भीतर कोई एक हो जाता है। दो धडकनें होती हैं, लेकिन धड़कनों का स्वर एक हो जाता है। दो प्राण होते हैं, लेकिन दोनों के बीच एक धारा प्रवाहित होने लगती है।

प्रेम भी एक तरह की एकता को जानता है। और एक लिहाज से प्रेम की जो एकता है, वह ज्यादा समृद्ध है ज्ञान की एकता से। ज्ञान की एकता उतनी समृद्ध नहीं है। क्योंकि उसमें निश्चित रूप से एक हो जाता है। वह गाणितिक एकता है; मैथेमेटिकल यूनिटी है। दो मिलकर एक हो जाते हैं। ज्यादा जटिल नहीं है, सरल है। प्रेम की एकता ज्यादा जटिल है। दो दो रहते हैं और फिर भी एक का अनुभव करने लगते हैं। ज्यादा समृद्ध है।

इसलिए ज्ञानियों से सूखे वक्तव्य पैदा हुए हैं। प्रेमियों ने बहुत रसपूर्ण वक्तव्य दिए हैं। प्रेमियों ने गाया है, नाचा है, रंगा है, चित्र बनाए हैं, मूर्तियां बनाई हैं।

ऐसा समझें कि अगर सारा जगत ज्ञानी हो, तो सुखद नहीं होगा। क्योंकि जगत में जो रौनक है, वह जटिलता की है, कांप्लेक्सिटी की है। जगत में अगर सब बिलकुल सरल—सरल हो और सीधा—सीधा हो, तो जगत का सारा सौरभ खो जाए। भक्तों ने जगत को सौरभ दिया है। इसलिए जिन धर्मों ने सिर्फ ज्ञान को ही प्रतिष्ठा दी, वे रूखे हो गए हैं, मरणासन्न हो गए हैं।

नहीं यह कह रहा हूं कि जगत में भक्त ही भक्त हो जाएं। अगर भक्त ही भक्त जगत में हों, तब भी एक कमी हो जाएगी। वह ज्ञानी भी एक रंग देता है अपनी मौजूदगी से। वह भी एक स्वर देता है और एक दिशा देता है। वह दिशा भी वंचित हो जाए, तो भी नुकसान होता है।

इस जगत में जितने रूप हैं, वे सभी इस जगत को समृद्धि देते हैं। इसलिए समृद्धतम धर्म वह है, जो सभी रूपों को आत्मसात कर लेता है। इस लिहाज से हिंदू धर्म बहुत अदभुत है। अदभुत इस लिहाज से है कि वह सभी मार्गों को आत्मसात कर लेता है। वह ज्ञानी को ज्ञान का मार्ग दे देता है, भक्त को भक्ति का मार्ग देता है। दुनिया में कोई भी ऐसा धर्म नहीं है दूसरा। दूसरे सारे के सारे धर्म किसी एक विशिष्टता को आधार बनाकर चलते हैं।

जैसे जैन हैं। तो भक्ति उपाय नहीं है, ज्ञान ही उपाय है। इसलिए जैन साधु के चेहरे पर एक रूखा—सूखापन छा जाएगा। अनिवार्य है। जैन साधु नाचता हुआ मिले, तो बेचैनी होगी हमें। मीरा नाचे, तो हमें कोई बेचैनी नहीं होगी। चैतन्य नाचता हुआ गांव से गुजर जाए, तो हमें कोई तकलीफ नहीं होगी। लेकिन जैन साधु नाचे, तो इनकसिवेबल है; यह कुछ मेल नहीं खाती बात।

उसका कारण है। क्योंकि मार्ग शुद्धतम ज्ञान का है, सूखे ज्ञान का है। जरूरत है उसकी। कुछ हैं, जो उसी मार्ग से जा सकेंगे। कुछ हैं, जिनके लिए वही उपाय है। और जिनके लिए वही उपाय है, उनके लिए श्रेष्ठतम वही है। लेकिन जो विपरीत है, उसको कठिनाई खड़ी हो जाएगी। वह अपने को सताना शुरू कर देगा।

अब अगर एक व्यक्ति जैन धर्म में पैदा हुआ है और भक्ति उसका मार्ग है, तो बड़ी कठिनाई खड़ी होगी। कठिनाई इसलिए खड़ी होगी कि जैन धर्म में भक्ति के लिए उपाय नहीं है। अगर वह कोशिश करके उपाय करेगा, तो वे उपाय झूठे होंगे। जैनों ने कोशिश की है। जैनों ने कोशिश की है कि भक्ति का भी कोई मार्ग खोज लिया जाए। मगर उसमें आधार नहीं रहता, जड़ें नहीं रहती। और उसमें एक तरह का अन्याय भी मालूम पड़ता है।

अब अगर महावीर के सामने कोई भक्ति— भाव से नाचने लगे, तो महावीर के साथ निश्चित अन्याय है। अन्याय इसलिए है कि महावीर की खड़ी नग्न प्रतिमा, उससे इस नृत्य का कोई मेल नहीं होता। यह नृत्य बेमानी है।

कृष्ण के सामने यह नृत्य सार्थक मालूम होता है। इसमें तालमेल है। कृष्ण खड़े हैं मोर—मुकुट लगाए हुए, हाथ में बांसुरी लिए हुए। उनके सामने कोई नाच रहा है, तो इस नाचने में और कृष्ण के बीच एक संगति है। लेकिन महावीर नग्न खड़े हैं, उनके सामने कोई नाच रहा है, तो वह केवल इतना कह रहा है कि जिस धर्म में मैं पैदा हो गया, वह मेरे लिए नहीं था। और कुछ नहीं। वह इतना ही कह रहा है।

अगर कोई ज्ञानी को आप कृष्ण के मंदिर में ले जाएं, तो सारी बात व्यर्थ मालूम पड़ेगी। यह सब क्या पागलपन है! यह मोर—मुकुट, यह बांसुरी, यह सब क्या पागलपन है!

यह भाषाओं का भेद है। और भक्त की जो भाषा है, वह दो को स्वीकार करके चलती है। वह सारे जगत को दो में तोड़ लेती है, एक तरफ भगवान को और एक तरफ भक्त को। और तब संबंध निर्मित करती है।

कृष्ण कहते हैं, और दूसरे हैं, जो पृथक भाव से मेरी उपासना करते हैं। जो कहते हैं मुझसे कि हम तुमसे अलग हैं। और कहते इसीलिए हैं कि हम तुमसे अलग हैं, क्योंकि एक होने का मजा तभी आएगा, जब हम तुमसे अलग हैं।

इस भक्त के विरोधाभास को ठीक से समझ लें।

भक्त कहता है, हम तुमसे अलग हैं, क्योंकि मिलने का मजा तभी आएगा, जब हम तुमसे अलग हैं। अगर हम तुमसे एक ही हैं सदा से, तो मिलने का सारा अर्थ ही खो गया। फिर मिले न मिले, बराबर है।

यह नदी जो दौडती जाती है सागर की तरफ, यह जो नाचती हुई उमंग है, यह जो उत्सवपूर्ण भागना है, यह इसीलिए है कि सागर वहां दूर है और अलग है। और यह मिलन एक घटना होगी।

इस नदी को कोई कहे कि तू पागल है, तू सागर से एक है ही।

यह भी ठीक है। नदी सागर से एक है ही। उसी से पैदा हुई है। सूरज की किरणों पर चढ़कर, हवाओं में जाकर, उसी से उठकर आई है। उसी सागर से भाप उठी है, वाष्पीभूत हुई है, आकाश में बादल बनी है, बरसी है पहाड़ों पर, गंगोत्री से उतरी है, गंगा बनी है, चली है सागर की तरफ।

ज्ञानी कहेगा, व्यर्थ का इतना उत्सव है! नाहक इतनी दौड़धूप है! इतने शोर—गुल की कोई भी जरूरत नहीं है। इतने नदी—पहाड़ और इतने मैदान पार करके भागने का प्रयोजन क्या है? तू सागर के साथ एक ही।

लेकिन नदी कहेगी कि सागर को अलग ही रहने दो, उसे दूर ही रहने दो, उसे दूसरा ही रहने दो, क्योंकि मैं मिलने का आनंद लेना चाहती हूं। और यही प्रार्थना रहेगी परमात्मा से कि सदा यह मिलने की घटना घटती रहे। इतनी दूरी बनाए रखना कि मिलन संभव होता रहे। इतने दूर तो रखना ही।

अब यह जो स्थिति है, जैसे इस्लाम कहता है कि कोई आदमी यह न कहे कि मैं परमात्मा के साथ एक हूं उसका कारण कुल इतना ही है। कल मैंने कहा कि मंसूर को सूली लगा दी। लगाने का कारण कुल इतना था, मंसूर का मार्ग था ज्ञान। मैसूर कहता था, अनलहक। मैं ईश्वर हूं; मैं ब्रह्म हूं।

वह वेदांत की बड़ी गहरी बात कह रहा था। सूफी दृष्टि का ठीक उदघोषक था। मैं ब्रह्म हूं, अहं ब्रह्मास्मि। अगर उसने उपनिषदों के वक्त में हिंदुस्तान में कहा होता, तो हमने उसकी महर्षि की तरह पूजा की होती। उसने जरा गलत वक्त चुना। उसने उनके बीच में कहा, जो कह रहे थे कि कोई यह न कहे कि मैं ब्रह्म हूं। क्योंकि जब ब्रह्म हम हो गए, तो फिर भक्ति का, मिलन का आनंद कहां रहेगा? वह भक्तों के बीच ज्ञान की बात कहकर मुसीबत में पड़ा। उन भक्तों ने कहा कि बंद करो यह बात! यह बात ठीक नहीं है, यह कुफ्र है, यह पाप है।

ठीक है; भक्त की दृष्टि से यह पाप है। ज्ञानी की दृष्टि से, भगवान अलग है, यह अज्ञान है। भक्त की दृष्टि से, मैं भगवान हूं, ऐसी घोषणा पाप है। और दोनों सही हैं। इससे जटिलता होती है। इससे जटिलता होती है, क्योंकि दूसरे के मार्ग को समझने में हमें बड़ी कठिनाई होती है।

यह जो भक्त है, इसकी खोज का तारा है प्रेम। और यह कहता है कि प्रेम काफी है; जानना व्यर्थ है। प्रेम में लीन हो जाना सार्थक है। क्योंकि प्रेम में आत्मक्रांति घटित हो जाती है।

क़ृष्ण कहते हैं, ऐसे जो लोग हैं, वे स्वामी—सेवक भाव से, या प्रेमी—प्रेमिका के भाव से, या किन्हीं और रूपों में, लेकिन संबंध में मुझे सोचते हैं। वे कोई संबंध निर्मित करते हैं।

भक्तों ने सब तरह के संबंध बनाए हैं।

जैसे सूफियों ने बहुत प्यारा संबंध बनाया है। ऐसी हिम्मत कोई हिंदू साधक नहीं कर सका। हिंदू साधकों ने जो भी संबंध बनाए हैं, वे इतने हिम्मतवर नहीं हैं। हिंदू धारणा में परमात्मा पुरुष है और साधक उसकी प्रेयसी, पत्नी, दासी के भाव से चलता है।

सूफियों ने हद कर दी। उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी बना दिया और खुद प्रेमी! परमात्मा को प्रेयसी और खुद प्रेमी! इस वजह से ही इस्लाम के प्रभाव में जो भी काव्य की धाराएं पैदा हुईं, सूफियों के संपर्क में जो भी काव्य पैदा हुए—चाहे अरबी, चाहे ईरानी और चाहे उर्दू—उन काव्यों में प्रेम की जो झलक उठी, वह हिंदुस्तान की किसी भाषा में पैदा हुए काव्य में नहीं उठ सकी। उसका कारण था। उसका कारण था, क्योंकि जब परमात्मा को प्रेयसी बना दिया, तो सब द्वार खुल गए। तब परमात्मा के साथ प्रेम की सारी खुलकर चर्चा हो सकी। फिर कोई बात ही न रही।

ध्यान रहे, अगर परमात्मा पुरुष है और भक्त स्त्री है, पत्नी है, प्रेयसी है, तो स्त्री लज्जावश प्रेम का निवेदन भी बहुत—बहुत झिझककर करती है। करेगी ही। इसलिए हिंदू भक्तों ने जो गाया है, वह बहुत झिझकपूर्ण है। मीरा कितनी ही हिम्मत करे, लेकिन मीरा ही है। हिम्मत कितनी ही करे—बहुत हिम्मत की है—लेकिन हिम्मत छिपी—छिपी है। जैसा कि स्त्री का स्वभाव है। वह अगर कहती भी है, तो बड़े परोक्ष, बड़े पर्दे और बड़ी ओट से कहती है। घूंघट उसका पड़ा ही रहता है। वह कहती है घूंघट उठाने की बात, फिर भी वह घूंघट के पीछे से ही कहेगी। अनिवार्य है, होगा ही ऐसा।

लेकिन जब कोई सूफी फकीर प्रेमी की तरह, पुरुष की तरह ईश्वर की तरफ जाता है, उसको पत्नी और प्रेयसी मानकर, तब पुरुष जितनी अभिव्यक्ति दे सकता है प्रकट, एक अर्थ में निर्लज्ज, उतनी स्त्री नहीं दे सकती। इसलिए उर्दू या अरबी या ईरानी, इन भाषाओं में जो प्रेम की भंगिमा प्रकट हुई, और थोड़े से शब्दों में प्रेम का जो प्रगाढ़ रूप प्रकट हुआ, वह दुनिया की किसी भाषा में नहीं हो सका है। उसका कुल मात्र कारण यही था कि परमात्मा को प्रेयसी मानते से ही, अब कोई अड़चन न रही, अब गीत कोई भी गाया जा सकता है।

और पुरुष गा रहा है। और पुरुष तो आक्रामक है, इसलिए वह संकोच नहीं करेगा। वह संकोच करे, तो पुरुष कम है, इसकी खबर देगा। स्त्री संकोच न करे, तो स्त्रैण न रही। संकोच में ही उसका सौंदर्य है। और निस्संकोच आक्रमण में ही पुरुष का शौर्य है।

भक्त या तो परमात्मा को प्रेयसी मान ले, या प्रेमी मान ले, ये दो रूप हैं। सूफियों ने वह रूप चुना परमात्मा को प्रेयसी मानने का; हिंदुओं ने परमात्मा को प्रेमी मानने का रूप चुना।

लेकिन और भी प्रेम के रूप हैं। क्योंकि प्रेम के कितने रूप हैं! 'परमात्मा मां हो सकता है, परमात्मा पिता हो सकता है, परमात्मा पुत्र हो सकता है, वे सारे रूप भी चुने गए। वे सारे रूप भी चुने ! गए। परमात्मा मां हो सकता है, तब उसके साथ प्रेम की जो धारा बहेगी, उसका ढंग और होगा। बेटा भी मां को प्रेम करता है।

लेकिन इस प्रेम का ढंग और होगा, रंग और होगा, इसकी चाल। और होगी। परमात्मा को पिता भी मानकर कोई प्रेम कर पाता है। लेकिन एक बात तय है, कोई भी संबंध हो, भक्त सबंध खोजेगा ही, क्योंकि संबंध ही उसके प्रेम के लिए मार्ग बनेगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि भक्त एकता को उपलब्ध नहीं होता। एकता को उपलब्ध होता है—संबंधों की सघनता से, संबंधों के नैकटध से, संबंधों की आत्मीयता से।

और सच तो यह है कि बाकी हमारे जीवन के सारे संबंध सिर्फ हमें धोखा देते हैं कि हम एक हो गए, एक हम हो नहीं पाते हैं। न कोई पति पत्नी से एक हो पाता है, न कोई बेटा किसी मां से एक हो पाता है; न कोई मित्र किसी मित्र से एक हो पाता है। कभी क्षणभर को वहम होता है। कभी क्षणभर को ऐसा लगता है कि एक हो गए; और लग भी नहीं पाता कि विछोह शुरू हो जाता है। सिर्फ परमात्मा के साथ, उसके दोहरेपन में भी, उसके द्वैत में भी एकता सध जाती है। वह फिर टूटती नहीं।

इसलिए भक्ति जो है, वह प्रेम की शाश्वतता है, वह प्रेम की चरम ऊंचाई है। और जितने भी प्रेमी दुनिया में तकलीफ पाते हैं, उस तकलीफ का कारण प्रेम नहीं है, उस तकलीफ का कारण यह है कि वे प्रेम से जो चाह रहे हैं, वह केवल भक्ति से मिल सकता है। जो वे प्रेम से चाह रहे हैं, वह प्रेम से नहीं मिल सकता।

प्रेम से क्षण का संबंध ही मिल सकता है, प्रेम से शाश्वतता नहीं मिल सकती। लेकिन जब भी कोई प्रेम से शाश्वतता मांगने लगता है, तभी दुख में पड़ जाता है। शाश्वतता भक्ति से मिल सकती है। वह एक ऐसा द्वैत है, जिसके भीतर सदा के लिए अद्वैत सध सकता है। बाकी हमारे सब द्वैत ऐसे हैं कि जिनके भीतर झलक मिल जाए, तो भी बहुत है। झलक भी लेकिन काफी है। और झलक को भी बुरा कहने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि शायद वही झलक हमें और ऊपर उठाने के लिए इशारा बने। लेकिन जो उस झलक में ही उलझ जाता है, वह खो जाता है। भक्त प्रेम की खोज है।

कृष्ण कहते हैं, और तीसरे लोग भी हैं, जो बहुत प्रकार से मुझे उपासते हैं। ये तीसरे लोग मूलतः कर्म से संबंधित होते हैं।

ये तीन हिस्से हैं। मनुष्य के मनस के, मनुष्य के मन के तीन हिस्से हैं, ज्ञान, भाव और कर्म। ज्ञान हमारे मस्तिष्क को केंद्र बनाकर जीता है, भाव हमारे हृदय को केंद्र बनाकर जीता है, कर्म हमारे हाथों को केंद्र बनाकर जीता है।

अब जैसे जीसस, जीसस कहते हैं कि अगर तू प्रार्थना करने आया है मंदिर में और तुझे खयाल आ जाए कि तेरा पड़ोसी बीमार है, तो मंदिर को छोड़, पड़ोसी की सेवा में जा, वही उपासना है। जीसस कहते हैं, सेवा ही धर्म है।

इसलिए ईसाइयत ने दुनिया में धर्म की एक बिलकुल नई प्रतिभा को जन्म दिया। वह प्रतिभा थी सेवा की। और ईसाइयों ने जितनी सेवा की है, उतनी सारी दुनिया के सारे लोगो ने मिलकर भी नहीं की है। कर भी नहीं सकेंगे। क्योंकि कर्म ही उपासना है, ऐसे गहन भाव पर सारी ईसाइयत की दृष्टि खड़ी है। कर्म ही उपासना है। भूल जाओ परमात्मा को, चलेगा, कर्म को मत भूल जाना। ज्ञानी कहेगा, भूल जाओ कर्म को, चलेगा, परमात्मा को मत भूल जाना।

यह जो तीसरा मार्ग है—हममें बहुत लोग हैं, जिनके व्यक्तित्व का केंद्र कर्म है; जो कुछ करेंगे, तो ही पा सकेंगे। उनसे अगर कहा जाए, खाली बैठ जाएं, शांत बैठ जाएं, तो वे और भी अशांत हो जाएंगे। इसलिए बहुत लोग हैं, दिक्कत में पड़ते हैं। इसलिए मैंने पहले कहा कि मार्ग का ठीक—ठीक चयन न हो पाए, तो हम व्यर्थ ही कष्ट पाते हैं।

अब कोई व्यक्ति है, वह पहुंच जाता है किसी साधु—संन्यासी के पास। साधु—संन्यासी उसे समझाता है कि शांत बैठो, एक घंटेभर बिलकुल शांत, निश्चल होकर बैठ जाओ। वह एक सेकेंड शांत नहीं बैठ सकते, घटाभर! उनके लिए ऐसा कष्टपूर्ण हो जाता है कि घंटेभर वे बैठेंगे, तो उस वक्त पाएंगे कि दुनियाभर में जितनी परेशानी है, सब उन पर आ गई है। इससे तो जब वे भाग—दौड़ में रहते हैं, तभी शांत रहते हैं।

इसलिए अक्सर लोगों को खयाल में आता है कि जब वे ध्यान करने बैठते हैं, तब उनकी अशांति बढ़ जाती है। उसका मतलब है कि वह टाइप उनका ध्यान वाला नहीं है। उनके लिए कर्म ही ध्यान का द्वार बनेगा। ध्यान उनके लिए सीधा द्वार नहीं बन सकता। उन्हें किसी ऐसे कर्म की जरूरत है, जिसमें वे पूरा लीन हो जाएं। इस बुरी तरह डूब जाएं कि कर्ता न बचे, कर्म ही रह जाZn। फिर वह कुछ भी हो—चाहे

वे कोई चित्र बना रहे हों, और चाहे कोई मूर्ति बना रहे हों, और चाहे किसी के पैर दाब रहे हों, और चाहे गड्ढा खोद रहे हों, और चाहे बगीचा लगा रहे हो—वह कोई भी कर्म हो; कोई ऐसा कर्म, जो उनकी उपासना बन जाए।

लेकिन अगर आपको अपने टाइप का ठीक—ठीक पता नहीं है, तो आप मुश्किल में पड़ते रहेंगे। और एक कठिनाई जरूरी रूप से पैदा हो जाती है। वह इसलिए पैदा हो जाती है कि सभी प्रकार के लोगों ने इस जगत में परमात्मा को पाया है। एक चैतन्य ने नाचकर भी पाया है। और एक बुद्ध ने शरीर का जरा भी अंग न हिलाकर भी पाया है। चैतन्य नाचकर पाते हैं, बुद्ध बिलकुल शरीर को निश्चल करके पाते हैं।

अब संयोग से अगर आप बुद्ध के पास से गुजर गए, तो आप बिना सोचे—समझे बुद्ध के पास शांत होकर बैठने की कोशिश करेंगे। या संयोग से आप चैतन्य के पास से गुजर गए, तो आप चैतन्य की तरह नाचने की कोशिश करेंगे। लेकिन इस बात को पहले ठीक से जान लें कि आप क्या हैं? क्या आपके लिए उचित होगा?

इधर मैंने अनुभव किया है कि अगर आपके टाइप का ठीक—ठीक खयाल हो जाए, तो साधना इतनी सुगम हो जाती है, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। टाइप का ठीक खयाल न हो, तो साधना अकारण कठिन हो जाती है। और ध्यान रहे, दूसरे के टाइप से पहुंचने का कोई भी उपाय नहीं है। जन्मों—जन्मों खो सकते हैं, अगर आप अपने को न पहचान पाए कि आपके लिए क्या उचित हो सकता है।

तो कृष्ण कहते हैं, और तीसरे लोग भी हैं, वे भी बहुत प्रकार से मुझे उपासते हैं। लेकिन उपासना हो कोई, मार्ग हो कोई, विधि कोई, कोई कैसा भी चले, दिशा चुने कोई, एक बात निश्चित है कि चाहे श्रौत—कर्म हो, वेद—विहित कर्म हो, गहरे में मैं ही हूं। और चाहे यज्ञ हो, गहरे में यज्ञ की लपटों में मेरी ही अग्नि है। और चाहे पितरों के निमित्त दिया जाने वाला अन्न हो, मैं ही महापितर हूं। मैं ही तुम्हारे सब पिताओं का पिता हूं। क्योंकि मैं ही सारे जन्म और सारी सृष्टि के मूल में हूं। औषधि हों, कि वनस्पतियां हों, कि कोई वनस्पतियों से पूजा कर रहा हो, कि कोई फूल चढ़ा रहा हो, मैं ही हूं। मंत्र मैं हूं घृत मैं हूं अग्नि मैं हूं और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूं।

यह सूत्र इतनी ही बात कह रहा है कि करो तुम कुछ, अगर निष्ठा से और मुझे स्मरण करते हुए तुमने किया है, तो तुम मुझे पा लोगे। चाहे तुम यज्ञ में डालो घी, अगर निष्ठा से, मुझे स्मरण करते हुए, मेरी उपस्थिति को अनुभव करते हुए और मेरे लिए ही तुमने वह डाला है, तो घृत भी मैं हूं, और जिस अग्नि में तुमने डाला है, वह भी मैं हूं। लेकिन ध्यान रहे, शर्त खयाल में रहे, अन्यथा घी व्यर्थ जाएगा। अग्नि थोड़ी देर में बुझ जाएगी।

उपासना भीतर हो, तो जो कुछ भी तुम करोगे, वहीं से मुझे पा लोगे, क्योंकि सब जगह मैं हूं। और अगर उपासना भीतर न हो, तो तुम सब कुछ घेर लो, तुम मुझे नहीं पा सकोगे, क्योंकि कहीं भी तुम मुझे नहीं खोज पाओगे।

उपासना आंख है। उपासना आंख है। उपासना का सूत्र मौलिक है। इसलिए क्या करते हो, यह सवाल नहीं है। कैसे करते हो, किस हृदय से करते हो, किस आत्मा से करते हो, वही सवाल है।

हम इसे भूल ही जाते हैं। इसलिए एक आदमी कहता है कि मैं पूजा कर रहा हूं। पूजा एक बाह्य कर्म हो जाता है। किया पूरी कर देता है, खुद को वह क्रिया कहीं भी छूती नहीं। कहीं कोई एक बूंद भी उस क्रिया की अंतस में नहीं जाती।

फिर रोज—रोज करता रहता है। तो रोज—रोज करने से, पुनरुक्त करने से आदत का हिस्सा हो जाता है, यांत्रिक हो जाता है। वैसे ही यांत्रिक हो जाता है, जैसे आप अपनी कार चलाते हैं। फिर कार चलाते वक्त आपको ड्राइविंग करनी नहीं पड़ती, ड्राइविंग होने लगती है। जब तक ड्राइविंग करनी होती है, तब तक आपको लाइसेंस मिलना नहीं चाहिए, क्योंकि उसका मतलब ही यह है कि अभी खतरा है, अभी आपसे भूल—चूक हो सकती है।

ड्राइविंग उसी दिन आपकी कुशल हो पाती है, जिस दिन आप ड्राइविंग को भूल सकते हैं। अब चाहे सिगरेट पीए, अब चाहे गीत गुनगुनाए, चाहे रेडियो सुनें, चाहे मित्र से गपशप करें; अब चाहे कुछ भी करें, शरीर का जो रोबोट है, शरीर का जो यंत्र हिस्सा है, वह ड्राइविंग करता रहेगा। आपकी जरूरत कभी—कभी पड़ेगी, कोई अचानक एक्सिडेंट का मौका आ जाए, तो आपकी जरूरत पड़ेगी, तो आपको ध्यान देना पड़ेगा, अन्यथा गाड़ी चलती रहेगी! आप अपने रास्ते पर बाएं मुड़ जाएंगे, दाएं मुड़ जाएंगे, अपने घर के सामने आ जाएंगे, अपने गैरेज में चले जाएंगे। इस सब में आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा।

हमारे शरीर में, हमारे मन में एक हिस्सा है, जिसको वैज्ञानिक रोबोट पार्ट कहते हैं। वे कहते हैं कि हम इतने कर्म कर पाते हैं इसीलिए कि हमारे शरीर में एक यंत्र हिस्सा है, जिसे कुशल कर्म को हम सौंप देते हैं। फिर वह करता रहता है। फिर हमें बीच—बीच में जरूरत नहीं रहती है करने की। एक नौकर को काम दे दिया है, वह कर लेता है.। जरूरत हमारी तब पड़ती है, जब कोई अनहोनी नई बात हो। तो नौकर पूछता है कि मालिक, यह काम मैं कैसे करूं? क्योंकि यह कोई नई घटना है, इसका पहले कोई अंदाज नहीं है।

अगर रास्ते पर जाते हुए एक्सिडेंट होने के करीब हो, तो मालिक की जरूरत पडेगी। रोबोट, आपका यंत्र—मानव कहेगा, आ जाओ शीघ्रता से, जरूरत है, क्योंकि इसका कोई अभ्यास नहीं है। और एक्सिडेंट का कोई अभ्यास किया भी कैसे जा सकता है? उसका मतलब ही यह है कि वह अनहोना होगा, जब भी होगा। तो हमारे भीतर यह हिस्सा है।

लेकिन ध्यान रखें, ड्राइविंग और पूजा में यही फर्क है कि पूजा को जिसने अपने रोबोट को दे दिया, उसकी पूजा व्यर्थ हुई। आप सब काम रोबोट को दे दें। ड्राइविंग देनी ही पड़ेगी, नहीं तो फिर ड्राइविंग ही कर पाएंगे जिंदगी में, फिर और कुछ न कर पाएंगे। खाना खाने का काम रोबोट को देना पड़ता है। सब काम रोबोट को देने पड़ते हैं। टाइपिस्ट अपनी टाइपिंग रोबोट को दे देता है। हम सब अपने काम बांट देते हैं, ताकि हम मुक्त रहें। लेकिन पूजा बिलकुल उलटी ही बात है। पूजा रोबोट से नहीं की जा सकती। पूजा आपको करनी पड़ेगी। और ध्यान रखना पड़ेगा कि कभी भी वह यांत्रिक, मैकेनिकल न हो जाए। क्योंकि जिस दिन वह यांत्रिक हो गई, उसी दिन व्यर्थ हो गई।

उपासना का अर्थ है, परमात्मा का सतत स्मरण बना रहे, ऐसी कोई भी क्रिया, उसका स्मरण न खोए, ए कास्टेंट रिमेंबरिंग। कोई भी क्रिया, परमात्मा के स्मरण को सतत बनाए रखे, तो उपासना है। और कृष्ण कहते हैं फिर वह कुछ भी हो, यज्ञ हो, कि श्रोत—कर्म हो, कि अग्नि हो, कि हवनरूप क्रिया हो, कि मंत्र हो, कि तंत्र हो, कुछ भी हो, मैं तुझे भीतर मिलूंगा। कहीं से भी तू आ, तू मेरे पास पहुंच जाएगा।

पर एक ही बात खयाल रहे, उपासना यांत्रिक बन गई कि मिट जाती है। और हमारी हालतें ऐसी हैं कि यांत्रिक बनने का सवाल ही नहीं उठता, हम पहले से ही उसे यात्रिक मानकर चलते हैं। बाप अपने बेटे को मंदिर में ले जाता है और कहता है, पूजा करो। बेटे को स्मरण कुछ भी नहीं दिलाया जाता, सिर्फ पूजा करवाई जाती है। बेटे को अभी यह भी पता नहीं कि ईश्वर है। अभी उसे यह भी पता नहीं कि यह क्या हो रहा है! बाप सिर झुकाता है, बड़े—बूढ़े सिर झुकाते हैं, वह भी सिर झुकाता है। यह सिर झुकाना रोबोट हो जाएगा। फिर यह जिंदगीभर झुकाता रहेगा।। ऐसे मैं लोगों को देखता हूं। सड्कों पर से जा रहे हैं, मंदिर देखकर जल्दी से उनका सिर झुक जाता है। रोबोट! उनसे अगर पूछो कि क्या किया, तो वे कहेंगे, कुछ किया नहीं।

एक मित्र को मैं जानता हूं। गांव में कोई भी मंदिर पड़े, तो वे उसको नमस्कार करते हैं। मेरे साथ घूमने जाते थे सुबह। तो मैंने उनसे कहा, एक दफा ठीक से एक मंदिर के सामने घड़ी दो घड़ी बैठकर यह कर लो, तो ज्यादा बेहतर है बजाय फुटकर दिनभर करने के। इसमें कुछ सार नहीं मालूम पड़ता, जहां से भी निकले, जल्दी से सिर झुकाया, आगे बढ़ गए!

मेरी बात उनकी समझ में पड़ी। एक दिन उन्होंने किया। फिर मेरे। साथ घूमने गए। मंदिर पड़ा, तो उनको बड़ी बेचैनी हुई। उनको अपने हाथ—पैर रोकने पड़े। दस कदम मेरे साथ आगे बढ़े और 'मुझसे बोले, माफ करिए! मैंने कहा, क्या हुआ? उन्होंने कहा, मुझे वापस जाकर नमस्कार करनी पड़ेगी! क्या मामला है? मुझे भय लग रहा है। जिंदगी में ऐसा मैंने कभी नहीं किया। इस मंदिर को तो मैं कभी चूकता ही नहीं। तो मुझे भय लग रहा है कि पता नहीं इससे कुछ नुकसान न हो जाए। मैंने कहा, जाओ!

अब यह ठीक वैसी ही आदत हो गई, जैसे किसी को सिगरेट पीने की हो जाए। न पीए, तो मुश्किल मालूम पड़ती है। अब यह मंदिर को हाथ जोड़ना एक आदत का हिस्सा हो गया। अब यह जबरदस्ती हाथ को रोकना पड़ता है।

मैंने उनसे पूछा, कितने साल से करते हो? वह कहते हैं, मुझे याद नहीं आता। जब से बचपन से मैं यह कर रहा हूं। मेरे पिता भी ऐसा ही करते थे। उन्हीं के साथ—साथ मैं भी सीख गया। कुछ अनुभव हुआ जिंदगी में? वे कहते हैं, कुछ अनुभव नहीं हुआ। पचास साल के हो गए हैं। पता नहीं चालीस साल से, पैंतालीस साल से, कब से कर रहे हैं! कोई अनुभव नहीं हुआ, और यह पैंतालीस साल मंदिरों के सामने सिर झुकाने में गए। तो ये सिब्दा बेकार हो गया। यह प्रार्थना फिजूल है। यह यांत्रिक हो गई। अब यह एक मजबूरी है। एक रोबोट का हिस्सा हो गई है कि करनी पड़ती है। करते रहेंगे और मर जाएंगे।

उपासना ऐसे नहीं होगी। उपासना का अर्थ है, स्मरणपूर्वक, माइंडफुली; ईश्वर को स्मरण करते हुए किया गया कोई भी कृत्य उपासना है। गड्ढा खोदते हों जमीन में, ईश्वर को स्मरणपूर्वक खोदते हों; मिट्टी न निकलती हो, ईश्वर ही निकलता हो, तो प्रार्थना हो गई, उपासना हो गई। उस गड्ढे में भी वही मिलेगा। किसी मरीज के पैर दाबते हों, मरीज मिट जाए, ईश्वर ही रह जाए। ईश्वर के ही पैर हाथ. में रह जाएं। स्मरणपूर्वक ईश्वर के ही पैर दबने लगें। उसी मरीज में ईश्वर मिल जाएगा। कहां , यह सवाल नहीं है; कैसे!

तो कृष्ण कहते हैं, सब जगह मैं हूं सबके भीतर मैं छिपा हूं। तुम कहीं से भी आ जाओ, सब रास्ते मेरे पास ले आते हैं। सिर्फ मुझे स्मरण रखना, इतनी ही शर्त है।

गीता दर्शन भाग – 4
मैं ओंकार हूं— अध्याय—9 (प्रवचन—सातवां)
सूत्र:

पिताहमस्य जगतो माता धाता पिताम्हः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च।।17।।
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुह्रत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधान बीजमध्ययम्।।18।।
और हे अर्जुन! मैं ही इस संपूर्ण जगत का धाता अर्थात धारण करने वाला, पिता, माता और पितामह हूं, और जानने योग्य पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेदु सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूं।

और है अर्जुन प्राप्त होने योग्य गंतव्य तथा भरण- योषण करने वाला सबका स्वामी, सबका साक्षी, सबका वास स्थान और शरण लेने योग्य तथा हित करने वाला और उत्पत्ति और प्रलयरूय तथा सबका आधार, निधान अर्थात प्रलयकाल में सबका जिसमें लय होता है और अविनाशी, बीज कारण भी मैं ही हूं।

जैसे मार्ग हैं अनेक और मंजिल एक है, वैसे ही प्रभु के रूप भी हैं अनेक, वह जो रूपायित हुआ है, वह एक है। ऐसा नहीं है कि उसे एक ही रूप में देखा जा सके! कोई रूप की सीमा नहीं है। जो जिस रूप में खोजना चाहे, उसे खोज ले सकता है। सभी रूप उसके हैं। जो भी है, वही है।

कृष्ण इस सूत्र में बहुत-से शब्दों का संकेत किए हैं। वे शब्द-संकेत समझने जैसे हैं, क्योंकि उन शब्द-संकेतों से ही साधना का पथ भी विस्तीर्ण होता है। कहा है, अर्जुन, मैं ही इस संपूर्ण जगत का धाता अर्थात धारण करने वाला हूं।

धर्म शब्द से हम परिचित हैं। धर्म शब्द का अर्थ होता है, जो धारण करे, जो धारण किए हुए है! धर्म शब्द से अर्थ रिलीजन नहीं होता। धर्म शब्द से अर्थ मजहब भी नहीं होता। मजहब का अर्थ होता है, पंथ, सेक्ट, संप्रदाय। रिलीजन शब्द का मौलिक अर्थ होता है, जिससे हम बंधे हैं, रिलीगेर, जिससे हम बंधे हैं। लेकिन यह बड़ी कीमती बात है कि भारत धर्म को इस भाति नहीं सोचता कि जिससे हम बंधे हैं, बल्कि इस भांति सोचता है कि जिस पर हम सधे हैं।

बंधन शब्द अप्रीतिकर भी है, कुरूप भी है। शायद पश्चिम ने धर्म को एक बांधने वाली सीमा-रेखा की तरह देखा है, इसीलिए पश्चिम ने धर्म से मुक्त होने की चेष्टा भी की है। जिससे हम बंधे हैं, उससे हम मुक्त भी होना चाहेंगे। बंधन चाहे कितना ही स्वर्ण का क्यों न हो, विद्रोह पैदा करेगा।

भारतीय मनीषा धर्म को एक बंधन नहीं मानती, धर्म को एक मुक्ति मानती है। धर्म एक ग्रंथि नहीं है, जिससे हम बंधे हैं; धर्म एक स्वतंत्रता है, जिसमें हम मुक्त हो सकते हैं। धर्म शब्द का अर्थ

जिसके हम धारण किया है। उससे हम बंधे नहीं है, हम उससे ही निष्पन्न हुए हैं।

एक वृक्ष है। वृक्ष के नीचे उतरें, तो जड़ों का फैलाव है। वृक्ष ऐसा भी सोच सकता है कि जमीन वह है, जिससे मैं बंधा हूं। और इस सोचने में भी गलती न होगी। क्योंकि वृक्ष ऐसा देख सकता है कि यह जमीन ही है, जिसमें मेरी जड़ें उलझी हैं और जिससे मैं बंधा हूं। वृक्ष जड़ों और जमीन के बीच के संबंध को बंधन की भांति भी देख सकता है। और वृक्ष इस भांति भी देख सकता है कि जमीन मेरा बंधन नहीं है, यह जमीन ही है, जिस पर मैं सधा हूं। यह जड़ों और जमीन के बीच बंधन नहीं है, जड़ों और जमीन के बीच प्राणों का संबंध है।

अगर वृक्ष ऐसा देखे कि जमीन से मैं बंधा हूं, तो जमीन से मुक्त होने की कोशिश शुरू हो जाएगी। इस देखने से ही कोशिश शुरू हो जाएगी। यह दृष्टि ही छुटकारे का प्रारंभ होगी। और अभागा होगा वह वृक्ष। क्योंकि जहां तक देखने का संबंध है, वहा तक तो कोई हर्ज नहीं है कि वृक्ष समझे कि मैं जमीन से बंधा हूं क्योंकि आकाश में उड़ नहीं सकता, लेकिन जिस दिन वृक्ष इस बंधन से मुक्त होने की कोशिश करेगा, उस दिन वृक्ष अपने ही हाथों अपनी आत्महत्या कर लेगा। क्योंकि जड़ें बंधन नहीं हैं, जीवन हैं।

धर्म का अर्थ है, जिसने हमें धारण किया है। वह बंधन नहीं है, वह हमारे प्राणों का स्रोत है। जड़ें बंधन नहीं हैं, जड़ें वृक्ष के प्राण हैं। और पृथ्वी ने उसे बांधा नहीं है, जीवन दिया है। सच तो यह है कि जड़ों के कारण ही वह आकाश में फैलने में समर्थ हुआ है। जड़ों में जो रस, जड़ों में जो प्राण, जो ऊर्जा उसे उपलब्ध हो रही है, वही उसके पत्ते और फूल बनकर आकाश में खिली है। यह जो वृक्ष की यात्रा है आकाश की तरफ उठने की, यह जो महत्वाकांक्षा है कि आकाश को छू लूं , यह जड़ों के ही आधार पर है।

और ध्यान रहे, जितनी जड़ें गहरी जाएंगी जमीन में, उतना ही वृक्ष ऊपर जाएगा आकाश में। अगर जड़ें जमीन के पूरे के पूरे प्राणों में प्रविष्ट हो जाएं, तो वृक्ष आकाश को स्पर्श कर लेगा। जितनी होगी गहराई जड़ों की, उतनी ऊंचाई हो जाएगी वृक्ष की। जड़ें दुश्मन नहीं हैं, और जड़ें ऊंचे उठने में बाधा भी नहीं हैं; और जड़ें आकाश में उड़ने में सहयोगी हैं, साथी हैं। उनके बिना वृक्ष बचेगा ही नहीं, आकाश में उड़ने का तो सवाल ही नहीं है।

भारतीय मनीषा कहती है कि धर्म है वह, जो हमें धारण किए है। इसमें एक और मजे की बात है कि अगर आपको बंधन में डाला जाए, तो आपकी जानकारी के बिना नहीं डाला जा सकता। और बंधन में डालने का तो अर्थ ही यह होगा कि पहले कभी आप बंधन के बाहर भी थे, और कभी बंधन में डाल दिए गए हैं, और कभी बंधन से फिर अलग भी हो सकते हैं।

यहां एक दूसरा सूत्र आप खयाल ले लें। भारतीय मनीषा की दृष्टि ऐसी है कि धर्म वह है, जिससे हम चाहें तो भी अलग नहीं हो सकते, कोई उपाय नहीं है। हम चाहें तो भी हम धर्म से अलग नहीं हो सकते, क्योंकि धर्म हमारे प्राणों का आधार है। धर्म से अलग होकर हम हो ही नहीं सकते, हमारा अस्तित्व भी नहीं होगा। जैसे वृक्ष जमीन से अलग होकर नहीं हो सकता, और जैसे मछली सागर से अलग होकर नहीं हो सकती। क्योंकि सागर सिर्फ मछली के लिए माध्यम ही नहीं है, जिसमें वह होती है, वह उसका प्राण भी है। सागर ने उसे धारण भी किया है, जन्माया भी है, जिलाया भी है। सागर उसे लीन भी करेगा अपने में। सागर ही मछली के भीतर भी दौड़ रहा है। इसलिए सागर के बाहर आकर मछली को जीना असंभव है। थोड़ी-बहुत देर जी सकती है, जितनी देर तक, भीतर जो सागर था, वह सूख न जाए। थोड़ी-बहुत देर वृक्ष भी हरा रहेगा, जितनी देर तक जमीन से खींची गई रस- धार मौजूद रहेगी। फिर सूख जाएगा।

धर्म वह है, जिससे हम अलग नहीं हो सकते। वह हमारी आत्मा है। इसलिए धर्म की जो दूसरी बड़ी व्याख्या भारत ने की है, वह महावीर ने की है। हिंदुओं ने व्याख्या की है कि धर्म वह है, जो धारण किए है। महावीर ने व्याख्या की है कि धर्म वह है, जो हमारा स्वभाव है। बात एक ही है। क्योंकि स्वभाव ही हमें धारण किए हुए है; या जो हमें धारण किए हुए है, वही हमारा स्वभाव है, वही हमारा इनट्रिंजिक नेचर है; वही हम हैं।

तो कृष्ण अपनी पहली परिभाषा देते हैं, वे कहते हैं, मैं धर्म हूं; मैं धाता हूं; मैं वह हूं, जो धारण किए है।

जो हमें धारण किए है, उसे हम भूल सकते हैं, उससे हम दूर नहीं हो सकते। जो धारण किए है, उसे हम भूल सकते हैं, उससे हम दूर नहीं हो सकते। उसका हम विस्मरण कर सकते हैं, उससे हम विच्छिन्न नहीं हो सकते। उसे हम जन्मों-जन्मों तक याद न करें, यह हो सकता है, लेकिन हम क्षणभर को भी उससे भिन्न नहीं हो सकते। इसलिए सारी दुनिया में धर्म को सीखने की भाषा में समझा गया है, धर्म भी एक लर्निंग है, एक शिक्षण है। भारत ने उसे इस भाषा में नहीं समझा। भारत के लिए धर्म शिक्षण नहीं है, पुनर्स्मरण है, रिमेंबरिंग है। हम सिर्फ भूल सकते हैं, खो नहीं सकते। और जो बहुत निकट होता है, उसे भूलना आसान है।

वृक्ष अगर अपनी जड़ों को भूल जाए, तो बहुत कठिन नहीं है। कई कारण हैं। पहला तो कारण यह है कि जड़ें छिपी होती हैं जमीन के भीतर। असल में जहां भी जन्म होता है, वहां गुह्य अंधकार चाहिए। चाहे मां के पेट में बच्चे का जन्म होता हो, तो भी गुह्य अंधकार चाहिए। और चाहे जड़ों में वृक्ष का जन्म होता हो, तो भी पृथ्वी का गुह्य अंधकार चाहिए। जहां भी जन्म होता है, वहा इतनी निजता चाहिए कि प्रकाश भी बाधा न डाले। वहा इतना मौन चाहिए, इतनी शांति चाहिए कि प्रकाश की किरण भी आकर कंपन पैदा न करे।

प्रकाश के साथ हलन-चलन शुरू हो जाता है। अंधकार महाशांति है। और इसलिए हम अंधकार से डरते हैं, क्योंकि हम कोई भी शांति नहीं चाहते। जो भी शांति चाहेगा, वह अंधकार से नहीं डरेगा, अंधकार को प्रेम करने लगेगा। जो जितनी ज्यादा अशांति से भरा होगा, उतना अंधकार से डरेगा, भयभीत होगा। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो अंधकार में सो भी नहीं सकते! रात को प्रकाश जलाकर ही सोएंगे। यह अशांति की आखिरी सीमा है। जड़ें तो अंधकार में बड़ी होती हैं, इसलिए छिपी होती हैं। जो भी महत्वपूर्ण है, वह गुप्त होता है। जो प्रकट होता है, वह महत्वपूर्ण नहीं है।

ध्यान रहे, जो भी महत्वपूर्ण है, वह सदा गुप्त होता है। जडें गुप्त हैं, वे महत्वपूर्ण हैं; उन्हें उघाड़ा नहीं जा सकता। शाखाएं उघडी हैं, जो उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। हम एक वृक्ष की शाखाओं को काट दें, नई शाखाएं आ जाएंगी। एक पूरा वृक्ष गिर जाए, नए अंकुर निकल आएंगे और नया वृक्ष निर्मित हो जाएगा। क्योंकि वह जो प्राण है, वह नीचे छिपा है। उस पर आघात भी नहीं पहुंचता है। लेकिन जड़ें काट दें, फिर सारा वृक्ष कुम्हला जाएगा और मर जाएगा।

तो जहां जीवन का सूत्र है, उसे छिपाकर रखा है जीवन ने। जड़ें छिपी हैं; वृक्ष भूल सकता है। बहुत स्वाभाविक है कि वृक्ष को जड़ों की कोई याद न आए। फूल दिखाई पड़े, शाखाएं दिखाई पड़ें।

रोशनी में हैं, आकाश में फैली हैं, महत्वाकांक्षा का हिस्सा हैं। पक्षी आते हैं, शाखाओं पर विश्राम करते हैं। फूल आते हैं, पक्षी गीत गाते हैं। सुबह सूरज निकलता है, हवाएं झोंके देती हैं। तूफान आते हैं, आंधिया आती हैं। वर्षा होती है, रात में चांदनी बरसती है। सब वृक्ष के ऊपर घटित होता है। वृक्ष इसमें खो जा सकता है, जड़ें भूल जा सकता है।

लेकिन जब वृक्ष को जडों की बिलकुल भी याद नहीं है, तब भी जड़ें ही उसे धारण किए हुए हैं। जब उसे बिलकुल भी स्मरण नहीं है, जब वह कभी धन्यवाद का एक शब्द भी जड़ों से नहीं कहता, जब कभी लौटकर जड़ों का कोई आभार भी नहीं मानता, तब भी जड़ें उसे धारण किए हुए हैं।

तो एक व्यक्ति नास्तिक हो, ईश्वर को इनकार कर दे, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता है, ईश्वर ही उसे धारण किए हुए है। और एक व्यक्ति भूल जाए, और ईश्वर की उसे कोई सुध न रहे, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, ईश्वर ही उसे धारण किए हुए है।

कृष्ण कहते हैं, मैं हूं धाता, मैं वह हूं जो धारण किए हुए है। कोई जाने, न जाने, पहचाने, न पहचाने, स्मृति आती हो, न आती हो, चाहे तो इनकार भी कर दे, तो भी मैं धारण किए हुए हूं।

आप इनकार कर सकते हैं, लेकिन ईश्वर से बच नहीं सकते। आप भाग सकते हैं, कितने ही भागें! जैसे कोई मछली सागर में सागर से भागती हो, भागती जाए, मीलों के चक्कर लगाए और फिर भी पाए कि सागर में है। ऐसे ही हर व्यक्ति जो ईश्वर से भागता है, एक दिन पाता है कि वह जिसमें भाग रहा था, वही तो ईश्वर है। कहौ भागकर जाने का उपाय है?

इसलिए हमने बहुत मौलिक और आधारभूत व्याख्या पकड़ी है धर्म की, और वह है कि जो हमें धारण किए है। और आपको ही नहीं।

सारी दुनिया में धर्मों ने मनुष्य को केंद्र बना लिया है। इसलिए बहुत धर्म हैं, जो कहेंगे कि जानवरों में तो कोई आत्मा ही नहीं है, इसलिए उनकी हिंसा की जा सकती है, वृक्षों में कोई आत्मा नहीं है, उन्हें काटा जा सकता है, सिर्फ आदमी में आत्मा है। अधिकतर धर्म एन्थोपोसेंट्रिक हैं, आदमी को केंद्र मान लिया है।

भारत ऐसा नहीं मानता। भारत यह नहीं कहता कि जो आदमी को धारण किए हुए है, वह ईश्वर है। भारत यह कहता है कि अस्तित्व ही जिसमें सम्हला हुआ है, जो अस्तित्व को ही धारण किए हुए है, वह ईश्वर है। वही नहीं है ईश्वर, जो आपको धारण किए हुए है; वह जो वृक्ष को धारण किए हुए है, वह भी ईश्वर है। वह जो नदी में बह रहा है, वह भी ईश्वर है। वह जो सूरज में पिघलकर आग बन रहा है, वह भी ईश्वर है। और वही ईश्वर नहीं है, जो आपको प्रीतिकर है, जो अप्रीतिकर है, वह भी ईश्वर है। अमृत ही ईश्वर नहीं है, जहर भी ईश्वर है। जहर के होने के लिए भी उसका ही आधार चाहिए। उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता है।

इसे हम ऐसा समझें, कि ईश्वर से हमारा अर्थ है, अस्तित्व का जो सार है। इसलिए ईश्वर हमारे लिए व्यक्ति नहीं है। वह कहीं आकाश में सात आसमानों के ऊपर बैठा हुआ सिंहासन पर कोई व्यक्ति नहीं है, जो राज-काज चला रहा है। इतनी बचकानी हमारी धारणा नहीं है। यह बच्चों का ईश्वर है। इससे और गहरे ईश्वर को बच्चे नहीं समझ सकते। लेकिन हमारे लिए ईश्वर का अर्थ है, जिसमें सभी कुछ धारा हुआ है-सभी कुछ; जन्म भी और मृत्यु भी, और सृजन भी और प्रलय भी।

तो इसका साधक के लिए क्या अर्थ होगा?

साधक के लिए अर्थ होगा कि जब भी आप किसी चीज को देखें, तो उसकी शाखाओं पर कम, उसकी जड़ों पर ज्यादा ध्यान दें। और जब भी किसी चीज को आप देखें, तो जो प्रकट है, उस पर कम, और जो अप्रकट है, उस पर ज्यादा ध्यान दें। जो दिखाई पड़ रहा है, उस पर कम, और जिसके कारण दिखाई पड़ रहा है, उसकी खोज करें। मछली को देखें, तो सागर की याद करें'। और वृक्ष को देखें, तो जड़ों का स्मरण आ जाए। सदा ही उसकी खोज करते रहें, जो नीचे छिपा है और सभी को सम्हाले हुए है।

तो कृष्ण कहते हैं, मैं धाता हूं। और अगर कोई धर्म की खोज करता रहे, तो मुझ तक पहुंच जाता है।

मैं पिता हूं माता हूं? पितामह हूं।

अजीब है बात। क्योंकि वे कह रहे हैं, मैं पिता भी हूं! पिता कहते हों, तो फिर माता नहीं कहना चाहिए; कहते हैं, मैं माता भी हूं! और यहां तक भी ठीक था, फिर बात और भी अतर्क्य हो जाती है, वे कहते हैं, पिता का पिता भी मैं ही हूं; पितामह भी मैं ही हूं? ऐसा कहकर क्या कहना चाहते हैं? ऐसा कहकर वे यह कहना चाहते हैं-इसे हम थोड़ा दो-तीन तरफ से समझने की कोशिश करें। आप पैदा हुए। तो शायद आपको खयाल होगा, जन्म की एक तिथि है और फिर मृत्यु की एक तिथि है, इन दोनों के बीच आप समाप्त हो जाएंगे। लेकिन इस जगत में कोई भी चीज आइसोलेटेड नहीं है। इस जगत में कोई चीज अलग- थलग नहीं है। जन्म के पहले भी आपको किसी न किसी रूप में होना ही चाहिए, अन्यथा आपका जन्म नहीं हो सकता। जगत एक श्रृंखला है, जगत एक कड़ियों का जोड़ है, जिसमें हर कड़ी पीछे की कड़ी से जुड़ी है, और हर कड़ी आगे की कड़ी से भी जुड़ी है। जिसे आप जन्म कहते हैं, वह सिर्फ एक कड़ी की शुरुआत है; पिछली कड़ी पीछे छिपी है। और जिसे आप मृत्यु कहते हैं, वह फिर एक कड़ी का अंत है; लेकिन अगली कड़ी आगे मौजूद है। इस जगत में कोई चीज विच्छिन्न नहीं है। जीवन एक सतत श्रृंखला है, एक प्रवाह है।

अगर ईश्वर को खोजना है, तो प्रवाह को देखना पड़ेगा; और अगर ईश्वर से बचना है, तो व्यक्ति को देखना पड़ेगा। अगर आप व्यक्ति को देखेंगे, तो ईश्वर को खोजना मुश्किल है।

मैं पैदा हुआ, मैं मर जाऊंगा, अगर यही जीवन है, तो इस जगत में ईश्वर का कोई अनुसंधान नहीं हो सकता। मेरा जन्म भी तब बेबूझ है, क्योंकि कोई कारण नहीं, एक एक्सिडेंट, एक दुर्घटना मालूम होती है कि मैं पैदा हुआ; और मेरी मृत्यु भी एक दुर्घटना होगी। इन दोनों के पार, जगत के अस्तित्व से मेरा क्या संबंध है? जब मैं नहीं था, तब भी जगत था; और जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी जगत रहेगा। तो मैं इस जगत से अलग हो गया, मेरे संबंध टूट गए।

और जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी फूल खिलते रहेंगे। और जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी वसंत आएगा और पक्षी गीत गाते रहेंगे। और जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी झरने बहेंगे और नाचेंगे और सागर की तरफ चलेंगे। तब तो इस जगत से मेरी शत्रुता भी निर्मित हो गई!।, क्योंकि मेरे होने न होने से इस जगत की धारा का कोई भी संबंध नहीं मालूम पड़ता। मैं अलग हो गया। मैं टुकड़ा हो गया।

पश्चिम की दृष्टि ऐसी ही है, व्यक्ति को एक टुकडे की तरह देखने की। और इसलिए पश्चिम में जीवन को देखने का ढंग संघर्ष का हो गया। अगर मैं अलग हूं तो जीवन संघर्ष है; और अगर मैं एक हूं, तो जीवन समर्पण होगा।

अगर मैं इस जगत से अलग हूं और मेरे जन्म से इस जगत को कोई प्रयोजन नहीं है; मैं जब नहीं था, तो जगत में कौन-सी कमी थी? कोई भी तो मेरे न होने से फर्क नहीं पड़ता था। और जब मैं कल नहीं हो जाऊंगा, तो जगत में कौन-सी कमी हो जाएगी? कोई भी तो फर्क नहीं पड़ेगा।

तो मेरा होना और जगत का होना, दोनों संबद्ध नहीं मालूम होते। नहीं तो जब मैं नहीं था, तो जगत में कुछ कमी होनी चाहिए। और जब मैं न रह जाऊं, तब एक खाली जगह, एक रिक्त जगह छूट जानी चाहिए, जो फिर भरी न जा सके।

लेकिन ऐसा नहीं होगा। मेरे होने न होने से इस विराट प्रवाह में कहीं भी कोई भनक भी न पड़ेगी। तो फिर मैं अलग हूं और यह जगत अलग है। और निश्चित ही इस जगत और मेरे बीच जो संबंध है, वह मैत्री और प्रेम का नहीं, संघर्ष का और शत्रुता का है। इस। जगत से मुझे जीतना है, ताकि मैं ज्यादा जी सकूं। इस जगत से मुझे बचना है, ताकि यह जगत मुझे पीस न डाले।

जगत बिलकुल बेरुखा मालूम पड़ता है। वृक्ष के नीचे खड़े हों, वृक्ष ऊपर गिर जाता है! और जरा भी खबर नहीं देता है कि मैं गिर रहा हूं? हट जाओ! .और तूफान आता है, और आप गिर जा सकते हैं। आंधी आपको मिटा दे सकती है। सागर आपको डुबा ले सकता है। पहाड़ आपको दबा दे सकता है। इस जगत में चारों तरफ अस्तित्व को आपकी कोई भी चिंता नहीं है। एक शत्रुता है, जगत आपको मिटाने पर तुला है। तो आप जगत से संघर्ष करने को तत्पर हो जाएं।

इसलिए पश्चिम ने एक भाषा खोजी है, वह भाषा युद्ध की भाषा है, संघर्ष की भाषा है। इसलिए ऐसी किताबें लिखी गई हैं पिछले पचास वर्षों में। बर्ट्रेंड रसेल ने भी एक किताब लिखी है, नाम दिया है, कांक्वेस्ट आफ नेचर, प्रकृति की विजय!

विजय की भाषा ही संघर्ष और युद्ध की भाषा है। हम उसे कैसे जीत सकते हैं, जो हमारा प्राण है? हम उसे कैसे जीत सकते हैं, जो हमें धारण किए है? हमारा उससे क्या संघर्ष हो सकता है? मछली का क्या संघर्ष सागर से? वृक्ष की जड़ों का क्या संघर्ष पृथ्वी से? लेकिन दृष्टि पर निर्भर करेगा।

तो कृष्ण कहते हैं, मैं तुम में ही नहीं हूं, मैं तुम्हारी मां में भी हूं? तुम्हारे पिता में भी, पिता के पिता में भी।

श्रृंखला की खबर दे रहे हैं वे। वे यह कह रहे हैं कि तुम तुम में ही नहीं हो, तुम तुम्हारी मां में भी थे, तुम तुम्हारे पिता में भी थे, और तुम तुम्हारे पिता के पिता में भी थे। और तुम अपने बच्चों में भी रहोगे, और तुम अपने बच्चों के बच्चों में भी रहोगे। यह जगत तुमसे कभी भी खाली नहीं होगा, और यह जगत तुमसे कभी खाली नहीं था। यह जगत तुमसे सदा ही भरा रहा है; और यह जगत सदा तुमसे भरा ही रहेगा। इस जगत के तुम अनिवार्य हिस्से हो। इस जगत में और तुम्हारे बीच एक पारिवारिक नाता है। यह जगत तुम्हारा पड़ोसी ही नहीं है, इस जगत के और तुम्हारे बीच, जैसे मां और बेटे के बीच, पिता और बेटे के बीच नाता हो, वैसा नाता है। तुम इसकी ही कड़ी हो।

एक लहर उठती है सागर में, क्षणभर को नाचती है आकाश में, सूरज को छूने की कोशिश करती है, और फिर गिर जाती है। लहर सोच सकती है कि मैं सागर से अलग हूं। सोच सकती है। अलग होती भी है क्षणभर को। प्रकट ही दिखाई पड़ता है कि सागर से अलग है। छलांग भरती है आकाश की तरफ, पूरा सागर नीचे पड़ा रह जाता है, सिर्फ लहर उठती है।

तो लहर को यह खयाल अगर आ जाए, यह अहंकार अगर आ जाए कि मैं अलग हूं तो गलती तो कुछ भी नहीं है। और जब लहर को सागर नीचे खींचने लगे, तो लहर को ऐसा लगे कि सागर मुझे मिटाने को तत्पर है, और हवाएं मुझे तोड़ देने को उत्सुक हैं, और सारा जगत मेरे खिलाफ है, और सारा जगत मुझे मिटाने की चेष्टा में लगा है, तो मुझे लड़ना है! यह भी तर्कयुक्त होगा। पहले निर्णय के बाद, यह दूसरी बात स्वाभाविक है।

लेकिन लहर को सागर मिटाने को उत्सुक है? सागर लहर को मिटाने को उत्सुक हो भी कैसे सकता है! और यह सच है कि लहर सागर में ही मिटती है। फिर भी सागर लहर को मिटाने को उत्सुक नहीं है। क्योंकि लहर को यह पता ही नहीं है कि वह सागर का बढ़ा हुआ हाथ है, और कुछ भी नहीं है। वह सागर की ही छाती पर उठी एक तरंग है। वह सागर की ही छाती है। वह सागर की ही महत्वाकांक्षा है, जो छलांग लगा गई है। इससे भिन्न नहीं है। सागर उसे क्यों मिटाएगा! सागर ही है वह।

कृष्ण कहते हैं, मैं मां भी हूं पिता भी हूं? पितामह भी हूं।

वे यह कह रहे हैं कि मैं वह अनंत श्रृंखला हूं, जिसकी तुम एक कड़ी हो। मैं तुम्हारे पीछे तुम्हारे पिता की तरह छिपा हूं; तुम्हारे पीछे तुम्हारी मां की तरह छिपा हूं; उनके भी पीछे, उनके भी पीछे, मैं सदा तुम्हारे पीछे खड़ा हूं। तुम मेरे ही बढ़े हुए हाथ हो; तुम मेरी ही लहर हो; तुम मेरी ही तरंग हो। और तुम्हीं नहीं हो, तुम्हारी मां भी थी; तुम्हारे पिता भी थे, उनके पिता भी थे।

समझें। एक दृष्टि है व्यक्ति को व्यक्ति मानने की, एटामिक, अणु की तरह अलग। लीबनिज ने इसके लिए एक ठीक शब्द पश्चिम में खोजा है। उसने शब्द दिया है, मोनोड। मोनोड का मतलब होता है, एक ऐसा अणु, जिसमें कोई खिड़की-दरवाजे नहीं हैं; जो सब तरफ से बंद है।

तो हम व्यक्ति को मोनोड समझ सकते हैं, विडोलेस, डोरलेस, एटामिक, क्लोब्द, सब तरफ से बंद एक मकान, जिसमें कोई खिड़की नहीं, कोई दरवाजा नहीं। सब तरफ से बंद। कहीं बाहर से जुड्ने का कोई सेतु नहीं। कोई चर्चा नहीं हो सकती। पड़ोसी से मिलने का कोई उपाय नहीं। हाथ फैलाकर दोस्ती नहीं बांधी जा सकती। सब तरफ से बंद। ऐसा प्रत्येक व्यक्ति एक बंद अणु है। अगर ऐसा है, तो जगत एक भयंकर संघर्ष होगा और एक भयंकर असफलता भी।

कृष्ण कहते हैं, जगत या व्यक्ति, अलग-अलग चीजें नहीं हैं, एक लंबी श्रृंखला है। जिसमें हर चीज पिछली कड़ी से और अगली कड़ी से जुड़ी है। यह जो वृक्ष की जड़ है, यह जो वृक्ष के शिखर पर फूल खिला है, इससे जुड़ी है। अगर फूल से बात कर रहे होते अर्जुन की जगह कृष्ण, तो फूल से वे कहते कि मैं तेरे भीतर तो हूं ही; तेरी जडों के भीतर भी मैं ही हूं। और तेरी जड़ें जिस बीज से पैदा हुई थीं, उसके भीतर भी मैं ही था। और वह बीज जिस वृक्ष पर लगा था, वह भी मैं हूं। और वह वृक्ष जिन जड़ों से आया था, वह भी मैं। और तू लौटता जा पीछे; मैं तेरा पूरा इतिहास हूं दि होल हिस्ट्री। मैं तेरा अनंत इतिहास हूं। सब जो हुआ है पहले, उसमें मैं था। और अभी जो हो रहा है, वह उससे जुड़ा हुआ अंग है।

व्यक्ति अपने को अस्तित्व से अलग न समझे, तो ही धर्म के अनुभव में उतरता है। अलग समझे, तो अधर्म के अनुभव में यात्रा शुरू हो जाती है। व्यक्ति अपने को जगत से एक जान पाए, तो तत्क्षण लहर फैलकर सागर बन जाती है।

और काश! मैं यह देख सकूं कि मैं अपने पिता में, अपनी मां में, उनके पिता में, उनकी मां में, अनंत-अनंत श्रृंखलाओं में किसी न किसी रूप में मौजूद था, तो फिर मेरा जन्म कोई अनहोनी घटना नहीं रह जाती, एक लंबी श्रृंखला का हिस्सा हो जाता है। फिर मेरी मृत्यु भी मृत्यु नहीं होगी; क्योंकि जब मेरा जन्म मेरा जन्म नहीं है, तो मेरी मृत्यु भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती। मेरा जन्म एक लबी श्रृंखला का हिस्सा है और मेरी मृत्यु भी एक लंबी श्रृंखला का हिस्सा होगी।

और तीसरी बात कहते हैं, और जानने योग्य पवित्र ओंकार मैं हूं। अतीत की बात कही कि यह मैं हूं। अतीत की सारी श्रृंखला मैं हूं; एम दि पास्ट, दि होल पास्ट। पूरा बीता हुआ सब मैं हूं। और तत्क्षण भविष्य की बात कहते हैं कि जानने योग्य ओंकार भी मैं हूं।

'ओंकार का अनुभव इस जगत का आत्यंतिक, अंतिम अनुभव है। कहना चाहिए, दि अल्टिमेट फ्यूचर। जो हो सकती है आखिरी बात, वह है ओंकार का अनुभव।

तो कृष्ण कहते हैं, भविष्य भी मैं हूं। कहते हैं, अतीत ही मैं नहीं हूं तुम्हारा पिता ही मैं नहीं हूं? पिता का पिता ही मैं नहीं हूं, तुम्हारी जो भी संभावना है भविष्य की, वह भी मैं हूं। तुम जो हो सकते हो, वह भी मैं हूं। तुम जो थे, वह मैं हूं ही। तुम जो हो, वह मैं हूं ही। तुम जो हो सकते हो; वह फूल, जो अभी नहीं खिला, खिलेगा; वह भी मैं हूं। और वह जो बीज अभी नहीं लगा, लगेगा, वह भी मैं हूं। इस जगत का अतीत ही मैं नहीं हूं? इस जगत की संपूर्ण संभावना भी मैं हूं। जो कुछ भी हो सकेगा, वह भी मैं हूं।

क्योंकि अगर परमात्मा सिर्फ अतीत है और भविष्य नहीं, तो व्यर्थ है। क्योंकि अतीत तो हो चुका। जो हो चुका, अब उससे कुछ लेना-देना नहीं है। जो नहीं हुआ है, वही हमारी आशा है। अगर परमात्मा सिर्फ हमारा अतीत है, तो भविष्य अंधकार है। अतीत तो जा चुका, मर चुका, हो चुका। मौलिक रूप से परमात्मा को हमारा भविष्य होना चाहिए। तो ही आशा, सार्थक आशा का जन्म होता है, तो ही सार्थक अभीप्सा का, उस महत्वाकांक्षा का, जो अंतिम को अनुभव करना चाहती है।।

कृष्ण कहते हैं, मैं तुम्हारा भविष्य भी हूं। और भविष्य में अंतिम घटना घट सकती है, वह वे कहते हैं। वे कहते हैं, ओंकार भी मैं हूं।

ओंकार का अर्थ है, जिस दिन व्यक्ति अपने को विश्व के साथ एक अनुभव करता है, उस दिन जो ध्वनि बरसती है। जिस दिन व्यक्ति का आकार में बंधा हुआ आकाश निराकार आकाश में गिरता है, जिस दिन व्यक्ति की छोटी-सी सीमित लहर असीम सागर में खो जाती है, उस दिन जो संगीत बरसता है, उस दिन जो ध्वनि का अनुभव होता है, उस दिन जो मूल-मंत्र गूंजता है, उस मूल-मंत्र का नाम ओंकार है। ओंकार जगत की परम शांति में गंजने वाले संगीत का नाम है।

संगीत दो तरह के हैं। एक संगीत जिसे पैदा करने के लिए हमें स्वर उठाने पड़ते हैं, शब्द जगाने पड़ते हैं, ध्वनि पैदा करनी पड़ती है। इसका अर्थ हुआ, क्योंकि ध्वनि पैदा करने का अर्थ होता है कि कहीं कोई चीज घर्षण करेगी, तो ध्वनि पैदा होगी। जैसे मैं अपनी दोनों ताली बजाऊं, तो आवाज पैदा होगी। यह दो तालियों के बीच जो घर्षण होगा, जो संघर्ष होगा, उससे आवाज पैदा होगी।

तो हमारा जो संगीत है, जिससे हम परिचित हैं, वह संगीत संघर्ष का संगीत है। चाहे होंठ से होंठ टकराते हों, चाहे कंठ के भीतर की मांस-पेशियां टकराती हों, चाहे मेरे मुंह से निकलती हुई वायु का धक्का आगे की वायु से टकराता हो, लेकिन टकराहट से पैदा होता है संगीत। हमारी सभी ध्वनियां टकराहट से पैदा होती हैं। हम जो भी बोलते हैं, वह एक व्याघात है, एक डिस्टरबेंस है।

ओंकार उस ध्वनि का नाम है, जब सब व्याघात खो जाते हैं, सब तालियां बंद हो जाती हैं, सब संघर्ष सो जाता है, सारा जगत विराट शांति में लीन हो जाता है, तब भी उस सन्नाटे में एक ध्वनि सुनाई पडती है। वह सन्नाटे की ध्वनि है, वॉइस आफ साइलेंस; वह शून्य का स्वर है। उस क्षण सन्नाटे में जो ध्वनि गूंजती है, उस ध्वनि का, उस संगीत का नाम ओंकार है।

अब तक हमने जो ध्वनियां जानी हैं, वे पैदा की हुई हैं। अकेली एक ध्वनि है, जो पैदा की हुई नहीं है, जो जगत का स्वभाव है, उस ध्वनि का नाम ओंकार है।

इस ओंकार को कृष्ण कहते हैं, यह अंतिम भी मैं हूं। जिस दिन सब खो जाएगा, जिस दिन कोई स्वर नहीं उठेगा, जिस दिन कोई अशांति की तरंग नहीं रहेगी, जिस दिन जरा-सा भी कंपन नहीं होगा, सब शून्य होगा, उस दिन जिसे तू सुनेगा, वह ध्वनि भी मैं ही हूं। सब के खो जाने पर भी जो शेष रहेगा, वह मैं हूं। या ऐसा कहें, जब सब खो जाता है, तब भी मैं शेष रह जाता हूं। जब कुछ भी नहीं बचता, तब भी मैं बच जाता हूं। मेरे खोने का कोई उपाय नहीं है, वे यह कह रहे हैं।

वे कह रहे हैं, मेरे खोने का कोई उपाय नहीं है। मैं मिट नहीं सकता हूं क्योंकि मैं कभी बना नहीं हूं। मुझे कभी बनाया नहीं गया है। जो बनता है, वह मिट जाता है। जो जोड़ा जाता है, वह टूट जाता है। जिसे हम संगठित करते हैं, वह बिखर जाता है। लेकिन जो सदा से है, वह सदा रहता है।

इस ओंकार का अर्थ है, दि बेसिक रियलिटी; वह जो मूलभूत सत्य है, जो सदा रहता है। उसके ऊपर रूप बनते हैं और मिटते हैं, संघात निर्मित होते हैं और बिखर जाते हैं, संगठन खडे होते हैं और टूट जाते हैं, लेकिन वह बना रहता है। वह बना ही रहता है।

यह जो सदा बना रहता है, इसकी जो ध्वनि है, इसका जो संगीत है, उसका नाम ओंकार है। यह मनुष्य के अनुभव की आत्यंतिक बात है। यह परम अनुभव है।

इसलिए आप यह मत सोचना कि आप बैठकर ओम, ओम का उच्चार करते रहें, तो आपको ओंकार का पता चल रहा है। जिस ओम का आप उच्चार कर रहे हैं, वह तो उच्चार ही है। वह तो

आपके द्वारा पैदा की गई ध्वनि है।

इसलिए धीरे- धीरे होंठ को बंद करना पड़ेगा। होंठ का उपयोग नहीं करना पड़ेगा। फिर बिना होंठ के भीतर ही ओम का उच्चार करना। लेकिन वह भी असली ओंकार नहीं है। क्योंकि अभी भी भीतर मांस-पेशियां और हड्डियां काम में लाई जा रही हैं। उन्हें भी छोड़ देना पड़ेगा। भीतर मन में भी उच्चार नहीं करना होगा। तब एक उच्चार सुनाई पड़ना शुरू होगा, जो आपका किया हुआ नहीं है। जिसके आप साक्षी होते हैं, कर्ता नहीं होते हैं। जिसको आप बनाते नहीं, जो होता है, आप सिर्फ जानते हैं।

जिस दिन आप अपने भीतर ओम की उस ध्वनि को सुन लेते हैं, जो आपने पैदा नहीं की, किसी और ने पैदा नहीं की, हो रही है, आप सिर्फ जान रहे हैं, वह प्रतिपल हो रही है, वह हर घड़ी हो रही है। लेकिन हम अपने मन में इतने शोरगुल से भरे हैं कि वह सूक्ष्मतम ध्वनि सुनी नहीं जा सकती। वह प्रतिपल मौजूद है। वह जगत का आधार है।

इस संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है। पश्चिमी मनोविज्ञान, पश्चिमी विज्ञान, पश्चिम की समस्त खोज इस नतीजे पर पहुंची है कि जगत का जो आत्यंतिक आधार है, वह विद्युत है, इलेक्ट्रिसिटी है। और इसलिए पश्चिम का आधुनिक चिंतन कहता है कि ध्वनि मूल नहीं

है, विद्युत मूल है। और ध्वनि, साउंड भी विद्युत का एक प्रकार है। साउंड जो है, ध्वनि जो है, वह भी विद्युत का ही एक प्रकार है, ए मोड।

लेकिन पूरब की बात बिलकुल ही भिन्न है। पूरब कहता है कि साउंड, ध्वनि जो है, वह अस्तित्व का मूल उपकरण है, और विद्युत जो है, वह ध्वनि का ही एक प्रकार है, ए मोड। पश्चिम विद्युत को मूल मानता है, ध्वनि को विद्युत का ही एक रूप; पूरब ध्वनि को मूल मानता है और विद्युत को ध्वनि का ही एक रूप।

इसलिए पूरब में वे लोग हुए, जिन्होंने ध्वनि के माध्यम से दीए जला दिए। जिन्होंने एक राग गाया और बुझा दीया जला। यह बात सही हो कि न हो, पर पूरब की मान्यता यह है कि विद्युत ध्वनि का ही एक रूप है। तो अगर ध्वनि की एक खास ढंग से चोट की जाए, तो आग जल जानी चाहिए। अगर ध्वनि एक खास ढंग से की जाए, तो आकाश में बिजली कड़कने लगनी चाहिए। अगर विद्युत ध्वनि का ही एक रूप है, तो ध्वनि की तरंगों के आघात से अग्नि का जन्म हो जाना चाहिए।

भविष्य तय करेगा कि इन दोनों मान्यताओं में क्या संभावना है। जहां तक मेरा संबंध है, मैं मानता हूं, यह झगड़ा वैसा ही बचकाना है, जैसा कुछ लोग मुर्गी और अंडे के बाबत किए रहते हैं। कुछ लोग कहते हैं, मुर्गी पहले है और अंडा बाद में; और कुछ लोग कहते हैं, अंडा पहले है और मुर्गी बाद में। मगर दोनों नासमझ हैं। क्योंकि जब भी हम मुर्गी कहते हैं, तो उसके पहले अंडा आ ही जाता है। और जब भी हम अंडा कहते हैं, तो उसके पहले मुर्गी आ ही जाती है।

इसलिए ज्यादा उचित हो कि हम मुर्गी और अंडे में पहले कौन है, इसकी फिक्र छोड़े। क्योंकि कोई भी पहले हो नहीं सकता। कैसे अंडा पहले होगा मुर्गी के? कैसे होगा? उसके होने के लिए ही मुर्गी की जरूरत पड़ जाती है। कैसे मुर्गी होगी पहले अंडे के? उसके होने के लिए ही अंडे की जरूरत पड जाती है।

इसलिए शायद कहीं भाषा की भूल है, लिंग्विस्टिक भूल है। असल में अंडा और मुर्गी दो चीजें नहीं हैं; अंडा और मुर्गी एक ही चीज के दो रूप हैं। ऐसा कहना चाहिए कि अंडा जो है, वह छिपी हुई मुर्गी है, मुर्गी जो है, वह प्रकट हो गया अंडा है। इनको दो में बांटने की बात ही गलत है। दो में बाटने से फिर कभी हल नहीं होता। मुझे ऐसा खयाल में आता है कि विद्युत और ध्वनि के बीच ठीक वैसा ही संबंध है। इसलिए ध्वनि के बिना विद्युत नहीं हो सकती, और विद्युत के बिना ध्वनि नहीं हो सकती। लेकिन पूरब और पश्चिम में यह बुनियादी फर्क क्यों आया, उसका कारण है। उसका कारण कीमती है। वह समझ लेना चाहिए।

वह फर्क इसलिए है कि पश्चिम ने जो खोज की है, वह पदार्थ को तोड़कर की है। पदार्थ को तोड़ा, आखिरी परमाणु की खोज की, कि कौन-सी चीज से पदार्थ बना है? विद्युत मिली। पूरब ने जो खोज की है, वह पदार्थ को तोड़कर नहीं की है, वह अपने ही मन को तोड़कर की है। ध्यान रखें, मैटर हैज बीन एनालाइब्द इन दि वेस्ट एंड माइंड इन दि ईस्ट।

अगर आप पदार्थ को तोड़ेंगे, तो जो अंतिम अणु हाथ में आने वाला है, वह विद्युत का होगा। अगर आप मन को तोड़ेंगे, तो जो अंतिम अणु हाथ में आने वाला है, वह ध्वनि का होगा। किसी न किसी दिन पदार्थ का जो अंतिम अणु है वह, और मन का जो अंतिम अणु है वह, वे एक ही सिद्ध होंगे; या एक के ही दो रूप सिद्ध होंगे।

अगर मुझसे पूछें, तो मैं ऐसा कहूंगा कि वह जो पदार्थ का अणु है, वह अप्रकट मन है; और वह जो मन का अणु है, वह प्रकट हो गया पदार्थ है। परमाणु भी पदार्थ का छिपा हुआ मन है, ए हिडेन माइंड। क्षुद्रतम में भी विराट छिपा हुआ है, और विराट को भी प्रकट होना हो, तो क्षुद्र का ही सहारा है।

ओंकार कहकर कृष्ण कहते हैं कि मैं वह परम अस्तित्व हूं, जहां केवल उस ध्वनि का साम्राज्य रह जाता है, जो कभी पैदा नहीं हुई' और कभी मरती नहीं है, जो अस्तित्व का मूल आधार है। उस संगीत के सागर का नाम ओंकार है।

उस तक पहुंचना हो, तो अपने मन से सब ध्वनियां समाप्त करनी चाहिए। अपने मन से एक-एक ध्वनि को छोड़ते जाना चाहिए, एक-एक शब्द को, एक-एक विचार को और मन की ऐसी अवस्था ले आनी चाहिए, जब मन निर्ध्वनि हो जाए, साउंडलेस हो जाए। और जिस दिन आप पाएंगे कि मन. हो गया ध्वनिशन्य, उसी दिन आप पाएंगे, ओंकार प्रकट हो गया! ओंकार वहां निनादित हो ही रहा था। ओंकार की धुन वहां बज ही रही थी सदा से, अनंत से, अनादि से। लेकिन आप इतने शोरगुल में व्यस्त थे, आप इतने जोर में लगे थे बाहर कि आपको वह ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती थी।

आपका यह उपद्रव शांत हो जाए, आपका यह बुखार से भरा हुआ, दौड़ता हुआ पागलपन शांत हो जाए, तो जो सदा ही भीतर बज रहा है, वह अनुभव में आने लगता है। वह मनुष्य की आत्यंतिक अवस्था है। वह उसका परम भविष्य है।

कृष्ण कहते हैं, मैं ओंकार हूं। और कृष्ण कहते हैं, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद भी मैं ही हूं।

ओंकार के बाद वेद की बात कहने का कारण है, प्रयोजन है। कृष्ण कहते हैं, वह परम ध्वनि मैं हूं और उस परम ध्वनि को पहुंचने वाले जितने भी शास्त्र हैं, वह भी मैं हूं। उस परम ध्वनि की ओर जिन-जिन शास्त्रों ने इशारा किया है, वह भी मैं हूं। वह ध्वनि तो मैं हूं ही, लेकिन जो इंगित; वह चांद तो मैं हूं ही, जिन अंगुलियों ने चांद की तरफ इशारा किया है, वे अंगुलियां भी मैं ही हूं। क्योंकि मेरे अतिरिक्त मेरे उस गुह्यतम रूप की तरफ इशारा भी कौन कर सकेगा? मेरी तरफ अंगुली भी कौन उठा सकेगा सिवाय मेरे?

तो कृष्ण कहते हैं, वेद भी मैं ही हूं।

वेद का अर्थ है, वह सब, जिसने ओंकार की ओर इशारा किया है। वेद का अर्थ है, वह सारा ज्ञान, जिसने उस परम ध्वनि की तरफ ले जाने का मार्ग खोला है। उन्होंने तीन वेद का नाम लिया है। विचारपूर्वक ही यह बात है। क्योंकि कल मैंने आपसे कहा, तीन प्रकार के मनुष्य हैं। तो तीन प्रकार के वेद होंगे। तीन प्रकार के मन हैं, तो तीन प्रकार के ज्ञान होंगे। तीन तरह के टाइप हैं, प्रकार हैं, तो तीन प्रकार के इशारे होंगे।

कृष्ण ने कहा कि वे तीनों वेद मैं हूं।

चाहे कोई कर्म से अपने कर्ता को मिटा दे, तो ओंकार में प्रवेश कर जाता है। चाहे कोई अपने प्रेम से प्रेमी को डुबा दे, तो ओंकार में प्रवेश कर जाता है। और चाहे कोई अपने ज्ञान से द्वैत के पार हो जाए, अद्वैत में प्रवेश कर जाए, तो उस ओंकार को उपलब्ध हो जाता है।

वेद का अर्थ है, वे किताबें नहीं, जो वेद के नाम से जानी जाती हैं। वेद से अर्थ है, वे समस्त इशारे, जो मनुष्य-जाति को कभी भी और कहीं भी उपलब्ध हुए हों, जो ओंकार की तरफ ले जाते हैं। ध्यान रखें, वेद शब्द बहुत अदभुत है। इसके बड़े विस्तीर्ण अर्थ हैं। वेद शब्द का अर्थ होता है, ज्ञान। इसलिए वेद को किसी किताब में बांधा नहीं जा सकता। जहां भी ज्ञान है, वहीं वेद है। जहां भी इशारा है, वहीं वेद है।

उन दिनों तक कृष्ण ने जब यह बात कही, तो वह सारा ज्ञान तीन पुस्तकों में संगृहीत था। इसलिए इन तीन पुस्तकों का नाम लिया। अगर आज कृष्ण हों, तो इन तीन का नाम नहीं लेंगे। इसमें कुरान भी सम्मिलित होगा, इसमें बाइबिल भी सम्मिलित हो जाएगी, इसमें जेंदावेस्ता भी जुड़ेगा, इसमें लाओत्से का ताओ तेह किंग भी आने ही वाला है। इन पांच हजार वर्षों में, कृष्ण के बाद, जो-जो इशारे उस ओंकार की तरफ हुए हैं, वे भी वेद का हिस्सा हो गए।

वेद एक विकासमान धारा है। वेद कोई सीमित किताब नहीं है। इसीलिए वेद का कोई लेखक नहीं है। एक-एक वेद में सैकड़ों ऋषियों के वचन हैं। उस जमाने तक जितने ऋषियों का ज्ञान था, वह सब संगृहीत हो गया। फिर वेद के दरवाजे बंद हो गए। और जिस दिन वेद के दरवाजे बंद हुए, उसी दिन हिंदू धर्म मुर्दा हो गया। वेद का दरवाजा खुला ही रहना चाहिए। उसमें नए ऋषि होते रहेंगे। उनके वचन संगृहीत होते ही चले जाने चाहिए। चाहे वे कहीं भी हों।

वेद किसी व्यक्ति की किताब नहीं है। यह बड़े मजे की बात है। वेद न मालूम कितने व्यक्तियों का संग्रह है। उस जमाने तक जितने लोगों ने जाना था, उन सबका संग्रह है। लेकिन फिर द्वार बंद हो गए। जब कोई धर्म जीवंत होता है, तो भयभीत नहीं होता, खुले दरवाजे रखकर सोता है। जब कोई धर्म कमजोर हो जाता है, मरने के करीब आता है, बूढ़ा हो जाता है, तो दरवाजे बंद कर देता है और पहरे लगा देता है। ये कमजोरी के लक्षण हैं। लेकिन जिस दिन दरवाजा बंद होता है, उसी दिन ज्ञान तो आगे बढ़ता चला जाता है, किताब रुक जाती है। किताब रुक जाती है। ठीक वैसी घटना अभी थोड़े दिन पहले फिर घटी। उससे आपको बात समझ में आ जाएगी।

सिक्खों का वेद है, गुरु-ग्रंथ। नानक के समय में, उस समय के जितने ज्ञानियों के इशारे थे, सब उसमें संगृहीत किए गए हैं। उसमें फिक्र नहीं की गई है कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, कौन ब्राह्मण है, कौन शूद्र है। उसमें फरीद के भी वचन हैं, उसमें और कबीर के भी, उसमें दादू के भी। उस समय जितने भी फकीर इशारे वाले थे, उन सबके वचन संगृहीत कर लिए गए हैं।

लेकिन फिर धीरे- धीरे बात मरने लगी। फिर धीरे- धीरे दरवाजे सख्त होने लगे। फिर उसमें वही सम्मिलित हो सकेगा, जो सिक्ख है। फिर दसवें गुरु ने द्वार बंद कर दिए। धर्म कमजोर हो गया। फिर दसवें गुरु ने कहा कि अब इस किताब में आगे नहीं जोड़ा जा सकेगा। उसी दिन यह किताब बूढ़ी होकर मर गई। क्योंकि अब इसमें ग्रोथ नहीं हो सकती। लेकिन दस गुरुओं तक यह किताब विकासमान होती रही, बढ़ती होती रही। इसमें जुड़ता रहा।

ज्ञान एक धारा है, जैसे गंगा एक धारा है। गंगा अगर कह दे प्रयाग में आकर कि अब नदी-नाले मुझमें नहीं जुड़ सकेंगे, अब कोई मुझमें आगे नहीं जुड़ेगा। अब मैं गंगा हूं। और एक गंदे नाले को मैं नहीं गिरने दूंगी।

क्योंकि कहां पवित्र गंगा, और एक साधारण-सा नाला आकर मुझमें गिर जाए और गंदा कर जाए!

जिस दिन गंगा यह कहती है कि एक साधारण-सा नाला मुझमें गिरकर मुझे गंदा कर देगा, उस दिन वह गंगा नहीं रही। क्योंकि गंगा का मतलब ही यह है कि जिसमें कोई भी गिरे, गिरते से पवित्र हो .जाए। अब नाला गंगा को गंदा कर देगा, तो नाला ज्यादा शक्तिशाली हो गया!

जब भी कोई धर्म भयभीत हो जाता है और डरता है कि कुछ मिश्रित न हो जाए, कुछ गलत न हो जाए, इसलिए सब घेराबंदी कर लो, उस दिन किताबें बंद हो जाती हैं।

वेद की जब कृष्ण ने यह बात कही, तब ये तीनों किताबें जिंदा किताबें थीं। अब ये तीनों किताबें जिंदा किताबें नहीं हैं। एक जगह इनके द्वार बंद हो गए। अगर वे द्वार खुले होते, तो वेद ने जगत के सारे शान को संगृहीत किया होता।

जैसा कि आपने देखा होगा, वेद ठीक वैसी ही चीज थी इस मुल्क में, जैसे कि आज इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका है। हर वर्ष उसको नए एडीशन करने पड़ते हैं। क्योंकि ज्ञान विकसित होता है, उसे सम्मिलित कर लेना होता है। रोज ज्ञान बढ़ता है, तो इनसाइक्लोपीडिया को रोज ज्ञान को बढ़ाए जाना पड़ता है। उसके पुराने एडीशन बाहर होते जाएंगे। रोज यह ज्ञान बढ़ता रहेगा। किसी

दिन अगर इनसाइक्लोपीडिया वाले यह सोचें कि बस, अब हम और शान को भीतर नहीं आने देंगे, उसी दिन इनसाइक्लोपीडिया आउट आफ डेट हो जाएगा, उसी दिन मर जाएगा। वेद हमारा इनसाइक्लोपीडिया था। ओंकार की तरफ जितने इशारे किए गए थे, हमने वेद में संगृहीत किए थे।

तो कृष्ण कहते हैं, वे तीनों वेद मैं ही हूं।

और हे अर्जुन, प्राप्त होने योग्य गंतव्य, भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, सबका साक्षी, सबका वास स्थान, शरण लेने योग्य, हितकारी, उत्पत्ति, प्रलय सबका आधार, निधान और वह, जिसमें सबका लय होता है, अविनाशी, बीज कारण भी मैं ही हूं। इसमें तीन-चार बातें महत्वपूर्ण हैं, वह हमें खयाल में ले लेनी चाहिए।

गंतव्य, दि एंड, आखिरी मंजिल, जो पाने योग्य है, वह मैं ही हूं। और अगर मेरे अतिरिक्त कुछ भी तुझे पाने योग्य लगता है, तो थोड़ा सोच-समझ लेना, वह पाने योग्य नहीं हो सकता। परमात्मा के अतिरिक्त जो भी व्यक्ति कुछ और पाने में लगा है, सच पूछिए तो पाने में नहीं, खोने में लगा है।

परमात्मा के अतिरिक्त अगर आपने कुछ पा भी लिया, तो आखिर में आप पाएंगे कि आपने सब खो दिया, पाया कुछ भी नहीं है। क्योंकि और हम कुछ भी पा लें, वह हमारी संपदा नहीं बनती, सिर्फ विपत्ति बनती है। संपत्ति नहीं, विपत्ति। कुछ भी हम इकट्ठा कर लें, वह हमसे बाहर ही छूट जाता है। वह हमारे प्राणों का विकास नहीं होता, सिर्फ प्राणों पर बोझ बन जाता है। और एक न एक दिन मृत्यु सब छीन लेती है। मृत्यु सब छीन लेती है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपनी मरणशथ्या पर पड़ा है। आखिरी घड़ी है। वह आंख खोलता है और अपनी पत्नी से कहता है कि मेरा जो सागर के तट पर भवन है, चाहता हूं कि मेरे मित्र अहमद को दे दिया जाए-वसीयत कर रहा है।

उसकी पत्नी कहती है, अहमद को? इस आदमी की शक्ल मुझे पसंद ही नहीं। बेहतर हो, यह हम रहमान को दे दें!

मुल्ला दुख में आंख बंद कर लेता है। फिर आंख खोलता है और कहता है, ठीक, मेरा जो पहाड़ पर बंगला है, वह मैं चाहता हूं कि मेरी बड़ी लड़की को दे दिया जाए।

उसकी पत्नी कहती है, बड़ी लड़की को? उसके पास काफी है! मेरी छोटी लडकी के लिए एक मकान की पहाड़ पर जरूरत है। वह उसको दे देना उचित है।

मुल्ला और भी थोड़ी देर तक आंख बंद किए पड़ा रहता है। फिर आंख खोलता है और कहता है कि मेरी जो बड़ी कार है, वह मेरे मित्र मर गए हैं, उनका बेटा है, उसको दे देना चाहता हूं।

उसकी पत्नी कहती है, उस पर तो मेरी बहुत दिन से आंख है। वह मैं किसी को नहीं दे सकती हूं। वह तो मेरे छोटे बेटे के काम में आने वाली है।

मुल्ला तब आंख बंद करके कहता है कि एक बात पूछूं आखिरी? मैं यह जानना चाहता हूं मर कौन रहा है? मैं मर रहा हूं कि तू मर रही है? तू कम से कम इतना धीरज तो रख कि मुझे मर जाने दे। फिर तुझे जो करना हो, करना। इतना तो मुझे पता ही है कि जब जिंदगी अपनी न हुई, तो वसीयत क्या अपनी होने वाली है!

मौत सब छीन लेती है। लेकिन फिर भी आदमी वसीयत तो कर जाना चाहता है। यह मरने के बाद भी अपना दावा रखने की चेष्टा है। जो भी हम इकट्ठा कर लेंगे, मौत छीन लेगी। सिर्फ एक संपदा है, जो मौत नहीं छीन पाती है। वह संपदा परमात्मा की है। वह संपदा प्रभु के अनुभव की है। वह संपदा उस स्वभाव की है, जो हम में ही छिपा है। वह उस ओंकार की है, जो सदा है और कभी छीना नहीं जा सकता।

कृष्ण कहते हैं, गंतव्य मैं हूं सबका स्वामी, सबका साक्षी, सबका वास स्थान! जहां सब रह रहे हैं, वह मैं हूं। जो सबको चला रहा है, वह मैं हूं। और जो सबको देख रहा है, वह भी मैं हूं। शरण लेने योग्य, जिसकी शरण तुम आओ, ऐसा भी मैं हूं। हित करने वाला; उत्पत्ति-प्रलय-रूप। जन्म मुझसे तुम्हारा हुआ, सम्हाला मैंने तुम्हें, खोओगे भी तुम मुझमें ही। सबका अंतिम बीज कारण मैं हूं। यह कृष्ण क्यों कह रहे हैं अर्जुन को? वह इसलिए कह रहे हैं कि अर्जुन तू व्यर्थ अपने को बीच में मत ला।

यह अंतिम सूत्र ठीक से समझ लें।

वे यह कह रहे हैं, तू व्यर्थ अपने को बीच में मत ला। बनाया मैंने, सम्हाला मैंने, मिटाऊंगा मैं; तू व्यर्थ अपने को बीच में मत ला।

वह अर्जुन कह रहा है कि युद्ध में मैं नहीं जाना चाहता हूं क्योंकि मुझे लगता है, यह पाप है। कृष्ण कहते हैं, मालिक मैं हूं साक्षी मैं हूं निर्माता मैं हूं और तुझे लगता है कि पाप है! गवाही मैं हूं तेरी अंतिम गवाही मैं हूं; और तू कुछ भी करेगा, मैं ही तेरे भीतर करूंगा, तू जाने या न जाने। लेकिन तू कहता है कि यह मुझे लगता है, पाप है! तू कहता है कि मेरे मन को पीड़ा होती है, कि अपने ही प्रियजनों से कैसे लड़ूं!

वह कृष्ण कहते हैं, सबका आधार मैं हूं सबका पिता मैं हूं सबका भविष्य मैं हूं लेकिन तू अपने को बीच में क्यों ला रहा है? मतलब यह है कि अहंकार अपने को मालिक समझता है, और अहंकार अपने को निर्णायक समझता है। और अहंकार समझता है कि मैं ही निर्णय करूंगा, वैसा ही मुझे चलना है। अहंकार समर्पण करने को तैयार नहीं है।

समर्पण तो तभी हो सकेगा, जब हमें पता चले कि न मैंने मुझे बनाया है, न मैं स्वयं को सम्हाले हुए हूं। अभी यह शब्द मेरे मुंह से निकलता है, दूसरा न निकले, उसे भी निकालने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है। एक सांस आती है, और फिर न आए, तो एक सांस लेने का भी कोई उपाय नहीं है। इतना निरुपाय, इतना असहाय, इतना न होने के बराबर मैं हूं। लेकिन फिर भी मैं निर्णय करता हूं कि मैं यह करूंगा और यह नहीं करूंगा, और यह ठीक है, और यह गलत है! निर्णायक मेरा अहंकार बनना चाहता है। कृष्ण उसे यही समझा रहे हैं कि अगर तू गौर से देखेगा, तो नीचे-ऊपर सब दिशाओं में सब भांति मुझे छाया हुआ पाएगा। और अच्छा हो कि तू अपनी यह मालकियत छोड़ दे। यह मालकियत ही तेरा दुख और तेरा पाप है।

एक ही पाप है, स्वयं की अस्मिता को, अहंकार को मजबूत किए जाना। और एक ही पुण्य है, स्वयं की अस्मिता को, अहंकार को पिघलाते चले जाना। एक घड़ी आ जाए, जिस दिन मैं न रहूं, मेरा बोध न रहे, तो उस दिन मेरे भीतर जो बोलेगा, जो चलेगा, जो उठेगा, जो करेगा, वह परमात्मा है। उस दिन न मेरा कोई पाप है, न मेरा कोई पुण्य है। उस दिन न मेरा कोई कर्तव्य है और न कुछ अकर्तव्य है। उस दिन जो होगा, वह सहज होगा; जैसे श्वास चलती है, खून बहता है, हवाएं चलती हैं, सूरज निकलता है। उस दिन मेरी कोई जरूरत ही नहीं है।

कृष्ण उस दिशा में अर्जुन को इशारा कर रहे हैं कि तू थोड़ा समझ। तू यह फिक्र छोड़ कि तू इनका मारने वाला है, कि तू इनका बचाने वाला हो सकता है। तू यह भी फिक्र छोड़ कि तेरे ऊपर यह निर्णय है कि यह युद्ध शुभ है या अशुभ है। तू जरा चारों तरफ गौर से देख। तू सिर्फ एक लहर है। एक क्षण को उठा है और एक क्षण बाद खो जाएगा। मैं सागर हूं। मैं तुझसे कहता हूं कि तू मेरे से ही उठा है, मुझसे ही सम्हाला गया है। मैं ही तेरा अभी भी मालिक हूं अभी भी मैं ही तेरा साक्षी हूं। जब तू नहीं था, तब भी मैं था; जब तू नहीं होगा, तब भी मैं रहूंगा। तू मेरी तरफ देख और अपने कर्ता के भाव को मेरे ऊपर छोड़ दे। मुझे हो जाने दे कर्ता और तू बन जा केवल उपकरण, तू बन जा केवल एक बांस की पोगरी। गीत मुझे गाने दे, तू बीच में मत आ। तू बीच में आएगा, वही तेरा दुख, वही तेरी पीड़ा, वही तेरा संताप है।

यह सारी की सारी बात समझाने के पीछे अहंकार को पिघलाने का इशारा है। अहंकार बर्फ की तरह हमारे भीतर जमा हुआ है, फ्रोजन। उसे थोड़ा पिघलाना जरूरी है।

कभी आपने खयाल किया, सागर में एक बर्फ की चट्टान तैर रही हो, तो सागर से बिलकुल अलग मालूम पड़ती है। पीछे मैंने कहा, लहर सागर से अलग मालूम पड़ती है। लेकिन लहर का भ्रम ज्यादा देर नहीं चल सकता, क्योंकि लहर कितनी देर उठी रहेगी? क्षणभर बाद गिर जाएगी और खो जाएगी। लेकिन लहर अगर फ्रोजन हो जाए, जम जाए, बर्फ बन जाए, फिर लहर का भ्रम बहुत देर चल सकता है।

क्योंकि जब तक बर्फ न पिघले! और अगर चारों तरफ दूसरी लहरें भी जमकर बर्फ हो गई हों, तो यह भ्रम और भी बहुत देर चल सकता है। क्योंकि गर्मी भी कहीं से नहीं मिलेगी, सब तरफ से अहंकार की ठंडक ही मिलेगी, यह और जम जाएगी। हम सब ऐसी ही लहरें हैं, फ्रोजन वेक। और चूंकि हम चारों तरफ सभी बर्फ बन गए हैं जमकर, एक-दूसरे को हम ठंडक देते रहते हैं और जमाते रहते हैं। हम सब एक-दूसरे के अहंकार को जमाने की चेष्टा में लगे रहते हैं, हमें पता हो या न पता हो।

बाप बेटे से कहता है कि शाबाश, तू पहला नंबर आ गया है स्कूल में! आएगा क्यों नहीं; आखिर मेरा ही बेटा जो है! ये एक-दूसरे को जमा रहे हैं। बेटे के अहंकार को जमाने की चेष्टा चल रही है।

बेटा आज अगर प्रथम नहीं आया है, तो घर बिलकुल उदास है। मां बेचैन है, बाप पराजित मालूम पड़ रहा है। बेटा भी चिंतित है। क्या हुआ है? जरा बर्फ पिघलने लगी। वह अहंकार, मैं-हमारे घर में कभी कोई नंबर दो आया ही नहीं, और यह बेटा नंबर दो आ गया! हम सब एक -दूसरे को जमाने की कोशिश में लगे हैं। हमारी शिक्षा, हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, सब एक-दूसरे को जमा रही है; सब जम जाएं, सख्त हो जाएं भीतर।

अगर जब सारी लहरें एक-दूसरे को जमाने में लगी हों, तो फिर नीचे के सागर का खयाल आना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए जिन लोगों को समाज को छोड़कर भागना पड़ा-बुद्ध को या महावीर को या जीसस को या मोहम्मद को भी स्वात में भाग जाना पड़ा-उसका कारण अगर मौलिक आप समझना चाहें, तो सिर्फ इतना ही है कि आप सब इतने जमे हुए बर्फ की चट्टानें हैं कि आपके बीच में पिघलना बहुत मुश्किल है! पूरा टेंपरेचर नहीं है पिघलने का वहां। सब जीरो डिग्री से नीचे जमे हुए हैं। वहा अगर कोई पिघलना भी चाहे, तो पिघलना मुश्किल है। चारों तरफ जमाने वाले लोग मौजूद हैं।

इसलिए बुद्ध या महावीर को समाज छोड़कर भागना पड़ता है। समाज को छोड़कर भागने का और कोई कारण नहीं है। अकेले में जाना पड़ता है, ताकि वहा कम से कम अपनी ही ठंडक से लड़ना पड़े; दूसरों की ठंडक से तो न लड़ना पड़े। अकेले, एकांत में, जहां चारों तरफ कोई ठंडक न हो।

मैंने सुना है, फकीर बोकोजू जंगल में था। उसके ज्ञान की खबर राजधानी तक पहुंच गई। सम्राट उससे मिलने आया। सम्राट आया था मिलने, तो सम्राट था, कुछ भेंट लानी चाहिए। तो एक बहुत बहुमूल्य;.' लाखों रुपए की कीमत का एक कोट सिलवा लाया। उसमें लाखों रुपए के हीरे-जवाहरात लगा दिए। बड़ा कीमती वस्त्र था। शायद पृथ्वी पर वैसा खोजना दूसरा मुश्किल हो। सम्राट उसे बड़ी मेहनत से बनवाकर लाया था।

जब सम्राट फकीर के सामने मौजूद हुआ, तो फकीर एक चट्टान पर नग्न, एक वृक्ष से टिका हुआ बैठा है। सम्राट ने चरण छुए, भेंट रखी। फकीर भेंट को देखकर हंसा। फिर फकीर ने ऊपर वृक्ष की तरफ देखा। फिर आस-पास हिरण घूमते थे, उनकी तरफ देखा। फिर आकाश में चीले उड़ती थीं, उनकी तरफ देखा।

उस सम्राट ने कहा, आप क्या देख रहे हैं? तो उसने कहा, मैं यह देख रहा हूं कि तुम्हारा यह कोट मुझे बड़ी दिक्कत में डालेगा। क्योंकि अगर यह कोट तुमने मुझे राजधानी में दिया होता, तो राजधानी में सभी आदमी इस कोट की प्रशंसा करते और कहते कि मैं बहुत महान हो गया हूं, क्योंकि मुझे यह राजा का कोट मिल गया है। लेकिन यहां जंगल में बेपढ़े-लिखे जानवर हैं, असभ्य, इन को कुछ पता नहीं है। मैंने ऊपर देखा इसलिए कि वे जो तोते बैठे हैं, वे हंस रहे हैं। मैंने ऊपर देखा कि वह जो चील उड़ रही है, वह मजाक उड़ाएगी। मैंने हिरण की तरफ देखा, उसकी आंख में शरारत

है। आपके जाते ही ये सब कहेंगे, बन गए बुद्ध! कैसे मुक्त थे, कैसे आनंद में थे, नग्न! कैसे स्वतंत्र थे, कैसे परमात्मा की हवाएं सीधा छूती थीं! पहन लिया कोट! और फिर यहां हीरे-जवाहरात का कोई पता रखने वाला भी नहीं है। तो मैं शान भी बघारूंगा, तो किसके सामने? और अकड़कर चलूंगा भी, तो कहां? यहां अगर अकड़कर चलूंगा, तो यह सारा जंगल मुझ पर हंसेगा। तो यहां मैं सम्राट के द्वारा सम्मानित कम और किसी सर्कस का जोकर ज्यादा मालूम पडूगा। यह कोट तुम ले जाओ, इतनी कृपा करो।

जंगल में आपके आस-पास ठंडक देने वाला कोई भी नहीं है, आपके अहंकार को ठंडा करने वाला कोई भी नहीं है, पिघल जाएगा आसानी से। इसलिए भागते रहे लोग।

कृष्ण उसी अहंकार को पिघलाने के लिए कह रहे हैं, सब मैं हूं। अगर तुझे यह स्मरण आ जाए अर्जुन, तो तू जो इस खयाल से भर रहा है कि तू ही केंद्र है और तेरे ऊपर ही सब दारोमदार है, यह खयाल तेरा छूट जा सकता है। और यह खयाल न छूटे, तो आदमी की आंखें अंधी ही रह जाती हैं।

अहंकार अंधापन है। और अहंकार के छूट जाते ही प्रज्ञा की आंख खुलती है, और जीवन जैसा है वैसा पहली बार दिखाई पड़ता है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
जीवन के ऐक्स का बोध—अ—मन में— अध्याय—9 (प्रवचन—आठवां)
सूत्र:

तपाम्यहमहं वर्ष निग्ष्टृणान्स्पृउजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चछमर्जुन ।।19।।
त्रैविद्या मां सोमया: पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वग्रतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमामाद्य सुरेन्द्रलस्केम् अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।।20।।
मैं ही सूर्यरूप हुआ तपता हूं तथा वर्क को आकर्षित करता हूं और वर्षाता हूं। और हे अर्जुन? मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत और असत भी? सब कुछ मैं ही हूं।

परंतु जो तीनों वेदों में विधान किए हुए सकाम क्रमों को करने वाले और सोमरस को पीने वाले एवं पापों से पवित्र हुए पुरूष मेरे को यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते है, वे पुरुष अपने पुण्यों के फलरूप इंद्रलोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगता हैं।

जीवन है एक, अस्तित्व है एक, लेकिन मन सभी कुछ तोड़कर देखता है। मन जब तक तोड़ न ले, तब तक देख ही नहीं पाता है। मन के देखने की प्रक्रिया में ही जीवन खंड-खंड हो जाता है।

इसे ऐसा समझें, प्रकाश की एक किरण है, उसे एक कांच के प्रिज्म से निकालें, तो सात टुकड़ों में टूट जाती है, सात रंगों में विभाजित हो जाती है। प्रकाश की किरण अविभाज्य है, अपने में अखंड है। प्रिज्म के टुकड़े से गुजरकर टूट जाती है, हिस्सों में बंट जाती है।

हमारा मन अस्तित्व की किरण को भी ऐसे ही तोड़ देता है। हमारा मन जहां भी देखता है, वहां पूरे को कभी भी नहीं देख पाता है। बड़ी चीजों की तो बात ही छोड़ दें, छोटी-सी चीज को भी मन पूरा देखने में असमर्थ है। एक छोटा-सा कंकड़ का टुकड़ा आपके हाथ में रख दूं, तो भी आपकी आखें, आपकी इंद्रियां, आपका मन उस टुकड़े को पूरा नहीं देख सकते; एक हिस्सा छिपा रह जाएगा। और जब आप दूसरा हिस्सा देखेंगे, तो पहला हिस्सा छिप जाएगा। एक छोटा-सा कंकड़!

उसे भी छोड़ दें। एक धूल का, रेत का टुकड़ा अपने हाथ पर रख लें। उसे भी आपकी इंद्रियां पूरा नहीं देख सकती हैं, उसे भी तोड़कर ही देखेंगी। एक हिस्सा दिखाई पड़ेगा, एक अनदेखा रह जाएगा। जो अनदेखा है, उसका आप अनुमान ही करेंगे कि होगा, वह दिखाई नहीं पड़ेगा। और ऐसा कभी नहीं कर सकते कि दोनों हिस्सों को आप एक साथ देख लें। एक छोटे-से रेत के टुकड़े के भी दोनों हिस्से एक साथ नहीं देखे जा सकते हैं। जब एक देखेंगे, दूसरा ओझल हो जाएगा। तो विराट की तो कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

हमारा मन अंश को ही देख पाता है। यह पहली बात ठीक से समझ लें। यदि यह बात ठीक से समझ में आ जाए, तो बहुत-सी बातें समझ में आ सकेंगी। और अगर यह बात ठीक से समझ में न आए तो धर्म के बहुत से सूत्र बेबूझ रह जाते हैं। यह बहुत बुनियादी है।

मन की सामर्थ्य ही नहीं है किसी चीज को उसकी पूर्णता में देखने की। मन का स्वभाव ही नहीं है किसी चीज को उसकी पूर्णता में देख लेने का। वैसे ही, जैसे आंख चाहे भी, तो भी ध्वनि को सुन नहीं सकती; और कान चाहे भी, तो भी रूप को देख नहीं सकता। कान का स्वभाव नहीं है, आंख का स्वभाव नहीं है कि ध्वनि को सुन सके। आंख देख सकती है, सुन नहीं सकती।

फिर अगर कोई आंख से सुनने की कोशिश करे, और उसे कुछ भी सुनाई न पड़े, और उसे लगे कि जगत् में कोई ध्वनि नहीं है, तो कसूर किसका होगा? और अगर कोई कान से देखने की कोशिश करे, और उसे कुछ भी दिखाई न पड़े, और वह कहे कि जगत में कुछ भी नहीं है, तो कसूर किसका होगा? कान का कोई कसूर नहीं है, क्योंकि कान देख ही नहीं सकता। आंख का कसूर नहीं है, क्योंकि आंख सुन ही नहीं सकती। कसूर उस व्यक्ति का है, जो आंख और कान के स्वभाव को नहीं समझ पा रहा है।

मन के स्वभाव के संबंध में पहली बात कि मन किसी भी वस्तु को उसकी समग्रता में, टोटेलिटी में नहीं देख सकता है। जब भी देखेगा, अंश को देखेगा, पूर्ण को नहीं, पहली बात।

आज तक किसी व्यक्ति के मन ने किसी चीज की पूर्णता नहीं देखी है। इसलिए जहां भी मन होगा, वहां अपूर्ण ही अनुभव होगा, अपूर्ण ही दृष्टि होगी, अधूरा ही खयाल होगा। इसलिए जो लोग मन से पूरे का निर्माण करते हैं, उनका निर्माण काल्पनिक हो जाता है, अनुमान हो जाता है। जो उन्हें नहीं दिखाई पड़ता, उसका वे अनुमान करके पूरा कर लेते हैं। जो दिखाई पड़ता है, उसमें उसे भी जोड़ देते हैं, जिसको वे सोचते हैं कि होगा। इसलिए मन से निर्मित दुनिया में जितने भी शास्त्र हैं, वे सभी व्यर्थ हैं, पूर्ण की तरफ ले जाने वाले नहीं है।

और दुनिया में दो तरह के शास्त्र हैं। एक तो वे शास्त्र हैं, जो उन लोगों ने कहे हैं, जिन्होंने मन को मिटाकर पूर्ण को जाना। और एक वे शास्त्र हैं, जो उन लोगों ने कहे हैं, जिन्होंने मन को व्यवस्थित करके, शिक्षित करके, अध्ययन से, विचार से, मनन से, चिंतन से, तर्क से, अनुभव से मन को विकसित किया और फिर जगत के संबंध में दृष्टि को लिपिबद्ध किया। फिलासफी और रिलिजन, धर्म और दर्शन में यही फर्क है।

धर्म उन लोगों के वक्तव्य हैं, जिन्होंने मन को मिटाकर जाना, जिन्होंने मन के प्रिज्म को तोड़ डाला और अस्तित्व की किरण को सीधा देखा-अविभाज्य, बिना बंटा हुआ, अखंड। और दर्शन, फिलासफी उन लोगों के वक्तव्य हैं, जिन्होंने मन को खूब विकसित किया, ट्रेन किया, प्रशिक्षित किया, समझाया, सिखाया, पढ़ाया, और फिर जगत के संबंध में एक दृष्टि निर्मित की।

इसलिए सबफिलासफीज अधूरी हैं; होंगी ही। कोई और उपाय नहीं है। साक्रेटीज कितनी ही बड़ी बात कहे, वह बात मन की ही है। और साक्रेटीज के पास मन का कितना ही विकसित रूप हो, वह मन ही है। अगर साक्रेटीज यह भी कहे कि ये सातों जो रूप टूट गए हैं किरण के, इनको जोड लेने से फिर एक किरण बन सकती है, तो भी वह मन का ही अनुमान है। अरस्तु कितना ही कहे, प्लेटो कितना ही कहे, काट और हीगल कितना ही कहें, वे जो कह रहे हैं, वह उनके विचार का निष्कर्ष है, अनुभव का नहीं। 1 वे जो कह रहे हैं, वह उनका तर्कबद्ध आयोजन है, प्रतीति नहीं। वह उनके मन की ही दृष्टि है, मन से मुक्त उनका साक्षात्कार नहीं। मन से पैदा होती है फिलासफी। मन के पार उठ जाने से जो पैदा होता है, वही धर्म है।

मन जो भी कहेगा, वह अधूरा होगा। इसलिए मेरा मन जो कहेगा और आपका मन जो कहेगा, उसमें मेल होने का कोई भी उपाय नहीं है। मन का कहना करीब-करीब वैसा ही है, जैसा पंचतंत्र की एक पुरानी कथा में हम सब जानते हैं, पांच अंधे एक हाथी को अनुभव करते हैं। और वे जो भी कहते हैं, वह सभी सच है। जिस अंधे ने हाथी के पैर को छुआ है, उसने कहा, किसी महल के सुदृढ़ स्तंभों की भांति है हाथी। और जिसने हाथी के कानों को छुआ, उसने कहा कि जैसे स्त्रिया अनाज को साफ करती हैं सूप में, वैसे सूप की भांति है हाथी!

गलत दोनों ने नहीं कहा, गलत पांचों ने नहीं कहा; और पांच हजार अंधे भी इकट्ठे हो जाते, तो कोई भी गलत न कहता। वे सभी ठीक कहते। फिर भी उनका ठीक आंशिक था। और भूल उनके कहने में नहीं थी, भूल उनके विस्तार में थी। जब किसी अंधे ने कहा कि हाथी किसी महल के खंभों की भांति है, तब भूल इसमें नहीं थी, जो उसने जाना था। जो उसने जाना था, वह उसने पैर जाने थे; जो उसने कहा, वह हाथी के बाबत कहा। जो जाना था, वह अंश था; और जिसके संबंध में कहा, वह पूर्ण था। और जब भी कोई अंश को पूर्ण के संबंध में कहता है, तो असत्य हो जाता है।

इसलिए मन परमात्मा के संबंध में जो भी कहेगा, वह असत्य होगा।

ध्यान रहे, वे लोग जो कहते हैं, ईश्वर है-मन से, उतने ही असत्य होंगे, जितने वे लोग जो कहते हैं, ईश्वर नहीं है-मन से। मन अंश को ही जानता है, और मन की इच्छा होती है कि पूर्ण को कह दे कि यही है।

ये पांचों अंधे अगर एक-दूसरे की बात सुनकर चुप रह जाते-पर नहीं, संभव नहीं था कि चुप रह जाते! क्योंकि अंधों में कलह अनिवार्य हो गई। क्योंकि जब एक अंधे ने कहा कि हाथी खंभों की तरह है, और दूसरे अंधे ने कहा कि हाथी सूप की तरह है, और तीसरे ने कुछ और चौथे ने कुछ कहा, तो उन सबने कहा कि ये सभी सही तो नहीं हो सकते। और मेरा अनुभव सही है, तो निश्चित ही दूसरे लोग गलत हैं।

इसलिए फिलासफीज लड़ती रहती हैं, संघर्ष चलता रहता है। पांच हजार साल में मनुष्य ने बहुत तरह के दर्शनशास्त्रों को जन्म दिया, वे सब एक-दूसरे से कलह करते रहते हैं। वे कहते हैं कि तुम गलत हो, हम सही हैं। और जब वे कहते हैं, हम सही हैं, तो निश्चित ही कारण हैं, उनकी प्रतीति है।

वह जो आदमी कह रहा है कि हाथी खंभे की तरह है, वह गलत नहीं कह रहा है। और चूंकि उसे हाथी खंभे की तरह मालूम पड़ता है, वह कैसे मान ले कि हाथी सूप की तरह भी है? ये दोनों बातें एक साथ सही कैसे हो सकती हैं?

लेकिन जिनके पास आंख है, वे जानते हैं, ये दोनों बातें एक साथ सही हैं। हाथी सूप भी है, हाथी खंभा भी है, हाथी और बहुत कुछ भी है। और जितने अंधे आते चले जाएं, हाथी उतने ही रूप लेता चला जाएगा।

मन जो भी देखता है, वह सही है, लेकिन आंशिक-स्व बात। और इसलिए मन के अनुभव को कभी पूर्ण पर मत फैलाना, अन्यथा वही फाँसी, बन जाती है। और मन के अनुभव पर कभी मत कहना दूसरे को गलत, क्योंकि दूसरे का मन जो जानता है, वह भी सही हो सकता है।

धर्मों में विवाद नहीं है, हो नहीं सकता, सब विवाद दर्शनों का है। और प्रत्येक धर्म जन्मता तो उनके बीच है, जो पंडित नहीं होते, लेकिन हाथ उनके पड़ जाता है अंततः, जो पंडित होते हैं। यह दुर्भाग्य है, लेकिन यह भी नियम है।

जब पूगई धर्म का जन्म होता है, तो वह उस आदमी में होता है, जिसका मन खो गया होता एं, तब वह पूर्ण को जानता है। लेकिन जब लोग उससे समझते हैं, तो वे मन से ही समझेंगे, कोई और उपाय नहीं है। अगर मैं कोई ऐसी बात आपसे कहूं जो मैंने मन के पार जानी हो, तो आपसे जब कहूंगा और आप जब सुनेंगे, तो आप मन से ही सुनेंगे। और मन से सुनकर अगर आपने उसे मान लिया या न माना, आपने कोई भी नतीजा लिया, तो वह नतीजा आशिक होगा। और उस नतीजे पर ही कल मेरी बात के आधार पर कोई निर्माण हो सकता है, कोई शास्त्र बन सकता है, कोई धर्म बन सकता है। वह धर्म अधूरा होगा और झूठा हो जाएगा।

धर्म जब जन्मते हैं, तो पूर्ण होते हैं-महावीर में, कृष्ण में, या बुद्ध में, या मोहम्मद में। और जब चलते हैं, तो अपूर्ण हो जाते हैं। चलते हैं मन के सहारे; अधूरे हो जाते हैं। और अधूरे होते ही दूसरे अधूरे वक्तव्यों से संघर्ष शुरू हो जाता है। मोहम्मद का और महावीर का कोई संघर्ष नहीं है। बुद्ध का और कृष्ण का कोई संघर्ष नहीं है। लेकिन हिंदू और मुसलमान का है, जैन और बौद्ध का है। होगा ही।

जहां मन मिट गया है, वहा सभी वक्तव्यों के भीतर जो छिपा है, वह दिखाई पड़ जाता है। और जहां मन है, वहा एक वक्तव्य सही और शेष गलत मालूम पड़ते हैं। यह मन की पहली अड़चन है कि मन बांटकर देखता है।

दूसरी अड़चन, जो इससे भी कठिन है, और वह यह है कि मन विरोध में बांटकर देखता है। मन जब भी दो चीजों को तोड़ता है, तो दोनों के बीच विरोध देखता है। जैसे जीवन है। अगर जीवन को मन देखेगा, तो उसे जीवन में दो हिस्से दिखाई पड़ेंगे, जन्म और मृत्यु। और मन कैसे माने कि जन्म और मृत्यु एक ही हैं? बिलकुल उलटे हैं। एक कैसे हो सकते हैं? कहां जन्म और कहां मृत्यु? जीवन को बांटेगा मन, तो दो हिस्से दिखाई पड़ेंगे, जन्म का और मृत्यु का। और दोनों उलटे मालूम पड़ेंगे, कट्राडिक्टरी; एक-दूसरे के विरोध में। जब भी मन बांटेगा, तो विरोध में बांटेगा ,-और जीवन अविरोधी है, नान-कंट्राडिक्टरी है। जीवन में कोई तकलीफ ही नहीं है। जन्म और मृत्यु, जीवन में एक ही चीज के दो नाम हैं, एक ही चीज का विस्तार है। जो जन्म की तरह शुरू होता है, वही मृत्यु की। तरह पूर्ण होता है। अगर जन्म प्रारंभ है जीवन का, तो मृत्यु उसकी पूर्णता है।

जन्म और मृत्यु में अगर मन को हम बीच में न लाएं, तो कोई भी विरोध नहीं है। लेकिन मन को हम बीच में कैसे न लाएं! हमारे पास और कोई उपाय नहीं है। मन ही हमारे पास उपाय है जानने के लिए। जैसे ही मन को हम लाते हैं, मन जीवन को दो हिस्सों में तोड़ देता है, एक हिस्सा जन्म हो जाता है, एक हिस्सा मृत्यु हो जाती है। यह मन सभी जगह चीजों को दो में तोड़ देता है। यह कहता है, यह आदमी अच्छा है, वह आदमी बुरा है। सच्चाई बिलकुल उलटी है; अच्छाई और बुराई एक ही चीज का विस्तार है। तो जब हम कहते हैं, यह आदमी अच्छा है और वह आदमी बुरा है; या हम कहते हैं, यह बात अच्छी है और वह बात बुरी है, तब हमने तोड़ दिया।

बड़ी अड़चन होगी यह मानने में कि अच्छाई और बुराई एक ही चीज का विस्तार है। यह मानने में बड़ी कठिनाई होगी कि साधु और असाधु एक ही चीज के दो छोर हैं। यह मानने में बड़ी कठिनाई होगी कि राम और रावण दुश्मन हैं हमारे मन के कारण, अन्यथा अस्तित्व में एक ही लीला के दो छोर हैं।

इसे ऐसा समझें, क्या रामायण संभव है रावण के बिना? अगर संभव हो, तो रावण को विदा करके सोचने की कोशिश करें। रावण को हटा दें राम की कथा से। और तब आप पाएंगे कि राम के भी प्राण निकल गए! राम के प्राण भी रावण से जुड़े हैं। इधर रावण प्तीरेगा, तो राम भी गिर जाएंगे। राम भी रावण के बिना खड़े नहीं। रह सकते।

और अगर इतना गहरा जोड़ है, तो विपरीत कहना नासमझी है। अगर इतना गहरा जोड़ है कि राम का अस्तित्व नहीं हो सकता। रावण के बिना, न रावण का अस्तित्व हो सकता है राम के बिना, तो दोनों को दुश्मन देखना हमारे मन की भूल है। एक खेल के दोनों ' ही हिस्से हैं; जिसमें दोनों अनिवार्य हैं; जिनमें एक भी छोड़ा नहीं जा सकता।

लेकिन मन तो तोड़कर ही देखेगा। मन कैसे मान सकता है कि राम और रावण एक हैं! कभी भी नहीं मान सकता। मन कहेगा, कैसी बात कर रहे हो? कहां राम, कहां रावण! विपरीत हैं; तभी

तो इतना संघर्ष है दोनों में, तभी तो युद्ध है। तब फिर ऐसा देखें; एक को हटा दें।

अगर सच में रावण राम के दुश्मन हैं, तो रावण अगर न रहे, तो राम और भी खिलकर प्रकट होना चाहिए। अगर रावण सच में ही राम का दुश्मन है, तो रावण के हटते ही राम की प्रतिभा और खिल जानी चाहिए। अगर रावण विरोध में है, तो रावण के हटते ही राम के फूल की सब पंखुड़ियां पूरी खिल जानी चाहिए। क्योंकि विरोधी रोक रहा था खिलावट को, विरोधी दुश्मन था, अड़चन डाल रहा था, अड़चन हट गई, अब राम को पूरा खिलना चाहिए।

लेकिन राम को खिलना तो बहुत दूर, रावण को अगर बिलकुल हटा दें, तो राम का आपको पता ही नहीं चलेगा कि वह कभी हुए हैं! उनका पता ही नहीं चलेगा। और यह बात दोनों तरफ लाग है। राम के बिना रावण को भी होने का कोई उपाय नहीं है। अगर यह ऐसा है, तो फिर हमारे देखने में कहीं भूल है। वह जो हम शत्रुता देखते हैं, वह हमारी भूल है। कहना चाहिए, एक ही चीज के दो छोर हैं। और एक

भी छोर दूसरे के बिना नहीं हो सकता। अनिवार्य छोर! तो जब भी राम होंगे, तब रावण होगा। और जब भी रावण होगा, तब राम होंगे। यह युद्ध नहीं है, यह युद्ध हमारे मन की प्रिज्म में से गुजरकर दिखाई पड़ता है। जब मन को कोई हटा देगा, तो पता चलेगा, एक ही ऊर्जा, एक ही शक्ति दोनों तरफ है। उस शक्ति के बहाव के लिए दोनों उतने ही जरूरी हैं।

ऐसा समझें कि गंगा बहती है दो किनारों के बीच। और हम मान ले सकते हैं कि दोनों किनारे अलग हैं। एक किनारे को हटा दें और फिर गंगा को बहाकर देखें, तब पता चलेगा कि वे दोनों किनारे अलग न थे। और हमें ऐसा भी लग सकता है कि एक किनारे से दूसरे किनारे की प्रतिद्वंद्विता है, कापिटीशन है, और एक किनारा दूसरे से मुठभेड़ ले रहा है। और हमें ऐसा भी लग सकता है कि एक किनारा गंगा को अपनी तरफ खींचने की कोशिश में लगा है। लेकिन ध्यान रहे, गंगा उन दोनों किनारों के बीच ही चलती है। वे दोनों किनारे गंगा के ही दो छोर हैं। और एक को भी हटाकर दूसरा नहीं बचेगा!

कठिन होगी यह बात; और हमारी बुद्धि को अति कठिन पड़ेगी, क्योंकि हमें सदा तोड़कर देखने में आसानी हो जाती है। राम को अच्छा बना लेते हैं, रावण को बुरा बना देते हैं; गणित साफ हो जाता है। रावण छोड़ने जैसा है, राम पूजने जैसे हैं। रावण बुरा है, राम अच्छे हैं। बंटाव सीधा हो गया, गणित साफ हो गया।

जिंदगी हमारे गणित को नहीं मानती। जिंदगी हमारे गणित के सब हिसाब को अस्तव्यस्त कर देती है। राम इसको भलीभांति जानते हैं। राम को यह भलीभांति पता है। इसलिए संघर्ष गहरा है, लेकिन द्वेष कहीं भी नहीं है। युद्ध प्रगाढ़ है, लेकिन खेल से ज्यादा महत्ता नहीं है। राम को भलीभांति पता है कि वह जो दूसरा छोर है, वह अलग नहीं है। इसलिए लक्ष्मण को भेज देते हैं रावण के पास ज्ञान जानने के लिए।

राम को भी पता है कि मेरा भी जो अनुभव है, वह एक छोर का है, रावण का भी जो अनुभव है, वह दूसरे छोर का है। और ज्ञान पूरा लक्ष्मण का तभी होगा, जब वह दोनों छोरों को संयुक्त रूप से जान ले। राम को तो उसने जाना है, उसे रावण के पास भेजते हैं अंत में कि तू उससे भी शिक्षा ले ले, वह महापंडित है, वह महाज्ञानी है, उसका भी अपना अनुभव है, उसकी भी अपनी यात्रा है, उसने भी कुछ जाना है दूसरे किनारे से, जो कि अनूठा होगा और तू अधूरा रह जाएगा। तू राम को ही मत जान, रावण को भी जान ले। और दोनों को जानकर तू ज्यादा पूर्ण होगा; अनुभव ज्यादा समृद्ध, ज्यादा सघन होगा।

और विपरीत जहां मिल जाते हैं, वहां अनुभव पूर्ण हो जाता है। लेकिन हमारा मन? हमारा मन ऐसा है कि राम की पूजा करेंगे और रावण को आग लगाएंगे। यह हमारा मन है! मन हमारा ऐसा है कि हम एक को पूजेंगे, दूसरे की निंदा करेंगे, एक को मित्र मानेंगे, दूसरे को शत्रु मानेंगे।

(किसी ने बीच से उठकर मन की परिभाषा पूछी।)

पूछ रहे हैं एक मित्र कि मन की परिभाषा क्या है? तो मन की थोड़ी परिभाषा समझें। अब देखें, जो मैं कह रहा था, पूछते हैं, मन की परिभाषा कैसे है?

लेकिन आप उनकी तरफ मत देखें! आप ऐसे देख रहे हैं, जैसे उन्होंने बड़ी शत्रुता से पूछा है; वहीं भूल हो जाती है। आवाज जरा जोर की है, लेकिन मित्र की है, ऐसा क्या परेशान होना! उनकी तरफ मत देखें।

मन की परिभाषा; मन का अर्थ होता है, मनन, विचार, चिंतन; जो दिखाई पड़े, उसके साथ चिंतन की धारा को जोड़ना। समझें; एक फूल मुझे दिखाई पड़ता है। जहां तक दिखाई पड़ता है, वहां तक मन नहीं आता; लेकिन जैसे ही मैं कहता हूं सुंदर है, मन आ गया; जैसे ही मैं कहता हूं सुंदर नहीं है, मन आ गया; जैसे ही मैं कहता हूं बहुत प्यारा है, मन आ गया, जैसे ही मैं कहता हूं, बेकार

है, मन आ गया। जब तक दर्शन है, तब तक मन नहीं है। जैसे ही दर्शन के साथ शब्द और विचार जुड़ते हैं, मन की गति शुरू हो गई। मन का अर्थ है, विचार को, शब्द को पैदा करने वाला यंत्र।

मन का अर्थ है, विचार को जन्म देने वाला स्रोत। फूल को अगर मैं देखता रहूं और सोचूं न, तो मेरी आत्मा और फूल के बीच मिलन होगा। अगर सोचूं तो मेरी आत्मा और फूल के बीच में एक नई विचारों की श्रृंखला खड़ी हो जाएगी, शब्दों का एक जाल खड़ा हो जाएगा। तब मैं फूल को न देख पाऊंगा सीधा, तब इन शब्दों के पार से, इन शब्दों के भीतर से फूल को देखूंगा। तब फूल के संबंध में जो भी निर्णय मैं लूंगा, वह फूल के संबंध में नहीं, मेरे मन के संबंध में है। क्योंकि अगर मैं बचपन से ऐसे घर में बडा हुआ हूं, जहां गुलाब को सुंदर समझा जाता है, अगर मुझे बचपन से सिखाया गया है कि गुलाब सुंदर है, तो मेरे मन में विचारों की एक श्रृंखला है गुलाब के संबंध में, सौंदर्य की। अब अगर गुलाब का फूल मैंने देखा और मेरे मन की धारा खड़ी हुई, मेरे विचार खड़े हुए, और उन्होंने कहा, फूल सुंदर है, तो यह मेरी प्रतीति न हुई, यह मेरे मन का वक्तव्य हुआ। और मन का वक्तव्य शब्दों का वक्तव्य है। निःशब्द जब कोई होता है, तो मन खो जाता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि शब्दों की हमारे भीतर जो प्रक्रिया है, दि वेरी प्रोसेस आफ लैंग्वेज इज माइंड। हमारे शब्दों की जो प्रक्रिया है, हमारे शब्दों का जो संग्रह है, हमारे शब्दों का जो जाल है, वह हमारा मन है। मन हमारे समस्त शब्द, हमारी समस्त भाषा, हमारे समस्त सोचने की क्षमता का इकट्ठा जोड़ है।

आदमी गैर-मन की हालत में दो तरह से हो सकता है। बेहोश पड़ा हो, तो भी गैर-मन की हालत में हो जाता है। यह मन से नीचे की अवस्था है। आदमी समाधि में हो, तो भी मन के बाहर हो जाता है। यह मन से ऊपर की अवस्था है।

इसलिए ऋषियों ने कहा है कि प्रगाढ़ निद्रा में भी आदमी समाधि जैसी अवस्था में पहुंच जाता है। एक ही लक्षण समान है, मन नहीं होता। प्रगाढ़ निद्रा में भी मन नहीं होता, क्योंकि विचार खो जाता है। लेकिन विचार तो खो जाता है, होश भी खो जाता है। समाधि में भी प्रगाढ़ निद्रा की घटना घटती है, मन खो जाता है; लेकिन होश पूरा होता है।

मन हमारे चिंतन का यंत्र है। और इसलिए जितना ही ज्यादा हम इस चिंतन के यंत्र का उपयोग करके जगत को देखते हैं, उतना ही जगत बंट जाता है। इस बंटाव में कई कारण हैं। हमारी भाषा चीजों को तोडकर देखती है, क्योंकि मन से निर्मित है। और मन भी चीजों को तोड़कर देखता है, क्योंकि भाषा के पार मन का कोई अस्तित्व नहीं है। यही मैं कह रहा था कि हम जहां भी कुछ देखते हैं, वहा तत्काल विपरीत का अनुभव शुरू हो जाता है। अगर हम सौंदर्य देखते हैं, तो कुरूप का बोध तत्काल शुरू हो जाता है। क्या आप ऐसा कर सकते हैं कि किसी चीज को सुंदर कहें बिना किसी चीज को असुंदर कहे?

बुद्ध मे महाकाश्यप ने पूछा है। महाकाश्यप एक दिन सुबह बुद्ध के पास पहुंचा है, उनका एक प्रमुख शिष्य है। सूरज उग रहा है, पक्षी गीत गा रहे हैं और महाकाश्यप बुद्ध से पूछता है कि यह जो चारों तरफ फैला है, क्या यह सुंदर नहीं है?

बुद्ध चुप रह जाते हैं। महाकाश्यप की तरफ देखते हैं, मुस्कुराते हैं, लेकिन बोलते नहीं। महाकाश्यप फिर पूछता है कि क्या मेरे प्रश्न में कोई असंगति है? आप उत्तर क्यों नहीं देते हैं?

बुद्ध फिर चारों तरफ देखते हैं, फिर महाकाश्यप की तरफ देखते हैं, मुस्कुराते हैं और चुप रह जाते हैं। महाकाश्यप तीसरी बार पूछता है कि इतना ही कह दें कि आप जवाब न देंगे।

बुद्ध फिर चारों तरफ देखते हैं और चुप रह जाते हैं। महाकाश्यप से वे तब कहते हैं कि तू जो पूछ रहा है, उससे तू मुझे बड़ी मुश्किल में डाल रहा है। मुश्किल में इसलिए डाल रहा है कि अगर मैं कहूं, यह सब सुंदर है, तो मैं किसको कुरूप कहूं? क्योंकि जब भी सुंदर का उपयोग करें, तो कुरूप की धारणा सुनिश्चित हो जाती है।

और बुद्ध ने कहा कि अब मुझे न कुछ कुरूप रहा है और न कुछ सुंदर रहा है, जो जैसा है, वैसा ही रह गया है। यह मन के बाहर से देखा गया जगत है। कांटा कांटा है, फूल फूल है, गुलाब गुलाब है, चंपा चंपा है। न कुछ सुंदर है, न कुछ कुरूप है। जो जैसा है, वैसा है।

बुद्ध ने कहा, जो जैसा है, वह मुझे दिखाई पड़ता है। यह सुंदर है या कुरूप, यह मैं कैसे कहूं? क्योंकि जिस मन से मैं बांटता था, वह खो गया है। मन जो मेरे पास था, जिससे मैं तौलता था, वह खो गया है।

समझें, एक तराजू है हमारे पास; उससे हम तौल लेते हैं, कौन-सी चीज वजनी है, कौन-सी चीज गैर-वजनी है। तराजू खो गया। फिर कोई मुझसे पूछता है कि यह ज्यादा वजनी है या कम वजनी है? मैं अपने हाथ पर रखकर थोड़ा अंदाज कर सकता हूं; हाथ से तराजू का काम ले सकता हूं। यद्यपि उतना सुनिश्चित तो नहीं होगा, तोला-तोला, रत्ती-रत्ती नहीं बता सकूंगा; लेकिन फिर भी कह सकता हूं कि यह सेरभर है, यह तीन पाव है! साफ तो नहीं होगा उतना।

लेकिन मेरा हाथ भी टूट गया, अब मेरे पास कोई भी उपाय नहीं है, जिससे मैं इसे नाप लूं। तो अब मैं आंख से ही देखकर अंदाज लगाऊंगा कि यह थोड़ा ज्यादा मालूम पड़ता है, यह थोड़ा कम मालूम पड़ता है। मात्रा देखकर कहूंगा। भूल अब ज्यादा होगी। लेकिन मेरी आंख भी चली गईं। अब मेरे पास कोई भी उपाय नहीं है कि मैं कहूं कि कौन ज्यादा है, कौन कम है! हाथ नहीं, तराजू नहीं, आंख नहीं। अब तो मैं यही कहूंगा कि यह यह है और वह वह है। लेकिन मेरे पास वह तौलने का यंत्र नहीं है, जिससे मैं तौल लेता,' बांट लेता, कौन कम है, कौन ज्यादा है।

बुद्ध ने कहा, जो है, वह है। सूरज उग रहा है। फूल खिल रहे हैं। पक्षी गीत गा रहे हैं। और मैं यहां बैठा सुन रहा हूं। लेकिन वह जो कह सकता था सुंदर और असुंदर, वह मौजूद नहीं है। वह खो गया है।

ध्यान का अर्थ है, मन का खो जाना। ध्यान का अर्थ है, भाषा का, शब्द का, विचार का भीतर से तिरोहित हो जाना।

इसका यह अर्थ भी नहीं है कि जो ध्यान में प्रवेश करेगा, वह बोल न सकेगा। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि जो ध्यान में प्रवेश करेगा, वह शब्द का उपयोग न कर सकेगा। सच तो यह है कि वही उपयोग कर सकेगा। लेकिन तब उपयोग उपयोग होगा; वह मालिक होगा। बुद्ध भी बोल रहे हैं; वे कह रहे हैं कि मेरा मन खो गया। शब्द का उपयोग हो रहा है, भाषा का उपयोग हो रहा है, लेकिन बस उपयोग की तरह। जैसे आदमी जब चलता है, तो पैर का उपयोग करता है? जब बैठ जाता है, तो पैर का उपयोग बंद कर देता है।

लेकिन आपका मन पागल है; आप नहीं भी काम लेना चाहते हैं उससे, वह काम करता ही चला जाता है। आप कहते हैं, चुप हो जाओ, वह चुप होता ही नहीं! आप कहते हैं, बंद करो, मुझे सोना है, और वह बंद नहीं होत। और आप कहते हैं, ठहर जाओ, यह बात मुझे सोचनी ही नहीं है, और वह सोचे चला जाता है। और आप बिलकुल बेबस हैं।

यह आपकी विवशता, यह आपकी बेचैनी, यह आपकी मजबूरी-आपकी आत्मा की मालकियत खो गई है और मन आपका मालिक है। यह मालकियत मिटे, मन नीचे उतरे, आप मालिक हो जाएं, तो आप जगत को दूसरे ढंग से देखना शुरू करेंगे। यह मैंने क्यों कहा? यह मैंने इसलिए कहा कि कृष्ण का यह जो सूत्र है, यह आपकी तभी समझ में आ सकेगा, जब आप मन और गैर-मन, दो ढंग से जगत को देखने की व्यवस्था को समझने में समर्थ हो जाएं।

कृष्ण कहते हैं, मैं ही सूर्यरूप हुआ तपता हूं और मैं ही वर्षा को भी आकर्षित करता हूं। मैं ही बरसात। हूं मैं ही वर्षा हूं।

इसे हम ऐसा समझें, आग को और जल को हम सदा विपरीत देखते हैं। अगर आग लगी हो, तो हम पानी से उसे बुझा देते हैं। और अगर हम पानी में आग लगाना चाहें, तो कोई उपाय नहीं है। आग और पानी हमारे लिए विपरीत हैं। आग की पानी से क्या मैत्री? पानी दुश्मन है।

पर कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं आग और मैं ही हूं जल; मैं ही भभकता हूं मैं ही बुझाता हूं; मैं ही हूं सूर्य, जो तपता है, और मैं ही हूं वह वर्षा, जो आकर्षित होती है सूर्य से।

अगर हम मन का हिसाब छोड़ दें और जरा अस्तित्व को देखें, तो पता चलेगा, सूर्य ही तो खींचता है सागर से पानी को, सूर्य ही तो बनाता है बादलों को, सूर्य ही तो बरसाता है। तो आग और पानी में जो वैमनस्य हमें दिखाई पड़ता है, वह कहीं न कहीं हमारे मन के कारण ही होगा! वह वैमनस्य राम और रावण जैसा ही है। सूर्य के बिना पानी नहीं हो सकेगा। पानी के बिना सूर्य नहीं हो सकेगा। वे कहीं बहुत गहरे में संयुक्त और इकट्ठे हैं।

उनके संयुक्त होने की खबर वे देते हैं और कहते हैं, हे अर्जुन, मैं ही अमृत हूं और मैं ही मृत्यु।

दुनिया में ईश्वर के संबंध में जिन लोगों ने भी सोचा है, उनमें सिर्फ हिंदू दृष्टि ईश्वर के साथ मृत्यु को भी जोड़ती है, बाकी कोई भी नहीं जोड़ता है। पृथ्वी पर जितनी चिंतनाएं हैं, वे सभी कहती हैं कि ईश्वर जीवन है, लेकिन कोई भी यह कहने की हिम्मत नहीं करता कि ईश्वर मृत्यु भी है। उसका कारण है। वह जो हमारे मन का विभाजन है, उसमें हम कैसे दोनों कहें? कैसे? ईश्वर दोनों कैसे हो सकता है?

लेकिन ईश्वर दोनों है; क्योंकि जीवन दोनों है। हमारे तर्क में न आए, तो हमें तर्क छोड़कर देखना चाहिए। लेकिन हमारे तर्क के पीछे जीवन चलने को आबद्ध नहीं है। अगर हम पूछें किसी और से, तो वह कहेगा, ईश्वर जीवन है। लेकिन ईश्वर मृत्यु है, यह कहने में घबड़ाहट होगी उसे। क्योंकि मृत्यु को हम सोचते हैं, वह जीवन के विपरीत है। और जीवन को हम अच्छा और मृत्यु को बुरा समझते हैं।

इसलिए मित्र के लिए हम जीवन की प्रार्थना करते हैं, और शत्रु के लिए मृत्यु की प्रार्थना करते हैं। चाहते हैं मित्र जीए, और चाहते हैं शत्रु मर जाए। लेकिन हमें पता नहीं; मर तो वही सकता है, जो जीएगा। और हमें यह भी पता नहीं कि जो जीएगा, उसे मरना ही पड़ेगा। तो जब हम किसी की मृत्यु की प्रार्थना करते हैं, तब हम उसके जीवन की भी प्रार्थना कर रहे हैं। और जब हम किसी के जीवन के लिए शुभकामना करते हैं, तब हम मृत्यु की भी शुभकामना कर रहे हैं। क्योंकि जीवन बिना मृत्यु के हो नहीं सकता है, वे एक ही चीज के दो छोर हैं।

जीवन और मृत्यु बड़े विपरीत छोर हैं। हम सबको ऐसा अब तक लगता रहा होगा कि जीवन को जो समाप्त करती है, वह मृत्यु है। लेकिन वह दृष्टि गलत है। जीवन को जो पूर्ण करती है, वह मृत्यु है। जीवन मृत्यु में जाकर अपने चरम शिखर को छूता है।

इसलिए भारत ने जवानी को बहुत मूल्य नहीं दिया, वार्धक्य को मूल्य दिया। पश्चिम जवानी को मूल्य देता है, वृद्ध को कोई मूल्य नहीं देता। वृद्ध होना अवमूल्यित हो जाना है, डिवेल्युएशन हो जाता है। आदमी का हुआ पश्चिम में कि डिवेल्युएशन हुआ, उसका अवमूल्यन हो गया। उसका जो भी मूल्य था जगत से, वह खो गया।

क्यों? क्योंकि अगर जीवन और मृत्यु विपरीत हैं, तो फिर जवान ही जीवन के शिखर को छूता है; का तो मौत की तरफ जाने लगा। इसे ऐसा समझें, अगर मृत्यु बुरी है, तो का अच्छा कैसे हो सकता है? क्योंकि के का मतलब है, जो मृत्यु में जाने लगा। वह मृत्यु का पथिक है; मृत्यु उसके करीब आने लगी। के का मतलब है, जिससे मृत्यु प्रकट होने लगी। तो फिर जवान शिखर है जीवन का। अगर मृत्यु जीवन के विपरीत है, तो जवानी जीवन होगी। फिर जवानी का मूल्य होगा, बूढ़े का अवमूल्यन हो जाएगा

पश्चिम ने मृत्यु को जीवन की समाप्ति समझा है, इसलिए बूढ़ा अनादृत हो गया। इस भाव के साथ बूढ़े का कोई आदर नहीं हो सकता। पूरब ने मृत्यु को जीवन की पूर्णता समझा है, इसलिए बूढ़ा आदृत हुआ। क्योंकि वही चरम शिखर है जीवन का, जवान नहीं, वृद्ध ही चरम शिखर है जीवन का। और मृत्यु का क्षण सिर्फ अज्ञान के कारण अवसाद का क्षण है, अगर समझ हो, तो उत्सव का क्षण भी हो सकता है।

च्वांगत्से की पत्नी मर गई है, सम्राट उसे दुख प्रकट करने आया है, और च्वांगत्से खंजड़ी बजाकर वृक्ष के नीचे बैठा गीत गा रहा है। सम्राट थोड़ा बेचैन हुआ। यह च्वांगत्से बड़ा फकीर था, तभी तो सम्राट खुद आया था चलकर कि उसकी पत्नी मर गई है तो उसे जाकर दो शब्द संवेदना के कह आए। लेकिन यहां संवेदना का कोई उपाय ही न था! यह आदमी खंजड़ी बजाकर गीत गा रहा था! संवेदना प्रकट करनी तो दूर रही.।

सम्राट तय करके आया था, जैसा कि सभी लोग तय करके जाते हैं, जब कोई मर जाता है, कि क्या कहना! कैसे शुरू करना! कठिन मामला भी है। किसी के घर कोई मर गया, कहा से शुरू करो! क्या कहो! भाषा मुश्किल में पड़ती है, साहस जवाब देता है।

सब तय करके आया था, यह-यह कहूंगा, ऐसे-ऐसे बात शुरू करूंगा, किसी तरह निपटाकर निकल आऊंगा। लेकिन यहां और मुश्किल बढ़ गई, क्योंकि च्वांगत्से खंजड़ी पीट रहा है। सम्राट बिलकुल उदास होकर आया था, तैयार होकर आया था।

स्वभावत:, दूसरे का जीवन हमें जब प्रफुल्लित नहीं करता, तो दूसरे की मृत्यु हमें दुखी क्यों करेगी! और अगर दूसरे का जीवन हमें प्रफुल्लित ही कर पाए, तो हम उस स्थिति को जान लेंगे, जहां फिर मृत्यु भी दुखी नहीं कर पाती।

सम्राट आया था उदास बाना पहनकर। देखा, तो रहा नहीं गया। उसने च्वांगत्से से कहा कि महानुभाव! दुख न मनाए, इतना ही काफी है। लेकिन खंजड़ी बजाए और गीत गाएं, यह जरा ज्यादा हो गया! दुख न मनाए, चलेगा, ठीक है। लेकिन यह जरा ज्यादा हो गया!

च्वांगत्से ने कहा, क्या कहते हैं! जिसके साथ मैंने जीवन के परम आनंद जाने, और जिसके साथ जीवन की लंबी यात्रा पूरी की, क्या उसके पूर्ण होने के क्षण में मैं गीत गाकर विदा भी न दे सकूं! मगर यह कुछ और ढंग है देखने का। यह मन से देखी गई बात नहीं है। अगर मन से देखी गई हो, तो मृत्यु दुख का कारण है, जन्म खुशी का कारण है। यह मन के कहीं पार से देखी गई बात है, जहां जन्म और मृत्यु विपरीत नहीं रह जाते, जहां दोनों ही एक ही जीवन की धारा के अंग हो जाते हैं। और जहां जीवन मृत्यु और जन्म के बीच की धारा बन जाता है, दोनों किनारे उसी के हो जाते हैं।

तो च्वांगत्से कहता है कि उसकी महापूर्णता के क्षण में मैं उसे गीत गाकर विदा न दे सकुं तो मुझसे ज्यादा अकृतज्ञ कौन होगा?

सम्राट की समझ में नहीं पड़ा होगा। आपकी भी समझ में पड़ना मुश्किल पड़ेगा। लेकिन जिनकी समझ में पड़ जाए, वे ही केवल समझदार हो पाते हैं।

प्रयोजन इतना ही है कि जिसे हम विपरीत कहते हैं, वह विपरीत नहीं है। विपरीत हमारी भ्रांति है। और जहां-जहां विरोध दिखे, वहा-वहा खोजेंगे, तो नीचे एकता की धारा मिल जाएगी। कांटा है, गुलाब है। फूल खिला है, कांटा लगा है। आप फूल तोड्ने जाते हैं, कांटा हाथ में छिद जाता है, लहू की धार फूट पड़ती है। स्वभावत:, आपको लगेगा कि फूल और कांटा दुश्मन हैं। कहां फूल, कहां कांटा! गए थे फूल तोड्ने, लग गया कांटा!

अगर आप किसी को कांटा भेंट करने जाएं, तो वह भी चौंकेगा कि आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया है! भेंट तो फूल किए जाते हैं। कभी देखें, गुलाब के काटे तोड़कर किसी को भेंट करने चले जाएं। फिर दुबारा वह आपको दिखाई भी नहीं पड़ेगा। आपसे बचकर निकलने लगेगा। जिस रास्ते आप गुजरते हैं, उस रास्ते नहीं गुजरेगा।

लेकिन फूल और काटे क्या दुश्मन हैं? तो फिर जरा गुलाब की शाखा में नीचे उतरें। शाखा में बहती हुई रसधार से पूछें कि यह फूल और यह कांटा क्या अलग- अलग जगह से आते हैं?

वही रस कांटा बनता है, वही रस फूल बनता है। ये दोनों अलग- अलग हमें दिखाई पड़ते होंगे, ये अपने में अलग- अलग नहीं हैं। और गुलाब के सब कांटे तोड़ डालें, तो फूल भी उदास हो जाएंगे; क्योंकि भीतर की रसधार को चोट लगेगी। वही रसधार तो है। और जब

गुलाब के फूल तोड़ लिए जाते हैं, तो कांटे भी पीडा अनुभव करते हैं। क्योंकि वे तो संयुक्त हैं, अस्तित्व इकट्ठा है। मन बांटता है, फिर फूल अच्छे हो जाते हैं, काटे बुरे हो जाते हैं। फिर काटे को कोई भेंट नहीं दे सकता, फूल को ही भेंट देना पड़ता है। लेकिन अस्तित्व कांटे और फूल एक साथ उगाए चला जाता है। अस्तित्व एक साथ दोनों को जीवन दिए चला जाता है।

कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं अमृत, मैं ही मृत्यु हूं।

जब पहली बार भारतीय चिंतन की कुछ झलक भारत के बाहर फैलनी शुरू हुई, तो जो सबसे बड़ी हैरानी अनुभव होनी स्वाभाविक थी, वह यही थी। सबसे ज्यादा हैरान करने वाला पश्चिम में जो हमारा प्रतीक है, वह महादेव का, शिव का है। कभी आपने खयाल नहीं किया होगा; क्योंकि न हम देखते, न हम सोचते, न हम खोजते!

आपने देखा है, जगह-जगह सड़क के किनारे एक वृक्ष के नीचे शंकर का शिवलिंग रखा है। कभी आपने खयाल किया कि शंकर मृत्यु के देवता हैं, विध्वंस उनके हाथ में है। ब्रह्मा बनाता है, विष्णु सम्हालता है, शंकर विध्वंस में ले जाते हैं। शिव विध्वंस के देवता हैं! लेकिन जो शिवलिंग रखा है, वह फैलिक सिंबल है, वह जननेंद्रिय का सिंबल है, वह सृजन का प्रतीक है। वह जो शिवलिंग है, वह जन्म और जीवन का प्रतीक है। और शंकर देवता हैं विध्वंस के, उनके काम जो जिम्मा है, वह है मिटाने का।

बडी हैरानी, बड़े पागल लोग थे ये हिंदू! जब पहली दफा पश्चिम में शंकर का यह प्रतीक पहुंचा, तो उन्होंने कहा, ये कैसे लोग हैं! विध्वंस का देवता है, जिसे कि दुनिया को नष्ट करना है, और यह फैलिक सिंबल है! और यह जननेंद्रिय का सिंबल है, जीवन का प्रतीक; जहां से समस्त जीवन जन्मता है और विकसित होता है! यह किस प्रकार का प्रतीक है? यह प्रतीक होना ही नहीं ' चाहिए। यह प्रतीक शंकर के साथ मेल नहीं खाता।

खाता भी नहीं है। अगर हम भी सोचेंगे गणित से, तो मेल नहीं ! खाता। अगर विध्वंस का देवता है, तो कुछ विध्वंस की बात होनी चाहिए थी। यह तो जीवन है। जीवन का प्रतीक चुना है और विध्वंस का देवता है। कारण वही है।

कृष्ण कहते हैं, मैं ही अमृत और मैं ही मृत्यु हूं।

ये विपरीत प्रतीक हमें मालूम पड़ते हैं, लेकिन भारत ने सदा यह कोशिश की है कि विपरीत के भीतर जो एक धारा है, वह खयाल में आए। इसलिए जानकर विध्वंस के देवता के सामने सृजन का प्रतीक रखा है, जानकर, सोचकर, बहुत खोजकर। यही प्रतीक उनका प्रतीक हो सकता है। क्योंकि जिसे विध्वंस की अंतिम सीमा छूनी है, उसे जन्म के पहले क्षण में भी उपस्थित होना चाहिए। जिसे मृत्यु का रास्ता बनना है, उसे जन्म का भी द्वार बनना चाहिए। इसलिए दोनों विपरीत-मृत्यु उनका काम, जन्म उनका प्रतीक। यहां भी इतनी ही बात होती, तो भी आसान था, और भी कठिन सूत्र है।

कृष्ण कहते हैं, एवं सत और असत भी मैं ही हूं।

सत का अर्थ है, जो है, और असत का अर्थ है, जो नहीं है। जो है, वह तो मैं हूं ही; जो नहीं है, वह भी मैं ही हूं! यह आखिरी कंट्राडिक्यान है। तर्क में, चिंतन में, विचार की पद्धति में, जो है और जो नहीं है, यह सबसे बड़ा विरोध है। होना और न होना, यह सबसे बड़ी खाई है। इससे बड़ी कोई भी खाई नहीं हो सकती।

तो कोई मान भी ले सकता है, थोड़ा कल्पना को फैलाए तो मान ले सकता है कि जन्म और मृत्यु जुड़े हैं-चलो एग्रीड; माना। कोई यह भी मान ले सकता है- थोड़ी हिम्मत जुटाए, थोड़ी आदतों को तोड़े-कि चलो माना कि राम और रावण की कथा भी, एक गिर जाए, तो नहीं हो सकेगी; किसी तरह दोनों जुड़े हैं, माना। यह भी माना जा सकता है कि फूल और कांटा जुड़े हैं। लेकिन यह तो बिलकुल नहीं माना जा सकता कि जो है, वह उससे जुड़ा है, जो है ही नहीं! क्योंकि जो है ही नहीं, उससे जोड़ कैसा? जोड़ का तो मतलब ही होता है कि दो चीजें हों, तो जोड़ हो सकता है। जो नहीं है, उससे कैसा जोड़?

यह आत्यंतिक खाई है, होने में और न होने में। न होने और होने के बीच तो हमारा मन बिलकुल ही इनकार कर देगा कि जोड़ बन नहीं सकता। खींच-तानकर राम और रावण के बीच बना लें, खींच-तानकर शत्रु और मित्र के बीच बना लें, खींच-तानकर जन्म और मृत्यु के बीच बना लें; सुंदर-असुंदर के बीच बना लें, प्रकाश-अंधकार के बीच बना लें, लेकिन जो है ही नहीं, दैट व्हिच इज नाट, एंड दैट व्हिच इज, इन दोनों के बीच क्या जोड़ है? और जोड बनेगा कैसे?

दो किनारों के बीच जोड़ हो सकता है, क्योंकि दोनों किनारे हैं। लेकिन एक किनारा है और दूसरा किनारा नहीं है, इनके बीच जोड़ कैसे होगा?

यह सर्वाधिक कठिन मालूम पडेगा, और मन के लिए सबसे बड़ी चोट भी है। लेकिन इसे समझें, तो समझ में आ सकेगा। इसे हम दो - तीन प्रकार से समझने की कोशिश करें। थोड़ा कठिन है, लेकिन असंभव नहीं कि खयाल में झलक न आ जाए। और खयाल में झलक ही आ सकती है, अनुभव तो खयाल में नहीं आ सकता। झलक आ जाए, तो अनुभव की तरफ कदम बढ़ाए जा सकते हैं। थोड़ी मेहनत लें।

एक वृक्ष है; कल नहीं था, आज है, कल फिर नहीं हो जाएगा। तो होना और न होना किसी न किसी तरह जुड़े होने चाहिए। वृक्ष कल नहीं था, आज है, कल फिर नहीं हो जाएगा। तो जो नहीं था, वह हो सका, जो है, वह कल नहीं हो जाएगा। आप कल नहीं थे, आज हैं, कल फिर नहीं हो जाएंगे। नहीं से आते हैं, नहीं को लौट जाते हैं। तो वह जो बीच में थोड़ी देर के लिए होना है, वह दो नहीं के बीच में है।

अब इसे हम ऐसा समझें कि दो नहीं किनारे हैं और होना बीच की नदी है। दो नहीं किनारे हैं, कल मैं नहीं था, कल फिर नहीं हो जाऊंगा, आज हूं। आज मेरे होने की गंगा बहती है। दो मेरे किनारे है'। कल भी " नहीं था, कल फिर "नहीं रहूंगा। यह न

मेरे दो किनारे हैं, और मेरा होना बीच की धारा है। उन दो के बिना मैं नहीं हो सकूंगा। वे दोनों मेरे तरफ मुझे घेरे हुए हैं।

सुबह थी, सांझ हो गई; रात आ गई, फिर सुबह आएगी। कभी आपने देखा, हर दिन को दोनों तरफ दो रातें घेरे हुए हैं। हर रात को दोनों तरफ दो दिन घेरे हुए हैं। विपरीत किनारा बना हुआ है। जो भी है, वह दोनों ओर नहीं से घिरा है। और जो भी नहीं है, वह भी दोनों ओर है से घिरा है।

होना और न होना इतने विपरीत नहीं हैं, क्योंकि एक-दूसरे में हम बदलते हुए देखते हैं। जो आदमी था, वह अब नहीं हो गया। इसका मतलब हुआ कि जो था, वह नहीं है में प्रवेश कर जाता है, लिक्विड है, बह सकता है, ठोस विभाजन नहीं मालूम होता।

आदमी जवान है, फिर यही जवान का हो जाता है। आप बता सकते हैं, कब का हो जाता है? कौन-सी तिथि में, कौन-सी तारीख में, कौन-सी समय की सीमा पर जवानी चली जाती है और बुढ़ापा आ जाता है?

नहीं बता पाएंगे। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि बुढापा और जवानी दो चीजें नहीं हैं, तरल हैं, लिक्विड हैं, एक-दूसरे में बह जाती हैं। पता ही नहीं चलता, कब जवान का हो गया। कब तक का जवान था, यह भी पता नहीं चलता। कब बच्चा जवान होता है, यह भी पता नहीं चलता!

तो जवानी या बुढ़ापा विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन एक-दूसरे में बह जाते हैं, एक-दूसरे में डोलते रहते हैं। होना और न होना भी इसी तरह एक-दूसरे में डोलता रहता है। अभी बीज है, वृक्ष नहीं है। यह बीज अचानक कल वृक्ष के होने में प्रकट हो जाएगा। तो होना, न होना; अस्तित्व, अनस्तित्व; सत और असत-ये विपरीत हमें दिखाई पड़ते हैं, विपरीत नहीं हैं।

इसे हम और एक तरह से देखें।

जो भी चीज है म उसकी संभावना है कि वह नहीं हो जाएगी। ऐसी कोई चीज आप जानते हैं, जो नहीं न हो जाए? जो भी है, वह नहीं हो सकती है। दैट व्हिव इज, कैन बी दैट व्हिच इज नाट। इज, कैन बी इज नाट।

(भीड़ में से कोई खड़ा होकर कुछ चिल्लाकर कहता है। भगवान श्री हंसते हुए उसे समझाते हैं और साथ ही सभी लोगों को शांत रहने को कहते हैं। और अपनी बात जारी रखते हैं।)

छोड़िए! अपन अपनी बात शुरू करें।

जो नहीं है और जो है, उन दोनों के बीच कोई अलंध्य खाई नहीं है। वे दोनों एक के ही दो रूप हैं। जो नहीं है, वह है में प्रवेश कर सकता है, जो है, वह नहीं है में प्रवेश कर सकता है। लेकिन हम बांटकर देखते हैं, इससे कठिनाई हो जाती है।

आप शांत बैठे हैं; एक मित्र अशांत हो गए; इतनी देर तक शांत थे। शांति अशांति में चली गई। फिर शांत हो जाएंगे। क्योंकि कितनी देर अशांत रहेंगे? जब शांति अशांति बन सकती है, तो अशांति फिर शांति बन जाएगी। इतनी देर मौन से बैठे थे, क्रोध में आ गए। मौन क्रोध बन सकता है। कितनी देर रहेगा? जब मौन क्रोध बन सकता है, तो क्रोध फिर मौन बन जाएगा। लेकिन हम विपरीत में एकता को नहीं देख पाते हैं, उससे अड़चन हो जाती है, उससे कठिनाई हो जाती है। आप भी शांत बैठे हैं, आपको खयाल भी नहीं आ सकता कि आप भी इसी तरह अशांत हो सकते हैं! बिलकुल हो सकते हैं। क्योंकि अब तक वे भी आप ही जैसे बैठे हुए थे।

वह जो विपरीत है, उसमें हम डोल सकते हैं कभी भी, किसी भी क्षण में, किसी भी क्षण में। और मन हमारा बांटकर देखता है। उनके मन को बंटकर दिखाई पड़ गया कि यह हिंदी है, यह अंग्रेजी है, हिंदी होनी चाहिए, अंग्रेजी नहीं होनी चाहिए! बांटकर जहां भी हम देखते हैं, वहा विपरीत दिखाई पडना शुरू हो जाता है।

अब मजा यह है कि अगर हम भाषाओं के भीतर भी थोड़ा प्रवेश ' करें, तो हम पाएंगे कि एक ही स्वर गूंजता है। सारी दुनिया की भाषाओं में अगर हम थोड़ा-सा गहरे उतरें, तो लगता है कि कोई एक ही भाषा बहुत-बहुत ढंग से बोली गई है। और अंग्रेजी और हिंदी तो भीतर इतनी गहरी जुड़ी हैं कि जिसकी हमें कल्पना नहीं हो सकती, सिस्टर लैंग्वेजेज हैं। संस्कृत से दोनों का जन्म हुआ है, अंग्रेजी का भी और हिंदी का भी। और हिंदी जितनी संस्कृत के करीब है, उतनी ही करीब अंग्रेजी भी है। अगर हम दोनों में थोड़ा प्रवेश करें, तो हमें पता लगेगा कि दोनों के बीच वैपरीत्य नहीं है, एक धारा बह रही है।

हिंदी में आप मां कहते हैं, संस्कृत में मातृ कहते हैं, लैटिन और ग्रीक में मैटर हो जाता है, अंग्रेजी में मदर हो जाता है। वह मदर मातृ का ही रूप है, जैसे मां और माता मातृ का ही रूप है। संस्कृत में पितृ कहते हैं, पितर कहते हैं, हिंदी में पिता कहते हैं; अंग्रेजी में वह फादर हो जाता है, पीटर, पैटर और फिर फादर हो जाता है।

लेकिन अगर कोई पिता कहे, तो हमें लगेगा, हमारी भाषा बोली; और कोई फादर कहे, तो लगेगा, कोई विदेशी भाषा बोल दी। नासमझी है। पिता और फादर जिस शब्द से पैदा हुए हैं, वह एक है। ये फासले कितने ही हो जाएं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता है। संस्कृत में जो मूल रूप हैं, वे सारी दुनिया की भाषाओं में फैल गए हैं।

इसलिए संस्कृत किसी की भाषा नहीं है, संस्कृत सब भाषाओं की भाषा है। लेकिन जल्दी हमारा मन करता है और कठिनाइयां खड़ी कर लेता है। मन बांटकर देखता है और बंटकर मुसीबत में पड़ जाता है।

कृष्ण कहते हैं, सत भी मैं हूं, असत भी मैं हूं। जो है, वह भी मैं ही हू, और जो नहीं है; वह भी मैं ही हू। यह सबसे कठीन कोटि है, सबसे कठिन कैटेगरी है, क्योंकि नहीं है को हम सोच भी नहीं पाते, लेकिन प्रतिपल घटना घट रही है। जो तारा कल नहीं था, वह आज निर्मित हो गया है।

वैज्ञानिक कहते हैं, रोज नए तारे निर्मित होते हैं। और जो तारा ' कल था, वह आज खो गया है।

आप रात को जब आकाश में तारे देखते हैं, तो आप इस भ्रांति में न रहें कि जो तारे आप देखते हैं, सब वहां हैं। क्योंकि तारों से प्रकाश आने में करोड़ों-करोड़ों वर्ष लग जाते हैं, अरबों वर्ष भी लग जाते हैं। और यह हो सकता है कि वह तारा कभी का मिट चुका हो। लेकिन जब वह था, तब उसका प्रकाश चला था, और अब आज की रात आपको वह दिखाई पड़ता है, वह प्रकाश। हो सकता है, करोड़ वर्ष पहले वह प्रकाश चला हो, वह तारा कभी का मिट गया। लेकिन उसका प्रकाश पृथ्वी तक आने में समय लगता है। वह आज की रात आ पाया। आज की रात वह है नहीं। एक तो पक्की बात है कि उस जगह तो है ही नहीं, जहां से प्रकाश चला था। जहां आपको दिखाई पड़ेगा, वहां तो नहीं है। और दूसरी बात भी संभव है कि वह मिट ही गया हो, अब कहीं हो ही नहीं। फिर भी दिखाई पड़ रहा है।

प्रतिपल चीजें बन रही हैं और मिट रही हैं। बनना और मिटना एक साथ चल रहा है। अगर हम और गौर से देखें, तो बनना और मिटना दो अलग-अलग समय में नहीं घटते, एक ही समय में घटते हैं। जब मैं जवान हो रहा हूं तभी मैं का भी हो रहा हूं। इसीलिए तो पता नहीं चलता कि किस दिन का हो गया। जब मैं जी रहा हूं तभी मैं मर भी रहा हूं। इसीलिए तो पता नहीं चलता कि

मृत्यु कहां से आ गई। यह मृत्यु कहीं बाहर से नहीं आती। जब मैं जी रहा हूं तभी मैं मर भी रहा हूं।

जब आप एक मकान बना रहे हैं, तभी उसका गिरना भी शुरू हो गया। लेकिन यह दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि सौ साल बाद गिरेगा, हजार साल बाद गिरेगा। गिरने की प्रक्रिया हजार साल में पूरी होगी, लेकिन गिरना शुरू हो गया इसी क्षण। बच्चा पैदा हुआ और मरना शुरू हो गया। सत्तर साल बाद पूरी होगी यह प्रक्रिया। सत्तर साल बाद आपको पता लगेगा, चाहे आप बचेंगे भी नहीं तब तक। दूसरों को पता लगेगा कि यह आदमी जो सत्तर साल पहले पैदा हुआ था, आज मर गया। लेकिन सत्तर साल पहले जिस दिन जन्मा था, उसी दिन मौत शुरू हो गई, मरना शुरू हो गया।

हम रोज जी भी रहे हैं और मर भी रहे हैं। इसका मतलब कि हम रोज हो भी रहे हैं और नहीं भी हो रहे हैं, बन भी रहे हैं और मिट भी रहे हैं। यह एक साथ चल रहा है। ये हमारे दो पैर हैं, बायां और दायां। जब बायां चलता है, तो दायां रुका मालूम पड़ता है, जब दायां उठता है, तो बायां रुका मालूम पड़ता है। लेकिन बायां इसलिए रुकता है कि दायां उठ जाए, दायां इसलिए रुकता है कि बायां उठ जाए। जब आप लगते हैं कि जवान हैं, तब बुढ़ापा उठ रहा है। जब आप लगते हैं कि जी रहे हैं, तब मौत भी कदम उठा रही है। वे दोनों साथ चल रहे हैं। होना, न होना, एक ही अस्तित्व के हिस्से हैं।

कृष्ण कहते हैं, दोनों मैं हूं।

परंतु जो तीनों वेदों में विधान किए हुए सकाम कर्मों को करने वाले, सोमरस को पीने वाले एवं पापों से पवित्र हुए पुरुष, मेरे को यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्यों के फलरूप इंद्रलोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं।

कृष्ण कहते हैं, लेकिन.।

इस लेकिन शब्द पर खयाल रखना-परंतु। यह तो उन्होंने जो बात कही, आत्यंतिक है, अल्टिमेट है, आखिरी है। लेकिन लोग, वेदों में जो कहा है, उन कर्मों को, यज्ञों को, हवनों को, क्रियाकांडों को करके, अपने को पापों से मुक्त करके स्वर्ग जाने की कामना करते हैं, सुख को पाने की कामना करते हैं।

यह परंतु बहुत महत्वपूर्ण है। इसका मतलब यह हुआ कि ऐसे लोग अभी भी स्वर्ग और नर्क को बांटते हैं। इसका अर्थ हुआ, ऐसे लोग अभी भी सुख और दुख को बांटते हैं। ऐसे लोग अभी भी सुख चाहते हैं, दुख से बचना चाहते हैं। ऐसे लोग अभी भी मन से ही जी रहे हैं।

सकाम का अर्थ है, मन से जीना, अभी कामना मिटी नहीं, अभी कामना बाकी है। अगर इस जगत की कामना से ऊब गए हैं, तो उस जगत की कामना शुरू है, अगर यहां मकान नहीं बनाना, तो स्वर्ग में कोई मकान बन जाए, इसकी चेष्टा करनी है, अगर यहां धन नहीं जुटाना, तो कोई पुण्यों की संपदा इकट्ठी हो जाए, इसका प्रयास करना है। लेकिन अभी उनकी भाषा नहीं बदली, अभी उनका सोचने का ढंग नहीं बदला; अभी उनकी दृष्टि नहीं बदली, अभी उनका ढाचा वही है।

फिर भी, ऐसे लोग अपने को पापों से छुड़ाते हैं; पुण्य करते हैं; बुरा नहीं करते, भला करते हैं, वेदविहित कर्म करते हैं; पूजा, यज्ञ, हवन करते हैं। इन पुण्यों के फलस्वरूप इंद्रलोक को प्राप्त होकर वे स्वर्ग में दिव्य देवताओं के सुखों को भोगते हैं, लेकिन मुझे उपलब्ध नहीं होते।

मुझे तो वही उपलब्ध होगा, जिसे स्वर्ग और नर्क में भेद न रहा। मुझे तो वही उपलब्ध होगा, जिसे पुण्य और पाप में भेद न रहा। मुझे तो वही उपलब्ध होगा, जिसे मृत्यु और जीवन एक हुए। मुझे तो वही उपलब्ध होगा, जो चुनाव ही नहीं करता। जो नहीं कहता, यह छोड़ूंगा, वह पाऊंगा, यह नहीं चाहिए वह चाहिए, ऐसा जो चुनाव ही नहीं करता, वन हू हैज बिकम च्वाइसलेस, जो बिलकुल चुनावरहित हो गया, जिसके मन में कोई विकल्प न रहा। जो कहता है, जो भी है, राजी हूं। दुख है, तो दुख से राजी हूं; सुख नहीं चाहिए। सुख है, तो सुख से राजी हूं; सुख के त्याग की भी चिंता नहीं करता हूं। जीवन है, तो धन्यवाद। और मृत्यु आए, तो स्वागत। और नर्क में डाल दो, तो भी तुम्हीं को देखता रहूंगा; और स्वर्ग में भेज दो, तो भी तुम्हीं मेरे सुख हो।

जो ऐसा हुआ, वह तो मुझे उपलब्ध होता है। लेकिन इसके पहले वे कहते हैं, परंतु ऐसे लोग भी हैं, जो शायद इतनी निर्द्वंद्व, इतनी द्वंद्वातीत, इतनी अद्वैत की दृष्टि को न पा सकें, वे लोग भी इंद्रलोक को तो पा ही सकते हैं, स्वर्ग को तो पा ही सकते हैं।

स्वर्ग का मतलब है, जो कम बुरा करेगा, कम पाप करेगा, कम दूसरों को दुख पहुंचाएगा, वह ज्यादा सुख पा सकता है-आनंद नहीं, ध्यान रखना! इसके भेद को ठीक से समझ लेना जरूरी होगा; आनंद नहीं, सुख पाएगा।

आनंद है सुख और दुख दोनों के पार। आनंद वह पाता है, जिसके सुख और दुख दोनों की दृष्टि खो जाती है। आनंद तीसरी बात है। आनंद सुख नहीं है। जैसा कि आमतौर से लोग समझते हैं कि आनंद सुख का ही परम रूप है। बिलकुल नहीं है। आनंद का सुख से उतना ही लेना-देना है, जितना दुख से। आनंद न दुख है, और न आनंद सुख है। इसलिए सुख दुख के विपरीत है, दुख सुख के विपरीत है। जिसको विपरीतता दिखाई पड़ रही है, वह सुख दुख में घूमेगा।

कृष्ण अगले सूत्र में कहते हैं कि यह स्वर्ग भी मिल जाए, तो फिर लौटकर आना पड़ेगा। क्योंकि फिर दुख में आना पड़ेगा। जो सुख में गया है, उसे दुख में आना ही पड़ेगा। द्वंद्व में जिसने विभाजन किया है, वह एक से दूसरे में जाएगा। जिसने जन्म को पकड़ा, उसे मरना ही पड़ेगा। जिसने सुख को पकड़ा, पकड़ते ही दुख में जाना शुरू हो गया।

कृष्ण कहते हैं, उसे तो लौट आना पडेगा। उसने अच्छे कर्म किए, उसने सदभाव रखे, उसने धार्मिक जीवन जीया, वह स्वर्ग तक पहुंच सकता है। सुख के आखिरी छोर को छू लेगा, लेकिन छूते ही लौटना शुरू हो जाएगा।

जैसे घड़ी का पेंडुलम जाता है बाएं तरफ, आखिरी छोर पर पहुंच जाता है। पहुंचते से ही वापस यात्रा शुरू हो जाती है। दाएं तरफ जाने लगता है।

ठीक ऐसे ही सुख का आखिरी बिंदु आ जाएगा। फिर यात्रा शुरू हो जाएगी वापसी। क्योंकि द्वंद्व में कोई मुक्ति नहीं है। वह वापस लौट आएगा। उसके कर्म चुक जाएंगे और वह वापस जमीन पर खड़ा हो जाएगा। मुझे नहीं पा सकेगा।

मुझे तो वही पा सकेगा, जो सत में और असत में, स्वर्ग में और नर्क में, पाप में और पुण्य में, दोनों में ही बिना किसी भेद- भाव के मुझ को ही देख लेता है। फिर कोई उपाय न रहा, फिर टूट गया पेंडुलम। फिर उसकी कोई यात्रा न रही, कोई मोमेंटम न रहा।

कृष्ण का सारा संदेश इस सूत्र में है कि द्वंद्व न दिखाई पड़े। लेकिन मन है, तो द्वंद्व दिखाई पड़ेगा ही। तो इस सूत्र का मतलब हुआ, मन न रहे; नो माइंड, अ-मन पैदा हो जाए। तो ही हम जीवन के ऐक्य को देख पा सकते हैं। ऐक्य ही मुक्ति है और ऐक्य ही आनंद।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
वासना और उपासना— अध्याय—9 प्रवचन—नौवां
सूत्रः

ते तं भुक्त्वा स्वर्गोकं विशलं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशान्ति।
एवं त्रयींधर्ममच्छुयन्ना गतरगतं काक्कामा लभन्ते।।21।।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभिस्त्युकृतानां योग्स्सेमं वहाम्यहम्।।22।।
और वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्ग के साधनरूप तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म के शरण हुए और भोगों की कामना वाले पुरूष बारंबार जाने-आने को प्राप्त होते हैं।

और जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरंतर चिंतन करते हुए निष्काम भाव से उपासते है, उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थिति वाले पुरुषों का योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूं।

मन बाहर तो बांटता ही है, भीतर भी बांटता है। मन से बाहर जो भी हम जानते हैं, वह तो खंड-खंड हो ही जाता है, मन के ही कारण हम भीतर भी खंड-खंड हो जाते हैं। मन के इस दूसरे पहलू को भी समझ लेना जरूरी है।

मन के साथ कभी भी कोई व्यक्ति एक व्यक्ति नहीं होता, बल्कि एक भीड़ होता है। भीतर भी मन एक नहीं है, अनेक है। सदा से आदमी ऐसा समझता रहा है कि उसके भीतर एक मन है। वैसा सत्य नहीं है। आपके भीतर बहुतेरे मन हैं, बहु-मन हैं। अब मनोविज्ञान स्वीकार करता है कि मैन इज पोलीसाइकिक; बहुत मन हैं भीतर, एक मन नहीं है। ये बहुत मन भी इसीलिए हैं कि मन जहां भी चरण रखता है, वहीं खंड हो जाते हैं।

समझें, भीतर मन की इस खंड-खंड हो गई स्थिति को भी समझना जरूरी है।

आपने शायद ही कभी ऐसी कोई मन की दशा पाई हो, जिसके विपरीत स्वर आपके भीतर मौजूद न रहा हो। किसी को आपने किया हो प्रेम और साथ ही उसे घृणा न की हो, ऐसा अर्संभव है। किसी को की हो श्रद्धा, और साथ ही भीतर मन का एक हिस्सा अश्रद्धा से न भरा रहा हो, असंभव है। चाहा हो किसी को, और साथ ही चाह से बचना भी न चाहा हो, ऐसा नहीं होगा।

मन जब भी कुछ तय करता है, तो द्वंद्व में ही तय करता है; उसका विपरीत स्वर भी भीतर मौजूद होता है। जिसको आप मित्र मानते हैं, कहीं किसी मन की गहराई में उसे आप शत्रु भी मानते हैं। इसीलिए तो मित्रता इतनी जल्दी शत्रुता बन जाती है! अन्यथा जिस आदमी को मैं पचास साल तक मित्र समझा हूं एक क्षण में शत्रु कैसे हो जाएगा? कोई उपाय नहीं है; कोई रासायनिक प्रक्रिया नहीं है कि पचास साल की मित्रता एक क्षण में, एक शब्द से शत्रुता बन जाए। बन जाती है लेकिन। गहरे खोजेंगे, तो पाएंगे, ऊपर मित्रता बन रही थी, भीतर शत्रुता भी पल रही थी। इसलिए एक क्षण में मित्रता नीचे चली गई, शत्रुता ऊपर आ गई। यह सिर्फ पलड़ा भारी हो गया। जब हम एक पलड़े पर तराजू के मित्रता रख रहे थे, तभी हम शत्रुता भी दूसरे पलड़े पर रखे जाते थे। यह सिर्फ समय और संयोग की बात है कि जिस दिन भी पलड़ा भारी हो जाएगा शत्रुता का, उसी दिन शत्रुता प्रकट हो जाएगी। लेकिन मन से कोई आदमी किसी को अनन्य भाव से मित्र नहीं बना सकता है।

मन, एक तरह की समझें डेमोक्रेसी है, एक लोकतंत्र है। मन पार्लियामेंटरी है। उसमें जो भी निर्णय होते हैं, वे बहुमत से होते हैं, लेकिन अल्पमत विरोध में खड़ा ही रहता है। और भरोसा नहीं है कि जो सदस्य आज पक्ष में मत दिया है, वह कल भी देगा। मन के भीतर भी दल-बदलू सदस्य हैं। वे दल बदल लेते हैं।

तो हम जो भी निर्णय मन से लेते हैं, वह मेजर माइंड का होता है। हमारे भीतर जो मन का बहुमत होता है, वह कहता है, ठीक। लेकिन अल्पमत प्रतीक्षा करता है कि कितनी देर तक ठीक! समय आएगा, स्थिति बदलेगी, और हम तोड़ लेंगे। इसलिए हमारा मन कभी भी एक स्वर उपलब्ध नहीं कर पाता। कर भी नहीं सकता है। मन के काम करने का ढंग ही द्वंद्व है।

कीर्कगार्ड ने कहा है-और थोड़े से लोग जो मन की गहराइयों में उतरे हैं, उनमें कीर्कगार्ड एक है-उसने कहा है कि मन के साथ निरंतर ही एक डायलाग है, एक वार्तालाप है, जो मन अपने को ही दो हिस्सों में तोड़कर चलाए चला जाता है।

जब आप सोचते हैं कुछ, तो आपका मन दो हिस्सों में टूट जाता है; एक पक्ष में बोलता है, एक विपक्ष में बोलता है। समस्त विचार, मन का दो हिस्सों में टूटकर वार्तालाप है। एक खेल है, जो आप भीतर खेलते हैं; इस तरफ से भी, उस तरफ से भी।

यह जो मन का भीतर भी दो हिस्सों में टूट जाना है और बाहर भी जगत दो हिस्सों में टूट जाता है, इसके परिणाम क्या होते हैं? पहला परिणाम तो यह होता है कि जगत में हमें उस एक के दर्शन नहीं हो पाते, जो कि सबके भीतर छिपा है। और जब भीतर भी द्वंद्व हो जाता है, तो भीतर भी उस एक के दर्शन नहीं हो पाते हैं, जो मौजूद है।

तो चाहे कोई बाहर उस एक को देख ले, शर्त एक ही होगी कि मन को छोड़कर देखे; और चाहे कोई भीतर उस एक को देख ले, शर्त फिर भी वही होगी कि मन को छोड़कर देखे। और जब भीतर का एक दिखाई पड़ता है, तो बाहर और भीतर का द्वंद्व भी गिर जाता है। क्योंकि वह भी दो की भाषा है। भीतर और बाहर, वह भी दो की भाषा है। जब भीतर का एक दिखाई पड़ता है, तो भीतर और बाहर दोनों खो जाते हैं, एक ही रह जाता है। जब बाहर का एक दिखाई पड़ता है, तब भी एक ही रह जाता है, भीतर और बाहर का द्वंद्व खो जाता है।

इसे अगर हम संक्षिप्त में कहें, तो ऐसे, कि समस्त धर्म की यात्रा मन को खोने की यात्रा है, और समस्त संसार की यात्रा मन को शक्तिशाली करने की यात्रा है। संसार का अर्थ है, मन को शक्तिशाली किए जाना। धर्म का अर्थ है, मन को विसर्जित किए जाना। धर्म का अर्थ है, ऐसी चेतना को पा लेना, जहां मन न हो। और संसार का अर्थ है, ऐसे मन को पा लेना, जहां चेतना न हो, मन ही मन रह जाए, आत्मा बिलकुल पता न चले।

ऐसा हो जाता है। कभी किसी नदी पर देखा हो, पत्तों की बाढ आ जाती है, काई छा जाती है। सारी नदी ढंक जाती है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। नीचे के जल का कण भी दिखाई नहीं पड़ता। सारी नदी की छाती पर पत्ते फैल जाते हैं, नदी भीतर छिप जाती हैं।

ठीक ऐसे ही, मन इतना फैल जाता है-फैल सकता है-कि वह जो आत्मा है, वह बिलकुल दिखाई पड़नी बंद हो जाए। नदी बिलकुल मौजूद है। एक पत्ते का जरा-सा फासला है। पत्ते की मोटाई ही कितनी है? लेकिन फिर भी दिखाई नहीं पड़ती, ओझल हो जाती है।

संसार का अर्थ है, मन ही मन रह जाए और आत्मा का बिलकुल पता न चले।

आपको अपनी आत्मा का पता चलता है?

ऐसे ही मन को समझाने के लिए मत कह लेना कि हौ, पता चलता है। आत्मा का पता चलना आसान नहीं है। क्योंकि हमारी सारी चेष्टा तो मन को मजबूत करने की है। ये जो मन के पत्ते हैं, इनको ही तो हम शक्ति दिए चले जाते हैं। और फिर इन्हीं को हम फैलाए चले जाते हैं। फिर भी हम मानते हैं कि आत्मा है। वह मानना भी हमारे मन का एक विचार है। वह भी मन का एक पत्ता है।

हम मानते हैं कि आत्मा है। वह भी मन के ही कारण है। इसलिए वह मानना भी हमारा कभी पूरा नहीं हो पाता। जरा-सी असुविधा आती है और शक पैदा हो जाता है कि है भी, या नहीं है।

आज एक मित्र ने मुझे पत्र लिखा है। वे आई सी एस रिटायर्ड आफिसर हैं, पढ़े-लिखे आदमी हैं, बडे भक्त हैं। इधर कैंसर हो गया। इधर कैंसर हो गया, चिकित्सकों ने इनकार कर दिया, अब कोई इलाज नहीं है, अब मरना ही होगा। बस, समय की प्रतीक्षा है। वे आज, कल, कभी भी मर सकते हैं। महीने दो महीने लग सकते हैं।

मुझे पत्र लिखा है कि मेरी सब भक्ति खो गई, मुझे अब किसी ईश्वर पर कोई भरोसा नहीं रहा।

कैंसर शरीर पर ही नहीं फैला अब, उसका मतलब हुआ, आत्मा तक फैल गया। यह कैंसर शरीर की बीमारी न रही अब, यह आत्मा तक फैल गई।

लिखा है कि पहले मुझे भरोसा था।

और मैं जानता हूं कि उनको भरोसा था। और आज से दो साल पहले जब मैंने उनसे कहा था कि यह भरोसा बहुत कीमती नहीं है, थोड़ी-सी चीज इसे तोड़ देगी, क्योंकि यह मन का है, तो वे मानने को राजी न हुए थे, जिद्द की थी, नाराज हुए थे; कि आप मुझ पर भरोसा क्यों नहीं करते जब मैं कहता हूं मुझे भरोसा है?

मैंने उनसे कहा था, मुझे कोई अड़चन नहीं है भरोसा कर लेने में। मेरा कोई हर्ज और कोई लाभ नहीं है। लेकिन फिर भी आपसे मैं कहता हूं कि यह भरोसा मन का है। यह अनुभव नहीं है, यह खयाल है। और यह खयाल मन इसलिए बनाता है कि मन के अपने भय हैं, जिन्हें वह छिपाना चाहता है। मन जानता है कि मौत होगी। मौत से डर लगता है, आत्मा को मान लेता है कि आत्मा अमर है। मन को डर लगता है कि मैं अकेला हूं जगत में, परमात्मा को मान लेता है कि किसी का सहारा है।

अब वह सब उखड़ गया है, क्योंकि चिकित्सक कहते हैं, नहीं कुछ हो सकता। मंदिर की पूजा-प्रार्थना कुछ नहीं कर पाती, साधु-संतों का प्रसाद कुछ नहीं कर पाता। अब सब भरोसा टूट गया।

इसी के लिए भरोसा था, इसी के लिए टूट गया। जिस चीज के लिए था, वही चीज अब नहीं हो रही। ईश्वर साथ नहीं दे रहा है, मौत करीब आ रही है। उस मौत के भय में ही ईश्वर को माना था। उस मौत के भय में ही आत्मा को माना था। अब मौत तो चली आ ?? रही है और भय सामने खड़ा है। अब उस ईश्वर को कैसे मानें? उस आत्मा को कैसे मानें?

मन भय के कारण मान लेता है। या यह भी हो सकता है, मन प्रलोभन के कारण मान ले। क्योंकि भय और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मन इसलिए भी मान ले सकता है कि प्रलोभन है आत्मा को मानने में स्वर्ग का, मोक्ष का, ईश्वर को मानने में उसके दर्शन का, उसके आनंद का प्रलोभन है। मन इसलिए भी मान ले सकता है।

लेकिन लोभ हो या भय, मन का माना ऊपर के पत्तों पर रखा गया विश्वास है, नीचे की जीवंत धारा का कोई भी पता नहीं है। इस जीवंत धारा को हम जान ही तब पाएंगे, जब हम मन के द्वंद्व से हटें।

द्वंद्व कोई भी हो-चाहे लोभ का हो, अलोभ का हो; भय का हो, अभय का हो-द्वंद्व कोई भी हो, सत्य का हो, असत्य का हो, जीवन का हो, मृत्यु का हो, इससे कोई संबंध नहीं है। द्वंद्व की भाषा, मन की भाषा है।

कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं कि वे लोग, जो सकाम साधना करते हैं अर्थात सुख की मांग करते हैं, वे फिर-फिर वापस लौट आते हैं। क्योंकि सुख की साधना का अर्थ है, दुख को हम अंगीकार करने को राजी नहीं है, दुख को इनकार करते हैं, सुख को अंगीकार करते हैं।

द्वंद्व शुरू हो गया। कुछ है, जिसे हम कहते हैं, यह नहीं चाहिए; और कुछ है, जिसे हम कहते हैं, यह चाहिए। हमनें विभाजन कर लिया। हमने जीवन को अविभाज्य स्वीकार नहीं किया। यह टोटल एक्सेप्टिबिलिटी नहीं है कि हम समग्र जीवन को स्वीकार करते हैं, जीवन जैसा है, हम राजी हैं। इसमें हम भेद करते हैं कि हम जीवन के इस पहलू से राजी हैं, सुख दे जीवन तो हम राजी हैं, दुख दे तो हम राजी नहीं है।

लेकिन कठिनाई यह है कि दुख जो है, वह सुख की छाया है। तो मुझसे कोई राजी है, वह कहता है, आओ मेरे घर, लेकिन अपनी छाया को अपने साथ मत लाना; निमंत्रण है, स्वागत है, लेकिन छाया को छोड्कर आना।

ज्यादा से ज्यादा मैं इतना ही कर सकता हूं कि छाया को पीछे छिपाकर आ जाऊं, छोड्कर तो कैसे आ सकता हूं! इस भांति आऊं कि छाया सामने न पड़े, पीछे छिपी रहे। और जब घर में मैं प्रवेश करूंगा, तो छाया भी प्रवेश कर जाएगी। क्योंकि छाया को कांटा नहीं जा सकता।

दुख सुख की छाया है। जो सुख को मलता है, वह दुख को भी मांग रहा है। जानकर नहीं मांगता, क्योंकि कोई दुख को नहीं मांगता है। फिर भी उसे पता नहीं कि वह मांगे या न मांगे, सुख की मांग में ही दुख को भी निमंत्रण मिल जाता है। दुख पीछे आता है, सुख सामने दिखाई पड़ता है। जब भेंट होती है, तो थोड़ी देर में सुख बिखर जाता है और दुख की राख हाथ में आ जाती है।

बार-बार हमें यह अनुभव होता है। जहां-जहां सुख पर मुट्ठी बांधते हैं, आखिर में पाते हैं कि दुख हाथ में रह गया। और जहां-जहां सुख के सपने संजोते हैं, वहीं-वहीं पाते हैं कि सिवाय दुख के, दुखस्वप्नों के कुछ हाथ नहीं लगता है। जहां-जहां सुख का फूल खोजने जाते हैं, वहां-वहां दुख का कांटा चुभ जाता है। लेकिन फिर भी मन मांगे चला जाता है सुख को। और जितने जोर से मांगता है, उतने ही जोर से दुख आए चला जाता है।

इस मांग को हम बदल भी सकते हैं, बदल लेते हैं लोग। फिर बड़े मकान बनाने की मांग छोड़ देते हैं। फिर बड़ी दुकान सजाने की माग छोड़ देते हैं। फिर बड़ी पद-प्रतिष्ठा, धन की मांग छोड़ देते हैं। लेकिन मन नहीं बदलता। मन फिर स्वर्ग में, परलोक में इन्हीं सुखों की मांग शुरू कर देता है।

तो कृष्ण कहते हैं, और वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म के शरण हुए और भोगों की कामना वाले पुरुष बारंबार आने-जाने को प्राप्त होते हैं।

वेद भी सहायता न कर सकेंगे, कृष्ण भी सहायता न कर सकेंगे, कोई भी सहायता न कर सकेगा। अगर आपकी मांग ही गलत है, तो इस जगत में कोई भी सहायता न कर सकेगा। जगत अपने नियमों से घूमता है। अगर आपने गलत मांगा है, तो गलत आपको मिल जाएगा।

आप कहेंगे, हमने तो सुख मांगा है! लेकिन वह जो सुख की छाया है, वह किसको मिलेगी? वह भी आपको ही मिलेगी। आप पूरा देखें। मन तोड़ देता है, इसलिए सुख अलग मालूम पड़ता है, दुख अलग मालूम पड़ता है। थोड़ा समझें और मन के बिना जगत को देखें, तब आपको पता चलेगा कि वे दोनों अलग नहीं हैं। मन के कारण ही दो मालूम पड़ते हैं, वे एक ही हैं।

किस चीज में हमें सुख मिलता है? और जिस चीज में हमें सुख मिलता है, उसी में दुख मिल सकता है, फिर भी हमारी आंख नहीं खुलती। सच तो यह है, उसी में दुख मिलता है, जिसमें हमें सुख मिलता है। ऐसी किसी चीज में आपको कभी दुख मिला है, जिसमें आपको सुख पहले न मिला हो? जहां सुख मिलता है, वहीं दुख मिलता है। जिसमें सुख मिलता है, उसी में दुख मिलता है। जिससे अपेक्षा बाधते हैं, उसी से अपेक्षा टूटती है। जिससे आशा बांधते हैं, उसी से विषाद फलित होता है। एक ही बीज होता है, फिर भी हम देख नहीं पाते और जन्मों-जन्मों तक यह कथा ऐसी ही दोहरती चलती है। यह आना-जाना ऐसे ही होता रहता है।

कहां, कठिनाई कहां होगी? वही कठिनाई है मन के देखने में। मन जब किसी चीज में सुख देखता है, तो दुख दूसरा हिस्सा होता है; वह पीछे छिपा होता है, मन को पूरा दिखाई नहीं पड़ता। जब वह सुख देखता है, तो उसे सुख दिखाई पड़ता है, वह कहता है, सुख है यहां। दुख दिखाई नहीं पड़ता। वह ओझल होता है। वह विपरीत है। वह खयाल में ही नहीं आता। और जब दुख दिखाई पड़ता है, तब सुख ओझल हो गया होता है। तब सुख दिखाई नहीं पड़ता।

यह मन के देखने का जो अधूरा ढंग है, उसके कारण जो एक इकट्ठा सत्य है, वह हमें दो हिस्सों में टूटकर दिखाई पड़ता है। क्या हम मन के बिना जीवन के सत्य को पूरा देख सकते हैं?

जिन्होंने भी देखने की कोशिश की है, उन्हें मन को छोड़ देना पड़ा। मन को छोड़ने का अर्थ ही होता है, कामना को छोड़ देना। क्योंकि मन कामना का विस्तार है। मन वासना है, मन डिजायरिंग है-यह मिल जाए, यह मिल जाए, यह मिल जाए, यह मिल जाए! और कठिनाई तो यह है, अगर न मिले, तो दुख होता है, और मिल जाए तो भी सुख नहीं होता। न मिले, तो दुख होता है खोने का, और मिल जाए, तो बोर्डम, ऊब हो जाती है।

ऐसा कोई सुख आपने जाना है, जो आपको मिल जाए, फिर उबाए न? जिससे ऊब न होने लगे?

गरीब आदमी का दुख होता है अभाव का, और अमीर आदमी का दुख होता है उपलब्धि का। गरीब आदमी पीड़ित होता है, जो नहीं मिला उससे; अमीर आदमी पीड़ित होता है उससे, जो मिल गया। बुद्ध को पीड़ा क्या है? बुद्ध को पीड़ा यह है कि जो भी मिल गया है, उसमें कोई सुख नहीं है। घर छोड्कर भाग जाते हैं। उस युग की, उस इलाके की जितनी सुंदर युवतियां थीं, सभी बुद्ध को उपलब्ध थीं। उनसे घबड़ाकर भाग जाते हैं। महावीर को क्या तकलीफ है? सब मिल गया है, और सुख तो दिखाई पड़ता नहीं! तो सड़क पर भीख मांगने निकल जाते हैं। अमीर आदमी का दुख है कि वह जो चाहता था, वह मिल गया। गरीब आदमी का दुख है कि जो उसने चाहा, वह नहीं मिला है।

गरीब और अमीर के दुख अलग-अलग होते हैं, लेकिन दुख में कोई फर्क नहीं होता। एक ही चीज के दो छोर होते हैं। गरीब वहां खड़ा है, जहां कभी अमीर खड़ा था। और अमीर वहा खड़ा है, जहां गरीब अगर कोशिश करता रहा, तो कभी खड़ा हो जाएगा। लेकिन दोनों दुखी हैं।

लेकिन गरीब को दिखाई पड़ता है कि चीजें नहीं हैं, इसलिए दुखी हूं। उसे दूसरा पहलू दिखाई नहीं पड़ता। अमीर को दिखाई पड़ता है कि चीजें हैं, और दुखी हूं। उसे भी दूसरा पहलू नहीं दिखाई पड़ता। और हम दूसरे पहलू को बदलने के लिए आतुर रहते हैं। इसलिए गरीब अमीर बनने को राजी रहता है। और बहुत बार अमीर गरीब बनने को राजी हो गए हैं।

आखिर अमीर लड़कों ने, बुद्ध ने और महावीर ने, सब छोड्कर भिखारी के रूप में खड़े हो गए! यह दूसरे छोर पर जाने की इनकी तैयारी का कारण क्या है 2: एक ही कारण है कि जो हमारे पास होता है, उसी से दुख मिलने लगता है। जितनी हो दूरी, उतने ही सुख का

आभास होता है। जितनी हो निकटता, उतना ही दुख प्रकट होने लगता है। जो भी चीज पास आ जाए, वही दुख देने लगती है। जो भी चीज दूर हो, वही सुख देती मालूम पड़ती है। क्योंकि दूर है; दे तो नहीं सकती, सिर्फ आभास हो सकता है। अगर किसी व्यक्ति को, जो भी उसने चाहा है, सभी मिल जाए इसी वक्त, तो उससे ज्यादा दुखी आदमी खोजना संसार में मुश्किल होगा।

कल्पवृक्ष के बारे में हम सुनते हैं कि स्वर्ग में कल्पवृक्ष है। उसके नीचे आदमी बैठे, तो जो भी चाहे, उसे मिल जाए। शायद हम सोचते होंगे, उस वृक्ष के नीचे बैठकर लोग कैसे सुख को न उपलब्ध हो जाते होंगे! मैं आपसे एक राज की बात कहता हूं। कभी वह वृक्ष मिले, तो भूलकर उसके नीचे मत बैठना। अन्यथा आपसे बड़ा दुखी व्यक्ति फिर संसार में कोई भी नहीं होगा। क्योंकि सुख सिर्फ उसकी आशा में है, जो नहीं मिला है। और जब तक नहीं मिला है, तभी तक। और जब मिल जाता है, तभी दुख हो जाता है।

तो सुख का जो आभास है, वह वासना का आभास है। वासना जब तक अतृप्त है, तब तक सुख का आभास है। वासना जब तृप्त होती है, तब सब बिखर जाता है। आदमी लेकिन चाहे चला जाएगा! यश को चाहेगा, अपयश को नहीं। सुख को चाहेगा, दुख को नहीं।

लेकिन जो यश को चाहेगा, उसे अपयश मिलेगा ही। वह उसकी छाया है। जो लाभ चाहेगा, वह हानि में पड़ेगा ही। वह उसकी छाया है। जो जीवन के प्रति मोहित होगा, मृत्यु उसे भयभीत करेगी ही। वह उसकी छाया है। अगर मृत्यु के भय से बचना है, तो जीवन के मोह से बचना पड़ेगा। और अगर दुख में गिरने से बचना है, तो सुख के आकर्षण को छोड़ देना पड़ेगा। सुख का आकर्षण जो छोड़ देता है, उसे फिर कोई दुखी नहीं कर सकता। और यश की जिसकी आकांक्षा न रही, उसका अपमान करना असंभव है।

मेरा अपमान मैं ही करवा सकता हूं, आप नहीं कर सकते हैं। अगर मैं मान की आकांक्षा करूं, तो अपमान करवा सकता हूं। अगर मैं यश चाहूं तो अपयश मेरा किया जा सकता है। अगर मैं प्रशंसा चाहूं? तो मुझे गाली दी जा सकती है। लेकिन अगर मैं प्रशंसा ही न चाहूं, तो आपकी गाली बिलकुल ही व्यर्थ हो जाती है। उसका कोई मूल्य ही नहीं रह जाता। क्योंकि जिसे मैं चाहता ही नहीं, उसको मिटाने के प्रयोजन से आप मिटा भी क्या पाएंगे? अगर मैं आदर चाहूं तो निरादर के लिए मुझे तैयार होना चाहिए। और अगर निरादर की मेरी तैयारी न हो, तो आदर का मुझे खयाल छोड़ देना चाहिए। फिर कोई भी निरादर कर नहीं सकता। कोई उपाय नहीं है। मैं बाहर हो गया।। तो कृष्ण कहते हैं कि जो लोग सुख की कामना से धर्म की साधना में भी लगते हैं, वे अपने को कितना ही धोखा दे लें, वापस लौट आएंगे। कितने ही बड़े सुख को पा लें, लेकिन चुक जाएगा पुण्य। पाते ही चुक जाता है। कीमत वसूल हो गई। किया हुआ श्रम पूरा हो गया। फल मिल गया हाथ में, फिर स्वर्ग भी बासा हो जाता है।

सुना है मैंने कि स्वर्ग के देवी-देवता भी पृथ्वी के लिए तरसने लगते हैं। कथाएं हैं, पुराणों में कथाएं हैं कि स्वर्ग के देवता अप्सराओं से ऊब जाते हैं, बुरी तरह ऊब जाते हैं। पृथ्वी की स्त्रियों की कामना करने लगते हैं। पुरूरवा की कथा है कि स्वर्ग से आज्ञा मांगी उसने कि मुझे पृथ्वी पर जाने दें, ताकि मैं पृथ्वी की किसी स्त्री को प्रेम कर सकूं!

क्या हुआ होगा पुरूरवा को? यहां पृथ्वी पर तो अप्सराओं के लिए लोग दीवाने हैं। यहां भी कोशिश करते हैं स्त्रियों को अप्सराओं जैसी सजाने की! कोशिश असफल जाती है! लेकिन पुरूरवा को क्या हुआ? वह अप्सराओं को छोड़कर यहां पृथ्वी पर किसी स्त्री से प्रेम करने आना चाहता है! कोई स्त्री स्वर्ग में-कथाएं हैं-बूढ़ी नहीं होती! सोलह वर्ष पर ही उम्र ठहर जाती है! तो आदमी तो कितना चाहता है, कितनी कविताएं लिखता है, और स्त्रियां तो कितनी कोशिश करती हैं! सोलह साल के बाद उनकी उम्र बढ़ती ही नहीं! बहुत कोशिश करती हैं! फिर भी, यहां तो सब बढ़ ही जाती है। वहां तो बढ़ती ही नहीं! पुरूरवा क्यों ऊब गया होगा?

यह सोलह साल पर अगर सबकी उम्र ठहर जाए, तो भी उबाने वाली हो जाएगी; यह भी घबड़ाने वाला हो जाएगा। और जो फूल कुम्हलाता ही न हो, वह प्लास्टिक का मालूम पड़ने लगेगा। जो फूल कुम्हलाता ही न हो, वह प्लास्टिक का मालूम पड़ने लगेगा। तो अप्सराएं बिलकुल प्लास्टिक की मालूम पड़ी होंगी, कागजी मालूम पड़ी होंगी। न कुम्हलाती हैं; न पसीना आता है; न उम्र ढलती है, न कभी आंख से आंसू बहते हैं, होंठों की मुस्कुराहट है कि ऐसी बनी रहती है, जैसी कि नेताओं के मुंह पर चिपकी रहती है! वह चिपकी ही रहती है। वह कभी हटती ही नहीं। अप्सराएं सोती भी हैं, तो भी होंठ मुस्कुराते रहते हैं। यह मुस्कुराहट भी घबड़ाने वाली हो जाएगी, बेस्वाद हो जाएगी।

पुरूरवा घबड़ा गया। उसने कहा कि मुझे आज्ञा दो, मैं पृथ्वी पर जाऊं, किसी स्त्री को प्रेम करूं, जो बूढ़ी भी होती हो, जो रोती भी हो, जिसके शरीर पर पसीना भी आ जाता हो; जिसकी जिंदगी में सब उतार-चढाव होते हों। ताकि मुझे कुछ असलियत का अनुभव हो, यहां तो सब कागजी हो गया है।

स्वर्ग पाकर भी वासना तो क्षीण नहीं होगी, वासना नए आयाम पकड़ लेगी, नई दुनियाओं में खोज करने लगेगी, नई जगह तलाश करने लगेगी। और फिर जो स्वर्ग पा लिया है, जो सुख पा लिया है।

स्वर्ग का अर्थ है मनोवैज्ञानिक कि जो भी सुख पा लिया है, वह पाते ही क्षीण होना शुरू हो जाता है-पाते ही। जिस शिखर को भी हम पा लेते हैं, पाते से ही उतार शुरू हो जाता है, उतरना शुरू हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, लौट आएगा वापस वह व्यक्ति, जिसने सकाम साधना की है। परमात्मा को भी जिसने वासना के माध्यम से चाहा और मांगा है, उसे सुख तो मिल जाएगा, लेकिन वह लौट आएगा।

और ध्यान रखें, सुख को जानकर जब कोई लौटता है, तो महादुख में पड़ जाता है। कभी आपने देखा है, रास्ते से गुजर रहे हैं; अंधेरी रात, सन्नाटा है, अंधेरा है रास्ते पर। फिर एक मोटरगाड़ी पास से गुजर जाती है। तेज प्रकाश आपकी आंख में पड़ता है।

मोटर गुजर गई, पीछे आप और महाअंधकार अनुभव करते हैं, जितना कि इस गाड़ी के गुजरने के पहले नहीं था। अंधेरा तो वही है, पर आपकी आंखों की कठिनाई हो गई; आंखों ने प्रकाश जान लिया, अब अंधेरा और भी घना मालूम पड़ेगा।

तो जो भी व्यक्ति स्वर्ग में हो आता है, सुख को जान लेता है, गिरते ही महानर्क की गर्त को अनुभव करता है। सुख को जानना महंगा सौदा है, गिरना तो पड़ेगा। और जब चित्त गिरता है वापस, तो सभी कुछ दुख हो जाता है। सभी कुछ दुख हो जाता है। चित्त का अनुभव अब सुख के लिए और भारी मांग से भर जाता है। और सभी चीजें उदास कर जाती हैं, और सभी चीजें दुख दे जाती हैं। कृष्ण कहते हैं, ऐसे व्यक्ति का आना-जाना जारी रहता है। वह परिभ्रमण में भटकता रहता है। वह एक वर्तुल में पड़ जाता है। जैसे बैलगाड़ी के चाक में एक आरा ऊपर आता है, फिर नीचे जाता है, फिर ऊपर आता है, फिर नीचे जाता है।

संसार हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण शब्द रहा है। संसार का मतलब होता है, चाक, दि व्हील। संसार का मतलब होता है, चक्के की तरह जो घूमता रहता है। जो अभी ऊपर है, वह थोड़ी देर में नीचे आ जाता है, जो अभी नीचे है, वह थोड़ी देर में ऊपर आ जाता है। और यह चाक घूमता चला जाता है। और जो नीचे है, वह ऊपर आने की आशा करता रहता है। और ऊपर आ भी नहीं पाता है कि नीचे जाना शुरू हो जाता है, क्योंकि चाक घूमता रहता है। जो ऊपर है, वह ऊपर बने रहने की कितनी ही कोशिश करे, बना नहीं रह पाता, नीचे उतरना पड़ता है।

कृष्ण कहते हैं, कामना से अगर स्वर्ग भी मिल जाए, तो भी लौट आना पड़ता है। कामना की कोई भी उपलब्धि वास्तविक नहीं है। कामना की कोई भी उपलब्धि यथार्थ नहीं है। कामना की कोई भी उपलब्धि स्वप्न से ज्यादा नहीं है। स्वप्न टूटेगा ही। कितना ही लंबा कोई स्वप्न देखे, स्वप्न टूटेगा ही।

क्या कोई उपाय है कि व्यक्ति इस स्वप्न और इस चाक के परिभ्रमण से बाहर हो जाए?

तो कृष्ण कहते हैं, जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरंतर चिंतन करते हुए निष्काम भाव से उपासते हैं, उन नित्य एकीभाव से मुझ में स्थित पुरुषों का योग- क्षेम मैं स्वयं सम्हाल लेता हूं।

इसमें तीन बातें समझने जैसी हैं।

एक, निष्काम भाव से जो मुझे उपासते हैं। कठिन है बहुत। यही उपासना और वासना का भेद है। हमारी उपासना भी वासना ही है। हम परमात्मा के पास भी जाते हैं, तो परमात्मा के लिए नहीं, कारण कुछ और ही होता है। कोई बीमार है, इसलिए मंदिर में जाता है। कोई बेकार है, इसलिए मंदिर में जाता है। कोई निर्धन है, इसलिए मंदिर में जाता है। कोई निस्संतान है, इसलिए मंदिर में जाता है। जो किसी भी कारण से मंदिर में जाता है, वह मंदिर में पहुंच ही नहीं पाता है। शरीर भीतर प्रवेश कर जाएगा, मूर्ति सामने आ जाएगी, लेकिन उपासना संभव नहीं है। क्योंकि जहां वासना है, वहां उपासना संभव ही नहीं है।

उपासना का अर्थ होता है, परमात्मा के पास होना। और जब मैं धन मांगने के लिए उसके पास जाता हूं तो मैं धन के पास होता हूं; उसके पास कैसे होऊंगा? मेरी मांग ही मेरी निकटता है। जो मैं चाहता हूं वही मेरे निकट है, और जिससे मैं चाहता हूं, वह तो केवल साधन है। अगर परमात्मा पूरा कर दे, तो ठीक है; अगर पूरा न करे, तो फिर मैं वहा नहीं जाऊंगा। कोई और पूरा कर दे, तो उसके पास जाऊंगा। जहां मेरी वासना पूरी होगी, वहां मैं जाऊंगा। परमात्मा कर सकता है, तो वहा भी तलाश कर लेता हूं! लेकिन परमात्मा मेरी इच्छा का हिस्सा नहीं है। मेरी इच्छा कोई और है। रामकृष्ण ने विवेकानंद को कहा था। कठिनाई में थे, पिता चल बसे थे, बहुत कर्ज छोड़ गए थे। घर में भूख के सिवाय और कुछ भी नहीं था। विवेकानंद सड़कों पर घूमकर भूखे-प्यासे वापस लौट आते थे। मां दुखी न हो, तो उससे कहते थे, आज मित्र के घर निमंत्रण है। वहा से हंसते हुए, पेट पर हाथ फेरते हुए, झूठी डकार लेते हुए घर में प्रवेश करते थे।

रामकृष्ण को पता चला, तो रामकृष्ण ने कहा कि तू पागल है। तू जाकर मंदिर में मां को क्यों नहीं कह देता है? अपनी तकलीफ कह दे।

रामकृष्ण ने कहा, तो विवेकानंद टाल भी न सके। दरवाजे पर रामकृष्ण बैठे हैं दक्षिणेश्वर के, और विवेकानंद को धक्का देकर भीतर भेजा है कि तू जा, मां से कह; सभी कुछ ठीक हो जाएगा। उस पर छोड़ दे, वह योग- क्षेम सम्हाल लेगी।

विवेकानंद भीतर गए। घंटा बीत गया। रामकृष्ण झांककर देखते हैं, हाथ जोड़े खड़े हैं; आंख से आंसू बह रहे हैं! फिर रामकृष्ण प्रतीक्षा करते हैं। और घंटा बीत गया! फिर आवाज देते हैं। विवेकानंद बाहर आते हैं। आनंदित हैं। आंसू फूल की तरह मुस्कुरा रहे हैं। चित्त आनंद से भरा है। नाचते हुए बाहर आते हैं।

रामकृष्ण कहते हैं, कहा था मैंने पहले ही; तू क्यों नहीं कह देता, वे सब सम्हाल लेंगी।

विवेकानंद ने कहा, कौन-सी बात सम्हाल लेंगी?

रामकृष्ण ने कहा कि मैंने तुझे कहा था, उनसे कह दे कि घर में कुछ भी नहीं है।

विवेकानंद ने कहा, वह तो मैं भूल ही गया, वह तो मुझे याद ही न रहा। इतने पास था उनका होना कि दोनों के बीच में और किसी तीसरी चीज के होने की जगह भी नहीं थी।

वापस रामकृष्ण ने कहा, पागल! फिर से जा। ऐसे हल नहीं होगा। मां भी नहीं सुनती है, अगर रोने न लगे बच्चा। जा और कह! विवेकानंद को फिर भेजा है; वे फिर वापस आ गए हैं आनंद से भरे हुए; लेकिन फिर भूल गए हैं।

रामकृष्ण ने कहा, इसमें भूलने की बात क्या है?

विवेकानंद ने कहा कि भूलने का सवाल ही नहीं है। इतने पास हो जाता हूं कि दूसरी कोई चीज बीच में आए, इसके लिए जगह, स्पेस, स्थान ही नहीं बचता है।

रामकृष्ण ने कहा, इसीलिए तुझे बार-बार भेजा; जानना चाहता था कि अभी वासना बनी है या उपासना भी बन सकती है!

वासना और उपासना का यह फर्क है। वासना सकाम होगी, कुछ मांगने के लिए होगी। तो जो हम मांगते हैं, वही श्रेष्ठ है, जिससे हम मांगते हैं, वह श्रेष्ठ नहीं है। उससे मिलता है, इसलिए हम उसको श्रेष्ठ मान लेते हैं। लेकिन जो मांगते हैं, वही श्रेष्ठ है। उपासना का तो अर्थ ही यह है कि एक नया जगत शुरू हुआ किसी के पास होने का, जिससे कुछ भी मांगना नहीं है, जिसके पास होना ही काफी आनंद है, जिससे और कोई माग का सवाल नहीं है। उपासना का अर्थ है, परमात्मा के पास होना। और पास होने में ही सारी उपलब्धि मानना। पास होने में ही, उसकी निकटता ही सब कुछ है। उसके पास होने में ही सब मिल गया। सब स्वर्ग, सब मोक्ष। उसकी निकटता से ज्यादा और कोई चाह नहीं है।

निष्काम साधना का अर्थ है, परमात्मा को चाहना उसके ही लिए, किसी और कारण से नहीं

इस जगत में हम सभी को किसी और कारण से चाहते हैं। अगर मैं एक स्त्री को प्रेम करता हूं, तो इसलिए कि वह सुंदर है। लेकिन कल वह असुंदर हो सकती है। फिर प्रेम कैसे टिकेगा? क्योंकि जिस सौंदर्य के लिए प्रेम था, वह खो गया। फिर धोखा ही टिकेगा। फिर मुझे खींच-तानकर चलाना पड़ेगा। फिर मैं कहता रहूंगा कि ठीक है, अब भी प्रेम है। लेकिन प्रेम तिरोहित हो गया होगा। क्योंकि प्रेम का कोई कारण था।

कोई जवान है, इसलिए मेरा उससे प्रेम है। कल वह बूढ़ा हो जाएगा, फिर कैसे प्रेम टिकेगा? कोई बुद्धिमान है, इसलिए मेरा उससे प्रेम है; कारण है। कोई धनी है, कोई स्वस्थ है, कोई कलाकार है। कुछ है कारण।

इस जगत में हम जितने भी संबंध बनाते हैं, वे सभी सकारण हैं, सभी सकाम हैं। इसी वजह से, आदत के वश, हम परमात्मा से भी जो संबंध बनाते हैं, वे भी सकाम हैं। इसलिए सकाम भक्त परमात्मा के संबंध में जो बातें कहता है, जो गीत गाता है, उनको ठीक से अध्ययन करें, तो पता चलेगा कि वह क्या-क्या कह रहा है!

वह कहता है कि तुम्हारे नयन बहुत प्यारे हैं, इसलिए; कि तुम बड़े मनमोहन हो, इसलिए; कि तुमने सबको रचा, कि तुम सबके पालनहार हो, इसलिए; कि तुम जो पतित हैं, उनके सहारे हो, इसलिए; कि तुमने पापियों को उद्धारा, इसलिए। लेकिन सबके पीछे देअरफोर, इसलिए है।

लेकिन अगर वह पापियों का उद्धारक नहीं, अगर उसकी आंखें बहुत सुंदर नहीं, बड़ी कुरूप हैं, मनमोहन नहीं, फिर क्या होगा? हम जो इस जगत में संबंध बनाते हैं, उन्हीं के आधार पर हम परमात्मा से भी संबंध बनाने की कोशिश करते हैं, यही सकाम धारणा है।

कृष्ण कह रहे हैं, जो निष्काम भाव से मुझे उपासेगा!

जो किसी कारण से नहीं, अकारण। जो कहेगा, कोई कारण नहीं है, कोई वजह नहीं है, बेवजह, बिना कारण, तुम्हारे पास होना बस काफी है। तुम कैसे हो, इसकी कोई शर्त नहीं है। तुम क्या करोगे, इसकी कोई माग नहीं है। तुमने कब क्या किया है, उसका कोई हिसाब नहीं है। तुम सुख ही दोगे, यह भी पक्का नहीं है। तुम दुख न दोगे, इसका भी पक्का नहीं है। यह सब कुछ पक्का नहीं है। लेकिन तुम्हारे पास होना, और तुम जैसे भी हो, तुम्हारे पास होना ही मेरा आनंद है। बस, तुम्हारे पास होने में ही मेरा सब समाप्त हो जाता है, मैं मंजिल पर पहुंच जाता हूं।

इसलिए निष्काम साधना बड़ी कठिन है; आदमी सोच भी नहीं पाता। कोई आदमी चाहता है, मन अशांत है, इसलिए। दुखी है, इसलिए। संताप है, चिंता है, इसलिए। अकारण? अकारण की भाषा ही हमारी समझ में नहीं आती!

लेकिन ध्यान रहे, इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, सभी अकारण घटित होता है, और जो भी क्षुद्र है, वह सकारण होता है। अगर इस जगत में भी कभी प्रेम घटित होता है, तो वह उपासना जैसा होता है, वासना जैसा नहीं होता। कभी हम एक व्यक्ति को इसलिए प्रेम नहीं करते कि कोई भी कारण है। बस, उसके पास होना काफी है। वह क्या करेगा, यह नहीं। उससे कोई मांग नहीं, कोई अपेक्षा नहीं। बस, वह है, इतना काफी है। उसकी उपस्थिति काफी है। उससे क्या मिलता है, इसका भी कोई हिसाब नहीं है। बिना कारण।

तो जगत में भी प्रेम का फूल खिलता है कभी बिना कारण। प्रार्थना भी कभी बिना कारण हो, तो फूल बन जाती है।

मंदिर में जाएं, सब कारण बाहर रख जाएं जहां जूते उतारते हैं। एक बार जूता भी भीतर चला जाए, तो मंदिर अपवित्र नहीं होगा। लेकिन कारण भीतर मत ले जाएं। कारण भीतर ले गए, तो सब अपवित्र हो जाता है। कारणों को वहीं उतार जाएं, जहां जूते उतार देते हैं। सब कारण वहा रख जाएं। सब वासनाएं वहा रख जाएं। मंदिर में तो सिर्फ होने के आनंद के लिए जाएं। थोड़ी देर उसके पास होंगे। कुछ मत करें वहां। कुछ करना जरूरी नहीं है। बस, चुपचाप वहां बैठ जाएं। सिर्फ उसकी मौजूदगी अनुभव करें। उसमें भी अनुभव क्या करना है! शांत बैठें, तो अनुभव होने लगेगी। वह वहां है ही, सभी जगह है।

एक बार मंदिर में होने लगे, तो कोई कारण नहीं है कि मस्जिद में क्यों न हो! एक बार मस्जिद में होने लगे, तो कोई कारण नहीं है कि चर्च में क्यों न हो! और एक बार कहीं भी होने लगे, तो कोई भी कारण नहीं है कि और कहीं क्यों न हो! कहीं भी होगा। कहीं भी शांत बैठ जाएं, वह मौजूद है। चुप हो जाएं, सिर्फ उसकी मौजूदगी को अनुभव करें, तो उपासना है।

और माग कोई भी न हो। रत्तीभर भी नहीं। रत्तीभर भी नहीं। अगर वह देने को भी राजी हो जाए, अगर वह कहे भी कि माग लो, तो भी खोजने से मांग का भीतर पता न चले। कहना पड़े उससे कि असमर्थ हूं कोई मल नहीं है। ऐसी स्थिति में होगी निष्काम भाव से उपासना।

और जो निष्काम भाव से उपासना करता है, कृष्ण कहते हैं, उसका योग- क्षेम, दोनों ही मैं सम्हाल लेता हूं।

योग और क्षेम शब्द को समझ लेना चाहिए।

योग से अर्थ है, वह परम प्रतीति, अंतिम प्रतीति प्रभु-मिलन की, पूर्ण के साथ एक होने की। योग से अर्थ है, व्यक्ति के मिटने की घटना परमात्म में, वह मैं सम्हाल लेता हूं। और क्षेम से अर्थ है, जब तक वह घटना न घट जाए, तो जो भी जरूरी है, वह भी मैं सम्हाल लेता हूं। क्षेम से अर्थ है, योग जब तक न घटे, तब तक जो भी जरूरी हो! अगर शरीर की जरूरत हो, तो शरीर को सम्हाल लूंगा। अगर भोजन की जरूरत है, तो भोजन को सम्हाल लूंगा। अगर श्वास की जरूरत है, तो श्वास को सम्हाल लूंगा। जब तक वह परम घटना नहीं घटती है, तब तक उसके पहले जो-जो आवश्यक है, वह भी मैं सम्हाल लूंगा। उसका नाम है क्षेम। और जब क्षेम के बाद वह परम घटता घट जाएगी, आखिरी, वह भी मैं सम्हाल लूंगा।

कृष्ण यह कहते हैं कि एक बार तू अपनी मांग छोड़, तो मैं सब सम्हालने को तैयार हूं। और जब तक तू मांग किए जाता है, तब तक मैं कुछ भी नहीं सम्हाल सकता हूं। न सम्हालने का कारण है। क्योंकि जब तक तू मांग किए जाता है, तब तक तू अपने को मुझसे ज्यादा समझदार समझे चला जाता है।

मांग का मतलब ही यह होता है। एक आदमी जाता है मंदिर में और भगवान से कहता है कि यह क्या किया? यह कैंसर मुझे हो गया! यह कैसा न्याय है?

वह यह कह रहा है कि तुमसे ज्यादा अकल तो हममें है! हम समझते हैं कि यह न्याय नहीं है। और क्या कर रहे हो बैठे वहां? जिन मित्र का मैंने उल्लेख किया, उन्होंने मुझे पत्र में लिखा है, क्या ईश्वर न्याय-युक्त है? अगर न्याय-युक्त है, तो मुझे कैंसर क्यों हुआ? लिखा है कि

मैंने जिंदगी में कोई रिश्वत नहीं ली, कोई बुरा काम नहीं किया, किसी को सताया नहीं, फिर यह फल मुझे मिला! तो ईश्वर न्याय-युक्त है, इसे सिद्ध करके बताएं।

निश्चित ही अन्याय हो गया। निश्चित अन्याय हो गया, क्योंकि कैंसर आ गया! इसका मतलब यह हुआ कि यह आदमी कहता है कि मैंने कोई बुरा नहीं किया, इसका इसे भरोसा है! इस पर इसे शक नहीं आता, कि शायद कोई बुरा किया हो! इस पर इसे कोई शक नहीं आता। इस पर भी इसे कोई शक नहीं आता कि इसे कैंसर नहीं होना चाहिए। इस पर भी कोई शक नहीं आता। और इस पर भी इसे कोई शक नहीं आता कि कैंसर के होने में अन्याय है ही! या कैंसर कोई ऐसी बुराई है, जो होनी ही नहीं चाहिए! इस पर भी इसे कोई खयाल नहीं आता। एक बात पक्की खयाल आ जाती है कि ईश्वर अन्यायी है, न्याय-युक्त नहीं है। कोई जस्टिस नहीं है। अगर आज यह ईश्वर की प्रार्थना करे और इसका कैंसर ठीक हो जाए, तो फिर यह ईश्वर को मानेगा। अगर इसका कैंसर ठीक न हो, तो फिर यह नहीं मानेगा।

यह सशर्त, सकाम भावना है। भक्त, सच में निष्काम भक्त परमात्मा से कहेगा कि जो भी तूने दिया, मैं आनंदित हूं; वह फूल गिराए तो, और कैंसर बरसा दे तो। जो भी तूने दिया, मैं आनंदित हूं। क्योंकि तू जो देगा, वह ठीक होगा ही। गलत तो वह तब होता है, जब मेरी मांग के विपरीत पड़ता है। जब मेरी कोई मांग नहीं, तो गलत होने का कोई उपाय नहीं। अन्याय तो तब मालूम पड़ता है, जब मैं सोचता था कुछ और मिलेगा, और मिलता कुछ और है। जब मैं देखता हूं कि जो भी मिलता है, वही न्याय है, तब तो कोई सवाल नहीं है।

कृष्ण कहते हैं कि जो मुझ पर सब छोड़ देता है, उसे मैं सम्हाल लेता हूं। और जो मुझ पर छोड़ता नहीं, खुद ही सम्हालता है, उसे खुद ही सम्हालना पड़ता है।

हम सब खुद सम्हाल-सम्हालकर बोझ से दबे जाते हैं। हम उन देहाती यात्रियों की तरह हैं, जो पहली-पहली दफा ट्रेन में सवार हुए थे, तो अपनी पोटलियां अपने सिर पर रखकर बैठ गए थे! क्योंकि उन्होंने सोचा, टिकट तो हमने सिर्फ अपने बैठने की ही चुकाई है! और फिर उन्होंने यह भी सोचा कि इतना वजन गाड़ी पर पड़े, गाड़ी चल सके, न चल सके! वैसे भले लोग थे। उन्होंने सिर पर अपनी पोटलिया रख लीं और बैठ गए।

हम भी अपनी पोटलियां अपने सिर पर रखे हैं। हम सोचते हैं, जीवन चले, न चले! अपना-अपना जीवन तो खींचना ही पड़ेगा। और अपना-अपना खींचने से भी जिनको बोझ काफी नहीं मालूम पड़ता, वे दूसरों का भी खींचते हैं! कई की उतने से भी तृप्ति नहीं होती। उन्हें एकाध राष्ट्र का जब तक बोझ न मिल जाए, उनकी खोपड़ी पर जब तक कोई चालीस-पचास करोड़ आदमियों का बोझ न हो, जब तक उन्हें ऐसा न लगे कि पचास करोड़ लोग उन्हीं के कारण चल रहे और जी रहे हैं, तब तक उनको चैन नहीं आता। इतनी बेचैनी न मिले, तो उन्हें कोई चैन नहीं है!

हम सबका मन होता है कि मैं चला रहा हूं सब! ऐसा व्यक्ति निष्काम भावना को कैसे उपलब्ध हो सकता है? निष्काम भावना को तो वही उपलब्ध हो सकता है, जो जानता है कि वही चला रहा है, तो मैं फिर बीच-बीच में क्यों मांगें खड़ी करूं। फिर मैं बीच-बीच में क्यों कहूं कि ऐसा होना चाहिए और ऐसा नहीं होना चाहिए!

सुना है मैंने, एक मुसलमान बादशाह हुआ। गुलाम था उसका एक, बहुत प्रेम था गुलाम से। पत्नी भी नहीं सो सकती थी उसके कमरे में, लेकिन गुलाम सोता था। कोई भी साथ न जाए वहा, वहां भी गुलाम साथ होता था। कितनी ही गुफ्तगू की बात हो, बडे दो सम्राटों से मिलना हो रहा हो, तो भी गुलाम मौजूद होता था। गहरी मैत्री थी। सम्राट कुछ भोजन भी करता था, तो पहला कौर गुलाम को देता था।

दोनों शिकार के लिए गए थे। रास्ते में खो गए। भूख लगी, बहुत परेशान थे। एक वृक्ष के पास रुके। एक ही फल था वृक्ष में, सम्राट ने हाथ बढ़ाकर तोड़ा। सदा के हिसाब के अनुसार उसने एक कली काटी और गुलाम को दी। उस गुलाम ने कली खाई और कहा कि आश्चर्य, ऐसा अमृत फल! एक कली और दे दें।

सम्राट ने दूसरी भी दे दी। गुलाम ने तीसरी भी मांगी। एक ही टुकड़ा सम्राट के पास बचा। सम्राट ने कहा कि अब बस! हद्द कर दी तूने! अगर इतना अमृत फल है, तो एक तो टुकड़ा मुझे खा लेने दे! गुलाम हाथ से छीनने लगा। उसने कहा कि नहीं मालिक, यह फल ऐसा अमृत है कि मुझे पूरा दे दें।

सम्राट ने कहा, यह ज्यादती है। यह सीमा के बाहर बात हुई जा रही है। तू तीन टुकड़े खा चुका है। दूसरा फल वृक्ष पर नहीं है। हम दोनों भूखे हैं। और मैंने तुझे तीन टुकड़े दे दिए। फल मैंने तोड़ा है। और तू आखिरी टुकड़ा भी नहीं छोड़ना चाहता।

गुलाम ने कहा कि नहीं, छोड़ने को राजी नहीं हूं।

लेकिन सम्राट न माना। उसने टुकड़ा अपने मुंह में रखा। जहर था बिलकुल। उसने गुलाम से कहा, तू पागल तो नहीं है? इसे तू अमृत कहता है!

उस गुलाम ने कहा कि जिस हाथ से सदा मीठे फल खाने को मिले, उसके एक जरा-से कड़वे फल की शिकायत भी करनी सारे जीवन के प्रेम पर पानी फेर देना है। और सवाल फल का नहीं है, सवाल तो उस हाथ का है, जिसने दिया है। वह हाथ इतना मीठा है। इसीलिए जिद्द कर रहा था कि वह टुकड़ा मुझे दे दें। आपको पता भी न चल पाए। क्योंकि पता भी चल गया, तो शिकायत हो गई। आपको पता भी न चल पाए। क्योंकि पता भी चल गया किसी कारण से, तो शिकायत हो गई। तो जिंदगी भर इतना प्रेम, उसमें यह छोटी-सी शिकायत, मेरे छोटे मन का सबूत है। यह फल बहुत मीठा था।

पर सम्राट ने कहा कि मुझे कडुवा लगता है।

तो उस गुलाम ने कहा कि मुझे आपके हाथ के संबंध में पता नहीं, आपके मुंह के संबंध में मुझे कुछ पता नहीं, लेकिन आपने जिस हाथ से मुझे दिया है, उस हाथ में सभी कुछ मीठा हो जाता है।

निष्काम भावना का अर्थ है, परमात्मा जो भी दे रहा है, वह उसकी अनुकंपा है, हमारी कोई मांग नहीं है। और वह जो भी दे रहा है, उस सभी के लिए हम अनुगृहीत हैं। उसमें भेद नहीं है कि इस बात के लिए अनुग्रह है और इस बात के लिए शिकायत है। जिस आदमी के मन में शिकायत है, वह आस्तिक नहीं है।

आस्तिक की मेरी तरफ एक ही परिभाषा है, वह आदमी नहीं, जो कहता है, ईश्वर है। वह आदमी नहीं, जो कहता है कि ईश्वर है, इसके मैं प्रमाण दे सकता हूं। वह आदमी नहीं? जो ईश्वर है, ऐसी मान्यता रखकर जीता है। आस्तिक का एक ही अर्थ है, वह आदमी, जिसकी अस्तित्व के प्रति कोई शिकायत नहीं है। ईश्वर का नाम भी न ले, तो चलेगा। चर्चा ही न उठाए, तो भी चलेगा। ईश्वर की बात भी न करे, तो भी चलेगा। लेकिन अस्तित्व के प्रति, जीवन के प्रति उसकी कोई शिकायत नहीं है।

यह सारा जीवन उसके लिए एक आनंद-उत्सव है। यह सारा जीवन उसके, लिए एक अनुग्रह है, एक ग्रेटिटयूड है। यह सारा जीवन एक अनुकंपा है, एक आभार है। उसके प्राण का एक-एक स्वर धन्यवाद से भरा है, जो भी है, उसके लिए। उसमें रत्तीभर फर्क की उसकी आकांक्षा नहीं है। '

ऐसा व्यक्ति, कृष्ण कहते हैं, निष्काम भाव से उपासता है मुझे।। उसके योग- क्षेम की मैं स्वयं ही चिंता कर लेता हूं। उसे अपने न तो योग की चिंता करनी है और न क्षेम की।

यहां एक बड़ी अदभुत बात है। और आमतौर से जब भी कोई इस सूत्र को पढ़ता है, तो उसको कठिनाई क्षेम में मालूम पड़ती है, योग में नहीं! इस सूत्र पर, जितने व्याख्याकार हैं, उनको कठिनाई क्षेम में मालूम पड़ती है। वे कहते हैं, योग तो ठीक है कि परमात्मा सम्हाल लेगा, अंतिम मिलन को, लेकिन यह जो रोज दैनंदिन का जीवन है, यह जो रोटी कमानी है, यह जो कपड़ा बनाना है, यह जो मकान बनाना है, यह जो बच्चे पालने हैं-यह सब-यह परमात्मा कैसे करेगा? हालत दूसरी होनी चाहिए। हालत तो यह होनी चाहिए कि ये छोटी-छोटी चीजें शायद परमात्मा कर भी लेगा। योग, साधना की अंतिम अवस्था, वह कैसे करेगा! लेकिन वह किसी को खयाल नहीं उठता।

हम सबको डर इन्हीं सब छोटी चीजों का है, इसीलिए। उस बड़ी चीज पर तो हमारी कोई दृष्टि भी नहीं है। मोहम्मद, सांझ जो भी उन्हें मिलता था, बांट देते थे। कोई भेंट कर जाता, कोई दे जाता, कोई चढ़ा जाता, वे सांझ सब बांटकर, रात फकीर होकर सो जाते थे। मोहम्मद जैसा फकीर मुश्किल से होता है।

और एकबारगी सब छोड़ देना बहुत आसान है। महावीर ने एकबारगी सब छोड़ दिया, यह बहुत आसान है। मोहम्मद ने एकबारगी सब नहीं छोड़ा; रोज-रोज छोड़ा। यह बहुत कठिन है। सुबह लोग दे जाते, तो मोहम्मद ले लेते, और सांझ सब बांट देते। रात फकीर होकर सो जाते। आदेश था घर में कि एक चावल का टुकड़ा भी बचाया न जाए। क्योंकि जिसने आज सुबह दिया था, वह कल सुबह देगा। और नहीं देगा, तो उसकी मर्जी। नहीं देगा, तो इसीलिए कि देने की बजाय न देना हितकर होगा। सांझ सब बांट देना है। जिसने आज सुबह फिक्र की थी, कल सुबह फिक्र करेगा। नहीं करेगा, तो उसका अर्थ है कि वह चाहता है, आज हम भूखे रहें। उसका अर्थ है कि वह चाहता है, आज भोजन की बजाय भूख हितकर है।

ठीक चलता रहा। मोहम्मद की जिद्द थी, इसलिए कोई रोकता नहीं था। लेकिन फिर मोहम्मद बीमार पड़े और अंतिम रात आ गई। तो पत्नी को भय लगा! उसे लगा, और दिन तो सब ठीक था, लेकिन आज आंधी रात में भी दवा की जरूरत पड़ सकती है। सुबह वह देगा, लेकिन आंधी रात! पत्नी का मन, प्रेम के कारण ही, पांच दीनार, पांच रुपए उसने बचाकर रख लिए।

मोहम्मद बेचैन हैं। करवट बदलते हैं, नींद नहीं आती। रात बारह बज गए हैं। आखिर उन्होंने उठकर कहा कि मुझे लगता है कि मेरे जीवनभर का नियम आज टूट गया है। मुझे नींद नहीं आती! मैं तो सदा सो जाता था। आज मेरी हालत वैसी है, जैसी धनपतियों की होती है। करवट बदलता हूं नींद नहीं आती। मैं सदा का गरीब, मुझे कभी कोई चिंता नहीं पकड़ी। रात मुझे कोई सवाल नहीं था। आज क्या हो रहा है? मुझे डर है कि कहीं कुछ बचा तो नहीं लिया गया! पत्नी घबड़ा गई। उसने कहा कि क्षमा करें, भूल हो गई बड़ी! पांच रुपए मैंने बचा लिए, इस डर से कि बीमार हैं आप, पता नहीं, रात दवा-दारू की, चिकित्सक की, वैद्य की जरूरत पड़ जाए तो मैं क्या करूंगी!

तो मोहम्मद ने कहा कि जीवनभर के अनुभव के बाद भी कि हर सुबह वह सम्हालने मौजूद रहा, तुझे बुद्धि न आई! जीवनभर के अनुभव के बाद! और जो हर सुबह मौजूद रहा, अगर जरूरत पड़ेगी तो आंधी रात मौजूद नहीं होगा, ऐसे शक का क्या कारण था? कोई अनुभव है तेरा ऐसा? वह पांच रुपए बांट दे! अन्यथा मैं सो न सकूंगा। और यह मरते क्षण मेरे ऊपर इल्जाम रह जाए कि मोहम्मद, कुछ साथ था, तब मरे। जिंदगीभर की फकीरी को खराब किए देती है!

पत्नी बाहर गई। चकित हुई देखकर, एक भिखारी द्वार पर खड़ा है! मोहम्मद ने कहा, देखती है! जब लेने वाला आंधी रात को आ सकता है, तो देने वाला क्यों नहीं आ सकता? यह आंधी रात, अंधेरा, कोई बस्ती में दिखाई नहीं पड़ता, पक्षी भी पर नहीं मारते, और दरवाजे पर आदमी भिक्षा-पात्र लिए खड़ा है! फिर भी तेरी आंख नहीं खुलती? दे आ!

वह उसको देकर आ गई, लौटकर आई। मोहम्मद ने, कहते हैं, चादर ओढी; और उनकी अंतिम सांस निकल गई।

जो जानते हैं, वे कहते हैं कि मोहम्मद की सांस अटकी रही, उन पाच दीनार की वजह से। वह अड़चन थी, वह बोझ था, वह पत्थर की तरह जमीन से उन्हें खींचे रहा। वह पत्थर जैसे ही हटा गर्दन से, उन्होंने पंख पसार दिए और किसी दूसरी यात्रा पर चले गए।

योग- क्षेम मैं ही सम्हाल लेता हूं कृष्ण कहते हैं।

उतने भाव से, फिर जो भी हो, वही क्षेम है, ध्यान रखना आप! इसका यह मतलब नहीं है कि वैसे व्यक्ति को कभी मुसीबत न आएगी। इसका यह मतलब भी नहीं है कि उसे रोज सुबह चेक उसके हाथ में आ जाएगा! ऐसा कोई मतलब नहीं है। अगर इसे ठीक से समझेंगे, तो इसका मतलब यह है कि सुबह जो भी हाथ में आ जाएगा, वही उसका क्षेम है। जो भी उसे आ जाएगा हाथ में-भूख, तकलीफ, सुख, दुख-जो भी, वही परमात्मा के द्वारा दिया गया क्षेम है। वह उसे ही अपना क्षेम मानकर आगे चल पड़ेगा।

और योग और भी कठिन बात है। कृष्ण कहते हैं, वह भी मैं सम्हाल लेता हूं।

उसका मतलब? ऐसे उपासक को न साधना की जरूरत है, न साधन की जरूरत है; न तप की जरूरत है, न यश की जरूरत है, न किसी विधि की जरूरत है, न किसी व्यवस्था की जरूरत है। ऐसे व्यक्ति को परमात्मा से मिलने के लिए कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। अगर निष्काम उपासना उसका भाव है, तो मैं उसे मिल ही जाता हूं। वह मिलने का काम मैं सम्हाल लेता हूं।

ऐसी बहुत कथाएं हैं, बड़ी मीठी, और मनुष्य के अंतरतम के बड़े गहरे रहस्यों को लाने वाली, जब परमात्मा उपासक को खोजता हुआ उसके पास आया है। ये प्रतीक कथाएं हैं; और इनको समझने में भूल हो जाती है। इन प्रतीक कथाओं का अर्थ यह होता है कि वे एक इंगित करती हैं स्व तथ्य की ओर।

अगर उपासक निष्काम भाव में जीता हो, तो उसे परमात्मा को खोजने भी जाना नहीं पड़ता, परमात्मा ही उसे खोजता चला आता है। आ ही जाएगा। जैसे जब कोई गड्ढा होता है, तो वर्षा का पानी भागता हुआ गड्ढे में चला आता है। पहाड़ पर भी गिरता है, लेकिन पहाड़ वंचित रह जाते हैं। वे अपने से पहले से ही भरे हुए हैं। उनका अहंकार मजबूत है। गड्ढा खाली है, निरहंकार है, पानी भागता हुआ आकर गड्ढे में भर जाता है। ठीक ऐसे ही, जहां निष्काम भाव है उपासना का, परमात्मा भागता चला आता है, और हृदय को घेर लेता है।

लेकिन इतनी भी वासना की जरूरत नहीं है-इतनी भी-कि वह आए, कि वह मुझे मिले। यह आखिरी कठिन बात है, जो खयाल में ले लेनी चाहिए। क्योंकि भक्त अगर यह भी कहे कि तू मुझे मिल, तो भी वासना है।

भक्त तो यह कहता है कि तू है ही चारों तरफ। बस, मैं निर्वासन। हो जाऊं, तो तू यहीं है। तू मुझे यहीं दिखाई पड़ जाएगा। मेरी आंख खुल जाए, तो तू यहीं है। सिर्फ मैं आंख बंद किए बैठा हूं इसलिए तू दिखाई नहीं पड़ता है। भक्त यह नहीं कहता है कि तू आ। इतनी भी वासना नहीं है। इतना ही कि अपने को मिटा देता है। वासना के खोते ही मिट जाता है।

वासना ही हमारे अहंकार का आधार है। जब तक हम कुछ मागते हैं, तभी तक मैं हूं। जब मैं कुछ भी नहीं मांगता, तो मेरे होने का कोई कारण नहीं रह जाता। मैं न होने के बराबर हो जाता हूं। एक खालीपन, एक शून्यता घटित हो जाती है। वही शून्यता उपासना है, वही शून्य परमात्मा की सन्निधि है।

यह जो व्यक्ति के भीतर वासना से छूटकर शून्य का निर्मित होना है, इस पर ध्यान दें। इस पर ध्यान दें, तो कोई कारण नहीं है, कोई कारण नहीं है कि जो हमारे लिए बड़े-बड़े शब्द मालूम पड़ते हैं, खाली और व्यर्थ, वे सार्थक और जीवंत न हो जाएं।

परमात्मा एक खाली शब्द है हमारे लिए। इस शब्द में हमारे लिए कुछ भी मालूम नहीं पड़ता कि क्या है। अगर कोई कहता है दरवाजा, तो दरवाजे में कोई अर्थ है, कोई कहता है पानी, तो पानी में कोई अर्थ है; कोई कहता है वृक्ष, तो वृक्ष में कोई अर्थ है, जब मैं कहता हूं परमात्मा, तब कोई भी अर्थ नहीं है।

वृक्ष कहते से वृक्ष की तस्वीर घूम जाती है। वृक्ष कहते से वृक्ष जाएगी। अगर किसी ने गाली दी, और पहले राम का स्मरण आया, का एहसास हो जाता है। दरवाजा कहते से दरवाजे की प्रतीति हो तो फिर गाली का उत्तर गाली से देना मुश्किल हो जाएगा। कैसे? कहते से कुछ भी तो निर्मित नहीं होता!

परमात्मा हमारा अनुभव ही नहीं है, इसलिए शब्द खाली है! घोड़ा हमारा अनुभव है, इसलिए शब्द आते से अनुभव भी सामने आ जाता है। परमात्मा हमारा अनुभव नहीं है, इसलिए परमात्मा शब्द खाली है। सुन लेते हैं, बार-बार सुनने से ऐसा वहम भी पैदा हो जाता है कि अर्थ हमें मालूम है।

अर्थ अनुभव में होता है, शब्दकोश में नहीं। शब्दकोश में लिखा हुआ है अर्थ, लेकिन अर्थ अनुभव में होता है। और जब तक अनुभव न हो, तब तक हम कितनी ही बार सुनें परमात्मा, परमात्मा, परमात्मा, कुछ होगा नहीं। अर्थ कहां से प्रकट होगा?

इसलिए परमात्मा को छोड़े, उपासना पर ध्यान दें। उपासना से अर्थ निकलेगा। उपासना असली चीज है। जैसे अंधे आदमी से हम कहें कि तू प्रकाश की फिक्र छोड़, तू आंख का इलाज करवा। प्रकाश की फिक्र ही छोड़ दे। जिस दिन आंख ठीक हो जाएगी, उस दिन प्रकाश प्रकट हो जाएगा। ऐसे मैं आपसे कहूं कि आप फिक्र छोड़ दें परमात्मा की, फिक्र कर लें उपासना की। उपासना आंख है। आंख जिस दिन खुल जाएगी, उस दिन परमात्मा प्रकट हो जाएगा। वह यहीं मौजूद है।

उपासना का अर्थ क्या है? उपासना का अर्थ है, हम उसकी उपस्थिति को प्रतिपल स्मरण करते रहें, अनुभव करते रहें। कुछ भी घटित हो, वही हमें याद आए। कुछ भी घटित हो, पहली खबर हमें उसकी ही मिले। कुछ भी हो जाए चारों तरफ, नंबर दो पर दूसरी याद आए, पहली याद उसकी आए। रास्ते पर एक सुंदर चेहरा दिखाई पड़े, तो सुंदर चेहरा नंबर दो हो, पहले उसकी खबर आए। एक फूल खिलता हुआ दिखाई पड़े, फूल नंबर दो हो, पहले उसकी खबर आए। कोई गाली दे, गाली देने वाला बाद में दिखाई पड़े, पहले उसकी खबर आए।

आपकी जिंदगी बदलनी शुरू हो जाएगी, उसकी खबर को प्राथमिक बना लें। इसको ही मैं स्मरण कहता हूं। उसकी खबर को प्राथमिक बना लें। रास्ते पर पागल की तरह अगर राम-राम, राम-राम कहते हुए गुजरते रहें, तो कुछ भी न होगा। बहुत लोग गुजर रहे हैं। राम-राम कहने का सवाल नहीं, स्मरण का है।

जो भी हो, पहले राम, फिर दूसरी बात। सारी जिंदगी बदल जाएगा। अगर किसी ने गाली दी, और पहले राम का स्मरण तो फिर गाली का उत्तर गाली से देना मुश्किल हो जायेगा। कैसे? रात बीच में आ गया, अब गाली देना असंभव है। मौत भी आ जाए, पहले राम का स्मरण आए। फिर मौत में भी दंश न रह जाएगा। कुछ भी हो, राम पहले खड़ा हो जाए।

इसको ही मैं उपासना कह रहा हूं। चौबीस घंटे-उठते, बैठते, सोते-राम का, प्रभु का, परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव होता रहे। धीरे-धीरे यह सघन हो जाता है। यह इतना सघन हो जाता है कि सब चीजें पिघलकर बह जाती हैं, यही सघनता रह जाती है। धीरे- धीरे सब चीजें ओझल हो जाती हैं, परमात्मा की चारों तरफ उपस्थिति हो जाती है।

फिर आप चलते हैं, तो परमात्मा आपके साथ चलता है। आप उठते हैं, तो परमात्मा आपके साथ उठता है। आप हिलते हैं, तो परमात्मा आपके साथ हिलता है। आप सोते हैं, तो उसमें सोते हैं। आप जागते हैं, तो उसमें जागते हैं। फिर चारों तरफ वही है। श्वास-श्वास में वही है। हृदय की धड़कन में वही है।

यह उपासना है। और मांग कुछ भी नहीं है। उससे चाहना कुछ भी नहीं है। और मजा यह है, जो उससे कुछ भी नहीं चाहता, उसे सब कुछ मिल जाता है। और जो उससे सब कुछ चाहता रहता है, उसे कुछ भी नहीं मिलता है।

वासना से भरा हुआ व्यक्ति दरिद्र ही मरता है, उपासना से भरा हुआ व्यक्ति सम्राट हो जाता है, इसी क्षण। वासना भिक्षा-पात्र है, मांगते रहो, मांगते रहो, वह कभी भरता नहीं। उपासना भिक्षा-पात्र को तोड़कर फेंक देना है। उपासना इस बात की खबर है कि वह हमारा ही है, उससे मांगना क्या है! वह मुझमें ही है, उससे मांगना क्या है! और जो भी उसने दिया है, वह सब कुछ है, अब और उसमें जोड़ना क्या है!

उपासना का अर्थ है, स्वयं के भीतर छिपी हुई परम संपदा का अनुभव। और वासना का अर्थ है, स्वयं के भीतर एक भिक्षा-पात्र की स्मृति कि मैं एक भिखारी का पात्र हूं, मांगता रहूं? मांगता रहूं! स्वामी राम अमेरिका गए; वे अपने को बादशाह कहते थे। उन्होंने किताब लिखी है, बादशाह राम के छः हुक्मनामे-बादशाह राम की छः आज्ञाएं। अमेरिका में पहली दफा तो जिन लोगों ने उन्हें देखा, वे थोड़े हैरान हुए कि दिमाग कुछ ढीला मालूम पड़ता है! फकीर हैं, लंगोटी लगाए हुए हैं, और अपने को बादशाह कहते हैं! और राम तो बोलते नहीं थे बिना बादशाह के! वे तो कहते थे, राम बादशाह यहां गए। बादशाह राम वहा गए, बहुत लोग वहां मिले। एक व्यक्ति ने पूछा कि आप अपने को बादशाह कहते हैं! क्या कारण? आपके पास कुछ दिखाई तो नहीं पड़ता। बादशाहत का कोई लक्षण नहीं है। भिखारी हैं।

राम ने कहा, कुछ दिन मेरे पास रहो, तो दिखाई पड़ेगा। क्योंकि बादशाहत बहुत गहरी चीज है और बाहर से दिखाई नहीं पड़ती। वह आदमी कुछ दिन राम के पास रहा। धीरे- धीरे उसे अनुभव हुआ कि यह आदमी है तो कुछ अदभुत! यह आदमी कभी किसी से कुछ मांगता नहीं! इस आदमी की कोई चाह नहीं दिखती! यह ऐसे जीता है, जैसे सारी दुनिया इसकी है! यह मागें किससे? मांगे क्यों? यह ऐसे जीता है, जैसे सारी दुनिया इसकी है। यह सुबह सूरज की तरफ ऐसे देखता है, जैसे इसकी ही आज्ञा से सूरज निकला है। यह फूलों की तरफ ऐसे देखता है, जैसे इसकी ही आज्ञा से फूल खिल रहे हैं। यह लोगों की तरफ ऐसे देखता है, जैसे इसकी ही आशा से वे श्वास ले रहे हैं।

उस आदमी ने सातवें दिन कहा कि मुझे लगता है! पहले तो मैं सोचता था कि आपका दिमाग कुछ खराब है। सात दिन रहकर मुझे ऐसा लगता है कि अगर ज्यादा मैं आपके साथ रहा, तो कहीं मेरा दिमाग खराब न हो जाए! आप बिलकुल सच में ही बादशाह मालूम पड़ते हैं! और है आपके पास कुछ भी नहीं! इसका राज क्या है? व्हाट इज दि सीक्रेट?

राम ने कहा, इसका एक ही राज है, हमने अपनी भिक्षा का पात्र तोड़ दिया, हमने मांगना बंद कर दिया। और जिस दिन से हमने मागना बंद किया, यह सारी दुनिया हमारी हो गई। और मैं तुमसे कहता हूं कि भिक्षा-पात्र तोड़ने से मुझे पता चला कि ये चांद-तारे मैंने ही बनाए हैं। और जिसने पहली दफा इन चांद-तारों को अंगुली से इशारा किया था, वह मैं ही हूं।

लेकिन राम ने कहा, तुझे जो मैं दिखाई पड़ रहा हूं उसकी मैं चर्चा नहीं कर रहा हूं! मुझे जो भीतर दिखाई पड़ता है, जो मुझसे भी पार है, मैं उसकी ही बात कर रहा हूं। उसी ने चलाए सब चांद-तारे। वही है मालिक। अब मुझे भीतर के मालिक का पता चल गया, अब मांगना किससे है!

उपासना परमात्मा की इतनी सघन प्रतीति करा देती है! वासना धीरे- धीरे दीन बना देती है; दीन से दीनतर बना देती है। वासना में जीने वाला सिकंदर भी दीन ही मरता है। वासना में जीने वाला बड़े से बडा धनपति भी निर्धन ही मरता है। वासना आखिर में भिखारी को और बड़ा कर जाती है।

मांगें मत! यह प्रार्थना शब्द है हमारे पास। हमने इतना मांगा है प्रार्थना के साथ कि प्रार्थना का मतलब ही लगने लगा मांगना! हम प्रार्थना के साथ सदा मांगते हैं, इसलिए प्रार्थना का मतलब ही मालूम पड़ने लगा, कुछ मांगना। प्रार्थना करो, इसका मतलब ही होता है, मांगो।

प्रार्थना का मतलब मांगना जरा भी नहीं है। प्रार्थना का मतलब है. उस तान में एक हो जाना, उस तान के साथ डोलने लगना, उस तान के साथ नाचने लगना, जो कि चारों तरफ मौजूद है। प्रार्थना एक लीनता है। उपासना उसकी उपस्थिति को अनुभव करने का नाम है।

और बिना मांगे जो उसे अनुभव करने को तैयार है, कृष्ण कहते हैं, वह फिर लौटता नहीं। वह फिर चक्कर के बाहर हो जाता है। वह चाक से छलांग लगाकर बाहर निकल जाता है। फिर यह चाक घूमता रहे, वह नहीं घूमता।

कभी आपने देखा हो अगर, तोतों को पकड़ने वाले शिकारी जंगल में जाकर तोतों को जिस ढंग से पकड़ते हैं। तो जरूर देखना चाहिए, न देखा हो तो। रस्सी बौध देते हैं एक, दोहरी रस्सियों को ऐंठाकर, उसमें लकड़िया बांध देते हैं। रस्सियों की ऐंठन में लकड़ियां अटका देते हैं। तोता लकड़ी पर बैठता है, उसके वजन से उलटा होकर नीचे लटक जाता है। जब बैठता है, तो लकड़ी ऊपर मालूम पड़ती है, दोनों तरफ रस्सी से बंधी। जब बैठ जाता है, तो वजन से नीचे लटक जाता है, लकड़ी उलटी हो जाती है। फिर घबड़ा जाता है और लकड़ी को जोर से पकड़ लेता है। अब उलटा लटका है, अब उसको डर लगता है कि अगर मैंने लकड़ी को छोड़ा तो गिरा। और पकड़ने वाला उसको आकर पकड़ लेता है।

लकड़ी उसको पकड़े नहीं होती, वही लकड़ी को पकड़े होता है। छोड़ दे, तो अभी उड़ जाए। लेकिन अब उसे डर लगता है कि अगर मैंने छोड़ा, तो कौन सम्हालेगा! अगर मैंने छोड़ी लकड़ी, तो उलटा लटका हूं, जमीन पर गिरूंगा, सिर टूट जाएगा। वह लटका रहता है। घंटों लटका रहता है। फंसाने वाला अगर देर से आए, तो कोई चिंता नहीं। वह जब भी आएगा, वह लटका हुआ मिलेगा।

करीब-करीब वासना में हम ऐसे ही लटके होते हैं। और जिसे हम पकड़े होते हैं, हम सोचते हैं, अगर छोड़ा तो मर जाएंगे! कौन सम्हालेगा? वह कृष्ण कहते हैं, कहते होंगे! अर्जुन से कुछ नाता-रिश्ता रहा होगा। इसलिए कहा कि तेरा योग- क्षेम मैं सम्हाल लूंगा। इधर तो हमने छोड़ी अपनी लकड़ी, कि मरे! सिर के बल गिरेंगे, सब टूट-फूट जाएगा। कोई सम्हालने वाला नहीं मिलेगा। अपना पकड़े रहो जोर से!

प्रार्थना कभी-कभी करते हैं कि हे परमात्मा! लकड़ी को जरा बड़ी कर दे, ताकि ठीक से पकड़े रहें; कि मेरे हाथों को जरा मजबूत कर, कि लकड़ी छूट न जाए! ये हमारी प्रार्थनाएं हैं।

हमारी प्रार्थनाएं हमारे बंधन को और मजबूत करने वाली हैं। हमारी प्रार्थनाएं हमारे संसार को और गहरा करने वाली हैं।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
खोज की सम्यक दिशा— अध्याय—9 प्रवचन—दसवां
सूत्र

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।23।।
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्वेनातश्च्यवन्ति ते।।24।।
यान्ति देवव्रता देवान् पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।।25।।
और हे अर्जुन यद्यपि श्रद्धा युक्त हुए जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते है, वे भी मेरे को ही पूजते हैं। किंतु उनका यह पूजन। अविधिपूर्वक है, अर्थात अज्ञानपूर्वक है। क्योंकि संपूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूं।

परंतु वे मुझे अधियज्ञ— स्वरूप परमेश्वर को तत्व से नहीं जानते है। इसी से गिरते है, अर्थात पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।

कारण यह है कि देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते है, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते है। भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते है, और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं। हसलिए मेरे भक्तों का पूनर्जन्म नही होता।

मनुष्य की खोज चाहे हो कुछ भी, चाहे माग हो कोई, चाह हो कोई, किसी भी दिशा में दौड़ता हो, कुछ भी पाना चाहता हो, लेकिन अंततः मनुष्य परमात्मा को ही पाना चाहता है। उसकी सब चाहो में परमात्मा की ही चाह छिपी होती है। उसकी सब वासनाओं में उस प्रभु की तरफ पहुंचने की ही आकांक्षा का बीज छिपा होता है। और जरूरी नहीं है कि यह उसे ज्ञात हो, इसका ज्ञान न भी हो। नहीं होता है। तो भी बीज परमात्मा की ही तलाश का है।

हम एक बीज को बोते हैं जमीन में, उस बीज को पता भी नहीं होगा कि वह किस लिए टूट रहा है और किस लिए अंकुरित हो रहा है। उसे यह भी पता नहीं होगा कि इस अंकुरण की प्रक्रिया का अंतिम रूप क्या होने को है। उसे यह भी पता नहीं है कि यह जो आकाश की तरफ उसकी दौड़ चल रही है, यह जो आकाश में शाखाओं को फैला देने का आयोजन चल रहा है, यह किस लिए है? वह किसे पाना चाहता है? उसे उन फूलों का तो कोई भी स्मरण न होगा, कोई भी स्वप्न भी नहीं होगा, जो फूल उसकी शाखाओं पर खिलेंगे। और उन बीजों की उसे कोई खबर नहीं हो सकती है, जो उसके ऊपर लगने वाले हैं। उस जीवन का भी उसे कोई अंदाज नहीं हो सकता, जो कि वृक्ष का जीवन होगा।

ठीक, आदमी भी बीज की तरह परमात्मा की तरफ बढ़ता है, अनजाने। उसे पता भी नहीं कि वह क्या खोज रहा है! क्यों खोज रहा है! उसकी सब खोजों में अंतर्निहित खोज क्या है! इसे हम थोड़ा आदमी की इच्छाओं को समझें, तो समझना आसान हो जाएगा।

एक आदमी है, जो धन चाहता है; धन के पीछे दौड़ रहा है। उससे अगर हम कहें कि वह भी परमात्मा को खोज रहा है, तो वह भी मानने को राजी नहीं होगा, दूसरे तो राजी होंगे ही नहीं। एक आदमी पद की तलाश कर रहा है, प्रतिष्ठा की, यश की। अगर हम कहें कि वह भी प्रभु को खोज रहा है, तो कौन तैयार होगा इस असंगत बात को स्वीकार करने को? एक आदमी प्रेम को खोज रहा है, और हम कहें

परमात्मा को खोज रहा है, तो कोई तालमेल नहीं मालूम पड़ता। लेकिन अगर थोड़ा गहरे उतरें, तो सीढ़ियां दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी, श्रृंखला साफ होने लगेगी।

एक आदमी धन खोजता है, किस लिए? और धन से क्या उसका प्रयोजन है ग्र

धन खोजता है तीन कारणों से। पहला, सुरक्षा के लिए, फार सिक्योरिटी। कल की कोई सुरक्षा नहीं है। अगर धन पास में है, तो कल की सुरक्षा हो जाएगी। अगर धन पास में है, तो कल के लिए निश्चित हो सकता है। अगर धन पास में है, तो कल की फिक्र छोड़ी जा सकती है।

इसका अर्थ हुआ कि धन खोज रहा है इसलिए कि एक ऐसा जीवन मिल जाए, जहां फिक्र न हो, चिंता न हो। एक ऐसा जीवन मिल जाए जहां सुरक्षा हो, असुरक्षा न हो, जहां भय न हो; जहां मैं असहाय अनुभव न करूं अपने को। वह एक ऐसा जीवन खोज रहा है। लेकिन धन खोज रहा है इस जीवन के लिए। धन से यह जीवन नहीं मिलेगा, लेकिन आकांक्षा यही है।

एक आदमी जब धन खोज रहा है, तो वह भी ऐसा धन खोजता है—दूसरी बात—जो छीना न जा सके। इसलिए तो इतना इंतजाम करता है तिजोडियों का, बैंकों का, सेफ्टी का, सारा इंतजाम करता है कि छीना न जा सके। आकांक्षा यह है कि धन हो तो ऐसा, जो कोई छीन न सके। हालाकि जो भी धन हम इंतजाम करते हैं, वह छीना जा सकता है। छीना जाता है। अब तक आदमी कोई उपाय नहीं कर पाया कि ऐसा धन खोज ले, जो छीना न जा सके। सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं।

लेकिन आदमी की आकांक्षा को खोजें, तो वह जरूर ऐसा धन खोजना चाहता है, जो फिर उसका ही हो, और फिर कभी भी ऐसा न हो कि पराया हो जाए। हर आदमी एक ऐसी संपदा खोजना चाहता है, जो सदा—सदा के लिए शाश्वत उसकी अपनी हो। परमात्मा के सिवाय ऐसी कोई संपदा हो नहीं सकती, जो छीनी न जा सके। सिर्फ वही है, जो छीना नहीं जा सकता।

आदमी जब धन खोजता है, तो—तीसरे नंबर पर—भीतर वह खालीपन अनुभव करता है, रिक्तता अनुभव करता है, उसे भर लेना चाहता है। पूरी जिंदगी दौड़कर भी, धन की राशि लग जाती है, भीतर का खालीपन नहीं भरता। लेकिन आदमी खोजता इसीलिए है कि भीतर भर जाए, एक आंतरिक फुलफिलमेंट हो, एक भीतर तृप्ति हो जाए भरापन आ जाए; ऐसी कोई कमी न मालूम पड़े, कोई अभाव न मालूम पड़े, संतुष्ट हो जाए भीतर, तृप्ति आ जाए; क्षणभर को भी ऐसा न लगे कि मुझे कुछ और चाहिए। यह तीसरी बात है।

आदमी धन इसलिए खोजता है कि ऐसी अवस्था आ जाए कि कुछ उसे मांगने को न बचे, कुछ चाहने को न बचे, ऐसा न रहे उसे कि फला चीज मेरे पास नहीं है, अभाव न खटके, खालीपन न खटके; सब मेरे पास है, ऐसी तृप्ति हो। लेकिन कितना ही धन मिल जाए, ऐसी तृप्ति होती नहीं। ऐसी तृप्ति तो केवल उसी को होती है, जिसे परमात्मा का धन मिल जाता है।

तो धन की भी खोज कितनी ही गलत हो, दिशा कितनी ही भ्रांत हो, आकांक्षा बिलकुल सही है। वह जो भीतर बीज है, वह बिलकुल सही है। मार्ग चाहे अंकुर का कितना ही विकृत हो जाए, लेकिन उसकी अनजानी खोज बिलकुल प्रामाणिक है।

एक आदमी पद चाहता है। पद चाहता है तीन कारणों से, किसी से हीन न मालूम पडुं किसी से नीचा न मालूम पड़ूं। लेकिन कितना ही कोई पद खोजें, सदा कोई न कोई आगे मौजूद रहता है। अब तक ऐसा एक भी आदमी किसी पद पर नहीं पहुंच पाया, जहां जाकर वह कह सके, अब मेरे आगे कोई भी नहीं है। कुछ भी हो जाए, कितनी ही बड़ी सीढ़ी चढ़ जाए, जितनी बड़ी सीढ़ी चढ़ता है, पाता है कि आगे और सीढ़ियों पर लोग पहले से चढ़े हुए हैं।

और ऐसा सभी को अनुभव होता है। अनुभव होने के कई जटिल कारण हैं। एक तो जिंदगी इकहरी सीढ़ी नहीं है, अनेक सीढ़ियों का जोड़ है। अगर आप एक सीढ़ी पर चढ़ जाते हैं, तो अनेक बार उसी में चढ़ने की वजह से दूसरी सीढ़ी पर नीचे उतर जाते हैं। अगर दो सीढ़ियों पर चढ़ जाते हैं, तो चार पर नीचे उतरना पड़ता है। वह कीमत चुकानी पड़ती है।

एक आदमी अगर एक बड़े पद पर पहुंच जाता है, तो पद पर पहुंचने के लिए जो बेचैनी और परेशानी उठानी पड़ती है, उसमें स्वास्थ्य खो देता है। तब एक दिन देखता है कि सड़क पर एक फकीर जा रहा है, जिसके पास स्वास्थ्य की अपार संपदा है, तब मन ईर्ष्या से भर जाता है। एक सीढ़ी पर कोई चढ़ा हुआ है, जहां वह नीचे पड़ गया है।

एक आदमी पद की दौड़ में प्रतिभा को खो देता है। असल में पद की दौड़ अगर पूरी करनी हो, तो प्रतिभा की जरूरत भी नहीं है।

प्रतिभा हो, तो खतरा है। उतनी दौड़ में जाना मुश्किल होगा। एक गहरी मूढ़ता चाहिए तो पद की दौड़ में आदमी अंधा होकर लग जाता है। वह योग्यता है। प्रतिभा खो देता है। इधर प्रतिभा खो जाती है, जिस दिन पद पर पहुंचता है, उस दिन पाता है कि चारों ओर प्रतिभा के

दीए जल रहे हैं, और सीढ़ियों में वह पिछड़ गया है। जिंदगी अनेक सीढ़ियां हैं। अगर कोई एक सीढ़ी पर चढ़ता है, दूसरों पर नीचे उतर जाता है। और किसी भी सीढ़ी पर कितना भी चढ़ जाए, फिर भी पाता है कि उससे भी ऊपर सीढ़ियों पर लोग चढ़े हुए हैं!

लेकिन आदमी की आकांक्षा सही है। आदमी चाहता है ऐसी अवस्था, जहां वह किसी से नीचा न रह जाए।

सिवाय परमात्मा को पाए और कोई उपाय नहीं है।

लेकिन एक मजे की बात है। आदमी चाहता है कि मैं किसी से नीचे न रह जाऊं, इसलिए दूसरों को नीचा करने में लग जाता है! पर उसे पता नहीं है कि जो वह कर रहा है, वही सारे लोग भी कर रहे हैं! मैं एक आदमी हूं; तीन अरब आदमी जमीन पर हैं। मैं भी इस कोशिश में लगा हूं कि किसी से नीचे न रह जाऊं। और इसके लिए दूसरों को नीचा करने में लगा हूं। तीन अरब आदमी, इसी कोशिश में वे भी लगे हैं! वे भी दूसरों को नीचा करने में लगे हैं, ताकि वे ऊपर हो जाएं। एक—एक आदमी तीन—तीन अरब आदमियों के खिलाफ लड़ रहा है! हारेगा नहीं, तो क्या होगा? तीन .अरब आदमी मुझे नीचा करने में लगे हैं; मैं तीन अरब आदमियों को नीचा करने में लगा हूं! एक पागलों की भीड़ है, जिसमें कोई कहीं पहुंच नहीं सकता।

लाओत्से ने कहा है कि मैंने तो शांति का सूत्र इसी में जाना कि उस जगह बैठ जाओ, जिससे नीची कोई जगह न हो, अन्यथा उठाए

जाओगे। उस गड्ढे में गिर जाओ, जिससे नीचा कोई गड्ढा न हो, अन्यथा लतियाए जाओगे। लाओत्से ने कहा, मैंने तो शांति और संतुष्टि इसमें पाई, जब मैंने दूसरे को नीचा करना तो दूर, अपने को सबसे नीचा स्वीकार कर लिया। उस दिन के बाद मुझे कोई नीचा नहीं कर सका है।

जीसस ने कहा है, जो आदमी पंक्ति में सबसे अंतिम खडे होने को राजी है, वही प्रथम हो जाएगा।

लेकिन हमारा क्या होगा, जो पंक्ति में प्रथम खड़े होने के लिए आतुर हैं! हम संघर्ष करेंगे, लड़ेंगे, परेशान होंगे और आखिर में पाएंगे, आगे नहीं पहुंच पाए हैं। संभवत: पंक्ति सीधी नहीं है, सर्कुलर है; गोल घेरे में है। इसीलिए तो कोई आदमी अनुभव नहीं कर पाता कि मैं आगे आ गया। कितना ही दौड़ता है, लेकिन क्यू के आगे नहीं पहुंच पाता। क्यू गोलाकार है, अन्यथा कोई न कोई पहुंच जाता। कोई सिकंदर, कोई नेपोलियन, कोई हिटलर, कोई स्टैलिन कहीं न कहीं पहुंच जाता, और एक दिन कह देता कि ठीक है, मैं क्यू! के आखिरी हिस्से में आ गया, नंबर एक हो गया! लेकिन कहीं भी कोई पहुंच जाए वह पाता है कि उसके आगे लोग मौजूद हैं।

इसका एक ही मतलब हो सकता है कि जिंदगी सीधी रेखा में नहीं चल रही है, वर्तुलाकार है, सर्कुलर है। इसलिए आप एक गोल घेरे में अगर दस—बारह लोग खड़े हैं, उनमें से कोई कितना ही दौड़े, और कितनी ही कोशिश करे, जिंदगी गंवा दे नंबर एक होने के लिए, कभी नंबर एक नहीं हो पाएगा। क्योंकि गोले में कोई नंबर एक होता ही नहीं। हमेशा कोई आगे होता है, कोई पीछे होता है। कहीं भी जाए; हमेशा कोई आगे होता है, कोई पीछे होता है। लेकिन आकांक्षा ठीक है और आकांक्षा उचित खबर देती है। वह खबर यह है कि जब तक कोई व्यक्ति अपने को परमात्मा के साथ एक. न समझ ले, तब तक हीनता नहीं मिटती। और जब तक हीनता, इनफीरिआरिटी नहीं मिटती है, तब तक ईर्ष्या भी नहीं मिटती। और जब तक हीनता और ईर्ष्या नहीं मिटती है, तब तक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश भी नहीं मिटती। और इस सबका अंतिम परिणाम चिंता और संताप के सिवाय और कुछ भी नहीं होता है। लेकिन आदमी चाहता है परम पद। वह परमात्मा को चाहता है। इसका उसे बोध न हो, इसका उसे होश न हो, यह हो सकता है।

एक और तरफ से देखें।

हर आदमी मृत्यु से भयभीत है, कंपित है। हर आदमी डरा हुआ है। चाहे कितना ही सुरक्षित हो, मौत कहीं किनारे पर खड़ी हुई मालूम पड़ती है, और किसी भी क्षण गर्दन को दबा ले सकती है। हर व्यक्ति डरा हुआ है मृत्यु से।

छोटा—सा बच्चा पैदा होता है, वह भी डरता है, डरता हुआ पैदा होता है। जोर की खटके की आवाज हो जाए, कैप जाता है। अंधेरा हो, भयभीत होने लगता है। कोई पास न हो, अकेला हो, चीखने—चिल्लाने लगता है। पहले दिन से ही भय में जन्मा हुआ है। पूरा जीवन एक भय से कंपता हुआ पत्ता है। हम उपाय करते हैं, हम कई तरह के उपाय करते हैं, ताकि मृत्यु से बच सकें। आकांक्षा बिलकुल ठीक है, लेकिन अब तक कोई मृत्यु से बच नहीं पाया, और बच भी नहीं पाएगा।

और अक्सर तो यह होता है, जो मृत्यु से बचने का जितना इंतजाम करते हैं, उतने ही जल्दी अपने ही इंतजाम में दबकर मर जाते हैं। ऐसी हालत हो जाती है, जैसे कोई आदमी मौत न आए, तो अपने चारों तरफ लोहे का एक बख्तर बनाकर पहन ले, लोहे।, के कपड़े पहन ले, कहीं से मौत न घुस जाए! तो अभी मर जाएगा। कल के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। हम सब अपनी जिंदगी को चारों तरफ से इतना सुरक्षित कर लेते हैं कि जिंदगी मर जाती है। जिंदगी असुरक्षा में है। जिंदगी तो असुरक्षा में है, अनसर्टेंटी में, अनिश्चय में। हम सब निश्चित

करके, सब व्यवस्था ठीक से बिठाकर, उसके भीतर मुर्दे की तरह बैठ जाते हैं। मौत से केवल मुर्दा बच सकता है; जो मर ही चुका है, वह भर बच सकता है। जो जिंदा है वह तो मरेगा ही।

इसलिए कितना ही हम उपाय करें, उपाय करने में मौत तो नहीं रुकती, जिंदगी गंवा बैठते हैं। उपाय में ही जिंदगी खो जाती है। मौत से बचने का उपाय करते—करते, करते—करते जिंदगी का समय चुक जाता है। घड़ी का कांटा घूम जाता है और मौत आ जाती है। और हम तब घबड़ाकर कहते हैं कि अभी तो हम सिर्फ मौत से बचने का इंतजाम कर रहे थे! यह समय तो हमने मौत से बचने में गंवा दिया! अभी हम जीए कहां थे?

जीना समाप्त हो जाता है जीने के इंतजाम में। जीने का मौका ही नहीं मिलता; अवसर नही मिलता; सुविधा नहीं मिल पाती। लेकिन आकांक्षा दुरुस्त है। मौत से बचने की आकांक्षा दुरुस्त है, लेकिन दिशा गलत है।

मौत से बचने का एक ही उपाय है कि हम उसे जान लें, जो अमृत है; हम उसे पहचान लें, जो मरता ही नहीं; हम उसके साथ अपनी एकता को खोज लें, जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। यह तो ठीक दिशा होगी। हम इंतजाम करते हैं मौत से बचने का, और उससे जुड़े जिसमें अंतर्निहित है, मृत्यु जिसका हिस्सा है। उसका हम इंतजाम करते हैं बचाने का! इंतजाम में समय व्यतीत हो जाता है और मौत आ जाती है। उसकी खोज नहीं कर पाते, जो कि कभी मरा ही नहीं है और कभी मरेगा ही नहीं। वह भी मौजूद है।

अगर यह आकांक्षा ठीक हो, तो अमृत की खोज बनेगी, अगर यह आकांक्षा गलत हो, तो मृत्यु से बचाव बनेगी। अगर धन की खोज ठीक हो, तो उस परम धन की खोज बन जाएगी, परम संपदा की। अगर गलत हो, तो हम धातु के ठीकरे इकट्ठे करने में जिंदगी व्यतीत कर देंगे। अगर पद की खोज सही हो, तो परमात्मा के सिवाय और कोई पद नहीं है। अगर गलत हो, तो हम आदमियों को नीचे—ऊंचे बिठालने में अपनी सारी शक्ति को व्यय कर देंगे। यह मनुष्य की।

(बीच से उठकर किसी ने कुछ पूछा।)

लिखकर कुछ भी दे दें, इतनी दूर से सुनाई नहीं पड़ेगा। लिखकर दे दें, और लोगों को बाधा न डालें। लिखकर पहुंचा दें।

कृष्ण ने कहा है इस सूत्र में कि हे अर्जुन, यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरे को ही पूजते हैं।

चाहे पूजा किसी की भी हो रही हो, अंततोगत्वा पूजा मेरी ही होती है, कृष्ण कहते हैं। पूजने वाले को भी पता न हो कि वह किसकी पूजा कर रहा है, लेकिन पूजा मेरी ही हो सकती है। कारण? पूजा करने वाले को भी जब पता नहीं है, तो कृष्ण किस अर्थ में कह रहे होंगे कि पूजा मेरी ही होती है?

वे इसी अर्थ में कह रहे है कि तुम्हारी वासनाए कहीं भी दौड़े और तुम्हारी पूजा किन्हीं चरणों में पड़े, और तुम श्रद्धा से कहीं भी सिर रखो, तुम मेरी ही तलाश में हो। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि कहां तुम्हारी आंख जा रही है। अंततः तुम्हारी आंख मुझे ही खोज रही है। तुम कहीं भीखोजो, तुम्हारी आँख की आंत्यतिक शरण मैं ही हूं।

किंतु उनका वह पूजना अविधि पूर्वक है, अज्ञान पूर्वक है।

पूजते वे मुझे ही हैं, फिर भी ज्ञानपूर्वक नही। क्योंकि उन्हें स्वयं ही पता नहीं है कि वे क्या खोज रहे हैं। उन्हें स्वयं ही पता नहीं है।

सकाम पूजा का अर्थ है, धन के लिए, पद के लिए जीवन के मांग रहा है परमात्मा से कुछ, किसी भी देवता के सामने मांग रहा है, इसलिए की गई पूजा; सुख के लिए की गई पूजा। मंदिर में खड़ा कोई पूजास्थल हैं; लेकिन जब भी किसी पूजास्थल पर और किसी भी देवता की प्रतिमा के समक्ष कोई कुछ मांग रहा है, तब वह अज्ञान से भरा हुआ है। क्योंकि जिसके पास होने से ही सब मिल जाता है, अगर उससे भी मांगना पड़े, तो उसका अर्थ है कि हमें पास होना ही पता नहीं है। जिसके निकट होने से ही सब मिल जाता है, उसके पास भी जाकर मांगना पड़े, तो उसका अर्थ है, हम पास पहुंचे ही नहीं, उपासना हुई ही नहीं।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, अविधिपूर्वक है। उसे विधि का भी पता नहीं है कि वह क्या कर रहा है!

अगर सूरज के सामने कोई हाथ जोड़कर खड़ा हो और कहे कि हे सूरज मुझे प्रकाश दे। तो एक बात पक्की है कि वह आदमी अंधा होगा। क्योंकि सूरज के सामने आंख खोलकर खड़े होने से प्रकाश . मिलता ही है, अब इसकी मांग की कोई जरूरत न रही। लेकिन अगर कोई आदमी मांग रहा है सूरज के सामने हाथ जोड़कर, गिड़गिड़ा रहा है, रो रहा है, घुटने टेके खडा है, और कह रहा है कि हे

सूरज, मुझे प्रकाश दे! तो एक बात तय है कि वह आदमी अंधा है। उसे यह भी पता नहीं है कि वह सूरज के सामने खड़ा है। और सूरज के सामने होने का मतलब ही प्रकाश का मिल जाना हो जाता है। और कुछ मांगने की जरूरत नहीं।

तो जो व्यक्ति परमात्मा के सामने भी कुछ मांगता हुआ पहुंचता है, एक बात पक्की है, उसे पता नहीं है कि जहां वह मांग रहा है, वहां परमात्मा है। उसकी मांग ही बता रही है कि उसे परमात्मा के पास होने का खयाल भी नहीं है। वह अपनी मांग में ही घिरा हुआ चल रहा है। चारों तरफ मांग ही उसको घेरे हुए है। उपासना संभव नहीं है उसे। वासना में ही दबा हुआ है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, चाहे वह कितनी ही विधि करता हो। विधि बहुत करता है। सच तो यह है कि जो विधि बिलकुल नहीं जानता है, वह बहुत विधि करता है। कितनी विधियां नहीं पूजा और प्रार्थना करने वाले लोग करते हैं! सकाम विधियां हजार हैं, लाख हैं। कितना—कितना उपाय करना पड़ता है! क्या—क्या सामग्री जुटानी पड़ती है! एक—एक व्यवस्था से एक—एक कदम उठाना पड़ता है।

पूजा एक पूरा रिचुअल है, एक क्रिया—काड है; उसमें जरा भी भूल—चूक नहीं होनी चाहिए; गणित की पूरी व्यवस्था है। जब कोई भी उपासक सकाम वासना से भरकर पूजा में लगता है, तो रत्ती—रत्ती हिसाब रखता है, पूरी विधि का पालन करता है। और कृष्ण कहते हैं, अविधिपूर्वक! हालांकि वे खुद ही कह रहे हैं कि हे अर्जुन, यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरे को ही पूजते हैं, किंतु उनका वह पूजना अविधिपूर्वक है।

विधि तो उन्हें भी पता है। विधि की कोई कठिनाई नहीं है। एक—एक चरण विधि का ज्ञात है, और चरण पूरा किया जाता है। लेकिन फिर भी कृष्ण अविधिपूर्वक कहते हैं!

अविधिपूर्वक कहने का कारण है। परमात्मा के पास, सिर्फ पास होना ही पर्याप्त विधि है, और किसी विधि का अर्थ नहीं है। बाकी सब विधियां स्वयं को दिए गए धोखे हैं। उसके पास होने की कला ही आ जाए, उसकी मौजूदगी को अनुभव करने का द्वार खुल जाए, तो पर्याप्त विधि हो गई। लेकिन विधि तो वे करते हैं!

कृष्ण कहते हैं, अज्ञानपूर्वक।

अज्ञान भी विधि कर सकता है, अक्सर करता है, करेगा ही; और उसको कुछ उपाय भी नहीं होता। हम सारे लोग अज्ञानपूर्वक न मालूम कितनी विधियों को विकसित कर लिए हैं! बडा जटिल जाल निर्मित किया है।

बुद्ध को हम चलते देखते हैं, उठते देखते हैं, बैठते देखते हैं—हम विधि का निर्माण कर लेते हैं। हम सोचते हैं, अगर ऐसे ही हम उठे, ऐसे ही हम चले, ऐसे ही हम बैठे, तो बुद्ध को जो हुआ है, वह हमें भी हो जाएगा।

हम मीरा को नाचते देखते हैं, गीत गाते देखते हैं, आनंद से विभोर देखते हैं। हम सोचते हैं, मीरा ने जैसे कपडे पहने, मीरा ने जैसा तिलक लगाया, मीरा जिस मंदिर के सामने खड़ी है, मीरा ने जो कृष्ण की मूर्ति बनाई, मीरा का जो पूजा का ढंग है, अगर वही ढंग हमने भी पूरा—पूरा पाला, तो जो मीरा को मिला है, वह हमें भी मिल जाएगा!

और यह हो सकता है कि हम मीरा की विधि का पूरा—पूरा अनुगमन कर लें, लेकिन जो मीरा को मिला है, वह हमें इससे नहीं मिल जाएगा। क्योंकि जो दिखाई पड़ रहा था, वह तो केवल ढांचा था, आत्मा नहीं थी, जो नहीं दिखाई पड़ रही है—विधि, उपासना, निकट होने की क्षमता—वह ढांचा नहीं है। वह दिखाई नहीं पड़ता। वह आंतरिक है। वह भीतरी है।

रामकृष्ण को पुजारी के पद पर रखा था दक्षिणेश्वर में, तो आठ दिन बाद ही ट्रस्टियों की कमेटी को रामकृष्ण को बुलाना पड़ा। शिकायतें बहुत आईं कि रामकृष्ण को पूजा करने की विधि नहीं आती। रामकृष्ण से ज्यादा गहरा पुजारी खोजना मुश्किल है पूरे मनुष्य के इतिहास में। लेकिन ट्रस्टियों की कमेटी ने, जो केवल चौदह रुपया महीना रामकृष्ण को तनख्वाह देते थे—निश्चित ही, वे मालिक थे—उन्होंने रामकृष्ण को बुला लिया अदालत में। ट्रस्टियों की अदालत बैठ गई। और उन्होंने कहा कि तुम्हें हमें निकालना पड़ेगा, क्योंकि पता चला है कि तुम्हें पूजा की विधि नहीं आती। रामकृष्ण ने कहा, पूजा और विधि का संबंध क्या है? पूजा आती है, विधि की फिक्र क्या है? और विधि आती हो, पूजा न आती हो, तो विधि का करोगे क्या?

लेकिन ट्रस्टियों को समझ में नहीं आया। आने की बात भी न थी। यह कोई बात हुई! शिकायत गहरी थी। ट्रस्टियों ने कहा कि इतनी ही नहीं है; शिकायत थोड़ी ऐसी है कि अपराधपूर्ण है। खबर हमें मिली है कि फूल पहले तुम सूंघ लेते हो और फिर चढ़ाते हो! और खबर हमें मिली है कि भोग पहले तुम लगा लेते हो, फिर भगवान को लगाते हो!

रामकृष्ण ने कहा, अपनी नौकरी सम्हालो, मैं तो ऐसे ही पूजा करूंगा। क्योंकि मेरी मां जब कुछ बनाती थी, तो पहले खुद चख लेती थी। अगर मेरे खाने योग्य ही न हो, तो मुझे नहीं देती थी। मैं भगवान को बिना चखे नहीं लगा सकता हूं। अगर खाने योग्य न हो, तो फेंक दूंगा, फिर बनाऊंगा। लेकिन यह असंभव है कि मैं पहले उन्हें चढ़ा दूं और मुझे पता ही न हो कि मैं क्या चढ़ा रहा हूं! अब यहां विधि तो पूरी टूट गई। निश्चित ही, फूल सूंघकर कैसे चढ़ाना! लेकिन रामकृष्ण कहते हैं, बिना सूंघे मैं चढ़ा ही नहीं सकता हूं। अगर फूल में सुगंध ही न हो? मुझे कैसे पता चले? और मैं तो भगवान को वही चढ़ाऊंगा, जो मुझे प्रीतिकर हो। तो मुझे पहले पता लगा लेना होगा कि प्रीतिकर मुझे है या नहीं?

रामकृष्ण ने कहा, या तो मैं पूजा ऐसी ही करूंगा और या अपनी नौकरी आप सम्हाल ले सकते हैं, क्योंकि नौकरी के लिए पूजा नहीं छोड़ी जा सकती।

अब यह जो आदमी है, कृष्ण इसको कहेंगे, विधिपूर्वक है। हालांकि विधि सब टूट गई। लेकिन फिर भी इसकी विधि में एक आत्मीयता है, और इसकी विधि में एक रस है, और इसकी विधि में एक हार्दिक प्रेम है, और इसकी विधि में फूल महत्वपूर्ण नहीं रहा, भोजन महत्वपूर्ण नहीं रहा, बाहरी औपचारिकता महत्वपूर्ण न रही, अंतस का निवेदन महत्वपूर्ण हो गया है। यह जब खड़ा है सामने भगवान के, तो सब मिट गया बाहर का। इसके भीतर का आंतरिक लगाव ही सब कुछ है।

एक दिन ऐसा हुआ कि रामकृष्ण खड़े हुए रो रहे हैं। पूजा के फूल कुम्हला गए, पूजा के लिए जलाया गया दीप बुझ गया, और रामकृष्ण खड़े रो रहे हैं, पूजा शुरू ही नहीं हुई है। जो पूजा देखने चले आए थे, वे थोड़ी देर में ऊबकर जाने लगे कि यह किस भांति की पूजा है! दीया बुझ गया, फूल कुम्हला गए, भोग भी रखा—रखा ठंडा हो गया, रामकृष्ण खड़े होकर आंख बंद किए रो रहे हैं। यह कब तक चलेगा!

लोग चले गए, मंदिर खाली हो गया, आंधी रात हो गई। रामकृष्ण ने आंखें खोलीं, और काली के सामने लटकी थी तलवार, उसको खींचकर निकाल लिया। और कहा चिल्लाकर कि बहुत चढ़ाए फूल और बहुत चढ़ाया भोग, अब तक कुछ हुआ नहीं उससे, आज अपने को ही चढ़ाता हूं!

तलवार गर्दन के पास आ गई एक झटके में, और जैसे बिजली कौंध गई। किसने हाथ से तलवार छीन ली, पता नहीं! कैसे तलवार नीचे गिर गई, पता नहीं! सुबह रामकृष्ण बेहोश मिले। बेहोश तो थे, लेकिन चेहरे पर उनके जो स्वर्ण —आभा आ गई थी, वह कभी—कभी सदियों में एकाध आदमी के चेहरे पर आती है।

तीन दिन लगे होश में आने में। तीन दिन बाद जब होश में आए, तो लोगों ने पूछा, क्या हुआ? रामकृष्ण ने कहा, पूजा हुई। पूजा पूरी हो गई।

उस दिन के बाद रामकृष्ण ने फूल नहीं चढ़ाए, उस दिन के बाद भोग नहीं लगाया, उस दिन के बाद दिनों बीत जाते थे, मंदिर के भीतर भी नहीं जाते थे। फिर तो दूसरा पुजारी रख लेना पड़ा, जो जब वे नहीं आते थे, तो पूजा कर देता था। कभी—कभी रामकृष्ण जाते थे, और जाकर ऐसी बातचीत कर लेते थे, जैसी मित्रों के बीच होती है। कोई पूछता कि आपने पूजा बंद कर दी? रामकृष्ण कहते कि अपने को ही चढ़ा दिया; अब बचा नहीं वह, जो पूजा करे।

पूजा की आत्यंतिकता तो तब है, जब कोई अपने को ही समर्पित कर देता और चढ़ा देता है। लेकिन विधिया औपचारिक हैं, फार्मल हैं, बाहर हैं। कृष्ण जानते हैं भलीभांति कि यह जो देवताओं की पूजा चलती है, विधिपूर्वक चलती है, लेकिन उसे वे अविधि कहते हैं। इसलिए क्योंकि अज्ञान में अविधि ही हो सकती है। ज्ञान में ही विधि का जन्म होता है। और वह विधि विधियों जैसी नहीं होती, वैयक्तिक होती है, निजी होती है, एक—एक व्यक्ति की अपनी होती है।

क्योंकि संपूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूं।

चढ़ाओ तुम कहीं से फूल, मुझ तक पहुंच जाते हैं, और गाओ। तुम गीत कहीं, वह मेरे पास चला आता है, और करो तुम कुछ, सभी कुछ मुझे समर्पित हो जाता है।

कृष्ण यह कह रहे हैं कि मैं केंद्र हूं अस्तित्व का। तुम कहीं भी कुछ करोगे—तुम्हारा बुरा भी, तुम्हारा भला भी, तुम्हारा ठीक भी, तुम्हारा गलत भी—सब मुझ तक पहुंच जाता है, तुम्हें पता हो या न पता हो। फर्क पड़ेगा, अगर तुम्हें पता हो। तो तुम्हारी जिंदगी में क्रांति हो जाएगी।

परंतु वे मुझ अधियज्ञ—स्वरूप परमेश्वर को तत्व से नहीं जानते

वे जो सारा जीवन मेरे आस—पास घूमते हैं, उन्हें तत्व से पता नहीं है कि वे किसकी परिक्रमा कर रहे हैं? किसका परिभ्रमण कर रहे हैं? किसके आस—पास घूम रहे हैं? घूमते रहते हैं पागल की तरह, पर उन्हें पता नहीं कि जहां वे घूम रहे हैं, वह प्रभु का मंदिर है, उसकी परिक्रमा है।

इसी से गिरते हैं, अर्थात पुनर्जन्म को उपलब्ध होते हैं।

इस संबंध में दो—तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं, जो कि भारतीय चिंतन के आधार कहे जा सकते हैं।

एक, भारतीय चिंतन सदा से विकासवादी है, एवोल्यूशनरी है। भारतीय चिंतन मानता है कि व्यक्ति को लौट—लौटकर उसी अवस्था में बार—बार नहीं गिरना चाहिए, क्योंकि उसका अर्थ हुआ कि उसके जीवन में कोई विकास नहीं हो रहा है। कल मैंने जो किया था, अगर वही भूल मैं आज भी करता हूं और कल भी करता हूं तो मेरी चेतना में कोई विकास नहीं हो रहा है। अगर जिंदगीभर मैं एक सर्किल में घूमता रहता हूं, बार—बार वही करता हूं बार—बार वही भोगता हूं तो मेरी जिंदगी विकासमान नहीं है, मेरी जिंदगी वर्तुलाकार है और चाक की भांति घूमती चली जाती है। विकासमान तो वह है, जो नए को उपलब्ध होता है और पुराने को पुनरुक्त नहीं करता। रिपीटीशन नहीं करता पुराने का, तो आगे जाता है।

एडीसन ने अपने एक पत्र में किसी को लिखा है कि रोज सांझ को सूरज से यह प्रार्थना करता हूं कि जहां तूने सुबह मुझे पाया था, वहां सांझ मुझे मत पाना; रात यह प्रार्थना करके सोता हूं कि सूरज, सांझ तू मुझे जहां छोड़ गया है, कुछ ऐसा हो कि सुबह तू मुझे वैसा ही न पाए कुछ बदल जाए, कुछ नया हो जाए।

लेकिन जैसा हमारा मन है, वह पुनरुक्त करता है। मन रिपिटीटिव है। मन की कुछ बातें मैंने आपसे पीछे कही हैं। यह बात भी आप खयाल में ले लें कि मन एक रिपीटीशन, एक पुनरुक्ति है। वही—वही रोज करता है। एक घेरा बना लेता है। जैसे छोटे बच्चों की रेलगाड़ी होती है, एक गोल पटरी पर चलती है। चाबी भर दी, पटरी का चक्कर लगा लेती है। चाबी चुक गई, फिर चाबी भर दी, फिर पटरी का चक्कर लगा लेती है। हमारी चाबी चुकती रहती है। रोज हम भरते रहते हैं भोजन से। चक्कर रोज पूरा होता रहता है। स्थूल डाल दिया, ईंधन डाल दिया शरीर में, वह अपना रोज का चक्कर पूरा कर लेता है।

कभी आप अपने चौबीस घंटे के वर्तुल का अध्ययन करें, तो आप बहुत चकित हो जाएंगे कि रोज—रोज आप वही करते हैं। रोज—रोज!

मेरा मतलब यह नहीं है कि रोज आप अलग—अलग दफ्तर में जाएं। यह भी मतलब नहीं है कि रोज—रोज नई दुकान खोलें। दुकान तो वही रहेगी, दफ्तर वही रहेगा। नहीं, लेकिन रोज—रोज आपके मन की जो चित्त—दशाएं हैं, वे भी वही होती हैं। चौबीस घंटे में आपको कितनी बार क्रोध करना है, उतनी बार आप रोज कर लेते हैं। कितनी बार उत्तेजित होना है, आप उतनी बार उत्तेजित हो लेते हैं। कितनी बार दुखी होना है, आप उतनी बार दुखी हो लेते हैं। कई बार आप चकित भी होते हैं कि अभी तो दुख का कोई कारण नहीं था, मैं दुखी क्यों हो रहा हूं?

वक्त आ गया! जैसे वक्त पर चाय पीनी पड़ती है, या सिगरेट पीनी पड़ती है, वैसे ही वक्त पर दुखी भी होना पड़ता है। वक्त आ गया। भीतर से दशा लौट आई।

मन चौबीस घंटे दोहराए चला जाता है यंत्रवत। इस मन के दोहराने को अगर हम लंबा फैलाएं पूरे जीवन के विस्तार पर, तो इसके कई वर्तुल हैं। रोज घूमता है, वर्ष प्रतिवर्ष घूमता है, फिर जीवन से दूसरे जीवन में घूमता चला जाता है। इसको पुनर्जन्म कहता है भारत।

भारत कहता है कि आदमी जैसा है, अगर वह अपने को रोज—रोज विकासमान न करे, तो वह फिर पूरा का पूरा जीवन वापस दोहर जाएगा। जन्म के बाद हम मृत्यु तक जहां तक पहुंचे हैं, मृत्यु हमें वापस पुरानी जगह पर खडा कर देगी; हम फिर से जन्म शुरू कर देंगे, फिर वही का वही, फिर वही का वही।

बुद्ध और महावीर ने एक अनूठा प्रयोग अपने साधकों के लिए खोजा था। वे तब तक किसी व्यक्ति को साधना में नहीं ले जाते थे, जब तक उसको पिछले जन्मों का स्मरण न करा दें।

बुद्ध से कोई पूछता है कि पिछले जन्म को स्मरण करने से क्या प्रयोजन है? मैं तो अभी शांत होना चाहता हूं उसका मुझे कोई रास्ता बताइए। बुद्ध ने कहा कि इसलिए, कि पहले भी पिछले जन्मों में तू यह बात किन्हीं और बुद्धों से कह चुका है कि मैं शांत होना चाहता हूं मुझे कोई रास्ता बताइए। और रास्ते तुझे पिछले जन्मों में भी बताए गए हैं, कभी तूने उनका पालन नहीं किया। तो तू मेरा समय नष्ट मत कर। मैं तुझे रास्ता बताऊंगा; पहले भी दूसरे बुद्धों से तूने रास्ते इसी तरह पूछे हैं, कभी तूने उनका पालन नहीं किया। तू सिर्फ अपनी आदत दोहरा रहा है। तू वही करेगा, जो तूने पीछे किया था। इसलिए पहले मैं तुझे याद दिला दूं। तू अपने दो —चार जन्मों का पहले स्मरण कर ले, ताकि तुझे साफ हो जाए कि तू उसी वर्तुल को फिर से तो नहीं दोहरा रहा है!

उस आदमी को बात समझ में पड़ी। एक वर्ष तक वह बुद्ध के पास पिछले जन्मों के स्मरण के लिए रुका। हैरान हुआ। पिछले जन्म में भी जब उसकी पत्नी मरी थी, तभी वह एक बुद्धपुरुष के पास गया था! उसके पहले भी उसकी पत्नी जब मरी थी, तब वह एक बुद्धपुरुष के पास गया था! और अभी भी इस जन्म में उसकी पत्नी मर गई थी, तो वह फौरन बुद्ध के पास आ गया था, कि मेरा मन बड़ा अशांत है, मुझे शांति चाहिए! और मजा यह है कि पहले जन्म में भी शांति की तलाश करते—करते नई स्त्री के मोह में पड़ गया था। और दूसरे जन्म में भी शांति की तलाश करने गया था और एक भिक्षुणी के प्रेम में पड़ गया था।

तब वह बहुत घबड़ाया। उसने बुद्ध से कहा कि यह क्या है? यह मैं कर रहा हूं या मुझसे जबरदस्ती करवाया जा रहा है?

बुद्ध ने कहा, अगर तू जानता नहीं है, तो तू करता ही चला जाएगा। क्योंकि तुझे पता ही नहीं है कि तू सिर्फ दोहर रहा है, तू सिर्फ पुनरुक्ति कर रहा है। लेकिन स्मरण नहीं है, इसलिए हम बार—बार वही दोहरा लेते हैं, बार—बार वही दोहरा लेते हैं।

छोड़े, पिछले जन्म का स्मरण तो थोड़ा कठिन पड़ेगा, लेकिन रोज का तो स्मरण है बीता कल तो आपको पता है। कल भी आपने जिस बात पर क्रोध किया था, और पछताए भी थे कि अब क्रोध नहीं करूंगा, आज भी उसी बात पर क्रोध किया है और आज भी पछताए हैं कि क्रोध नहीं करूंगा! और आज भी आप सोच रहे हैं कि अब कल क्रोध नहीं होगा, क्योंकि मैं पछता लिया हूं। लेकिन पछताए तो आप कल भी थे, परसों भी थे।

आप सिर्फ पुनरुक्त कर रहे हैं। क्रोध भी करते हैं, पछता भी लेते हैं। फिर क्रोध करते हैं, फिर पछता लेते हैं।

एक मित्र मेरे पास आते हैं; क्रोधी हैं। ऐसे तो कौन नहीं है; थोड़े ज्यादा हैं। कहते हैं कि किसी तरह मेरा क्रोध छूट जाए। बहुत पछताते हैं, रोते हैं, छाती पीटते है—जब क्रोध कर लेते हैं।

मैंने उनसे कहा, क्रोध की फिक्र छोड़ो, तुम पछताना बंद कर दो। एक काम करो। तुम जिंदगीभर से क्रोध छोड़ने की कोशिश कर रहे हो, वह तो नहीं छूटा; तुम मेरी मानो, क्रोध की फिक्र छोड़ो, तुम पछताना बंद कर लो। एक बात पक्की कर लो कि अब क्रोध होगा, तो पछताऊंगा नहीं।

उन्होंने कहा, आप कैसे खतरनाक आदमी हैं! मैं आया हूं क्रोध छोड़ने, आप मेरा पछतावा भी छुड़ा देना चाहते हैं! फिर तो मैं महानर्क में पड़ जाऊंगा।

मैंने उनसे कहा, कोई भी तो आदत तोड़ो। अगर क्रोध की नहीं टूटती, पछतावे की तोडो; सर्किल टूट जाएगा; पछतावा ही तोड़ो। तो दूसरे क्रोध को आने का मौका नहीं रहेगा, क्योंकि बीच की एक सीढ़ी हट गयी। अब तक की व्यवस्था यह है तुम्हारी—क्रोध, पछतावा, क्रोध, पछतावा; क्रोध। यह तुम्हारा सर्किल है। कहीं से भी सर्किट तोड़ो, कहीं से भी तार को अलग खींच लो। क्रोध से नहीं खींच सकते, पछतावे से खींच लो। अगर पछतावा नहीं कर पाए, तो मैं वचन देता हूं कि दूसरा जो क्रोध इसके पीछे आना चाहिए, उसके लिए रास्ता नहीं मिलेगा।

यह आप चकित होंगे जानकर कि आप इसलिए नहीं पछताते हैं कि आप जानते हैं कि क्रोध बुरा है। आप इसलिए पछताते हैं, ताकि क्रोध की पहली अवस्था फिर से पा ली जाए, और फिर से आप क्रोध करने में समर्थ हो जाएं।

पछतावा जो है, वह क्रोध की ट्रिक है। पछतावा जो है, पश्चात्ताप जो है, वह क्रोध की होशियारी है, वह अहंकार की उस्तादी है, चालाकी है। जब आप क्रोध कर लेते हैं, तो आपको लगता है, उतना अच्छा आदमी नहीं हूं जितना मैं अपने को समझता था। पछतावा करके आप फिर समझते हैं कि उतना ही अच्छा आदमी हूं जितना अपने को समझता था। अहंकार अपना पुराना लेबल फिर से पा लेता है; वहीं पहुंच जाता है, जहां क्रोध के पहले था।

क्रोध के कारण एक गड्ढे में पड़ गए थे, क्रोध के कारण थोड़ी दीनता आ गई थी। क्रोध के कारण मन को लगा कि उतना अच्छा आदमी नहीं हूं, जितना दावा करता था। पछतावा करके वापस अपनी जगह खड़ा हो गया, उसी जगह, जहां क्रोध के पहले था। अब आप फिर क्रोध कर सकते हैं, क्योंकि उसी जगह से आपने क्रोध किया था।

मन एक पुनरुक्ति है। और मन के आधार पर जीने वाला आदमी अपने पूरे जीवन को एक पुनरुक्ति बना लेता है, जस्ट ए रिपीटीशन, ए मैकेनिकल रिपीटीशन; यंत्रवत घूमते चले जाते हैं। इसका जो बड़े से बड़ा वर्तुल है, वह पूरा जीवन है। सिर्फ भारत को इस बात का खयाल आ पाया।

भारतीय धर्मों के अतिरिक्त दुनिया का कोई धर्म पुनर्जन्म का खयाल नहीं करता, रि—बर्थ का ख़याल नहीं करता। क्योंकि भारत के अलावा दुनिया के किसी धर्म ने मनुष्य के मन की इस कीमिया को ठीक से नहीं समझा कि अगर मनुष्य का मन पुनरुक्त करता है, तो पूरा जीवन भी एक वृहदकाय वर्तुल होगा और आदमी फिर पुनरुक्त करेगा! और हमने बार—बार किया है!

हम बार—बार उसी तरह लोभ में पड़े हैं, अनेक जन्मों में। बार—बार उसी तरह वासना में गिरे हैं, अनेक जन्मों में। बार—बार मकान बनाए, धन कमाया, पद कमाया। बार—बार असफल हुए, अनेक जन्मों में। और हर बार फिर वही, हर बार फिर वही!

कृष्ण कहते हैं कि ऐसे जो देवताओं को भजते हैं, बिना मुझे जाने, अर्थात जो अपनी वासनाओं को ही उपासना बना लेते हैं, जो किसी माग से प्रार्थना करते हैं, वे बार—बार गिरते हैं और पुनर्जन्म को उपलब्ध होते हैं। कारण यह है कि देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं।

यह बहुत कीमती सूत्र है।

कारण यह है कि पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। कारण यह है कि भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं। कारण कि व्यक्ति जो भी पूजता है, अंततः वही हो जाता है। और व्यक्ति जो भी पूजता है, अंततः उससे ऊपर नहीं जा सकता। कोई भी व्यक्ति अपने श्रद्धेय से ऊपर नहीं जा सकता।

इसे थोड़ा हम समझ लें।

आप जिसको श्रद्धा करते हैं, वह आपका मैक्सिमम, आपका श्रेष्ठतम, अंतिम बिंदु हो गया। श्रद्धा जरा सोचकर करना, क्योंकि श्रद्धा आपके भविष्य की लकीर हो जाएगी। जिसको आप श्रद्धा

करते हैं, उससे ऊपर आप कभी नहीं जा सकते हैं। आपकी श्रद्धा आपका अंतिम बिंदु बन जाती है। वह आपके व्यक्तित्व के विकास का लक्ष्य हो जाती है। तो आदमी जिसको पूजता है, अनजाने तय कर रहा है कि यही मैं होना चाहता हूं।

ध्यान रखें, आज अगर सड़क से एक संन्यासी जा रहा हो, तो कोई भीड नहीं लग जाती उसके आस—पास। कभी लगती थी। आज से दो हजार साल पीछे, बुद्ध अगर गांव से गुजरते, संन्यासी गाव से गुजरता, तो भीड़ लग जाती थी। सारा गांव इकट्ठा हो जाता था। क्योंकि चाहे कोई दुकान कर रहा हो, चाहे कोई खेती कर रहा हो, अंतिम श्रद्धा यही थी कि एक दिन मुझे भी संन्यासी हो जाना है। चाहे न हो पाए; तो इसकी पीड़ा रह जाएगी, दंश रह जाएगा। लेकिन आज संन्यासी को देखकर कोई भीड़ इकट्ठी नहीं होती। ही, अभिनेता निकलता हो, तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। वह हमारी श्रद्धा है। वही हम होना चाहते हैं। भला न हो पाएं, भला न हो पाएं, होना वही चाहते हैं।

जो हम होना चाहते हैं, वह हमारा श्रद्धा—पात्र हो जाता है। श्रद्धा—पात्र का अर्थ है, वह मेरे भविष्य की तस्वीर है, यही मैं होना चाहता हूं। और जो व्यक्ति जिसको श्रद्धा करता है, धीरे— धीरे वैसा ही हो जाता है। हो ही जाएगा, क्योंकि श्रद्धा से हमारी आत्मा निर्मित होती है, और श्रद्धा हमारी आत्मा का गठन करती है, और श्रद्धा हमारी आत्मा को रूपांतरित करती है। श्रद्धा सोचकर करना! बहुत होशियारी से, बहुत बुद्धिमानी से। क्योंकि श्रद्धा ढांचा बनेगी, जिसमें अंततः आप ढल जाएंगे।

तो कृष्ण कहते हैं, जो देवताओं को पूजते हैं, वे देवताओं को प्राप्त होते हैं।

लेकिन देवता तो स्वयं ही वासनाओं से घिरे हुए जीते हैं! चाहे इंद्र हो, तो भी वासनाओं से भरा हुआ जीता है! हम सबको कथाएं पता हैं कि अगर पृथ्वी पर कोई आदमी बहुत तपश्चर्या करे, तो इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है। इसका मतलब यह है कि ईर्ष्या से वह भर जाता है, क्योंकि उसे डर होता है कि कोई दूसरा समर्थ आदमी इंद्र होने की स्थिति में आया जा रहा है। अगर यह सफल हो गया तपश्चर्या में, तो मुझे पद से हट जाना पड़ेगा, और यह आदमी मेरे पद पर बैठ जाएगा।

तो इंद्र बेचारा चौबीस घंटे अपने सिंहासन को बचाने में ही लगा हुआ है! कहीं कोई तपश्चर्या करे, कठिनाई उसे होती है! भेजता है उर्वशियों को, अप्सराओं को कि जाकर भ्रष्ट करो! इस आदमी को डांवाडोल करो! यह थोडा डांवाडोल हो जाए, तो मेरा सिंहासन स्थिर हो जाए।

जो भी सिंहासन पर है, वह सदा डरा हुआ रहेगा ही; घबड़ाया रहेगा।

मैंने सुना है, इटली में एक बहुत पुराना मंदिर है; अभी भी है। उसकी बड़ी पुरानी कथा है और बड़ी हैरानी की है। उस मंदिर का इतिहास अनूठा है। एक पहाड़ की तलहटी में एक छोटी—सी झील के पास वह मंदिर है, एक बड़े वृक्ष के नीचे। उस मंदिर का जो पुजारी है, वह

दुनिया के इतिहास में अनूठे ढंग का पुजारी है। उस मंदिर का पुजारी बनने का एक ही उपाय है; अगर कोई व्यक्ति मौजूद पुजारी की हत्या कर दे, तो ही वह व्यक्ति वहां का पुजारी बन सकता है।

तो तलवार लिए पुजारी खड़ा रहता है चौबीस घंटे। क्योंकि पूरे वक्त सोना मुश्किल हो जाता है। सो नहीं सकता। सोए, कि गए! जिंदगी हराम हो जाती है, क्योंकि पूरे वक्त.। और कोई नहीं है उस जंगल में, उस वृक्ष के नीचे एक पुजारी अपनी तलवार लिए अपनी रक्षा करता रहता है। और आज नहीं कल, उसे पता है कि मौत तो होगी ही। क्योंकि वह भी इसी तरह पुजारी बना है! वह भी किसी को इसी तरह मारा है, तभी पुजारी बना है। और यह सतत परंपरा है। कोई उसे मारेगा और पुजारी बनेगा। और जो बनेगा पुजारी, वह भलीभांति जानता है कि वह जिस जगह जा रहा है, वहां तलवार लिए खड़े रहना है, और कोई उसकी हत्या करेगा।

यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है! सभी पदों की हालत ऐसी ही है। जो भी वहा पहुंचता है, किसी को मारकर, हटाकर, परेशान करके पहुंचता है। पहुंचते से ही फिर उसको चौबीस घंटे तलवार लिए खड़े रहना पड़ता है, क्योंकि जिस रास्ते से वह आया है, उसी रास्ते से दूसरे भी आएंगे। और उसे पक्का मालूम है कि वह सदा वहां नहीं रह सकता, कोई आएगा पीछे। क्योंकि अगर सदा वहां कोई रह सकता होता, तो वह खुद भी वहां नहीं पहुंच सकता होता। कोई और ही रहा होता। वह पहुंच गया; कोई और पहुंच जाएगा।

हर पद के पास, हर धन के पास, हर प्रतिष्ठा के, हर सिंहासन के पास मौत की घबड़ाहट है। इंद्र घबड़ाया हुआ है; देवता घबडाए हुए हैं। वासना से भरे हुए हैं, इच्छाओं से भरे हुए हैं। कृष्ण कहते हैं कि देवताओं को पूजकर ज्यादा से ज्यादा अगर कोई आदमी पूरी तरह सफल हो गया, तो देवता हो जाएगा, इससे ऊपर नहीं जा सकता।

लेकिन देवता कोई बहुत ऊंची अवस्था नहीं है। यह भी बहुत हैरानी की बात है कि भारत अकेला देश है, जो देवताओं की अवस्था को बहुत ऊंची अवस्था नहीं मानता! और यह भी मानता है कि देवताओं को भी अगर मुक्त होना हो, तो उन्हें पहले मनुष्य होना पड़ेगा। मनुष्य चौराहा है। देवता का एक रास्ता है, मनुष्य से जाता है आगे। मालूम पड़ता है, आगे जाते। लेकिन अगर देवता को भी मुक्त होना है, तो उसे वापस चौराहे पर लौटकर मुक्ति का रास्ता पकड़ना पड़ेगा।

मनुष्य चौराहा है, क्रास—रोड है। पशु को भी अगर मुक्त होना है, तो मनुष्य होना पड़ेगा; देवता को भी मुक्त होना है, तो मनुष्य होना पड़ेगा। एक अर्थ में देवता ऊपर मालूम पड़ सकता है, क्योंकि ज्यादा सुख में है। लेकिन एक अर्थ में नीचे है, क्योंकि देवता की स्थिति से अंतिम ट्रासफामेंशन, अंतिम क्रांति नहीं हो सकती, उसे मनुष्य तक वापस लौटना पड़ेगा।

मनुष्य से ही कोई क्राति संभव है। इस अर्थ में भी भारत ने. देवताओं के पास मनुष्य से ज्यादा शक्ति है, ज्यादा उम्र है, ज्यादा इच्छाओं की पूर्ति का साधन है, ज्यादा सुख है—सब कुछ है—लेकिन आत्मक्रांति का उपाय नहीं है। उन्हें वापस लौट आना पड़ेगा।

इसलिए भारत ने मनुष्य को एक अर्थ में चरम माना है। मनुष्य की इतनी गरिमा दुनिया में कहीं भी नहीं है। इस अर्थ में चरम माना है कि सिर्फ मनुष्य की ही आत्मा में मुक्त होने की आत्यंतिक घटना घट सकती है, परम स्वतंत्रता और प्रभु का दर्शन मनुष्य के साथ ही घटित हो सकता है। पशु के साथ नहीं हो सकता, क्योंकि वे भी अज्ञान में हैं, और देवताओं के साथ भी नहीं हो सकता, क्योंकि वे भी अज्ञान में हैं। पशु दुख में होगा, देवता सुख में होंगे, लेकिन दोनों अज्ञान में हैं। मनुष्य के साथ घटना घट सकती हैं तीनों।

भारत कहता है कि मनुष्य नीचे गिरना चाहे, तो पशुओं से नीचे गिर सकता है, ऊपर उठना चाहे, तो देवताओं से पार जा सकता है, और मुक्त होना चाहे, तो समस्त घेरे के बाहर छलाग लगा सकता है।

कृष्ण कहते हैं, जो पूजा करेगा पितरों की, वह पितरों को प्राप्त हो जाएगा। जो भी पूजा होगी, अगर सफल हो गए, तो वही हो जाओगे।

और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसलिए मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं है। मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं! जो मुझे भजता है, वह धीरे— धीरे, धीरे— धीरे मुझमें ही एक हो जाता है।

सिर्फ परमात्मा की पुनरुक्ति नहीं होती, बाकी सब चीजें पुनरुक्त होती हैं। सिर्फ परमात्मा का कोई रिपीटीशन नहीं होता, बाकी सब चीजें दोहरती हैं। जो शाश्वत है, वही पुनरुक्त नहीं होता।

इसे समझना कठिन पड़ेगा; पर दो—तीन बातें खयाल में लें, तो शायद समझ में आ जाए।

दुनिया में सब चीजें नई होती हैं, क्योंकि सभी चीजें पुरानी पड़ जाती हैं। जो भी नई है, वह कल पुरानी हो जाएगी। जो आज पुरानी है, ध्यान रखना, वह कल नई थी। सिर्फ परमात्मा न नया है और न पुराना। वह सिर्फ है। वह कभी पुराना नहीं पड़ेगा, क्योंकि वह कभी नया नहीं था।

जो चीज नई है, वही पुरानी हो सकती है। जो नई नहीं है, उसके पुराने होने का कोई उपाय न रहा। तो परमात्मा न नया है, न पुराना। इसलिए हमने एक अलग शब्द गढ़ा है, वह है सनातन, वह है शाश्वत, वह है अनादि, अनंत। इस भाषा में हमने उसे कहा है कि वह सदा है। परमात्मा पुराना नहीं होता, नया नहीं होता, बस होता है।

जो चीज नई है, वह कल पुरानी हो जाएगी। और जब पुरानी हो जाएगी, तो फिर नए होने के लिए संभावना शुरू हो जाएगी। जो चीज पुरानी है, वह कल पुरानी हो —होकर नष्ट हो जाएगी, खो जाएगी; फिर नए होने का मौका मिल जाएगा।

दुनिया में सब चीजें दोहरती रहती हैं। कई दफे बहुत हैरानी की बातें होती हैं। अगर आप दुनिया के फैशन का इतिहास देखें, तो बहुत चकित हो जाएंगे! दस—पांच साल में फैशन वापस आ जाते हैं। जिन कपड़ों को दस—पांच साल पहले पुराना समझकर छोड़ दिया, दस—पांच साल बाद वे लौट आते हैं। जिन बालों के ढंग को दस—पांच साल पहले पुराना समझकर छोड़ा था, दस—पांच साल बाद वे वापस लौट आते हैं!

दस—पांच साल काफी वक्त है। पुरानी चीजें भूल जाती हैं, फिर नई हो जाती हैं। और आदमी की स्मृति इतनी कमजोर है कि वह देख ही नहीं पाता, वह खयाल भी नहीं कर पाता कि हम क्या कर रहे हैं! फिर वही चुनकर ले आता है, फिर वही चुनकर ले आता है। आदमी के मन के साथ नए और पुराने का खेल चलता रहता है, पुनरुक्ति चलती रहती है।

कृष्ण कहते हैं, जो मुझे उपलब्ध होता है, वह पुनर्जन्म को उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि वह शाश्वतता के साथ एक हो गया।

इसका दूसरा अर्थ भी है। पुनर्जन्म तो उसका ही होता है, जो समझता हो कि मेरा जन्म होता है। और जो समझता है कि मेरा जन्म होता है, फिर उसे मृत्यु की भी पीड़ा भोगनी पडती है। परमात्मा को जो जानने लगता है, वह तो जानता है कि न मेरा जन्म होता है और न मेरी मृत्यु होती है। तो जन्म और मृत्यु साधारण घटनाएं रह जाती हैं, हवा के बबूलों की तरह। और वह तो जन्म के भी पहले होता है और मृत्यु के भी बाद होता है। अब उसका कोई जन्म और मृत्यु नहीं होती।

बुद्ध से कोई पूछता है, मरने के दिन, कि क्या आप मृत्यु के बाद कहीं होंगे या बिलकुल खो जाएंगे? तो बुद्ध कहते हैं, अगर मैं मृत्यु के पहले कहीं था, तो रहूंगा। अगर पहले ही खो गया, तो पीछे भी बचेगा क्या?

सुनने वाले की समझ में नहीं आया है, उसने फिर दूसरी तरह से पूछा। उसने पूछा कि छोड़े, यह जरा कठिन है। मैं यह पूछता हूं जन्म के पहले आप कहीं थे या जन्म के बाद ही आप हुए?

बुद्ध ने कहा, अगर जन्म के पहले मैं कहीं था, तो जन्म के बाद भी कहीं रहूंगा; और अगर जन्म के बाद भी कहीं नहीं था, तो जन्म के पहले भी कहीं नहीं था।

पर उस आदमी की समझ में नहीं आया। उसने कहा, पहेली में मत जवाब दें। मुझे सीधा—सीधा कहें। तो बुद्ध ने कहा, जिसे तुम देखते हो, वह तो जन्म के साथ पैदा हुआ है और मृत्यु के साथ मर जाएगा। लेकिन जिसे मैं देखता हूं वह कभी पैदा नहीं हुआ और कभी मरेगा भी नहीं। लेकिन वह देखना आंतरिक है, वह देखना भीतर है। वह सिर्फ मैं ही देख सकता हूं; तुम्हें वह दिखाई नहीं पड़ेगा। तुम भी देख सकते हो, अगर तुम अपने भीतर देखने में समर्थ हो जाओ।

लेकिन हम सबका देखना बाहर है। बाहर जो हमें दिखाई पड़ता है, वह तो जन्म और मृत्यु का घेरा है। भीतर कोई हमारे जरूर छिपा है, जो न जन्मता है और न मरता है। उसकी अगर पहचान हो जाए, तो फिर कोई पुनर्जन्म नहीं है, फिर कोई लौटना नहीं है।

लौटने को एक तीसरी तरह से भी समझें।

अगर कुछ बच्चे एक क्लास में पढ़ रहे हों, और हर साल उन्हें वापस परीक्षा के बाद उसी क्लास में भेज दिया जाए, तो इसका क्या मतलब होगा? इसका एक ही मतलब होगा कि पढ़ा—लिखा उन्होंने बहुत होगा, लेकिन गुना बिलकुल नहीं, पढ़ा—लिखा बहुत होगा, लेकिन समझा बिलकुल नहीं; पढ़ा—लिखा बहुत होगा, मेहनत बहुत की होगी, लेकिन कोई ग्रोथ, कोई विकास, कोई बढ़ती उनके भीतर नहीं हुई। वापस उसी क्लास में लौटा दिए गए।

जीवन तभी हमें वापस भेजता है किसी स्थिति में, जब हम उससे बिना कुछ सीखे गुजर जाते हैं। जिस स्थिति से आप बिना सीखे गुजर जाएंगे, आपको वापस लौटना पड़ेगा। सिर्फ उसी स्थिति में आप वापस नहीं लौटेंगे, जिससे आप सीखकर गुजर जाएंगे।

लेकिन हम हर चीज से बिना सीखे गुजर जाते हैं! कितनी बार क्रोध किया—सीखा क्या? कितनी बार प्रेम किया—सीखा क्या? कितनी बार कामवासना में डूबे—सीखा क्या? कितनी बार ईर्ष्या की—सीखा क्या? कितना लोभ किया—जिंदगी में बहुत कुछ किया—सीखा क्या? संपत्ति क्या है? सार क्या है? हाथ में निचोड़ क्या है?

अगर निचोड़ कुछ भी नहीं है, तो आपको लौटना पड़ेगा। जिंदगी किसी को क्षमा नहीं करती, जिंदगी फिर अवसर देगी। जिंदगी फिर कहेगी कि वापस उसी जगह लौट जाओ!

और हम ऐसे हैं कि बार—बार लौटकर हम पुख्ता होते चले जाते हैं। धीरे— धीरे हमको लगता है कि इस क्लास में वापस आना, यह तो अपना घर है! उसमें हम वापस आए चले जाते हैं। सीखना शायद और मुश्किल होता चला जाता है। हम अभ्यासी हो जाते हैं। हम अभ्यासी हो जाते हैं। और हममें जो अभ्यासी हैं, वे कभी—कभी आगे निकल जाते हैं। मैं जानता हूं।

मैं एक क्लास में नया—नया पहुंचा; बाकी सब विद्यार्थी तो एक ही उम्र के थे, एक विद्यार्थी बहुत उम्र का था। तो मैंने शिक्षक को पूछा, तो उन्होंने कहा कि यह छ: साल से इसी क्लास में हैं; लेकिन अब कैप्टन हो गए हैं। क्लास के कैप्टन हैं! और वह लड़का अकड़कर खड़ा था। निश्चित ही। छ: साल वापस उसी क्लास में लौटने का चुकता परिणाम इतना हुआ है कि वे अब कैप्टन हो गए हैं! अब वे उस क्लास से शायद जाना भी न चाहें, क्योंकि दूसरी क्लास में कैप्टन वे न हो पाएंगे।

इस जिंदगी में भी जो बहुत तरह के कैप्टन दिखाई पड़ते हैं—राजनीति में, धन में, यहां—वहां—उनमें अधिक लोग इसी तरह के हैं, जो पुख्ता हो गए हैं, मजबूत हो गए हैं, दोहर—दोहरकर जिंदगी में इतने यंत्रवत मजबूत हो गए हैं, कि जो नए बच्चे आ रहे होंगे जिंदगी में, उनके सामने, कोई राष्ट्रपति, कोई प्रधानमंत्री, कोई कुछ होकर खड़ा हो जाता है। उनसे अगर कहो भी कि जन्म—मरण से छुटकारा, वे कहेंगे कि नहीं, हम तो बार—बार किसी तरह इसी पद पर लौटते रहें, यही आकांक्षा है!

जिंदगी में जो कई बार सफल दिखाई पड़ते हैं, उनका एक ही कारण हो सकता है गहरे में कि जिंदगी के असली लक्ष्य से वे असफल हो गए हैं। मगर यह बड़ा कठिन है समझना। जो जिंदगी में तथाकथित सफलता दिखाई पड़ती है, सो—काल्ड सक्सेस, इसके पीछे जिंदगी की बड़ी गहरी असफलता कारण हो सकती है! बहुत बार लौट—लौटकर इसी जगह वे काफी ज्ञानी और अनुभवी हो गए हैं! इसी क्लास में उन्हें सब रट गया है, सब कंठस्थ हो गया है, कुशल, चालाक हो गए हैं। यद्यपि अनुभव उन्हें कुछ भी नहीं हुआ, क्योंकि अनुभव हो जाए तो लौटने का कोई उपाय नहीं है।

जिस चीज को हम जान लेते हैं, हम उसको ट्रासेंड कर जाते हैं; उसके पार निकल जाते हैं। लेकिन जो आदमी परमात्मा को ही जान लेगा, फिर तो उसके कहीं भी लौटने का कोई उपाय न रहा, क्योंकि जीवन की अंतिम शिक्षा पूरी हो गई।

परमात्मा का अर्थ है, जीवन का अंतिम निष्कर्ष, अस्तित्व का सार, अस्तित्व का केंद्र; अस्तित्व का आखिरी कमल खिल गया, अस्तित्व ने आखिरी गीत गा लिया, अस्तित्व ने आखिरी नृत्य देख लिया, अस्तित्व की जो गहनतम संभावना थी, वह अभिव्यक्त हो गई; अब लौटने का कोई उपाय न रहा।

तो परमात्मा जो है, वह प्वाइंट आफ नो रिटर्न है। वहां से आप वापस नहीं गिर सकते। और जहां से भी आप वापस गिर सकते हैं, वहां तक जानना कि परमात्मा नहीं है, वहां तक संसार है। और जहां से भी आप वापस गिर सकते हैं, तो समझ लेना कि आप छलांग लगाकर उचकने की कोशिश किए होंगे, लेकिन वह नई अवस्था आपके लिए सहज नहीं थी। आप अपनी पुरानी अवस्था में गिर गए हैं।

एक आदमी छलांग लगाए आकाश में, तो क्षणभर के लिए उचक सकता है। फिर जमीन खींच लेगी। अपनी जगह फिर खड़ा हो जाएगा। अगर आकाश में छलाग ही लगानी हो, तो फिर जमीन का गुरुत्वाकर्षण तोड्ने का कोई उपाय करना पड़ेगा। हवाई जहाज कोई उपाय करता है, तो जमीन के गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाता है, या जमीन के गुरुत्वाकर्षण के रहते भी आकाश में सदा रह जाता है। हम सब ऐसे हवाई जहाज हैं, जिनको यह पता ही नहीं है कि हम जमीन के गुरुत्वाकर्षण से ऊपर उठ सकते हैं। और हमारा उपयोग लोकवाहक की तरह, पब्लिक कैरियर की तरह किया जा रहा है!

समान ढो रहे हैं, जमीन पर ही। हवाई जहाज से हम चाहें तो ठेले का काम भी ले सकते हैं, लारी का, ट्रक का। और अगर हवाई जहाज के पायलट को खयाल ही न हो कि यह हवाई जहाज जमीन को छोड़कर भी उड़ सकता है, तो बेचारा जमीन पर ही ट्रक का काम करता रहेगा; जमीन पर ही सामान ढोता रहेगा!

ध्यान रहे, ट्रक तो आकाश में नहीं उड़ सकता, लेकिन हवाई जहाज जमीन पर चल सकता है। श्रेष्ठ में निकृष्ट तो समाया होता है, लेकिन अगर आप निकृष्ट के आदी हो जाएं, तो श्रेष्ठ का खयाल ही मिट जाता है।

परमात्मा के स्मरण का इतना ही अर्थ है, उसकी पूजा का इतना ही अर्थ है, कि तुम्हीं हो मेरे गंतव्य, कि जब तक मैं तुम्हीं न हो जाऊं, तब तक मेरे लिए कोई भी ठहराव नहीं है, तुम्हीं हो मुकाम, और जब तक तुम्हीं न मिल जाओ, तब तक मेरे लिए कोई पड़ाव पड़ाव नहीं है। रुकूंगा, रातभर ठहरूंगा, सिर्फ इसलिए कि सुबह चल सकूं! रुकूंगा, विश्राम कर लूंगा, सिर्फ इसलिए कि पैर थक गए; और पैरों की ताकत लौट आई तो फिर चल पड़ूगा।

लेकिन हम भी, चलते तो हम भी बहुत हैं, लेकिन हमारा चलना ऐसा है कि जिस जमीन पर हम बार—बार चल चुके हैं, हम उसी पर लौट—लौटकर चलते रहते हैं। एक ही जगह को हम कई बार पार करते रहते हैं। हमारी जिंदगी गति नहीं करती; जैसे कि मालगाड़ी के डब्बे शंटिंग करते हैं स्टेशन पर, वैसी हमारी जिंदगी है, वहीं—वहीं शंटिंग करते रहते हैं। कहीं कोई अंतिम मुकाम नहीं आता। बस, दौड़— धूप में, आखिर में यह शंटिंग होते—होते हम टूटते और चुक जाते हैं।

पुनर्जन्म का अर्थ है, शंटिंग। उसका अर्थ है कि यात्रा पर नहीं निकल पा रहे हैं आप। फिर वहीं लौट आने का अर्थ है कि आगे कोई गति नहीं सूझ रही है आपको।

कृष्ण कहते हैं, लेकिन जो मुझे भजता है, वह फिर नहीं लौटता है। क्योंकि वह भजन अंतिम है।

परमात्मा अंतिम निष्कर्ष है—आखिरी, दि अल्टिमेट, परम। उसके पार कुछ नहीं है। या हम ऐसा कहें, जिसके पार हमारी कोई समझ नहीं जाती, वही परमात्मा है। जिसके पार हम सोच भी नहीं सकते; जिसके अतीत और जिसके पार की कल्पना भी नहीं बनती, वही परमात्मा है।

इस परमात्मा के भजने, इस परमात्मा के पूजने का क्या अर्थ? कैसे कोई पूजेगा? तीन बातें अंत में आपसे कहूं।

एक, जीवन को पुनरुक्ति न बनने दें, स्मरणपूर्वक पुनरुक्ति से बचें। डोंट गो ऑन रिपीटिंग, दोहराए मत चले जाएं। कहीं से भी ढांचे को तोडे। और कहीं से भी इस दोहरती हुई यांत्रिक प्रक्रिया के बाहर हो जाएं। छोटे—मोटे प्रयोग से भी आदमी बाहर होना शुरू हो जाता है, बहुत छोटे—मोटे प्रयोग से!

हमारी सबकी प्रतिक्रियाएं बंधी हुई हैं। अगर मैंने आपको गाली दी, तो प्रेडिक्टेबल है कि आप क्या करोगे! जो आपको जानते हैं, वे भलीभांति बता सकते हैं कि आप क्या करोगे! एक पत्नी बीस साल पति के साथ रहकर भलीभांति जानती है कि अगर वह यह कहेगी, तो पति यह जवाब देगा! आदमी प्रेडिक्टेबल हो जाता है। पति भलीभांति जानता है कि घर पहुंचकर पत्नी क्या पूछने वाली है! उत्तर भी रास्ते में तैयार कर लेता है कि वह यह कहेगी, यह उत्तर हो जाएगा! और यह भी जानता है कि इस उत्तर को वह मानने वाली नहीं है। पत्नी भी जानती है कि मैं यह पूछूंगी, तो क्या उत्तर मिलेगा! जानते हुए भी कि यह उत्तर मिलेगा, वह पूछेगी; उत्तर पाएगी, मानेगी नहीं। लेकिन कहीं से भी हम अपनी यंत्रवत व्यवस्था को तोड़ेंगे नहीं।

कहीं से भी तोड़े। कोशिश करें अनप्रेडिक्टेबल होने की। कोशिश करें कि आपके बाबत भविष्यवाणी न हो सके। कोई यह न कह सके कि अगर हम चांटा मारेंगे, तो वे क्या करेंगे!

जिस दिन आप अनप्रेडिक्टेबल हो जाते हैं, जिस दिन आपके बाबत कोई प्रतिक्रिया को पूर्व—घोषित नहीं किया जा सकता, आप पहली दफा मनुष्य होते हैं। उसके पहले आप यंत्रवत होते हैं।

कुछ नहीं कहा जा सकता, अगर जीसस के गाल पर आप चांटा मारे, तो जीसस क्या करेंगे, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अगर बुद्ध को आप पत्थर मारे, तो बुद्ध क्या करेंगे, कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

एक आदमी ने बुद्ध के ऊपर आकर थूक दिया था, तो वह आदमी सोच भी नहीं सकता था कि बुद्ध क्या करेंगे। बुद्ध ने अपनी चादर से उस आदमी के थूक को पोंछ लिया और उस आदमी से कहा, तुम्हें कुछ और भी कहना है?

उस आदमी ने कहा, आप क्या कह रहे हैं? मैंने थूका है, कुछ कहा नहीं!

बुद्ध ने कहा, मैं समझ गया। कई बार ऐसा हो जाता है कि आदमी इतने भाव से भर जाता है कि शब्दों में नहीं कह पाता, तो

किसी चेष्टा से कहता है। तुम शायद ज्यादा क्रोध से भर गए हो कि गाली भी कम पड़ती होगी; तुमने थूककर कहा। मैं समझ गया। अब तुम बोलो, तुम्हें और क्या कहना है?

अब यह अनप्रेडिक्टेबल है। इस आदमी को हम यांत्रिक नहीं कह सकते। इस आदमी को यांत्रिक कहना मुश्किल है। यह आदमी दोहरा नहीं रहा है।

लेकिन वह दूसरा आदमी तो मुश्किल में पड़ गया। रातभर उसने सोचा, सो नहीं पाया। अगर ये बुद्ध उसको गाली दे देते, या उसके ऊपर यूक देते, तो ज्यादा दया होती। एक अर्थ में वह रात सो सकता। अगर ये भी नाराज हो जाते, तो वह रात निश्चित सो जाता, क्योंकि दिक्कत ही खतम हो गई थी। सर्किल पूरा हो जाता। घटना पूरी हो जाती। बुद्ध ने पोंछकर पूछ लिया कि और कुछ कहना है? तो अटक गई बात अधूरी। मन रातभर बेचैन रहा कि यह आदमी कैसा है? फिर मन को यह भी होने लगा कि मैंने गलत आदमी के ऊपर थूक दिया! यह ठीक नहीं किया मैंने थूककर! ऐसे आदमी पर तो कम से कम नहीं फना था!

रातभर जागता रहा। बेचैन रहा। सुबह ही भागा हुआ आया। बुद्ध के पैर पर गिर पड़ा। पैर पर उसके आंसू टपकने लगे। बुद्ध ने उसे उठाया, चादर से पैर के आंसू पोंछे और पूछा, और कुछ कहना है? क्योंकि आज तुम फिर उसी हालत में आ गए। कुछ कहना चाहते हो, नहीं कह पा रहे, शब्द ओछे पड़ते हैं, आंसू टपकाकर कहते हो। बोलो, क्या कहना है?

उस आदमी ने कहा, मैं क्षमा मांगने आया हूं।

बुद्ध ने कहा, छोड़ो भी। कल तो कब का बह गया, तुम किससे क्षमा मांगने आए हो? वह आदमी अब तुम्हें कहां मिलेगा, जिसके ऊपर तुमने थूका था?

उस आदमी ने कहा, क्या आप वह आदमी नहीं हैं? क्या कह रहे हैं? क्यों मुझे मुसीबत में डाल रहे हैं! आप ही वे आदमी हैं, जिन पर मैं यूक गया था।

बुद्ध ने कहा, लेकिन चौबीस घंटे में, जानते हो, गंगा का कितना पानी बह जाता है? चौबीस घंटेभर बाद अगर तुम उसी गंगा से क्षमा मांगने जाओगे, जिसमें थूक गए थे, तो वह गंगा कहेगी, मुझे पता ही नहीं। किस में तुम यूक गए थे? पानी कितना बह गया चौबीस घंटे में! छोड़ो भी। भूलो भी। क्यों रुक गए हो उस पर? थूककर जितनी गलती की थी, उससे बडी गलती यह कर रहे हो कि अब उसी पर रुके हुए हो, रातभर खराब की! छोड़ो।

लेकिन वह आदमी कैसे छोड़ दे? वह दूसरे दिन फिर आता है कि मुझे क्षमा कर दो। वह तीसरे दिन फिर आता है कि मुझे क्षमा कर दो। वह चौथे दिन फिर आता है कि मुझे क्षमा कर दो!

वह पुनरुक्त कर रहा है; एक घेरे में घूम रहा है। वह एक घेरे में घूम रहा है। और बुद्ध आनंद से कहते हैं कि अगर इसे मैं क्षमा कर दूं तो यह फिर यूक सकता है। यह प्रेडिक्टेबल है, इसकी घोषणा की जा सकती है। यह बेचैन हो रहा है सिर्फ इसीलिए कि एक क्रिया पूरी नहीं हो पा रही है। इसको बेचैनी मालूम हो रही है।

मन पूरा करना चाहता है कोई भी काम, पूरा हो जाए तो निश्चित हो जाता है। इनकंप्लीट, कोई चीज अधूरी रह गई, तो मन ऐसे ही बेचैन होता है, जैसे दांत गिर जाए आपका एक, तो जीभ वहां बार—बार जाती है, खाली जगह को बार—बार छूती है।' लाख कोशिश करो कि मत छुओ; पता तो है कि गिर गया दांत, फिर जीभ वहीं चली जाती है। वह जीभ यह कहती है, समथिंग इनकंप्लीट; कोई चीज अधूरी है, इसको पूरा करो, भरो।

ठीक, मन ऐसे ही पूरे समय कोशिश करता है भरने की। लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्ति अघोष्य हो जाते हैं; अनप्रेडिक्टेबल हो जाते हैं। उनके बाबत कुछ कहा नहीं जा सकता। इतने ज्यादा हो जाते हैं।

एक आदमी सुबह बुद्ध से पूछता है, ईश्वर है? बुद्ध कहते हैं, नहीं है। दोपहर दूसरा आदमी पूछता है, ईश्वर है? बुद्ध कहते हैं, है। तीसरा आदमी शाम पूछता है, ईश्वर है? बुद्ध कुछ भी नहीं कहते, चुप रह जाते हैं।

रात आनंद घबड़ा जाता है। उनके साथ था वह दिनभर। वह रात पूछता है कि मेरी मुश्किल कर दी। मैं सो न सकूंगा। पहले मुझे समझा दो। सुबह एक आदमी से कहा ईश्वर नहीं है; दोपहर एक आदमी से कहा है, सांझ बिलकुल चुप रह गए, कुछ भी न कहा! बुद्ध ने कहा, जो उत्तर तुझे दिए नहीं गए, वे तूने लिए क्यों? वे जिनको दिए गए थे, उनके और मेरे बीच का मामला है।

आनंद ने कहा, लेकिन मैं बहरा तो नहीं हूं! मुझे सुनाई पड़ गए। और अब मैं सोच रहा हूं कि सही बात क्या है?

बुद्ध ने कहा, सही बात तो तीनों में ही नहीं है। तू सो जा।

उसने कहा, अब मैं बिलकुल न सो सकूंगा। वह सही बात क्या है? रातभर मेरे मन में यही दोहरता रहेगा कि वह सही बात क्या है? बुद्ध ने कहा, सही बात कुल इतनी है कि जो आदमी सुबह आया था और पूछता था, ईश्वर है? वह आस्तिक था; पर वैसा ही आस्तिक, जैसे अक्सर आस्तिक होते हैं। उसका अपना कोई अनुभव नहीं था, सिर्फ मान्यता थी। और वह इसलिए नहीं आया था कि ईश्वर को जानना चाहता था। सिर्फ इसलिए आया था कि बुद्ध और उसके मत और विश्वास के सहायक हो जाएं। वह अपने विश्वास को मजबूत करने आया था, जानने नहीं। जानने की उसकी कोई तैयारी न थी। वह तो सिर्फ यह कहने आया था कि किसी दिन वह कह सके कि मैं तो मानता ही हूं, बुद्ध भी मानते हैं! वह मुझे भी अपनी कतार में खड़ा करने आया था!

तो उससे मुझे कहना पड़ा कि नहीं, ईश्वर नहीं है। उसके अहंकार को तोडना जरूरी था। और उससे कहना जरूरी था कि ऐसे मानने से कुछ भी न होगा। है ही नहीं, मानकर क्या करेगा! देखा तूने कि वह कैसे कैप गया, जैसे झंझावात में कोई वृक्ष की जड़ें कंप जाएं। देखा तूने, उसका चेहरा कैसा लाल आग से भर गया! देखा तूने कि उसके अहंकार को कैसी भयंकर चोट लगी! अब वह किसी से अपने अहंकार की पुष्टि में मेरा नाम नहीं ले पाएगा। और अब एक बेचैनी की तरह मैं उसका पीछा करूंगा। अब उसे पता तो है नहीं कि ईश्वर है या नहीं? बुद्ध ने कहा कि नहीं है। अब उसे खोजना ही पड़ेगा। इसके पहले अब वह हिम्मत से कभी न कह सकेगा कि है।

दोपहर जो आदमी आया था, वह नास्तिक था। वह मेरे से गवाही लेने आया था कि मैं भी कह दूं कि नहीं है, ताकि वह जाकर लोगों से कहे कि मैं ही नहीं कहता, बुद्ध भी कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। उससे मुझे कहना पड़ा कि है। उसे भी हिलाना जरूरी था।

झूठी श्रद्धाएं जब तक हिले न, तब तक सच्ची श्रद्धाएं पैदा नहीं होतीं। थोथे विश्वास जब तक उखाड़ें न जाएं, तब तक आत्मगत भरोसों का जन्म नहीं होता।

और सांझ जो आदमी आया था, वह सीधा, सरल, निर्दोष आदमी था। उसकी कोई मान्यता न थी। न वह मानता था कि है, न वह मानता था कि नहीं है। वह बच्चों की तरह भोला था। उसे कोई भी उत्तर देना उचित न था। चुप रह जाना उचित था। वह मेरी बात समझ गया। वह आनंदित वापस लौट गया। वह समझ गया कि ईश्वर के संबंध में चुप होने से ही उसका पता चलेगा। मौन रह जाने से ही। कुछ मत कहो। है और नहीं में उसे नहीं कहा जा सकता। वह मेरी चुप्पी को समझ गया, वह मेरे पैर छूकर गया है। आनंद, तूने देखा! वह पैर छूकर गया है। पैर छूते वक्त तूने उसकी आंखें देखी थीं? वे जैसे शांत झील की तरह हो गई थीं। और वह आदमी जल्दी ही प्रभु को पा लेगा।

अब ऐसे आदमी से अगर आप जाकर पूछें, तो उत्तर तक निश्चित नहीं है कि वह क्या कहेगा! स्पाटेनियस होगा, रिपिटीटिव नहीं होगा। सहज होगा; पुनरुक्ति नहीं होगी। वह वही कहेगा, जो उस क्षण में उसकी पूरी अंतरात्मा से निकलेगा। वह वही करेगा उस क्षण में, जो उसके पूरे प्राणों से जन्म लेगा। वह किसी चीज को दोहराएगा नहीं। और अगर हमें दोहराता हुआ भी दिखाई पड़े, तो वह हमारी ही भूल होगी।

हमको रोज लगता है कि सुबह सूरज निकलता है, वही सूरज। लेकिन जो सूर्योदय को देखते हैं, वे जानते हैं कि दुबारा एक सूर्योदय फिर नहीं होता; न तो वैसे बादल होते, न वैसे रंग होते, न वैसी सुबह होती, न वे गीत होते, न वह आकाश होता। हर रोज सुबह नया सूरज उगता है। नए सूरज का मतलब, सब नया होता है।

ऐसा व्यक्ति प्रतिपल नया होता है।

तो एक बात ध्यान रखें, पुनरुक्ति को तोड़े। दूसरी बात ध्यान रखें, जो कुछ भी चाहें, गहरे खोजें, तो हर चाह में परमात्मा की चाह छिपी हुई मिलेगी। अपनी हर चाह में अंततः परमात्मा को खोजने का उपाय करें। तो धीरे— धीरे चाहें गिर जाएंगी और परमात्मा की मौलिक चाह ही शेष रह जाएगी; ऊपरी चाहें गिर जाएंगी और भीतरी चाह प्रकट हो जाएगी।

और तीसरी बात, अंतिम को ही लक्ष्य बनाएं, बीच का कोई पड़ाव मंजिल नहीं हो सकता। परमात्मा से कम को लक्ष्य मत बनाएं। क्योंकि जो लक्ष्य है, अंततः आपकी चेतना का तीर उसी लक्ष्य में बिंध जाएगा, और उसी के साथ एक हो जाएगा। इसलिए छोटे लक्ष्य मत बनाएं।

हम सबकी जिंदगी बहुत छोटी—छोटी रह जाती है, छोटे—छोटे लक्ष्यों के कारण। हम क्षुद्र रह जाते हैं, क्षुद्र लक्ष्यों के कारण।

अब एक आदमी की जिंदगी का लक्ष्य अगर रुपया ही इकट्ठा करना है, तो इस आदमी के पास जो आत्मा होगी, वह आत्मा बहुत बड़ी नहीं हो सकती। कैसे होगी? इसकी आत्मा इसकी अभीप्सा ही तो है। यह धन इकट्ठा करना ही इसकी कुल जमा दौड़ है। तो इसकी आत्मा ज्यादा से ज्यादा एक लोहे की तिजोड़ी हो सकती है। और क्या हो सकती है? इसकी आत्मा का और क्या होगा मूल्य? इसकी आत्मा रुपए से भी छोटी होगी। तभी तो रुपए के प्रति इतनी आकर्षित और आंदोलित है।

एक आदमी बड़ी कुर्सी पर पहुंचना चाहता है, तो पहुंच जाएगा एक दिन। लेकिन इसकी आत्मा एक मुर्दा कुर्सी से ज्यादा बड़ी नहीं हो सकती!

अंतिम को लक्ष्य बनाएं, क्योंकि अंततः वही आप हो जाएंगे। उस पर श्रद्धा रखें जो आखिरी है, चाहे वह असंभव ही क्यों न मालूम पड़े। क्योंकि संभव को जो चुनता है, वह क्षुद्र हो जाता है। असंभव को चुनें।

और ईश्वर से ज्यादा असंभव कुछ भी नहीं है। अदृश्य, अरूप, निराकार असंभव मालूम पड़ता है। उसे चुनें। उसकी तरफ उपासना को बढ़ाते चलें। एक दिन पाएंगे कि वह तो मिल गया, आप खो गए। एक दिन पाएंगे, आप तो नहीं बचे, वही रह गया। एक दिन पाएंगे, आप वही हो गए हैं।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
कर्ताभाव का अर्पण— अध्याय—9 (प्रवचन—ग्यारहवां)
सूत्रः

पत्रं पष्पं फलं तोर्य यो मे भक्या प्रकछीत।
तदहं भक्मुष्ठतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।26।।
यत्करोषि यदश्नासि यज़्जुएषि ददासि यत्।
यत्तयस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्य मदर्यणम्।।27।।
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कमंबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विख्नुाए मामुयैष्यसि।।28।।
तथा है अर्जुन? मेरे पूजन में पत्र, पुष्य, फल, जल हत्यादि जो कुछ कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र, पुष्य, फल आदि मैं ही ग्रहण करता है।

हसलिए हे अर्जुन तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खला है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है जो कुछ स्वधर्माचरण रूप तय करता हे वह सब मेरे अर्पण कर। हम प्रकार कर्मो को मेरे अर्पण करने रूप संन्यास— योग से युक्त हुा मन वाला तू शुभाशुभ फलरूय कर्मबंधन से मुक्त हो जाएगा और उनसे मुक्त हुआ मेरे को ही प्राप्त होवेगा।

परमात्मा की पूजा भी करनी हो, तो भी हमारे पास ऐसा कुछ भी नहीं है उसे देने को, जिसे हम अपना कह सकें। और जो हमारा ही नहीं है, उसे देने का भी क्या अर्थ है? जो कुछ भी है, उसका ही है। तो पूजा में उसके द्वार पर भी हम जो रखेंगे, उसका ही उसे लौटा रहे हैं।

मनुष्य के पास ऐसा क्या है जो परमात्मा का दिया हुआ नहीं है? अगर उसकी ही चीजें उसे लौटा रहे हैं, तो बहुत अर्थ नहीं है। कुछ ऐसा उसे दें, जो उसका दिया हुआ न हो, तो ही पूजा में चढ़ाया, तो ही पूजा में हमने कुछ अर्पित किया।

इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। बड़ी कठिनाई होगी खोजने में। क्योंकि क्या है जगत में जो उसका नहीं है? अगर वृक्षों से तोड़कर फूल मैं चढ़ा आता हूं उसके चरणों में, वे फूल तो उसके चरणों में चढ़े ही हुए थे! और अगर नदी का जल भरकर उसके चरणों में ढाल आता हूं तो वह नदी तो सदा से अपना सारा जल उसके चरणों में ढाल ही रही थी! मैं इसमें क्या कर रहा हूं? और इस करने से मेरे जीवन का रूपांतरण कैसे होगा?

लेकिन एक बात जरूर मनुष्य के पास ऐसी है, जो परमात्मा की दी हुई नहीं है। एक ही बात ऐसी है। कर्ता का भाव, मैं कुछ कर रहा हूं यह परमात्मा का दिया हुआ नहीं है, यह आदमी का अपना अर्जित है। यह अहंकार कि मैं कुछ कर रहा हूं आदमी की अपनी खोज है। यह आदमी का अपना आविष्कार है। और जब तक कोई आदमी इस भाव को उसके चरणों में न चढ़ा दे, तब तक वह रूपांतरण घटित नहीं होता, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं।

इसलिए वे कहते हैं कि तू खाए तो, तू चले तो, बैठे तो, हवन करे तो, तू जो कुछ भी करे, वह सब मेरे अर्पण कर। कर्मों को मेरे अर्पण कर। कर्ता होने के भाव को मुझे अर्पण कर। और जिस क्षण तू यह कर पाएगा, उसी क्षण तू संन्यस्त हो गया।

यह बहुत अदभुत बात है। क्योंकि संन्यास का अर्थ होता है, कर्म को छोड़ देना, कर्म का त्याग। कृष्ण कर्म के त्याग को नहीं कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, कर्म तो तू कर, लेकिन मुझे अर्पित होकर। कर्म को छोड़ नहीं जाना है, करते जाना है। लेकिन वह जो करने वाला है, उसे छोड़ देना है, वह जो भीतर मैं खड़ा हो जाता है, उसे विसर्जित कर देना है।

अहंकार अकेली चीज है आदमी के हाथ में, जो पूजा में चढ़ाई जा सकती है। वह आदमी की अपनी है, बाकी तो सब परमात्मा का है। लेकिन दो—तीन बातें और इस संबंध में समझ लेनी जरूरी होंगी। कठिन भी है उसे ही चढ़ाना। धन आदमी चढ़ा सकता है। जोश में हो, तो जीवन भी चढ़ा सकता है। गर्दन भी काटकर रख सकता है। इतना कठिन नहीं है। ऐसे भक्त हुए हैं, जिन्होंने गर्दन काटकर चढा दी, अपना जीवन समर्पित कर दिया। वह उतना कठिन नहीं है, क्योंकि जीवन भी उसी का ही है। लेकिन जिसने गर्दन चढ़ाई है, वह भी भीतर समझता रहता है कि मैं गर्दन चढ़ा रहा हूं! याद रखना, स्मरण रखना, भूल मत जाना, मैं गर्दन चढ़ा रहा हूं!

गर्दन जब कटती है, तब भी भीतर मैं खड़ा रहता है। मैं को बचाकर भी गर्दन चढ़ाई जा सकती है। और अगर मैं बच गया, तो जो हम चढ़ा सकते थे, वह बच गया, और जो चढ़ा ही हुआ था, वही वापस लौट गया। धन कोई चढ़ा दे, जीवन कोई चढ़ा दे, पद—प्रतिष्ठा कोई चढ़ा दे, सब कुछ चढ़ा दे, लेकिन पीछे मैं बच जाए, तो जो चढ़ाना था, वह बच गया और जो चढ़ा ही हुआ था, वह हमने चढ़ा दिया। और चढ़े ही हुए को चढ़ाकर हम और अपने मैं को मजबूत कर लेते हैं कि मैंने इतना चढ़ाया है। चढ़ाने वाले भी हिसाब रखते हैं!

एक आदमी कुछ दिन पहले मेरे पास आया था। उसने मुझे कहा कि मैं इतने लाख दफा राम का नाम स्मरण कर चुका हूं। वह हिसाब रखे है, कापी बनाए हुए है! सारा हिसाब है कि कितने लाख दफा उसने राम का नाम लिया। यह आदमी राम के पास भी जाएगा, तो कापी लेकर जाने वाला है। और कहेगा कि याद है? कितना मैं चिल्लाया! कितने मैंने नाम लिए! यह सब हिसाब मेरे साथ है। लोग प्रेम में भी गणित को ले आते हैं! लोग प्रार्थना में भी हिसाब, बही—खाते रख लेते हैं! सब व्यर्थ हो गया। क्योंकि यह हिसाब—किताब जो रख रहा है, वह अहंकार है। यह जो कह रहा है कि मैंने इतने नाम लिए, अब यह नाम भी संपत्ति हो गई। अब ये करोडों सिक्के हो गए मेरे पास। अब इन करोड़ों सिक्कों के साथ मैं उसके पास पहुंचूंगा।

कीर्कगार्ड ने, एक ईसाई फकीर ने और एक अदभुत विचारक ने अपनी डायरी में एक वक्तव्य लिखा है। उसने लिखा है कि मैंने सब उसके लिए चढ़ा दिया, समस्त बुरे कर्म छोड़ दिए; सब पापों से अपने को बचा लिया, सब तरह की अनीति से अपने को दूर कर लिया। एक दुर्गुण मुझ में न रहा। और तब मुझे एक दिन ऐसा पता चला कि मुझ में गुण ही गुण हैं! और मैंने पाया कि मेरे भीतर अहंकार लपट की भांति खड़ा हो गया है। और तब मुझे पता चला कि ये मेरे गुण भी मेरे अहंकार का ही भोजन बन गए हैं। यह मेरा सदाचरण भी, यह मेरा नैतिक जीवन भी, मेरे अहंकार का ही पोषण बन गया है। और उस दिन मैं रातभर रोया, उसने लिखा है, कि हे परमात्मा, इससे तो बेहतर था कि मैं पापी था, बुरा था, कम से कम यह अहंकार तो खड़ा नहीं होता था। बुराई से मैं छूट गया, अब भलाई से तू मुझे छुड़ा। यह भलाई नया कारागृह बन गई।

और ध्यान रहे, बुरे आदमी के पास जो अहंकार होता है, दीन होता है, और भले आदमी के पास जो अहंकार होता है, बड़ा सबल हो जाता है। इसलिए बुरे आदमी की बुराइयां बाहर हैं और भले आदमी की बुराई भीतर हो जाती है।

बुरा आदमी चोरी करता है, बेईमानी करता है, धोखा देता है। उसकी बुराइयां बाहर हैं। भला आदमी न चोरी करता, न बेईमानी करता। समय पर पूजा करता है, प्रार्थना करता है। नियम का पालन करता है। मर्यादा से जीता है। बाहर उसकी कोई बुराई नहीं है। लेकिन सब के मुकाबले भीतर एक बुराई खड़ी हो जाती है कि मैं भला आदमी हूं। जहां भी वह चलता है, वह भले आदमी का अहंकार साथ चलता है। इसलिए भला आदमी जब दूसरे की तरफ देखता है—तो गहरे में छान—बीन करना, तो पता चलेगा—वह ऐसे देखता है, जैसे दूसरा आदमी कीड़ा—मकोड़ा हो!

यह तो बुरे आदमी से भी बुरा होना हो गया। यह तो बुराई गहरी हो गई। और बुरे आदमी ने दूसरों के साथ बुरा किया, इस भले आदमी ने अपने साथ भी बुरा कर लिया है। और बुरे आदमी ने दूसरों को धोखा दिया था, इस भले आदमी ने अपने को भी धोखा दे लिया है।

पूजा और प्रार्थना करने वाले का भी बडा सात्विक अहंकार मजबूत हो जाता है। और ध्यान रहे, जब अहंकार सात्विक होता है, तो बहुत जहरीला हो जाता है।

कृष्ण कह रहे हैं कि तू सब छोड़ दे। बुरा— भला सब मुझ पर छोड़ दे। तू जो भी कर रहा है, उसमें तू करने वाला मत रह। तू जान कि मैं तेरे भीतर से कर रहा हूं। तू ऐसा अर्पित हो जा।

कर्म छोड़ने को वे नहीं कह रहे हैं। इसलिए कृष्ण ने जो बात कही है, वह अति क्रांतिकारी है। कर्म छुड़ा लेने में बहुत कठिनाई नहीं है। आदमी कर्म छोड़कर जंगल जा सकता है। लेकिन कर्ता छुड़ा लेना असली कठिनाई है। और आदमी जंगल भी चला जाए कर्म को छोड़कर, तो यह अकड़ साथ चली जाती है कि मैं सब कर्मों को छोड़कर चला आया हूं। कर्ता पीछे साथ चला जाता है। कर्म तो बस्ती में छूट जाएंगे, कर्ता नहीं छूटेगा। कर्ता आपके साथ जाएगा। वह आपकी भीतरी दशा है। आप मकान छोड़ देंगे, घर—दुकान छोड़ देंगे, काम— धाम छोड़ देंगे, सब तरफ से निवृत्त होकर भाग जाएंगे जंगल में, लेकिन वह जो भीतर कर्ता बैठा है, वह इस निवृत्ति के ऊपर भी

सवार हो जाएगा। निवृत्ति भी उसी का वाहन बन जाएगी। और जाकर जंगल में, वह अकड़ से कहेगा कि सब छोड़ चुका हूं। यह छोड़ना कर्म हो जाएगा। यह छोड़ना कर्म हो जाएगा, यह त्यागना कर्म हो जाएगा। और अहंकार इससे भी भर लेता है।

इसलिए कृष्ण ने कहा, कर्म छोड़कर कुछ भी न होगा अर्जुन, कर्ता को छोड़ दे!

यह दुरूह है, यह अति कठिन है। क्योंकि कर्म तो बाहर हैं। और जो भी बाहर है, उसको पकड़ना भी आसान है, छोड़ना भी आसान है। जो भीतर है, उसे पकड़ने में भी जन्मों—जन्मों लग जाते हैं; उसे छोड़ना भी उतना ही कठिन है।

मेरे हाथ में कोई चीज है, उसे मैं छोड़ दूं आसान है। मेरी खोपड़ी में जब कोई चीज होती है, तो छोडनी मुश्किल हो जाती है। खोपड़ी में हो, उसे भी छोड़ा जा सकता है। लेकिन जो मेरी चेतना

में प्रवेश कर जाए उसे फिर छोड़ना और भी मुश्किल हो जाता है। यह अहंकार, हमारे भीतर गया गहरे से गहरा संसार है। संसार का तीर हमारे भीतर जो गहरे से गहरे में चला गया है, उसका नाम अहंकार है; उस घाव का नाम अहंकार है। वह हमारे भीतर है। वह हमारे भीतर है। और हमारा मजा ऐसा है कि हम उस तीर को और दबाए चले जाते हैं, ताकि अहंकार और भीतर चला जाए। खाज हो जाती है न किसी को, तो खुजलाने से भी आनंद मालूम पड़ता है। अहंकार आत्मिक खाज है; उसे खुजलाने से भी आनंद मालूम पड़ता है। पीछे कितनी ही पीड़ा हो, लेकिन जब खुजाते हैं, तब लगता है, बड़ा सुख मिल रहा है! जिसको भी कभी खाज हुई हो, उसे पता होगा। लेकिन अहंकार तो सभी को हुआ है, सभी को पता होगा। उसे खुजलाने में सुख मिलता है। हालांकि सभी दुख उसी खुजलाने से पैदा होते हैं।

खाज को खुजलाने से लहूलुहान हो जाता है शरीर, पीछे पीड़ा आती है। और अहंकार को खुजलाने से आत्मा लहूलुहान हो जाती है, और जन्मों—जन्मों तक पीड़ा की सतत श्रृंखला बन जाती है। लेकिन फिर भी हम खुजलाए चले जाते हैं, और तीर को भीतर धंसाए चले जाते हैं। घाव में भी तीर लगता है, तो हमें रस आता है।

कृष्ण कहते हैं, इसको ही छोड़ दे। यह मैं कर रहा हूं इस भाव को छोड़ दे।

इस भाव को छोड़ना हो, तो दो अनिवार्य शर्तें हैं।

कहा है कृष्ण ने, उस शुद्ध बुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ सभी कुछ मैं ग्रहण करता हूं।

दो शब्दों का उपयोग किया है, शुद्ध बुद्धि और निष्काम प्रेमी। बुद्धि कब शुद्ध होती है? और प्रेम कब पवित्र होता है? बुद्धि तब शुद्ध होती है. .जैसा हम आमतौर से सोचते हैं, तब नहीं। हम सब सोचते हैं कि अगर बुद्धि में शुद्ध विचार हों, तो बुद्धि शुद्ध हो जाती है। इससे ज्यादा भ्रांति की कोई दूसरी बात नहीं है। इसलिए यह समझना थोड़ा कठिन पड़ेगा। हम समझते हैं कि बुद्धि के शुद्ध होने का अर्थ है, शुद्ध विचार, अच्छे विचार, सात्विक विचार, सद विचार हों तो बुद्धि शुद्ध हो जाती है। लेकिन बुद्धि तब तक शुद्ध नहीं होती, जब तक विचार हों, चाहे वे सद विचार ही क्यों न हों। जब विचार ही नहीं रह जाते, तभी बुद्धि शुद्ध होती है।

जैसे एक आदमी के हाथ में लोहे की जंजीरें हैं। वह कारागृह में पड़ा है। कल हम उसे सोने की जंजीरें पहना दें। शायद वह खुश हो कि अब मैं स्वतंत्र हो गया, क्योंकि जंजीरें अब सोने की हो गईं।

अच्छी जंजीरें, हीरे—जवाहरात जड़े हों! लेकिन वह स्वतंत्र नहीं हो गया। स्वतंत्र तो वह तभी होता है, जब जंजीरें अच्छी नहीं, जंजीरें होती ही नहीं!

ध्यान रखें, विचार की तीन अवस्थाएं हैं। एक विचार की अवस्था है, जिसको हम अशुद्ध विचार कहें। अशुद्ध विचार का अर्थ है, जो वासना के पीछे दौड़ता हो, वृत्तियों के पीछे दौड़ता हो; शरीर को मालिक मानता हो, खुद गुलाम हो जाता हो! जहां वासना मालिक है और विचार गुलाम है, वहा बुरा विचार है, असद विचार है, अशुभ विचार है।

इसे हम बदल सकते हैं। बदलने का अर्थ यह है कि विचार मालिक हो गया, वासना गुलाम हो गई। अब वासना के पीछे विचार नहीं चलता, विचार के पीछे ही वासना को चलना पड़ता है। यह शुभ विचार हुआ, सद विचार हुआ, अच्छा विचार हुआ। लेकिन विचार भी मौजूद है और वासना भी मौजूद है, सिर्फ संबंध बदल गया। कल वासना मालिक थी, विचार गुलाम था, अब विचार मालिक है, वासना गुलाम है।

लेकिन ध्यान रहे, आप गुलाम के मालिक भी हो जाएं, तो भी उससे बंधे रहते हैं। आप गुलाम की छाती पर भी बैठ जाएं, तो भी गुलाम आपको बाधें रखता है। आप छोड़कर हट नहीं सकते। गुलाम तो हट ही नहीं सकता, क्योंकि आप उसकी छाती पर चढ़े हैं। आप भी नहीं

हट सकते, क्योंकि आप हटे कि छाती से उतरे। आपको गुलाम को दबाकर बैठे रहना पड़ेगा। शायद आप सोचते होंगे, गुलाम मुझसे बंधा है। गुलाम भी जानता है कि आप उससे बंधे हैं, हट नहीं सकते।

सुना है मैंने कि एक आदमी एक गाय को बांधकर अपने घर लौट रहा है। फकीर हसन उसे रास्ते में मिल गया और हसन ने पूछा कि मेरे मित्र, मैं एक बात जानना चाहता हूं। तुम गाय से बंधे हो कि गाय तुमसे बंधी है ग्र

उस आदमी ने कहा, तू पागल मालूम होता है! यह भी कोई पूछने की बात है? जाहिर है कि गाय मुझसे बंधी है; मैं गाय को बांधकर ले जा रहा हूं।

तो फकीर हसन ने कहा, एक काम कर। अगर गाय तुझसे बंधी है, तो तू छोड़कर बता। तू छोड़ दे। फिर अगर गाय तेरे पीछे चले, तो हम समझें।

उस आदमी ने कहा, अगर मैं छोड़ दूंगा, गाय भाग खड़ी होगी, मुझे उसके पीछे भागना पड़ेगा।

तो फकीर हसन ने कहा, फिर तू ठीक से समझ ले। यह हाथ में जो रस्सी लिए है, इस धोखे में मत पड़ना। अगर गाय भागे, तो तू उसके पीछे भागेगा, गाय तेरे पीछे नहीं भागेगी। अगर तू गाय को छोड़ दे, तो गाय तेरा पता लगाती हुई नहीं आने वाली है, तू ही उसका पता लगाता हुआ जाएगा। तो तू इस भ्रम में है कि तू गाय को बांधे हुए है।

जिसे हम बांधते हैं, उससे हम बंध भी जाते हैं, जीवन का यह एक अनिवार्य नियम है। इसलिए जो मुक्त होना चाहता है, वह किसी को बांधेगा नहीं। बांधा कि आप फिर मुक्त नहीं हो सकते। अगर आपकी वासना को आपने दबा लिया और अच्छा विचार आप ऊपर ले आए, तो भी वासना नीचे कुलबुलाती रहेगी, भभकती रहेगी; लपटें उसकी उठती रहेंगी। आपको रोज—रोज दबाना पड़ेगा। जिसे एक दिन दबाया है, उसे रोज—रोज दबाना पड़ेगा। और दबाने से कोई वासना मिटती नहीं है, भभक भी सकती है और तेजी से, क्योंकि दमन से रस भी पैदा होता है। और जिसे हम दबाते हैं, उसमें आकर्षण भी बढ़ जाता है। और जिसे हम दबाते हैं, उसकी शक्ति भी इकट्ठी होती चली जाती है। फिर यह संघर्ष सतत है।

इसलिए जिसे हम बुरा आदमी कहते हैं, वह बाहर लोगों से लड़ता रहता है; जिसे हम अच्छा आदमी कहते हैं, वह भीतर अपने से लड़ता रहता है। जिसे हम बुरा आदमी कहते हैं, वह दूसरों को सताने की कोशिश में लगा रहता है, जिसे हम अच्छा आदमी कहते हैं, वह खुद को सताने की कोशिश में लगा रहता है। जिसे हम बुरा आदमी कहते हैं, वह इसीलिए बुरा है कि उसको वासना के पीछे भागना पड़ता है, जिसको हम अच्छा आदमी कहते हैं, उसे इसीलिए अच्छा कहते हैं कि वह अपनी वासना की छाती पर सवार होकर बैठ जाता है। लेकिन यह बैठ जाना भी स्टैटिक है। यह बैठ जाना भी मर जाना है। यह बैठ जाना भी रुक जाना है।

एक तीसरी भी अवस्था है बुद्धि की, जब विचार और वासना दोनों नहीं होते। उस स्थिति का नाम शुद्ध बुद्धि है। शुद्ध बुद्धि का अर्थ है कि संघर्ष गया; जो लड़ने वाले थे, वे रहे ही नहीं। न बांधने वाला है अब, और न वह जिसे बांधना था। न अब कोई मालिक है और न अब कोई गुलाम है। क्योंकि जहां मालिक और गुलाम हैं, वहा एक अंतर्संघर्ष जारी रहेगा ही।

चाहे समाज हो, जब तक समाज में मालिक और गुलाम हैं, तब तक समाज में एक 'संघर्ष जारी रहेगा ही। मार्क्स उसे क्लास स्ट्रगल कहता हैं। तो वर्ग—संघर्ष जारी रहेगा।

ठीक ऐसी ही घटना भीतर भी घटती है। जब तक भीतर भी मालिक और गुलाम में बंटावट है, जब तक बंटावन है भीतर, विभाजन है, तब तक भीतर भी एक संघर्ष, एक अंतर्संघर्ष जारी रहेगा, एक इनर काफ्लिक्ट, एक अंतर्द्वंद्व भीतर भी बना रहेगा। शुद्ध नहीं है वह स्थिति।

कृष्ण कहते हैं, शुद्ध बुद्धि।

उसका अर्थ है, जिसकी बुद्धि इतनी शुद्ध हो गई कि अब वहा विचार की कोई तरंग भी नहीं है। एकदम निर्मल झील की तरह हो गई। बुरा विचार तो चला ही गया, गंदी लहर तो चली ही गई, वह लहर भी अब नहीं है, जिसको हम निर्मल लहर कहें, वह भी नहीं है। लहर ही न रही। मन झील की तरह मौन हो गया, जिस पर कोई भी तरंग नहीं है।

यहां ठीक से समझ लें।

नीति का संबंध सिर्फ इतने से है कि आपकी बुद्धि इस अर्थ में शुभ हो जाए कि अशुभ दब जाए और शुभ ऊपर आ जाए। नीति की दौड़ इतनी है। इसलिए नीति धर्म नहीं है। धर्म और बड़ी बात है! एक अधार्मिक आदमी भी नैतिक हो सकता है; कोई अड़चन नहीं है। एक नास्तिक भी नैतिक हो सकता है, कोई अड़चन नहीं है।

नैतिकता का मतलब ही इतना है कि आप अपनी वासना को अपने विचार के नियंत्रण में कर लिए हैं। एक संयम उपलब्ध हुआ है। अब आपकी वासना आपको खींच नहीं पाती। अब आप उसे रोक पाते हैं। वासना की लगाम आपके हाथ में आ गई। घोड़ा जिंदा है, लगाम से आप उसे चला लेते हैं। लेकिन चौबीस घंटे उसको चलाने में ही व्यय होता है, और घोड़ा पूरे समय तलाश में होता है कि कब उसे मौका मिल जाए और वह छूटकर निकल भागे। उसके पीछे चौबीस घंटे आपको सजग चेष्टा में रत रहना पड़ता है।

और इसलिए कोई भी आदमी चौबीस घंटे तो सतत चेष्टा नहीं कर सकता, हर चेष्टा का अनिवार्य रूप विश्राम है। कोई भी आदमी चौबीस घंटे चेष्टारत नहीं हो सकता, विश्राम तो करना ही पड़ेगा। जो दिनभर जागा है, उसे रात सोना भी पड़ेगा। और जिसने दिनभर गड्ढा खोदा है, उसे हाथ—पैर को आराम भी देना पड़ेगा।

इसलिए नैतिक आदमी को बीच—बीच में विश्राम भी लेना पड़ता है। उसी विश्राम में उसकी अनीति प्रकट होती है। नैतिक आदमी को भी बीच—बीच में विश्राम लेना पड़ता है। कई बहाने खोजकर विश्राम लेता है। कभी कहता है, होली का उत्सव मना रहे हैं, तब वह गालियां बक लेता है। जो बेहूदगियां उसने सालभर नहीं कीं, अब वह मजे से कर लेता है।

नैतिक आदमी को भी बहाने खोज—खोजकर अपनी अनीति को छुट्टी का अवसर देना पड़ता है। क्योंकि थक जाएगा; विश्राम जरूरी है, छुट्टी का दिन जरूरी है। और अगर जागने में नहीं दे पाता, तो नींद में छुट्टी देनी पड़ती है। तो सपनों में सब बुरे कर्म कर लेता है; जो दिनभर दबाए रखे, वह रात सपनों में प्रकट हो जाते हैं।

अगर हम अच्छे आदमी के सपने देखें, तो वे अनिवार्य रूप से बुरे होते हैं। बुरे आदमी के सपने इतने बुरे नहीं होते। कारण नहीं है। बुरा आदमी दिन में ही बुरा कर लेता है, रात मजे से सो जाता है। अक्सर तो ऐसा होता है कि बुरा आदमी रात में बड़े अच्छे सपने देखता है। काम्प्लिमेंट्री है। दिनभर बेचैन रहता है। कई दफा मन में उसके भी आता है कि अच्छा आदमी हो जाऊं। हो नहीं पाता, वह वासना अतृप्त रह जाती है। बुरा तो वह कर लेता है, जो करना है उसे। अच्छे की वासना अतृप्त रह जाती है, रात सपना बन जाती है।

अच्छा आदमी रात बुरे सपने देखता है। दिनभर तो अच्छा कर लेता है सम्हालकर, लेकिन भीतर बुरे का रंग और राग बजता रहता है, भीतर बुरे की ध्वनि बजती रहती है। वह मांग करती रहती है कि छुट्टी थोड़ी मुझे दो, बहुत ज्यादा लगाम मत खींचो। थोड़ा मुझे फुर्सत दो, मैं दौड़ सकूं। हवाएं अच्छी हैं, रास्ता साफ है, सुबह का वक्त है, थोड़ा मुझे दौड़ लेने दो। नहीं देता, तो रात जब सो जाता है, लगाम छूट जाती है ढीली, तब मन दौड़ना शुरू हो जाता है।

एक मजे की बात है कि आदमी ने दिन में जो दबाया हो, वही रात उसके सपनों में प्रकट होता है। जो—जो दबाया हो, वही प्रकट हो जाता है। सपने सहयोगी हैं। फ्रायड कहता है, सपने सहयोगी हैं।

अगर अच्छा आदमी सो न सके, तो पागल हो जाएगा। अगर बुरा आदमी न सो सके, वह भी पागल हो जाएगा। क्योंकि विश्राम चाहिए। वह जो दूसरा हिस्सा मांग कर रहा है, जिसको आप दबाकर बैठ गए हैं, उसको भी मौका चाहिए। वह भी आपका हिस्सा है।

कृष्ण इस आदमी को शुद्ध बुद्धि नहीं कहेंगे। वे कहेंगे कि ये दोनों एक जैसे हैं। सिर्फ एक चीज नीचे थी, वह ऊपर आ गई; जो ऊपर था, वह नीचे आ गया। लेकिन टोटल, जोड़ वही है।। मैंने सुना है कि एक सर्कस में बंदरों की एक जमात है। और बंदरों को सम्हालने वाला जो आदमी है, वह रोज सुबह उन्हें चार रोटी देता है और सांझ को तीन रोटी देता है। एक दिन रोटी की कुछ कमी थी, तो उसने यह व्यवस्था बदल दी। उसने बंदरों को बुलाकर कहा कि आज से नियम बदलता है, सुबह तुम्हें तीन रोटी मिलेंगी और शाम तुम्हें चार रोटी मिलेंगी।

बंदरों ने बगावत कर दी। बंदर बहुत नाराज हुए। उन्होंने कहा, यह नहीं चलेगा। यह हो ही नहीं सकता। सुबह चार रोटी ही चाहिए और शाम को तीन रोटी ही चाहिए।

उस आदमी ने बहुत समझाया कि तुम बिलकुल पागल हो, जोड़ तो करो। जोड़ तो सात ही होता है। बंदरों ने कहा, जोड—वोड़ से हमें मतलब नहीं है। चार रोटी सुबह चाहिए, तीन रोटी शाम चाहिए। सुबह तीन रोटी दे दी जाएं, शाम चार रोटी दे दी जाएं; बंदर बड़े नाराज हुए।

लेकिन बंदर जोड़ नहीं जानते; क्षमा किए जा सकते हैं। आदमी भी जोड़ नहीं जानता है! नीचे को ऊपर कर लेते हैं, ऊपर को नीचे कर लेते हैं। सोचते हैं, सब ठीक हो गया। सिर्फ जोड़, जोड़ तो वही रहता है।

अच्छे और बुरे आदमी का जोड़ बराबर है। यह जरा कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, अच्छे और बुरे आदमी का टोटल, जोड़ बराबर है, ऊपर और नीचे का फर्क है। एक में चार रोटी सुबह हैं, तीन रोटी शाम हैं; एक में तीन रोटी सुबह हैं, चार रोटी शाम हैं।

इसका यह मतलब नहीं है कि मैं आपसे यह कह रहा हूं कि अगर आप अच्छे आदमी हों, तो बुरे आदमी हो जाएं। इसका यह मतलब नहीं है। इसका यह मतलब है कि आप अगर अच्छे आदमी हैंइr? तो अच्छे आदमी ही मत रह जाना।

क्योंकि अच्छे आदमी की उपयोगिता है। जहां तक समाज का संबंध है, समाज का काम पूरा हो गया। उसे आपके भीतर से कोई मतलब नहीं है कि जोड़ क्या है। समाज का काम पूरा हो गया। आपका अच्छा चेहरा ऊपर आ गया, बुरा चेहरा आपके भीतर चला गया। वह आपकी बात हो गई। उसका कोई सामाजिक अर्थ नहीं है। समाज जानता है कि आप अच्छे आदमी हैं। आप समाज के लिए अच्छे आदमी हो गए, समाज की बात पूरी हो गई।

समाज को इससे ज्यादा चिंता नहीं है कि अब आप और कुछ हों। अच्छे आदमी से समाज राजी है। पर्याप्त है। समाज चाहता है, बुरे आदमी आप न हों। आपका बुरा पहलू आपके भीतर हो, अच्छा पहलू बाहर हो। क्योंकि समाज का मतलब ही है कि हमारे बाहरी पहलुओं का जो मिलन है, उसका नाम समाज है।

मेरी आत्मा गंदी है, इससे आपको मतलब नहीं; मैं नहा— धोकर, साफ कपड़े पहनकर आपके पास आऊं, पर्याप्त है। क्योंकि आपका जो मिलन होने वाला है, वह मेरे शरीर से और मेरे कपड़ों से होने वाला है, मेरी आत्मा से नहीं। अगर मैं यह कहूं कि मेरी आत्मा बहुत पवित्र है, लेकिन मैं सब गंदगी ओढ़कर आपके पास आऊंगा, तो आप कहेंगे, आत्मा आप जानें, कृपा करके यह गंदगी मेरे पास न लाएं।

समाज का अर्थ है, हमारे बाहरी व्यक्तित्व के मिलन का स्थल। समाज को इससे चिंता है कि आपका बाहर का पहलू ठीक हो जाए, भीतर की आप जानें। वह आपकी निजी समस्या है।

लेकिन धर्म इतने पर नहीं रुकता। धर्म कहता है कि असली, निजी समस्या को ही हल करना है। अच्छा है कि आप अच्छे आदमी हूऐं बुरे नहीं हैं। बेहतर है। लेकिन धर्म कहता है, यह पर्याप्त नहीं है। जरूरी है, पर्याप्त नहीं है। अच्छे हैं, बहुत अच्छा है। लेकिन अच्छे पर ही रुक गए, तो धोखे में हैं। अच्छे से भी पार जाना होगा।

शुद्ध बुद्धि का अर्थ है, जहां न वासना रही, न विचार रहा; जहां दोनों खो गए। तब सिर्फ शुद्ध चेतना रह जाती है।

तो एक शर्त तो कृष्ण ने कही कि शुद्ध बुद्धि हो और दूसरी बात कही कि निष्काम प्रेमी हो। प्रेम भी उसका निष्काम हो।

बुद्धि अशुद्ध होती है विचार से; प्रेम अशुद्ध हो जाता है वासना से, कामना से। ऐसा समझें कि बुद्धि से अर्थ है आपके चिंतन की क्षमता का, और प्रेम से अर्थ है आपके हृदय के अनुभव की क्षमता का। आपका मस्तिष्क अशुद्ध होता है विचार से, और आपका हृदय अशुद्ध होता है कामना से, वासना से। और जब तक हृदय और बुद्धि दोनों शुद्ध न हों, तब तक भक्त का जन्म नहीं होता। तब तक भक्त का जन्म नहीं होता।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि भक्त को आप ऐसा मत समझना कि वह सरल बात है। ऐसा लोग अक्सर समझाते हुए सुने जाते हैं कि भक्ति बड़ी सरल चीज है; ज्ञान तो बड़ा कठिन है।

लेकिन ध्यान रहे, ज्ञान की एक ही शर्त है कि बुद्धि शुद्ध हो। और भक्ति की शर्त दोहरी है, कि बुद्धि शुद्ध हो और हृदय निष्काम हो। इसलिए जो आपको समझाते हैं कि भक्ति सरल है, मैं नहीं समझ पाता कि वे कैसे समझाते हैं? क्योंकि बुद्धि तो शुद्ध हो ही, जितनी ज्ञान मांग करता है, उतनी तो माग भक्ति करती ही है, उससे थोड़ी ज्यादा मांग भी करती है। हृदय भी, प्रेम की क्षमता भी वासनारहित हो।

तो भक्त सरल मामला नहीं है। लेकिन सरल इसलिए दिखाई पड़ने लगा कि भक्ति से हमने जो कुछ जोड़ रखा है, वह सब ऐसा बचकाना है, ऐसा चाइल्डिश, जुवेनाइल है, कि लगता है कि सरल है! एक आदमी माला फेर रहा है, तो हम सोचते हैं, भक्त हो गया। एक आदमी जाकर मंदिर की घंटी बजा लेता है, हम सोचते हैं, भक्त हो गया। एक आदमी दीया भगवान के सामने घुमा लेता है, तो हम सोचते हैं, भक्त हो गया।

अगर भक्ति इतनी ही है, तो मैं आपसे कहता हूं, भक्ति से फिर आप कभी पहुंच ही न सकेंगे। इतना सस्ता यह रास्ता नहीं हो सकता। भक्ति अति जटिल है, अति कठिन है।

इसलिए दुनिया में अगर हम ठीक से खोजने जाएं, तो ज्ञानी जितनी बड़ी मात्रा में हुए हैं, उतनी बड़ी मात्रा में भक्त नहीं हुए हैं। यह सुनकर आपको हैरानी होगी। इसलिए ज्ञानियों के जगत में जो नाम हैं ऊंचाई पर, उतनी ऊंचाई पर भक्तों के नाम आप खोजकर न बता सकेंगे। बुद्ध हैं, कि महावीर हैं, कि शंकर हैं, कि याज्ञवल्ल हैं—इनकी कोटि में, इस ज्वलंत कोटि में भक्तों को रखना मुश्किल पड़ जाएगा। और उसका कारण यह है कि भक्त होना दुरूह है, कठिन है। दोहरी शर्त है वहां।

और बुद्धि को शुद्ध कर लेना आसान भी है, हृदय को शुद्ध करना और भी जटिल है; क्योंकि बुद्धि ऊपर है, हृदय गहरे में है। और बुद्धि तो मैनिपुलेट की जा सकती है; हाथ से उसमें कुछ किया जा सकता है। लेकिन हृदय तो इतना अपना मालूम पड़ता है कि उसमें दूरी ही नहीं होती है; उसमें कुछ करना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसे ऐसा समझें। अगर मैं आपसे कहूं कि फला व्यक्ति को आप कोशिश करें प्रेम करने की, तब आपको पता चलेगा कि कितना कठिन मामला है! कैसे कोशिश करेंगे प्रेम करने की? क्या कभी भी कोई कोशिश से प्रेम कर पाया है? कौन कर पाया है कोशिश से प्रेम कभी? जितनी कोशिश करेंगे, उतना ही पाएंगे, प्रेम मुश्किल हुआ चला जाता है!

आपसे बुद्धि का कोई भी सवाल हल करवाना हो, कोशिश से हल हो सकता है। कोई भी विचार कितना ही जटिल हो, कोशिश से हल हो सकता है। किसी भी विचार को समझने में कितनी ही अड़चन हो, कोशिश से हल हो सकती है। प्रेम कोशिश से हल नहीं होता; प्रयत्न बिलकुल ही व्यर्थ है।

इसलिए प्रेमी को हम अंधा कहते हैं। इसीलिए कहते हैं कि है तो है, नहीं है तो नहीं है। और कोई उपाय नहीं है। प्रेम है तो है, और नहीं है तो नहीं है, उपाय नहीं है। इसलिए प्रेमी एकदम असहाय मालूम पड़ता है, किसी विराट शक्ति के हाथों में पड़ गया; अपना कोई वश नहीं चलता मालूम पड़ता। खिंचा चला जा रहा है। भागा चला जा रहा है। खुद का नियंत्रण नहीं मालूम पड़ता। इसलिए भक्त होना दुरूह बात है। पर अगर बुद्धि शुद्ध हो और प्रेम निष्काम हो, तो वह महान घटना भी घटती है और भक्ति का फूल भी खिलता है। खिलता है, कभी किसी चैतन्य में, कभी किसी मीरा में खिलता है। लेकिन बहुत रेयर फ्लावरिंग है, बहुत कठिनाई की बात है।

इसलिए मैं कहता हूं कि बुद्ध होना या महावीर होना कितना ही कठिन हो, फिर भी बहुत कठिन नहीं है। एक ही शर्त है कि बुद्धि पूरी शुद्ध हो जाए। लेकिन मीरा का होना थोड़ा अनूठा है, चैतन्य का होना थोड़ा अनूठा है। इस अनूठे में एक तत्व और जुड़ता है, एक दिशा और जुड़ती है, कि हृदय भी निष्काम हो।

इसलिए बुद्ध शांत होंगे, शांति उनमें गहरी होगी, निर्विकार होंगे, शुद्ध होंगे, लेकिन एक अर्थ में निगेटिव, नकारात्मक मालूम पड़ेंगे। यह तो हम कह सकते हैं, उनकी अशांति मिट गई; यह भी हम कह सकते हैं, उनका दुख मिट गया; यह भी हम कह सकते हैं कि उनकी सब पीड़ा, संताप खो गया, यह भी कह सकते हैं, चिंता अब न बची—लेकिन यह सब नकार है। क्या—क्या नहीं रहा, वह हम कह सकते हैं; लेकिन यह बताना मुश्किल है कि क्या हुआ!

मीरा में हमें सिर्फ यही नहीं दिखाई पड़ता है कि उसकी अशांति मिट गई, चिंता मिट गई, संताप मिट गया, दुख मिट गया; साथ में उसमें नाचता हुआ आनंद भी दिखाई पड़ता है, विधायक, पाजिटिव। क्या हुआ है, वह भी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। क्या खो गया है, वह तो दिखाई ही पड़ता है; लेकिन क्या हुआ है, क्या मिल गया है, उसकी भी प्रत्यक्ष झलक मालूम होती है।

बुद्ध को जो भी हुआ है, वह भीतर है; वह बाहर नहीं आ पाता। क्योंकि हृदय के बिना कोई भी चीज बाहर नहीं आ सकती। हृदय अभिव्यक्ति का द्वार है। बुद्ध को जो हुआ है, वह भीतर हुआ है; जो नहीं हो गया है, वह बाहर गिरा है। हमने देखा है उनको पहले अशांत, अब अशांति गिर गई है। हमने देखा है पहले उन्हें चिंतित, अब चिंता नहीं है। हमने देखा है उन्हें पहले, उनके माथे पर सलवटें—दुख की, पीड़ा की, संताप की। वे खो गई हैं। लेकिन यह सब निषेध है। उनके भीतर क्या हुआ है, यह वे ही जानें।

लेकिन मीरा का नृत्य बाहर भी फूट रहा है। बाहर भी बह रही है यह धारा। जो भीतर हुआ है, वह बाहर भी तोड़कर आ रहा है। उसकी तरंगें दूर तक जा रही हैं। निश्चित ही, कुछ और भी बात हुई है। वह, दूसरी शर्त पूरी हो, तब होती है।

हम सोच भी नहीं सकते बुद्ध को नाचता हुआ। जब बुद्धि पूरी तरह शुद्ध हो जाती है, तो जो अनुभूति होती है, वह आंतरिक है; अत्यंत आंतरिक है, उसको बाहर तक ले जाने का द्वार नहीं है। और जब हृदय भी कामना से मुक्त हो जाता है, तो वह द्वार भी खुल जाता है, जो बाहर ले जाता है।

इसे आप ऐसा समझें कि जब तक आपके पास हृदय नहीं होता है, तब तक आप दूसरे से संबंधित हो ही नहीं सकते। सब संबंध हार्दिक हैं। जितना बड़ा हृदय होता है, उतना संबंधों का विस्तार होता है। असल में हृदय के द्वारा ही हम दूसरे को सवांदित कर पाते हैं। दूसरे से जो हम जुड़ते हैं, कम्युनिकेट होते हैं, वह हृदय के द्वारा होते हैं।

मीरा जब नाचती है, तो जो बुद्ध नहीं कह पाते, वह उसके घूंघर की झनकार से कहा जाता है। और जब चैतन्य कीर्तन में डूब जाते हैं, तो जो बुद्ध नहीं बता पाते, चेष्टा करते हैं, समझाते हैं पूरे जीवन, फिर भी पाते हैं कि असमर्थता है कोई, चैतन्य असमर्थ नहीं मालूम पड़ते।

आंसू से भी कह देते हैं। नाचकर भी कह देते हैं। दौड़कर भी कह देते हैं। अभिव्यक्ति चैतन्य को सरल मालूम पड़ती है। लेकिन भक्ति के साथ एक वहम जुड़ गया, इसलिए कठिनाई हो गई। हमने भक्ति को बहुत सस्ती समझा। और समझा कि ज्ञान तो सबके वश की बात नहीं है, भक्ति सबके वश की बात है। इससे भ्रांति हो गई। मैं आपसे कहता हूं ज्ञान थोडे ज्यादा लोगों के वश की बात है, भक्ति थोड़े कम लोगों के वश की बात है। क्योंकि अच्छी बुद्धि पा लेना बहुत कठिन नहीं है; अच्छा हृदय पाना बहुत कठिन है। और बुद्धि की शिक्षा के तो बहुत उपाय हैं जगत में; हृदय की शिक्षा का अब तक कोई उपाय नहीं है।

बुद्धि के लिए विश्वविद्यालय हैं, शिक्षक हैं, शिक्षा—पद्धतिया हैं। हृदय के लिए कोई विश्वविद्यालय नहीं है, कोई शिक्षक नहीं है, कोई शिक्षा—पद्धति नहीं है। हृदय अब तक अछूता पड़ा है। हृदय अब तक एक अंधेरा महाद्वीप है, जिसमें कभी—कभी कोई उतरता है।

लेकिन अगर यह दूसरी शर्त पूरी हो सके कि प्रेम हो, और कामनारहित हो। बड़ी कठिन शर्त है। बड़ी कठिन शर्त है। कठिन शर्त ऐसी है, जैसे मैं आपसे कहूं, नदी से तो गुजरें, लेकिन पानी में पैर न छुए; आग से तो गुजर जाएं, लेकिन जलन जरा भी न हो। आप कहेंगे, बिना आग से गुजरे जलन नहीं होती, तो मैं बिना आग से गुजर जाऊं, जलन नहीं होगी। लेकिन शर्त यह है, आग से गुजरें और जलन न हो।

ध्यान रहे, कोई अगर चाहे तो प्रेम को छोड़ दे, तो वासना छूट जाती है। यह कठिनाई है। अगर आग में न जाएं, तो जलने का कोई सवाल नहीं है। अगर पानी में न जाएं, तो भीगने का कोई सवाल नहीं है। बहुत लोग हैं, जो प्रेम से इसीलिए भयभीत हो जाते हैं कि प्रेम में गए, तो जले, भीगे, प्रेम में गए, तो वासना रहेगी ही।

इसलिए जो ज्ञान की दिशा में चलने वाले लोग रहे, उन्होंने कहा, प्रेम से सावधान रहना। प्रेम में पड़ना ही मत। सावधान करने का कारण इतना ही था कि आशा बहुत कम है कि प्रेम में पड़े और वासना में न पड़ जाएं। प्रेम और वासना के बीच इतना गहरा संबंध है कि प्रेम में गए, तो वासना में चले ही जाएंगे। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि वासना से तो बचना जरूरी है। प्रेम से बच जाना, तो वासना से बच जाओगे।

भक्त की शर्त बड़ी कठिन है। कृष्ण कहते हैं, प्रेम में तो जाना, वासना से बच जाना, आग में चलना, जलना मत, पानी में उतरना, भीगना मत।

इसलिए मैं कहता हूं, भक्ति थोड़ी कठिन बात है। लेकिन बड़ी क्रांति भी है।

अब इसे हम थोड़ा समझें कि प्रेम अनिवार्य रूप से वासना क्यों बन जाता है? क्या यह अनिवार्यता प्रेम में है कि प्रेम वासना बनेगा ख?

अगर ऐसा अनिवार्य हो, तो फिर कृष्ण यह शर्त नहीं लगाएंगे। यह अनिवार्यता प्रेम में नहीं है। यह अनिवार्यता कहीं मनुष्य की बुनियादी समझ की भूल का हिस्सा है।

असल में जब भी हम प्रेम करते हैं, तो वासना के कारण ही करते हैं। वासना पहले आ जाती है, प्रेम पीछे आता है। वासना पहले हमारे द्वार को खटखटा जाती है और तब प्रेम प्रवेश करता है। हमने जो भी प्रेम जाना है, वह वासना के पीछे जाना है। हमने जो भी प्रेम जाना है, वह वासना की छाया की तरह जाना है। इसलिए हमारे प्रेम के अनुभव में वासना छा गई है। और हमने जन्मों—जन्मों तक जब भी प्रेम जाना है, वासना के पीछे जाना है। हमारा प्रेम जो है, वह हमारी कामवासना की छाया से ज्यादा नहीं है। इसलिए हमें डर लगता है कि जब भी हम प्रेम में पड़ेंगे, तो कामवासना पीछे आ जाएगी।

एक और भी प्रेम है, जो वासना की छाया की तरह नहीं जाना जाता, वरन एक अंतर्निहित दशा की तरह जाना जाता है।

इसे थोड़ा समझ लें।

जब भी मैं कहता हूं प्रेम, तो मेरा मतलब होता है किसी से। और जब भी मैं कहता हूं शान, तो मतलब होता है मुझमें। और जब भी मैं कहता हूं प्रेम, तब तीर किसी और की तरफ झुक जाता है, इशारा किसी और की तरफ हो जाता है। जब भी मैं कहता हूं शान, तो दूसरे की तरफ तीर नहीं जाता, शान होता है मेरा। तो जब भी मैं कहता हूं प्रेम, तब दूसरा भीतर प्रवेश कर गया, प्रेम शब्द कहते ही मैं अकेला नहीं रह जाता, दूसरा आ जाता है।

इसका मतलब हुआ कि हमारा समस्त प्रेम का अनुभव किसी आंतरिक अवस्था का अनुभव नहीं है, केवल व्यक्तियों के बीच जो वासना के संबंध हैं, उनका ही अनुभव है। इसी वजह से प्रेम शब्द का उपयोग करते ही. अगर मैं अपने कमरे में अकेला बैठा हूं और आप आएं, और मैं कहूं कि मैं ज्ञान में था, तो आप कमरे में चारों तरफ नहीं देखेंगे कि कोई मौजूद है या नहीं! अगर मैं कहूं, मैं बड़े प्रेम में था, तो

आप चारों तरफ कमरे के देखेंगे कि कोई मौजूद है! आप अकेले प्रेम में थे! तो फिर शायद सोचेंगे, आंख बंद करके कोई कल्पना कर रहे होंगे। लेकिन दूसरा जरूरी मालूम पड़ता है, चाहे कल्पना में ही सही।

जिस प्रेम की कृष्ण बात कर रहे हैं, वह ज्ञान की तरह ही बात है, ध्यान की तरह ही बात है। दूसरे से उसका संबंध नहीं है, स्वयं का ही आविर्भाव है। इसे आप ऐसा समझें कि जैसे ध्यान की साधना होती है, ऐसे ही प्रेम की साधना होती है।

बैठे हैं कमरे में, प्रेम अनुभव करें, अपने चारों तरफ प्रेम फैलता हुआ अनुभव करें; भीतर प्रेम भरा हुआ अनुभव करें। लोक—लोकातर तक आपका प्रेम फैल जाए, लेकिन दूसरे की अपेक्षा को मौजूद न करें। एक घंटा रोज दूसरे की अपेक्षा को बीच में न लाएं।

प्रेम दूसरे से संबंध नहीं, वरन मेरे भीतर एक घटना है, जो चारों तरफ फैलती चली जाती है, जैसे दीए से प्रकाश फैलता है। ऐसा बैठ जाएं घंटेभर। और मुझसे प्रेम फैल रहा है चारों तरफ। कमरे की दीवालों को पार करके नगर की दीवालों में भर गया है। और नगर की दीवालों को पार करके राष्ट्र, और राष्ट्र की दीवालों को पार करके पूरी पृथ्वी को उसने घेर लिया है। और दूर चाद—तारों तक फैलता जा रहा है। सारा आकाश मेरे प्रेम से भर गया है।

इसको अगर एक घंटा रोज आप फिक्र करते रहें, तो धीरे— धीरे, धीरे— धीरे, प्रेम दूसरे से संबंध है, यह आपकी धारणा टूट जाएगी। और एक घड़ी आपके भीतर आ जाएगी, जब आपको लगेगा, प्रेम मेरी अंतर—दशा है। तब आप प्रेम करेंगे नहीं, प्रेम हो जाएंगे। तब प्रेम करने के लिए दूसरे की अपेक्षा नहीं होगी। दूसरा हो या न हो, आप प्रेम में रहेंगे ही। तब आप चलेंगे, तो आपका प्रेम आपके साथ चलेगा; उठेंगे, तो आपका प्रेम आपके साथ उठेगा, बैठेंगे, तो आपका प्रेम आपके साथ आएगा।

कभी—कभी किसी व्यक्ति के पास जाकर आपको अचानक लगता है कि इस व्यक्ति को न आप जानते, न आप पहचानते; न इसका कुछ बुरा जाना है, न इसके किसी दुराचरण की खबर है। लेकिन पास जाकर अचानक आपको लगता है रिपल्शन, विकर्षण, हट जाओ, दूर हट जाओ। किसी व्यक्ति के पास जाकर अचानक, अजनबी के पास, लगता है कि गले मिल जाओ। न उसे जाना, न उसे पहचाना; न कोई संबंध है! आकर्षण।

जिस व्यक्ति के पास आपको जाकर लगता है कि कोई आकर्षण, कोई मैग्नेटिज्म खींच रहा है, समझना कि उस व्यक्ति के पास प्रेम की एक क्षमता, एक मात्रा है। छोटी ही है, लेकिन एक मात्रा है। जिस व्यक्ति के पास आपको विकर्षण मालूम होता है, हट जाओ, कोई शक्ति जैसे दूर हटाती है, बीच में कोई शक्ति खड़ी हो जाती है और पास नहीं आने देती, तो समझना कि उस व्यक्ति के पास प्रेम का बिलकुल अभाव है; जो खींच सकता है, उसका बिलकुल अभाव है। तो आप धकाए जा रहे हैं। और यह भी हो सकता है अभ्यास से कि प्रेम का अभाव तो हो ही, साथ में घृणा। का आविर्भाव हो गया हो; घृणा एक स्थिति बन गई हो, एक दशा। बन गई हो।

अभी तो वैज्ञानिकों ने चित्त की इस दशा को नापने के लिए यंत्र भी निर्मित किए हैं। यह जानकर आप चकित होंगे। और अब तो ऐसे यंत्र हैं, जिनके सामने खड़े होकर हम कह सकते हैं कि यह व्यक्ति खींचता है लोगों को कि हटाता है। क्योंकि वह जो भीतर प्रेम की ऊर्जा है, मैग्नेटिक है। अगर प्रेम से भरा हुआ व्यक्ति उस यंत्र के सामने खड़ा होगा, तो यंत्र का कांटा खबर देता है कि यह आदमी लोगों को अपनी तरफ खींच लेता है। अगर यह आदमी घृणा से भरा हो, तो कोटा उलटा घूमता है और खबर देता है कि इस आदमी से जो ऊर्जा निकल रही है, वह लोगों को धकाती है और हटाती है।

अब तो इसे मापा भी जा सकता है। लेकिन धर्म सदा से जानता रहा है कि प्रेम संबंध नहीं है, अंतर—ऊर्जा है, इनर एनर्जी है।

जब मैं कहता हूं प्रेम शक्ति है, एनर्जी है, ऊर्जा है, तब उसका अर्थ यह हुआ कि दूसरे से उसका संबंध करने से वह ऊर्जा वासनाग्रस्त हो जाती है। दूसरे से संबंधित बनाने से, दूसरे से बांध लेने से अशुद्ध हो जाती है। दूसरे से बांध लेने से विकृत हो जाती है, कुरूप हो जाती है।

निष्काम प्रेम का अर्थ है, प्रेम की ऊर्जा हो और किसी से बंधी न हो, किसी कामना के लिए न हो।

तो कृष्ण कहते हैं, बुद्धि हो शुद्ध, विचार का कंपन न हो; हृदय हो प्रेम से भरा, वासना की जरा—सी भी झलक न हो, तो भक्त का जन्म होता है।

और ऐसा भक्त ही अपना सब कुछ परमात्मा के चरणों में छोड़ पाता है, अपना कर्तापन छोड़ पाता है।

अब इस सूत्र को हम पूरा देख लें।

हे अर्जुन! मेरे पूजन में पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कुछ भी कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र, पुष्प, फल आदि मैं ही ग्रहण करता हूं।

ऊपर से देखने में तो बहुत सीधा लगेगा। पत्र, पुष्प, फल, जल—हम सब जानते हैं, हम सबने चढ़ाया है। जल चढ़ाया है, फूल चढ़ाया है, पत्ते चढ़ाए हैं, हम सबको पता है। लेकिन कृष्ण जैसे लोग इस तरह की क्षुद्र बातें करते नहीं हैं। क्या मतलब है पत्र, पुष्प, फल चढ़ाने का?

एक मतलब आपको पता है, वह मतलब च्छ्ईं है। जो मतलब आपको पता नहीं है, वही मतलब है। वह मैं आपसे कहता हूं।

पत्र, पुष्प, फल व्यक्तित्व के खिलावट की तीन अवस्थाएं हैं। क्या कहते हैं कि तू जैसा भी है, अगर अभी सिर्फ पत्ता ही है, अभी फूल तक नहीं पहुंचा, तो भी कोई फिक्र नहीं, पत्ते को ही चढ़ा दे। अगर तू पत्ते से आगे निकल गया है और फूल बन गया है, तो फल की फिक्र मत कर कि जब फल बनूंगा, तब परमात्मा को चढूंगा। फूल ही चढ़ा दे। अगर तू फल हो चुका है, तो फल ही चढ़ा दे। लेकिन तब शायद उन्हें खयाल आया होगा कि ऐसे लोग भी तो हैं, जो अभी पत्ते भी नहीं हैं, अभी पानी ही हैं। तो उन्होंने कहा, अगर तू अभी जल ही है.।

जल जो है, बिलकुल प्राथमिक है। उससे नीचे फिर और कुछ नहीं हो सकता। जल ही बनता है पत्ता। फिर बढ़ता है, तो पत्ता बन जाता है फूल। फिर बढ़ता है, तो फूल बन जाता है फल।

तो कृष्ण ने कहा कि तू हो चाहे पत्ता, चाहे फूल, चाहे फल, तू जो भी हो, चढ़ा दे, तू जो भी हो, वैसा ही चढ़ जा।

हममें से बहुत लोग कहते हैं—ये सब हमारी बेईमानी के हिस्से हैं—हममें से बहुत लोग कहते हैं कि अभी तो कुछ है ही नहीं मेरे पास, तो अभी परमात्मा को चढ़ाऊं भी क्या?

कभी भी नहीं होगा आपके पास जिस दिन आप अनुभव कर सकें कि परमात्मा को चढ़ाने योग्य कुछ मेरे पास है। आप पोस्टपोन करते जा सकते हैं।

ये तीन अवस्थाएं हैं, या चार। जल की अवस्था का अर्थ है कि आप में किसी तरह का विकास नहीं हुआ है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, उसे भी मैं स्वीकार कर लूंगा। मैं तो, जो भी चढ़ाया जाता है, उसे स्वीकार कर लेता हूं। सवाल यह नहीं है कि क्या चढ़ाया, सवाल यह है कि चढ़ाया, अर्पित किया। अगर तू पत्ता है, तो पत्ते की तरह आ जा, अगर फूल हो गया है, तो फूल की तरह आ जा, अगर फल हो गया है, तो फल की तरह आ जा। जिस भी अवस्था में हो।

ये चार अवस्थाएं हैं चेतना की। पानी उस अवस्था को कहेंगे, जल उस अवस्था को कहेंगे, जिसमें चेतना आपकी बिलकुल ही प्रिमिटिव है, बिलकुल प्राथमिक है। पत्र उस अवस्था को कहेंगे, जिसमें आपकी चेतना ने थोड़ा विकास किया, रूप लिया, आकार

लिया। फूल उस चेतना को कहेंगे, जिसमें आपकी चेतना ने न केवल रूप—आकार लिया, बल्कि सौंदर्य को उपलब्ध हुई। फल उस अवस्था को कहेंगे, जिसमें आपकी चेतना सौंदर्य को ही उपलब्ध नहीं हुई, और चेतनाओं को जन्म देने की सामर्थ्य को भी उपलब्ध हुई; पक गई।

नीत्शे ने कहा है, राइपननेस इज आल—पक जाना सब कुछ है।

लेकिन कृष्ण नहीं कहेंगे यह। कृष्ण कहेंगे, पक जाना सब कुछ नहीं है, चढ़ जाना सब कुछ है।

नीत्शे ठीक कहता है, क्योंकि नीत्शे की दृष्टि में कोई ईश्वर नहीं है। तो नीत्शे कहता है, आदमी पक जाए, पूरा पक जाए। उसकी बुद्धि, उसकी प्रतिभा, उसका व्यक्तित्व एक पका हुआ फल हो जाए, तो सब है। राइपननेस इज आल। बात पूरी हो गई। सुपरमैन पैदा हो गया। महामानव पैदा हो गया। पक गया मनुष्य।

कृष्ण नहीं कहेंगे कि राइपननेस इज आल। वे कहेंगे, सरेंडर इज आल; पक जाना नहीं, समर्पित हो जाना। और तब वे यह कहते हैं कि समर्पित होने के लिए फल के तक रुकने की भी कोई जरूरत नहीं है। फल ही चढ़ेगा, ऐसा नहीं; पत्ता भी चढ़ जाएगा; पानी भी चढ़ जाएगा; फूल भी चढ़ जाएगा। जो जहां है, वहीं से अपने को अर्पित कर दे; कल की प्रतीक्षा न करे, कल के लिए बात को टाले न; स्थगित न करे। यह तो अर्थ है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप जो पत्ते—फूल चढ़ा आते हैं, वह बंद कर देना। मैं इतना ही कह रहा हूं कि जब फूल चढ़ाए, तब याद रखना कि इस फूल के चढ़ाने से संकेत भर मिलता है, हल नहीं होता। जब पता चढ़ाए, और जब पानी ढालें परमात्मा के चरणों में, जरूर ढालते चले जाना, लेकिन याद रखना, यह पानी ढालना केवल प्रतीक है, सिंबल है। ध्यान रखना कि कब तक इस पानी को ढालते रहेंगे? एक दिन अपने पानी को ढालने की तैयारी करनी है; एक दिन अपना फूल चढ़ा देना है, एक दिन अपना फल समर्पित कर देना हैं।

उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ सब कुछ मैं ही ग्रहण करता हूं!

यह तो हम देखते हैं कि फल हम चढ़ा आते हैं, पुजारी ग्रहण करता है। पक्की तरह पता है। यह भी हम देखते हैं कि फूल हम चढ़ा आते हैं, वे फिर बाजार में बिक जाते हैं।

एक मंदिर की दुकान को मैं जानता हूं क्योंकि दुकानदार मेरे परिचित हैं। उन्होंने मंदिर नया बना था, तब वह दुकान खोली थी। कोई पंद्रह वर्ष पहले। तब उन्होंने पहली बार जो नारियल खरीदे थे, वह दुकान उनसे ही चल रही है। क्योंकि वे नारियल रोज चढ़ जाते हैं, रात दुकान में वापस लौट आते हैं। फिर दूसरे दिन बिक जाते हैं, फिर चढ़ जाते हैं; रात फिर वापस लौट आते हैं! उन्होंने दुबारा नारियल नहीं खरीदे, क्योंकि पुजारी रात बेच जाता है। नारियल के सारी दुनिया में दाम बढ़ गए, उनकी दुकान पर अभी तक नहीं बढ़े। सस्ते से सस्ते में वे देते हैं। नारियल के भीतर अब कुछ बचा भी नहीं होगा!

हमें पता है कि फूल हम चढ़ा आएंगे, तो वह उसको नहीं मिल सकता। जब तक कि चेतना का फूल न चढ़ाया जाए, तब तक परमात्मा का भोजन नहीं हो सकता। जब तक हम स्वयं को ही न चढ़ा दें, तब तक हम उसके हिस्से नहीं बनते।

कृष्ण कहते हैं कि मैं उस सबको ग्रहण कर लेता हूं सबको, जो भी मुझे चढ़ाया जाता है, वह सब मेरा ही अंग हो जाता है।

इसलिए हे अर्जुन, तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरणरूप तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर। इस प्रकार कर्मों को मेरे अर्पण करने रूप संन्यास—योग से युक्त हुए मन वाला तू शुभ—अशुभ फल रूप कर्मबंधन से मुक्त हो जाएगा, और उससे मुक्त हुआ मेरे को ही प्राप्त होगा।

इस सूत्र में अंतिम दो—तीन बातें और खयाल ले लेने जैसी हैं। जो व्यक्ति अपना सब समर्पित कर देगा, अपने को पीछे बचाए बिना, विद नो विदहोल्डिग, पीछे अपने को जरा भी बचाए बिना जो अपने को अशेष भाव से, सब कुछ, पूरा का पूरा, समग्रीभूत रूप से समर्पित कर देगा, वह परमात्मा का हिस्सा हो जाता है। हिस्सा कहना भी ठीक नहीं, भाषा की भूल है, वह परमात्मा ही हो जाता है। क्योंकि परमात्मा में कोई हिस्से नहीं होते, कोई विभाग नहीं होता।

जब एक नदी सागर में गिरती है, तो सागर का हिस्सा नहीं हो जाती, सागर हो जाती है। सागर का हिस्सा तो हम तब कहें, जब कि उसका कोई अलग— थलग रूप बना रहे। खोजने जाएं और मिल जाए—कि यह रही गंगा। सागर में उसकी धारा अलग बहती रहे। कहीं नहीं बचती, सागर हो जाती है, फैल जाती है; एक हो जाती है।

तो ध्यान रखना, जब कोई परमात्मा से एक होता है, तो वह उसका अंश नहीं होता, परमात्मा ही हो जाता है, पूरा सागर हो जाता है, फैल जाता है; एक हो जाता है। हम परमात्मा के हिस्से नहीं हो सकते, क्योंकि परमात्मा कोई यंत्र नहीं है, जिसके हम हिस्से हो सकें। परमात्मा सागर जैसे चैतन्य का नाम है। उसमें कोई दीवालें और विभाजन नहीं हैं। उसमें हम होते हैं, तो हम पूरे ही हो जाते हैं। हम उसके साथ पूरे एक हो जाते हैं।

इसलिए कृष्ण अगर इतनी हिम्मत से अर्जुन से कह सके कि मैं ही हूं वह, तो उसका कारण है। अगर इतनी हिम्मत से कह सके कि छोड़ अर्जुन तू सब, और मुझ पर ही समर्पित हो जा! तो यह कृष्ण उस व्यक्ति के लिए नहीं कह रहे हैं, जो अर्जुन के सामने खड़ा था; यह उस व्यक्ति के लिए कह रहे हैं कृष्ण, जो उस सागर में गिरकर हो गए हैं। यह सागर की तरफ से कही गई बात है। लेकिन अब चूंकि नदी अलग नहीं बची है, इसलिए नदी सीधी बात कहती है कि मेरे साथ एक हो जा। क्योंकि नदी अब सागर हो गई है। कृष्ण इतना भी नहीं कहते कि तू परमात्मा के साथ एक हो जा। कहते हैं, मेरे साथ एक हो जा।

अनेक लोगों को कृष्ण का यह वक्तव्य अहंकार से भरा हुआ मालूम पड़ता रहा है, सदियों—सदियों से। और जो लोग नहीं समझ पाते, उन्हें लगता है— थोड़ी अड़चन मालूम पड़ती है—कि कृष्ण भी कैसा आदमी है? थोड़ा तो संकोच खाना था! अर्जुन से सीधे ही कहे चले जाते हैं, छोड़ दे सब मुझ पर! सब धर्म—वर्म को छोड़ दे, मेरी शरण में आ!

जरूर कृष्ण किसी और चैतन्य से बोलते हैं। यह उस नदी की आवाज है, जो सागर में गिर गई। अब नदी अगर यह भी कहे कि सागर में गिर जा, तो झूठ होगा। अब तो नदी यही कहती है कि मुझ सागर में मिल जा।

और अर्जुन को कठिनाई नहीं हुई इस बात से। गीता जिन्होंने भी पढ़ी है, उनको कभी न कभी कठिनाई होती है। गीता के बड़े भक्त हैं, उनको भी भीतर थोड़ा—सा खयाल आता है कि बात क्या है? कृष्ण को ऐसा नहीं कहना था, कोई और तरकीब से कह देते। यह सीधा क्या कहने की बात थी? क्या कृष्ण को भी अहंकार है? वह क्यों बार—बार इस मैं शब्द का उपयोग करते हैं? अर्जुन को तो कहते हैं, तू सब छोड़! और खुद अपना मैं जरा भी नहीं छोड़ते हैं! संदेह उठता ही रहा है। लेकिन अर्जुन के मन में जरा भी नहीं उठा। अर्जुन ने बहुत सवाल पूछे, यह सवाल जरा भी नहीं पूछा कि यह क्या बात है? मेरे मित्र हो, मेरे सखा हो, फिलहाल तो मेरे सारथी हो, ड्राइवर हो, थोड़ा तो खयाल करो कि मैं तुमसे ऊपर बैठा हूं तुम मुझसे नीचे बैठे हो, केवल मेरे रथ को सम्हालने के लिए तुम्हें ले आया हूं और तुम कहे जाते हो कि सब छोड़ और मेरी शरण आ!

जब कृष्ण ने कहा होगा, मेरी शरण आ, तो अर्जुन भी उनकी आंखों में उस सागर को देख सका होगा। नदी उसे भी दिखाई पड़ती, तो वह भी पूछ लेता। उसे नदी नहीं दिखाई पड़ी होगी।

लेकिन यह बड़ा आत्मीय संबंध था। एक शिष्य और एक गुरु के बीच था, दो मित्रों के बीच अगर भीड़— भाड़ वहां भी खड़ी होती, तो जरूर भीड़ मैं से कोई चिल्लाता कि बंद करो! यह क्या कह रहे हो? अपने ही मुंह से कह रहे हो कि मेरी शरण आ! मैं भगवान हूं!

बड़ा आत्मीय नैकटघ का वास्ता था। यह अर्जुन और कृष्ण के बीच निजी संबंध की बात थी। अर्जुन समझा होगा। देखी होगी उसने आंख, कि भीतर कोई मैं नहीं है। मैं सिर्फ भाषा का प्रयोग है।

सब छोड़ दे, तो मेरे साथ एक हो जाएगा। और इसे ही वे कहते हैं, इस अर्पण को ही वे कहते हैं संन्यास। इतनी हिम्मत की परिभाषा संन्यास की किसी और ने नहीं की है।

अर्जुन संसारी है पक्का। इससे पक्का और संसारी क्या होता है? संसार में भेज रहे हैं उसे युद्ध में, और कहते हैं कि इसे मैं कहता हूं संन्यास से युक्त हो जाना! तू युद्ध में जा और कर्ता को मेरी तरफ छोड़ दे। लड़ तू और जान कि मैं लड़ रहा हूं। तलवार तेरे हाथ में हो, लेकिन जानना कि मेरे हाथ में है। गर्दन तू काटे, लेकिन जानना कि मैंने काटी है। और गर्दन तेरी कट जाए तो भी जानना कि मैंने काटी है। कर्म और कर्तृत्व को सब मुझ पर छोड़ देना, तो तू संन्यास से युक्त हुआ।

अर्जुन संन्यासी होना चाहता था, लेकिन पुराने ढब का संन्यासी होना चाहता था। वह भी संन्यासी होना चाहता था। वह यही कह रहा था कि बचाओ मुझे। और बड़े गलत आदमी से पूछ बैठा। उसे कोई ढंग का आदमी चुनना चाहिए था। जो कहता कि बिलकुल ठीक! यही तो ज्ञान का लक्षण है। छोड़! सब त्याग कर! चल जंगल की तरफ!

गलत आदमी से पूछ बैठा। उसे पूछने के पहले ही सोचना था कि यह आदमी जो परम ज्ञानी होकर बांसुरी बजा सकता है, इससे जरा सोचकर बोलना चाहिए! पूछ बैठा। लेकिन शायद वहा कोई और मौजूद नहीं था, और कोई उपाय नहीं था; पूछ बैठा। सोचा उसने भी होगा कि कृष्ण भी कहेंगे कि ठीक है। यह संसार सब माया—मोह है, छोड़कर तू जा! कैसा युद्ध? क्या सार है? कुछ मिलेगा नहीं। और सीधी—सी बात है कि हिंसा में पड़ने से तो पाप ही होगा। तू हट जा।

इसी आशा में उसने बड़ी सहजता से पूछा था। लेकिन कृष्ण ने उसे कुछ और ही संन्यास की बात कही; एक अनूठे संन्यास की बात कही; शायद पृथ्वी पर पहली दफा वैसे संन्यास की बात कही। उसके पहले भी वैसे संन्यासी हुए हैं, लेकिन इतनी प्रकट बात नहीं हुई थी। कहा कि तू सब कर्म कर, सिर्फ कर्ता को छोड़ दे, तो तू संन्यास से युक्त हो गया। फिर तुझे कहीं किसी वन—उपवन में जाने की जरूरत नहीं। किसी हिमालय की तलाश नहीं करनी है। तू यहीं युद्ध में खड़े—खड़े संन्यासी हो जाता है।

पहली दफा आंतरिक रूपांतरण का इतना गहरा भरोसा! बाहर से कुछ बदलने की चिंता मत कर, बाहर तू जो है, वही रहा आ। भीतर से तू बदल जा। भीतर की बदलाहट एक ही बदलाहट है!

भीतर का केंद्र या तो अहंकार हो सकता है, या परमात्मा। बस, दो ही केंद्र हो सकते हैं। भीतर दो तरह के केंद्र संभव हैं, या तो परमात्मा केंद्र हो सकता है, या मैं—अहंकार—केंद्र हो सकता है। और जिनका भी परमात्मा केंद्र नहीं होता, वे भी बिना केंद्र के तो काम नहीं कर सकते, इसलिए अहंकार को केंद्र बनाकर चलना पड़ता है।

अहंकार जो है. सूडो सेंटर है, झूठा केंद्र है। असली केंद्र नहीं है, तो उससे काम चलाना पड़ता है। वह सकीटघूट सेंटर है, परिपूरक केंद्र है। जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा को केंद्र बना लेता है, इस परिपूरक की कोई जरूरत नहीं रह जाती, यह विदा हो जाता है।

इसलिए कृष्ण का जोर है कि तू सारे कर्ता के भाव को मुझ पर छोड़ दे। और जो ऐसा कर पाता है, वह समस्त कर्म—फल से मुक्त हो जाता है, शुभ और अशुभ दोनों से। उसने जो बुरे कर्म किए हैं, उनसे तो मुक्त हो ही जाता है, उसने जो अच्छे कर्म किए हैं, उनसे भी मुक्त हो जाता है।

बुरे कर्म से तो हम भी मुक्त होना चाहेंगे, लेकिन अच्छे कर्म से मुक्त होने में जरा हमें कष्ट मालूम पड़ेगा। कि मैंने जो मंदिर बनाया था, और मैंने इतने रोगियों को दवा दिलवाई थी, और अकाल में मैंने इतने पैसे भेजे थे, उनसे भी मुक्त कर देंगे? वह तो मेरी कुल संपदा है!

बुरे से छोड़ दें! मैंने चोरी की थी, बेईमानी की थी। क्योंकि बेईमानी न करता, तो अकाल में पैसे कैसे भिजवा पाता? और अगर चोरी न करता, तो यह मंदिर कैसे बनता? तो चोरी की थी, बेईमानी की थी, कालाबाजारी की थी, उनसे मेरा छुटकारा करवा दो! लेकिन कालाबाजारी करके जो मंदिर बनाया था, और अकाल में जो लोगों की सेवा की थी, और रोटी बांटी थी, और दवा—दारू भेजी थी, उसको तो बचने दो!

लेकिन कृष्ण कहते हैं, दोनों से, शुभ अशुभ दोनों से!

क्योंकि कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि शुभ करने में भी अशुभ हो जाता है। शुभ भी करना हो, तो अशुभ होता रहता है। वे संयुक्त हैं। अगर शुभ भी करना हो, तो अशुभ होता रहता है। अगर मैं दौड़कर, आप गिर पड़े हों, आपको उठाने भी आऊं, तो जितनी देर दौड़ता हूं उतनी देर में न मालूम कितने कीड़े—मकोड़ों की जान ले लेता हूं! न मालूम कितनी श्वास चलती है, कितने जीवाणु मर जाते हैं!

मैं कुछ भी करूं इस जगत में, तो शुभ और अशुभ दोनों संयुक्त हैं। दोनों संयुक्त हैं। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि कालाबाजारी करके मंदिर बनाया है, ऐसा नहीं। कुछ भी करिएगा, तो आप पाएंगे कि अशुभ भी साथ में हो रहा है। इस जगत में शुद्ध शुभ नहीं किया जा सकता, शुद्ध अशुभ भी नहीं किया जा सकता। अशुभ करने भी कोई जाए तो शुभ होता रहता है, शुभ करने भी कोई जाए, तो अशुभ होता रहता है। वे संयुक्त हैं; वे एक ही चीज के दो छोर हैं। विभाजन मन का है; अस्तित्व में कोई विभाजन नहीं है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, शुभ—अशुभ दोनों से मुक्त हो जाता है। और उनसे मुक्त हुआ मुझको ही प्राप्त होता है। क्योंकि परमात्मा, अर्थात मुक्ति।

इसलिए जिन्होंने मुक्ति को बहुत जोर दिया, उन्होंने परमात्मा शब्द का उपयोग भी नहीं करना चाहा। महावीर ने परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं किया। क्योंकि महावीर ने कहा, मुक्ति पर्याप्त है, मोक्ष पर्याप्त है। मोक्ष शब्द काफी है। मुक्त हो गए, सब हो गया। अब और चर्चा छेड़नी उचित नहीं है।

लेकिन महावीर के लिए मोक्ष का जो अर्थ है, वही हिंदुओं के लिए मुसलमानों के लिए ईश्वर का अर्थ है। ईश्वर का और कोई अर्थ नहीं है, परम मुक्ति, दि अल्टिमेट फ्रीडम।

क्योंकि जब तक अहंकार मौजूद है, तब तक मैं कभी मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि अहंकार की सीमाएं हैं, कमजोरिया हैं। अहंकार की सुविधाएं—असुविधाएं हैं। अहंकार कुछ कर सकता है, कुछ नहीं कर सकता। बंधन जारी रहेगा। सीमा बनी रहेगी।

सिर्फ परमात्मा ही जब मेरा केंद्र बनता है, मेरी सब सीमाएं गिर जाती हैं। उसके साथ ही मैं मुक्त हो जाता हूं। उसके साथ ही मुक्ति है। वही मुक्ति है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
नीति और धर्म—(प्रवचन—बारहवां)
अध्याय—9

सूत्र:

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।29।।
अपि चेत्सुदराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवलितो हि सः।।30।।

क्षिपं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छीत।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।31।।

मैं सब भूतों में सम—भाव से व्यापक हूं; न कोई मेरा अप्रय है और न प्रिय है। परंतु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते है, वे मेरे में और मैं भी उनमें प्रकट हूं।

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को निरंतर भजता है, वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है।

हसलिए वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली शांति को प्राप्त होता है। है अर्जुनु तू निश्चयपूर्वक सत्य जान क्रई मेरा भक्त नष्ट गी होता।

जीवन के संबंध में एक बहुत बुनियादी प्रश्न इस सूत्र में उठाया गया है। और जो जवाब है, वह आमूल रूप से क्रांतिकारी है। उस जवाब की क्रांति दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि गीता का हम पाठ करते हैं, समझते नहीं। हम उसे पढ़ते हैं, दोहराते हैं, लेकिन उसकी गहनता में प्रवेश नहीं हो पाता। बल्कि अक्सर ऐसा होता है, जितना ज्यादा हम उसे दोहराते हैं, और जितना हम उसके शब्दों से परिचित हो जाते हैं, उतनी ही समझने की जरूरत कम मालूम पड़ती है। शब्द समझ में आ जाते हैं, तो आदमी सोचता है कि अर्थ भी समझ में आ गया!

काश, अर्थ इतना आसान होता और शब्दों से समझ में आ .सकता, तो जीवन की सारी पहेलियां हल हो जातीं। लेकिन अर्थ शब्द से बहुत गहरा है। और शब्द केवल अर्थ की ऊपरी पर्त को छूते हैं। लेकिन शब्द को हम कंठस्थ कर सकते हैं। और शब्द की

ध्वनि बार—बार कान में गूंजती रहे, तो शब्द परिचित मालूम होने लगता है। और परिचय को हम ज्ञान समझ लेते हैं!

इस सूत्र में कृष्ण ने कहा है कि आचरण महत्वपूर्ण नहीं है। कृष्ण के मुंह से ऐसी बात सुनकर हैरानी होगी। कृष्ण कहते हैं, आचरण. महत्वपूर्ण नहीं है, अंतस महत्वपूर्ण है।

सब धर्म, जैसा हम सोचते हैं ऊपर से, आचरण पर जोर देते मालूम पड़ते हैं। वे कहते हैं, यह करो और यह मत करो! और अगर तुम्हारा सदाचरण होगा, तो तुम प्रभु को उपलब्ध हो जाओगे। सदाचरण की बात ठीक ही मालूम पड़ती है। और कौन होगा जो कहेगा कि सदाचरण के बिना भी परमात्मा उपलब्ध हो सकता है! कौन है जो कहेगा कि अनैतिक जीवन भी परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है!

नीति तो आधार है, ऐसा हम सभी को लगता है। लेकिन नीति आधार नहीं है। और स्थिति बिलकुल ही विपरीत है। सदाचरण से कोई परमात्मा को उपलब्ध होता हो, ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। ही, परमात्मा को जो उपलब्ध हो जाता है, वह जरूर सदाचरण को उपलब्ध हो जाता है। वह जो परमात्मा की प्रतीति है, वह प्राथमिक और मौलिक है, आचरण गौण है, द्वितीय है।

होना भी यही चाहिए; क्योंकि आचरण बाहरी घटना है और प्रभु— अनुभूति आंतरिक। और आचरण तो अंतस से आता है; अंतस आचरण से नहीं आता। मैं जो भी करता हूं वह मुझसे निकलता है; लेकिन मेरा होना मेरे करने से नहीं निकलता। मेरा अस्तित्व मेरे करने के पहले है। मेरा होना, मेरे सब करने से ज्यादा गहरा है। मेरा सब करना मेरे ऊपर फैले हुए पत्तों की भांति है, वह मेरी जड़ नहीं है, वह मेरी आत्मा नहीं है।

इसलिए यह भी हो सकता है कि मेरा कर्म मेरे संबंध में जो कहता हो, वह मेरी आत्मा की सही गवाही न हो। कर्म धोखा दे सकता है, कर्म प्रवंचना हो सकता है, कर्म पाखंड हो सकता है, हिपोक्रेसी हो सकता है। मेरे भीतर एक दूसरी ही आत्मा हो, जिसकी कोई खबर मेरे कर्मों से न मिलती हो।

यह तो हम जानते हैं कि मैं बिलकुल साधु का आचरण कर सकता हूं पूरी तरह असाधु होते हुए। इसमें कोई बहुत अड़चन नहीं है। क्योंकि आचरण व्यवस्था की बात है। मेरे भीतर कितना ही झूठ हो, मैं सच बोल सकता हूं; अड़चन होगी, कठिनाई होगी, लेकिन ; अभ्यास से संभव हो जाएगा। मेरे भीतर कितनी ही हिंसा हो, मैं। अहिंसक हो सकता हूं। बल्कि दिखाई ऐसा पड़ता है कि जिसको भी अहिंसक होना हो इस भाति, उसके भीतर काफी हिंसा होनी चाहिए। क्योंकि स्वयं को भी अहिंसक बनाने में बड़ी हिंसा करनी पड़ती है; स्वयं को भी दबाना पड़ता है, स्वयं की भी गर्दन पकड़नी पड़ती है!

यह हो सकता है कि मेरे बाहर क्रोध प्रकट न होता हो और मेरे भीतर बहुत क्रोध हो। संभावना यही है कि मैं इतना क्रोधी आदमी हो सकता हूं कि क्रोध मेरे लिए इतना खतरा हो जाए कि या तो मैं क्रोध करूं या मैं जी सकूं। और जीना हो, तो मुझे क्रोध को दबाना पडे।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि छोटे —मोटे क्रोधी कभी क्रोध को नहीं दबाते। इतना महंगा नहीं है उनका क्रोध। उतने क्रोध के रहते भी जिंदगी चल सकती है। लेकिन बड़े क्रोधी को तो क्रोध दबाना ही पड़ता है, क्योंकि जिंदगी असंभव हो जाएगी; जीना ही मुश्किल हो जाएगा। वह आग इतनी ज्यादा है कि जला डालेगी सब। कोई संबंध संभव नहीं रह जाएंगे।

तो बड़े क्रोधी को क्रोध को दबाना पड़ता है। दबाने में भी क्रोध की जरूरत पड़ती है। क्योंकि दबाना क्रोध का एक कृत्य है; चाहे दूसरे को दबाना हो, चाहे स्वयं को दबाना हो। तो यह हो सकता है। यह होता है। यह कठिन नहीं है। यह बहुत ही सहज घटता है कि बाहर जो आचरण में दिखाई पड़ता है, वह भीतर नहीं होता है। हम आचरण में धोखा दे सकते हैं।

लेकिन आचरण से जो धोखा दिया जाता है, वह लोगों की। आंखों को हो सकता है, लेकिन वह धोखा स्वयं को नहीं दिया जा सकता। नीति का संबंध है दूसरे को धोखा न देने से, धर्म का संबंध है स्वयं को धोखा न देने से। नीति का संबंध है समाज की आंखों में शुभ होने से; धर्म का संबंध है परमात्मा के सामने शुभ होने से। नैतिक होना आसान है। सच तो यह है कि अनैतिक होने में इतनी ' कठिनाइयां होती हैं कि आदमी को नैतिक होना ही पडता है। लेकिन धार्मिक होना बड़ा कठिन है, क्योंकि धार्मिक न होने से कोई भी अड़चन नहीं होती, कोई भी कठिनाई नहीं होती। बल्कि सच तो यह है कि धार्मिक होने से ही कठिनाई शुरू होती है और अड़चन शुरू ' होती है।

धार्मिक होकर जीना बड़े दुस्साहस का काम है। धार्मिक होकर जीने का अर्थ है कि अब मेरे जीवन का नियम मेरे भीतर से निकलेगा; अब इस जगत का कोई भी नियम मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं है; अब मैं ही अपना नियम हूं। और अब चाहे कुछ भी परिणाम हो, चाहे कितना ही दुख हो, और चाहे नर्क में भी पड़ना पडे, लेकिन अब मेरा नियम ही मेरा जीवन है।

धार्मिक होकर जीना अति कठिन है। धार्मिक होकर जीने का परिणाम तो भुगतना पड़ता है। किसी जीसस को सूली लगती है, किसी सुकरात को जहर पीना पड़ता है। यह बिलकुल अनिवार्य है। धार्मिक होकर जीना बहुत कठिन है।

ध्यान रहे, अनैतिक होकर भी जीना बहुत कठिन है, क्योंकि अनैतिक होते ही आप समाज के संघर्ष में पड़ जाते हैं—कानून, अदालत, पुलिस। अनैतिक होते ही आप समाज से संघर्ष में पड़ जाते हैं। अनैतिक होकर जीना बहुत मुश्किल है। धार्मिक होकर जीना भी बहुत मुश्किल है; क्योंकि धार्मिक होते ही आप स्वतंत्र जीवन शुरू कर देते हैं। अनैतिकता से इसलिए कठिनाई आती है कि जब आप दूसरों के हितों को नुकसान पहुंचाते हैं, तो आप कठिनाई में पड़ेंगे। धार्मिक होने से इसलिए कठिनाई आती है कि आप दूसरों को मानना ही बंद कर देते हैं। आप ऐसे जीने लगते हैं, जैसे पृथ्वी पर अकेले हैं, जैसे पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। आपका समस्त नियम आपके भीतर से निकलने लगता है। तब भी कठिनाई होती है।

ध्यान रहे, अनैतिक होना कठिन है, धार्मिक होना कठिन है। नैतिक होना कनवीनिएंट है, नैतिक होना बड़ा सुविधापूर्ण है, पार्ट आफ रिस्पेक्टिबिलिटी है। वह जो हमारा चारों तरफ सम्मानपूर्ण समाज है, उसमें नैतिक होकर जीना सबसे ज्यादा सुविधापूर्ण है। इसलिए जितना चालाक आदमी होगा, उतना नैतिक होकर जीना शुरू करेगा।

नैतिकता अक्सर चालाकी का हिस्सा होती है। धर्म भोलेपन का परिणाम है, निर्दोषता का, नैतिकता चालाकी का, हिसाब का,। कैलकुलेशन का, अनैतिकता नासमझी का परिणाम है, अज्ञान का। समझ लें। अनैतिकता नासमझी का परिणाम है, अज्ञान का, नैतिकता होशियारी का, चालाकी का, गणित का, धर्म निर्दोष साहस का।

लेकिन समाज जोर देता है कि जो नैतिक नहीं है, वह धार्मिक नहीं हो सकेगा। इसलिए अगर परमात्मा तक जाना है, तो नैतिक बनो! समाज का जोर ठीक है।

समाज इस जोर को दिए बिना जी नहीं सकता। समाज को जीना हो, तो उसे नैतिकता की पूरी की पूरी व्यवस्था कायम करनी ही पड़ेगी। वह नेसेसरी ईविल है, जरूरी बुराई है। जब तक कि सारी पृथ्वी धार्मिक न हो जाए, तब तक नैतिकता की कोई न कोई व्यवस्था करनी ही पड़ेगी; क्योंकि अनैतिक होकर जीना इतना असंभव है। तो नैतिकता की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

अगर दस चोर भी चोरी में कोई संगठन कर लेते हैं, तो भी अपने भीतर एक नैतिकता की व्यवस्था उन्हें निर्मित करनी पड़ती है। दस चोरों को भी! समाज के साथ वे अनैतिक होते हैं, लेकिन अपने भीतर, उनके गिरोह के भीतर अतिनैतिक होते हैं। और यह मजे की बात है कि चोर जितने नैतिक होते हैं अपने मंडल में, उतने साधु भी अपने मंडल में नैतिक नहीं होते!

उसका कारण है। उसका कारण है कि चोर भलीभांति समझता है कि अनैतिक होकर जब समाज में जीना इतना असंभव है और मुश्किल है, तो अगर हम अनैतिक भीतर भी हो गए, तो हमारा जो आल्टरनेटिव समाज है, जो वैकल्पिक समाज है, वह भी मुश्किल हो जाएगा। हम पूरे समाज के खिलाफ तो जी ही रहे हैं, वह मुश्किल हो गया है। अब अगर हम दस लोग भी, जो खिलाफ होकर जी रहे हैं, हम भी अगर अनैतिक व्यवहार करें, और रात में हम भी एक—दूसरे की जेब काट लें, और वायदा दें और पूरा न करें, तो फिर हमारा जीना असंभव हो जाएगा।

इसलिए चोरों की अपनी नैतिक व्यवस्थाएं होती हैं। उनका अपना मारल कोड है। और ध्यान रहे, साधुओं से उनका मारल कोड हमेशा श्रेष्ठतर साबित हुआ है। उसका कारण है। उसका कारण है कि साधु तो समाज के साथ नैतिक होकर जीता है। उसे कोई अलग समाज नैतिक बनाकर जीने की जरूरत नहीं पड़ती। इसलिए दो साधुओं को इकट्ठा करना मुश्किल मामला है। दो साधुओं को इकट्ठा करना

मुश्किल मामला है। सौ—पचास साधुओं को इकट्ठा करना उपद्रव लेना है! लेकिन सौ चोरों को इकट्ठा करें, तो एक बहुत नैतिक समाज उनके भीतर निर्मित हो जाता है।

बुरे आदमी की अपनी नैतिक व्यवस्था है, क्योंकि वह यह समझता है कि बिना उस व्यवस्था के जीना असंभव है। बाहर तो वह लड़ ही रहा है, अगर भीतर अपने गिरोह में भी लड़े, तो अति कठिनाई हो जाएगी।

समाज को नैतिकता की व्यवस्था जारी रखनी ही पडेगी, क्योंकि आदमी इतना अज्ञानी है। लेकिन समाज यह भी जोर देता है कि जब तक कोई नैतिक न होगा, तब तक वह धार्मिक नहीं हो सकता। यह वक्तव्य जरूरी है, लेकिन खतरनाक है और असत्य है। सचाई उलटी है। सचाई यह है कि जब तक कोई धार्मिक न होगा, तब तक उसकी नैतिकता आरोपित, थोपी हुई, ऊपर से लादी हुई होगी, अस्थाई होगी, आंतरिक नहीं होगी, आत्मिक नहीं होगी।

धार्मिक होकर ही व्यक्ति के जीवन में नीति का आविर्भाव होता है। उस नीति का, जो किसी भय के कारण नहीं थोपी गई होती। न किसी प्रलोभन, न किसी पुरस्कार के लिए, न स्वर्ग के लिए; न नर्क के डर से, न स्वर्ग के लोभ से, न प्रतिष्ठा के लिए, न सम्मान के लिए, न सुविधा के लिए, बल्कि इसलिए कि भीतर अब नैतिक होने में ही आनंद मिलता है और अनैतिक होने में दुख मिलता है। लेकिन ऐसी नैतिकता का जन्म धर्म के बाद होता है।

तो कृष्ण ने इस में एक सूत्र कहा है, और वह सूत्र समझने जैसा है। वह कहा है, अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ, मुझे निरंतर भजता है, वह साधु मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है।

यहां साधु की परिभाषा में कृष्ण ने हैरानी की बात कही है। साधु से सामान्यतया हम समझते हैं, सदाचारी। साधु का अर्थ होता है, सदाचारी; असाधु का अर्थ होता है, दुराचारी। यहां कृष्ण कहते हैं,। अतिशय दुराचारी भी यदि मेरी भक्ति में अनन्य भाव से डूबता है, तो वह साधु है।

यहां साधु की पूरी परिभाषा बदल जाती है। साधु का अर्थ ही होता है, सदाचारी। यहां कृष्ण कहते हैं, अतिशय दुराचारी भी साधु कहा जाने योग्य है! फिर साधु की क्या परिभाषा होगी?

कृष्ण कहते हैं, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है—ए फर्म डिटरमिनेशन।

एक यथार्थ निश्चय यहां साधु की परिभाषा है। और वह यथार्थ निश्चय क्या है? वह यथार्थ निश्चय है, प्रभु के स्मरण का। वह यथार्थ निश्चय है, प्रभु के प्रति समर्पण का। वह यथार्थ निश्चय है, उसकी अनन्य भक्ति का।

यहां दो—तीन बातें हम समझ लें। एक तो यथार्थ निश्चय वाले को साधु कहना बड़ी नई बात है। आपको इस सूत्र को पढ़ते वक्त खयाल में न आई होगी। क्योंकि यह तो कृष्ण यह कह रहे हैं कि असाधु भी साधु है, अगर वह यथार्थ निश्चय वाला है। असाधु का मतलब होता है, दुराचारी। असाधु को भी साधु जानना, अगर वह यथार्थ निश्चय वाला है, और उसका निश्चय मेरी तरफ गतिमान हो गया है।

तो दो बातें। यथार्थ निश्चय का क्या अर्थ है? यथार्थ निश्चय के दो अर्थ हैं। एक, समग्र हो, उसके विपरीत कोई भी भाव मन में न हो, तो ही यथार्थ होगा, अन्यथा डावाडोल होता रहेगा। पूरे मन से लिया गया हो, पूरे प्राणों ने हामी भर दी हो। अगर पूरे प्राणों ने हामी भर दी हो, तो वह निश्चय यथार्थ हो जाएगा। और अगर पूरे प्राणों ने हामी न भरी हो, तो निश्चय काल्पनिक रहेगा, वास्तविक नहीं होगा। और मन डोलता रहेगा; और हम ही बनाएंगे और हम ही मिटाते रहेंगे; एक हाथ से निश्चय की ईंटें रखेंगे, दूसरे हाथ से निश्चय की ईंटों को गिरा देंगे। दोनों तरफ से हम काम करते रहेंगे, एक तरफ निर्णय लेंगे, एक तरफ निर्णय को तोड्ने का उपाय करते रहेंगे। कहीं पहुंचेंगे नहीं। यथार्थ निश्चय का अर्थ हुआ कि पूरे चित्त से लिया गया हो।

एक सूफी फकीर हसन एक गाव में आया है। रात आंधी हो गई है, कहीं ठहरने को कोई जगह नहीं है; अजनबी, अपरिचित आदमी है। सराय के मालिक ने कहा कि कोई गवाह ले आओ, तब मैं ठहरने दूंगा।

आंधी रात, गवाह कहा खोजे? अनजान, अपरिचित गांव है। कोई पहचान वाला भी नहीं है। परेशान है। एक झाड़ू के नीचे सोने को जा रहा है कि तब एक आदमी उसे पास से गुजरता हुआ दिखाई पड़ा। उसने उस आदमी से कहा कि पूरी बस्ती सो गई है, किसी को मैं जानता नहीं हूं। क्या आप मेरे लिए थोड़ी सहायता करेंगे कि चलकर सराय के मालिक को कह दें कि आप मुझे जानते हैं!

उस आदमी ने कहा—पास आकर हसन को देखा कि फकीर है—हसन को कहा कि पहले तो मैं तुम्हें अपना परिचय दे दूं क्योंकि मैं एक चोर हूं और रात में अपने काम पर निकला हूं। एक चोर की गवाही एक साधु के काम पड़ेगी या नहीं, मैं नहीं जानता! सराय का मालिक

मेरी बात मानेगा, नहीं मानेगा। मेरी गवाही का बहुत मूल्य नहीं हो सकता। लेकिन मैं एक निवेदन करता हूं कि मेरा घर खाली है। मैं तो रातभर काम में लगा रहूंगा, तुम आकर सो सकते हो।

हसन थोड़ा चिंतित हुआ। और उसने कहा कि तुम एक चोर होकर भी मुझ पर इतना भरोसा करते हो कि अपने घर में मुझे ठहराते हो?

उस चोर ने कहा, जो बुरे से बुरा हो सकता है, वह मैं करता हूं। अब इससे बुरा और कोई क्या कर सकेगा? चोरी ही करोगे न ज्यादा से ज्यादा! यह आम अपना काम है। तुम घर आकर रह सकते हो।

सराय में जगह नहीं मिली। सराय अच्छे लोगों ने बनाई थी। एक चोर ने जगह दी! और उसने कहा, अब और बुरा क्या हो सकता है! लेकिन फिर भी हसन डरा कि चोर के घर में रुकना या नहीं रुकना! या झाडू के नीचे ही सो जाना बेहतर है!

बाद में हसन ने कहा कि उस दिन मुझे पता चला कि मेरा साधु उस चोर से कमजोर था। साधु डरा कि चोर के घर रुकूं या न रुकूं! और चोर न डरा कि इस अजनबी आदमी को घर में ठहराऊं या न ठहराऊं! चोर को यह भी भय न लगा कि यह साधु है, अपना दुश्मन है, अपने को बदल डालेगा! साधु को यह भय लगा कि चोर के साथ रहने से कहीं मेरी साधुता नष्ट न हो जाए!

हसन ने बाद में कहा कि उस दिन मुझे पता चला कि मेरे साधु का जो निश्चय था, वह चोर के निश्चय से कमजोर था। वह ज्यादा दृढ़ निश्चयी था।

गया, चोर के घर रात रुका। कोई सुबह, भोर होने के पहले चोर आया, हसन ने दरवाजा खोला। हसन ने पूछा, कुछ मिला? चोर ने हंसते हुए कहा, आज तो नहीं मिला, लेकिन फिर कोशिश करेंगे। उदास नहीं था, परेशान नहीं था, चिंतित नहीं था; आकर मजे से सो गया! दूसरी रात भी गया। और हसन एक महीने उसके घर में रहा, और रोज ऐसा हुआ कि रोज वह खाली हाथ लौटता और हसन उससे पूछता कि कुछ मिला? और वह कहता, आज तो नहीं, लेकिन फिर कोशिश करेंगे!

फिर बरसों बाद हसन को आत्म—शान हुआ। दूर उस चोर का कोई पता भी न था कहां होगा। जिस दिन हसन को आत्म—शान हुआ, उसने पहला धन्यवाद उस चोर को दिया और परमात्मा से कहा, उस चोर को धन्यवाद! क्योंकि उसके पास ही मैंने यह सीखा कि साधारण—सी चोरी करने यह आदमी जाता है और खाली हाथ लौट आता है, लेकिन उदास नहीं है, थकता नहीं, निश्चय इसका टूटता नहीं। कभी ऐसा नहीं कहता कि यह धंधा बेकार है, छोड़ दें, कुछ हाथ नहीं आता!

और जब मैं परमात्मा को खोजने निकला, उस परम संपदा को खोजने निकला, तो न मालूम कितनी बार ऐसा लगता था कि यह सब बेकार है, कुछ मिलता नहीं। न कोई परमात्मा दिखाई पड़ता है, न कोई आत्मा का अनुभव होता है। पता नहीं इस सब बकवास में मैं पड़ गया हूं छोडूं। और जब भी मुझे ऐसा लगता था, तभी मुझे उस चोर का खयाल आता था कि साधारण—सी संपदा को चुराने जो गया है, उसका निश्चय भी मुझसे ज्यादा है, और मैं परम संपदा को चुराने निकला हूं, तो मेरा निश्चय इतना डांवाडोल है! तो जिस दिन उसे ज्ञान हुआ, उसने पहला धन्यवाद उस चोर को दिया और कहा कि मेरा असली गुरु वही है। हसन के शिष्यों ने उससे पूछा कि उसके असली गुरु होने का कारण? तो उसने कहा, उसका दृढ़ निश्चय!

दृढ़ निश्चय का अर्थ है कि पूरे प्राण इतने आत्मसात हैं कि चाहे हार हो, चाहे जीत; चाहे सफलता मिले, चाहे असफलता, निर्णय नहीं बदलेगा। दृढ़ निश्चय का अर्थ है, चाहे असफलता मिले, चाहे

सफलता, चाहे जन्मों—जन्मों तक भटकना पड़े, निर्णय नहीं बदलेगा। खोज जारी रहेगी। सब खो जाए बाहर, लेकिन भीतर खोजने वाला संकल्प नहीं खोएगा। वह जारी रहेगा। सब विपरीत हो जाए, सब प्रतिकूल पड़ जाए, कोई साथी न मिले, कोई संगी न मिले, कोई अनुभव की किरण भी न मिले, अंधेरा घनघोर हो, टूटने की कोई आशा न रहे, तब भी।

कीर्कगार्ड ने इस दृढ़ निश्चय की परिभाषा में कहा है, वन हू कैन होप अगेंस्ट होप। जो आशा के भी विपरीत आशा कर सके, वही दृढ़ निश्चय वाला है।

दृढ़ निश्चय का अर्थ है, जब सब तरह से आशा टूट जाए, बुद्धि कोई जवाब न दे कि कुछ होगा नहीं अब, रास्ता समाप्त है, आगे कोई मार्ग नहीं है, शक्ति चुक गई; श्वास लेने तक की हिम्मत नहीं है, एक कदम अब उठ नहीं सकता और मंजिल कोसों तक कोई पता नहीं है, तब भी भीतर कोई प्राण कहता चला जाए कि मंजिल है, और चलूंगा; और चलता रहूंगा। यह जो आत्यंतिक संकल्प है, इसका नाम दृढ़ निश्चय है।

और कृष्ण कहते हैं, दृढ़ निश्चय साधु का लक्षण है।

दुराचरण— आचरण की चिंता छोड़ देते हैं। अब इसे थोडा हम गहरे में समझेंगे, तो हमें खयाल में आएगा कि उनके छोड़ने का कारण क्या है?

क्योंकि ध्यान रहे, दुराचरण का मौलिक कारण क्या है न: सदाचरण की आकांक्षा सभी में पैदा होती है, लेकिन निश्चय ही कभी दृढ़ नहीं हो पाता, तो दुराचरण पैदा होता है। दुराचरण गहरे में निश्चय की कमी है।

ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने न चाहा हो कि क्रोध से छुटकारा मिल जाए, जिसने न चाहा हो कि झूठ बोलना बंद करूं। क्योंकि झूठ स्वयं को भी गहरे में पीड़ा देता है, और क्रोध खुद को ही जलाता है, और निंदा अपने ही मन को गंदा कर जाती है, और अनीति जिसे हम कहते हैं, वह भीतर एक कुरूपता को, एक कोढ़ को पैदा करती है। तो कौन है जिसने न चाहा हो?

लेकिन चाह से कुछ भी नहीं होता, क्योंकि चाह संकल्प नहीं बन पाती। चाहते हैं बहुत, चाहते हैं बहुत, और समय पर सब बिखर जाता है। भीतर संकल्प नहीं होता है, तो चाह सिर्फ चाह रह जाती है, निश्चय नहीं बन पाती।

तो कृष्ण कहते हैं कि अगर कोई दुराचारी भी हो, तो चिंता नहीं है; असली सवाल यह है कि उसके पास एक दृढ़ निश्चय है या नहीं है।

और यह बडे मजे की बात है कि बुरे आदमियों के पास एक तरह का निश्चय होता है, जो भले आदमियों के पास नहीं होता। बुरे आदमी अपनी बुराई में बड़े जिद्दी होते हैं। और बुरे आदमी अपनी बुराई में बड़े पक्के होते हैं। और बुरा आदमी अपनी बुराई का इस तरह पीछा करता है, जैसा कोई भला आदमी अपनी भलाई का कभी नहीं करता। और बुरा आदमी अपनी बुराई से सब तरह के कष्ट पाता है, फिर भी बुराई में अडिग बना रहता है, और भला आदमी कष्ट नहीं भी पाता, फिर भी डांवाडोल होता रहता है!

कहीं ऐसा तो नहीं है, जिसे हम भला आदमी कहते हैं, वह सिर्फ भय के कारण भला होता है, उसके पास दृढ़ निश्चय नहीं होता? ऐसा तो नहीं है कि जो चोरी नहीं करता, वह इसलिए चोरी न करता हो, क्योंकि पकड़े जाने का डर है। ऐसा तो नहीं है कि इसलिए चोरी न करता हो कि नर्क में कौन भुगतेगा! ऐसा तो नहीं है कि इसलिए चोरी न करता हो कि बदनामी हो जाएगी। कहीं ऐसा तो नहीं है कि चोरी न करना, केवल गहरे में कायरता हो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह आदमी अहिंसक बनकर बैठ गया है। वह कहता है, हम किसी को मारना नहीं चाहते, क्योंकि गहरे में वह जानता है कि मारोगे तो पिटने की तैयारी होनी चाहिए। क्योंकि कोई भी आदमी मारने जाए और मार खाने की तैयारी न रखता हो, तो कैसे जाएगा? तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि सारी अहिंसा केवल भीतर की कायरता का बचाव हो, कि न मारेंगे, न मारे जाएंगे। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मार खाकर भी अपने को बचा लेने की तरकीब हो, कि तुम। कितना ही मारो, हम तो अहिंसक हैं, हम जवाब न देंगे।

भला आदमी जिसे हम कहते हैं, सौ में नब्बे मौके पर कमजोरी के कारण भला होता है। इसीलिए तो भलाई इतनी कमजोर है दुनिया। में और बुराई इतनी मजबूत है। और बुरे आदमी को दो सजाएं, और बुरे आदमी को अपराध में दंड दो, जेलखानों में रखो, फांसिया लगाओ। और बुरा आदमी है कि परसिस्ट करता है, अपनी बुराई पर मजबूत रहता है। एक बात का तो आदर करना ही पड़ेगा कि उसकी मजबूती गहरी है; उसकी बुराई बुरी है, लेकिन उसकी मजबूती बड़ी गहरी है और बड़ी अच्छी है।

तो कृष्ण कहते हैं कि अगर कोई आदमी दृढ़ निश्चय वाला है और दुराचारी भी है, तो भी उसे साधु समझना; क्योंकि अगर वह अपने दृढ़ निश्चय को मेरी ओर लगा दे, तो सब रूपांतरण हो जाएगा। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि कोई वाल्मीकि, सब तरह से बुरा है, हत्यारा है, चोर है, लुटेरा है, डाकू है, और फिर अचानक महर्षि हो जाता है! जरा—सी घटना, इतनी—सी घटना से इतनी बड़ी क्रांति कैसे होती होगी? क्योंकि आचरण जन्मों—जन्मों का बुरा हो, तो क्षणभर में सदाचरण कैसे बन जाएगा?

एक ही बात हो सकती है कि उस दुराचरण के पीछे जो दृढ़ संकल्प था, वह दृढ संकल्प अगर अब सदाचरण के पीछे लग जाए, तो क्षणभर में क्रांति हो जाएगी। क्योंकि वह दुराचरण भी उस संकल्प के कारण ही चलता था। बुरे आदमी मजबूत होते है, पागल होते हैं, जो करते हैं, उसको बिलकुल पागलपन से करते हैं।

हिटलर जैसा साधु खोजना अभी भी मुश्किल है। बहुत मुश्किल है। स्टैलिन जैसा साधु खोजना अभी भी मुश्किल है। अगर स्टैलिन को एक धुन सवार थी, तो एक करोड़ आदमियों की हत्या वह कर सकता है! अगर हिटलर को एक खयाल सवार था, तो सारी दुनिया को आग में डाल सकता है; खुद जल सकता है, सारी दुनिया को जला डाल सकता है। इतना बल, बुराई के लिए, जिससे कि अंततः दुख के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आता है, निश्चित ही एक गहरी बात है। कहना चाहिए, इस तरह के व्यक्तियों के पास एक तरह की आत्मा है, एक पोटेंशियल, एक बीज—रूप आत्मा है!

हिटलर के पास बड़ी आत्मा है बजाय उस आदमी के, जो डर के मारे साधु बना बैठा है। क्योंकि भय तो आत्मा को जंग मार देता है। हिटलर बुरा है, बिलकुल बुरा है; शैतान; जितना शैतान हो सकता है, उतना शैतान है। लेकिन इस शैतान के पास भी एक आत्मा है, एक संकल्प है। और यह संकल्प जिस दिन भी बदल जाए, उस दिन यह आदमी क्षणभर में क्रांति से गुजर जाएगा। किसी भी जन्म में, कहीं

भी, इस हिटलर को किसी दिन जब संकल्प का रूपांतरण होगा, तो इसकी आत्मा से एक बहुत महान तेजस्वी व्यक्तित्व का जन्म हो जाएगा एक क्षण में। क्योंकि यह धारा कोई पतली धारा नहीं है, कोई नदी—नाला नहीं है। यह महासागर की धारा है। अगर बुराई की तरफ जाती थी, तो बुराई की तरफ सारा जगत बहेगा इसके साथ। अगर भलाई की तरफ जाएगी, तो इतना ही बड़ा प्रचंड झंझावात भलाई की तरफ भी बहने लगेगा।

कृष्ण कहते हैं, दुराचार असली सवाल नहीं है, असली सवाल यह है कि वह जो भीतर संकल्प की क्षमता है, द्दढ़ निश्चय है। एक। और दूसरी बात, अकेला द्दढ निश्चय ही हो, तो काफी नहीं है, क्योंकि द्दढ़ निश्चय से आप बुरा भी कर सकते हैं, भला भी कर सकते हैं। द्दढ़ निश्चय तो तटस्थ शक्ति है। इसलिए दूसरी शर्त है, अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ निरंतर मुझे भजता है, वह साधु मानने योग्य है। और शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाएगा। शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाएगा।

यह जो द्दढ़ निश्चय की चेतना है, इसका क्या अर्थ है? अगर हम अपनी चेतना को समझें, तो हमारी चेतना ऐसी है, जैसे किसी कुएं में बाल्टी डालें, और छेद ही छेद वाली बाल्टी हो। फिर कुएं से खींचें पानी को, तो पानी भरेगा तो जरूर, पहुंचेगा नहीं। भरेगा तो जरूर, और जब तक बाल्टी पानी में डूबी रहेगी, पूरी भरी मालूम पड़ेगी, लबालब, और जैसे ही पानी से खींचना शुरू हुआ कि बाल्टी खाली होनी शुरू हो जाएगी। बडा शोरगुल मचेगा कुएं में, क्योंकि सब धाराओं से पानी नीचे गिरेगा। आवाज बहुत होगी, हाथ कुछ भी न आएगा। हाथ खाली बाल्टी लौट आएगी।

हमारी चेतना ऐसी है। इतने छिद्र हैं हमारे संकल्प में कि कई बार भर लेते हैं बिलकुल, और ऐसा लगता है कि सब ठीक हो गया। बस, पानी में डूबी रहे, तभी तक। पानी में डूबी रहने का अर्थ, जब तक कल्पना में डूबी रहे, तब तक। तब तक सब ठीक हो जाता है। आज साझ तय कर लेते हैं, तब लगता है कि बिलकुल साधु हो गया मैं अब, अब कुछ कारण नहीं रहा। रात बिलकुल साधु की तरह सो जाता हूं। और सुबह हाथ खाली बाल्टी! बड़ा रातभर शोरगुल होता है, बड़ी आवाजें आती हैं कि भरकर बाल्टी आ रही है।

ध्यान रहे, जब भरकर बाल्टी आती है, तो आवाज बिलकुल नहीं होती; और जब खाली बाल्टी आनी होती है, तो आवाज बहुत होती है।

हमारे मन में कितनी आवाज चलती है! रोज—रोज निर्णय करते हैं, रोज—रोज बिखर जाते हैं। और धीरे— धीरे हम भलीभांति जान जाते हैं कि हमारे निर्णय का कोई भी मूल्य नहीं है। जिस दिन हमें यह अनुभव हो जाता है कि हमारे निर्णय का कोई भी मूल्य नहीं है, हमारे संकल्प की कोई क्षमता नहीं है, उसी दिन समझना आपकी मृत्यु हो गई। शरीर कुछ दिन चलेगा, वह अलग बात है, आप मर गए, आत्मिक रूप से आप मर गए। लाशें जी सकती हैं, जीती हैं, मुर्दे चल सकते हैं, चलते हैं, लेकिन जिस दिन पता आपको चल गया कि आपके पास कोई संकल्प नहीं है, उसी दिन आप मर गए।

तो हम अपने को धोखा देते रहते हैं; यह भी पता नहीं चलने देते। रोज—रोज नए संकल्प करते रहते हैं। और क्षुद्रतम संकल्प भी कभी पूरे होते नहीं दिखाई पड़ते। बहुत क्षुद्र संकल्प करिए, और आपकी छिद्रों वाली बाल्टी उसको बहाकर रख देगी!

हमारी चेतना ऐसी है, बहुत छिद्रों वाली। जितने ज्यादा छिद्र होंगे, उतना ही संकल्प मुश्किल हो जाएगा। द्दढ संकल्प का अर्थ है, जिस बाल्टी में कोई छिद्र नहीं है। उसका अर्थ हुआ कि जो चेतना अपने संकल्प से अपने को भर लेती है, तो बिखर नहीं पाती, बिखराव नहीं होता। क्या करें कि ऐसा हो जाए?

यह तो हम जानते हैं कि छिद्रों वाली हमारी चेतना है। क्या करें? क्या करें कि ये छिद्र बंद हो जाएं? इनसे हमारा छुटकारा हो जाए! पहली बात, कभी भी बडे संकल्प मत करें। बचपन से ही हम हर आदमी को बड़े संकल्प करवाने की शिक्षा देते हैं, उससे असफलता हाथ लगती है। बहुत छोटे संकल्प करें। असली सवाल संकल्प का बड़ा होना और छोटा होना नहीं है, असली सवाल संकल्प का सफल होना है। बहुत छोटे संकल्प करें, लेकिन संकल्पों को सफलता तक पहुंचाएं। बडे संकल्प मत करें। क्योंकि अगर असफलता मिलती है, तो धीरे—धीरे भीतर हीनता गहरी होती चली जाती है। हर असफलता एक छिद्र बन जाती है। हर असफलता एक छिद्र बन जाती है। हर सफलता छिद्रों का रुकना बन जाती है। बहुत छोटे संकल्प करें, बड़े संकल्प का कोई सवाल नहीं है।

तिब्बत में, जब कोई साधु प्रवेश करता है किसी आश्रम में, तो बड़े छोटे संकल्पों की शिक्षा देते हैं, बहुत छोटा संकल्प। साधु को कह देते हैं, बाहर दरवाजे पर बैठ जाओ। आंख बंद रखना, और जब तक गुरु आकर न कहे, तब तक आंख मत खोलना।

यह कोई बड़ा संकल्प नहीं है। कौन—सा बड़ा संकल्प है! आप कहेंगे, आंख बंद रख लेंगे। लेकिन बंद रखकर जब बैठेंगे दो —चार घंटे, तब पता चलेगा! कई बार बीच में धोखा देने का मन आएगा। कई बार जरा—सी आंख खोलकर देख लेने का मन होगा कि अभी तक गुरु आया कि नहीं आया त्र' कौन गुजर रहा है? नहीं तो कम से कम घड़ी का जरा—सा खयाल आ जाएगा कि कितना बज गया? कितनी देर हो गई? और मन इतना बेईमान है कि आपको पता भी नहीं चलेगा और आप कर गुजरेंगे।

बहुत छोटा—सा संकल्प है, लेकिन बैठा हुआ है व्यक्ति, आंख बंद किए हुए बैठा है। छः घंटे बीत गए हैं, वह आंख बंद किए हुए बैठा है। कोई बड़ा काम नहीं करवाया गया है। लेकिन छः घंटे भी अगर उसने ईमानदारी से, आथेंटिकली, प्रामाणिक रूप से आंख बंद रखी है, तो छः घंटे के बाद उस आदमी की बाल्टी के कई छेद बंद हो गए होंगे। यह छोटा—सा प्रयोग है। कोई बहुत बड़ा प्रयोग नहीं है। बहुत छोटा—सा प्रयोग है।

सब धर्मों के पास छोटे—छोटे प्रयोग हैं। वे छोटे—छोटे प्रयोग धर्म के लिए नहीं हैं, संकल्प के लिए हैं। समझ लें, कोई धर्म कहता है कि आज उपवास कर लें। कोई धर्म कहता है, आज यह नहीं खाएंगे। कोई धर्म कहता है, आज यह नहीं पहनेंगे। कोई धर्म कहता है, आज रात सोएंगे नहीं। कोई धर्म कहता है, दिनभर खाना नहीं खाएंगे, रात खाना खाएंगे। इनका धर्म से कोई भी सीधा संबंध नहीं है। इन सबका संबंध संकल्प के, वह जो छिद्रों वाली बाल्टी है, उसको भरने से है।

लेकिन जैसा मैंने कहा कि आंख खोलकर धोखा देने का मन होगा, वह तो समझ में भी आ जाएगा, क्योंकि आंख खोलनी पड़ेगी। अगर आपने एक दिन का उपवास किया है, तो वह उपवास उसी वक्त टूट जाता है, जिस वक्त भोजन का खयाल आ जाता है और आप कल्पना में भोजन करना शुरू कर देते हैं। उसी वक्त टूट जाता है। फिर उपवास रखने का कोई मूल्य नहीं रह गया। कोई मूल्य नहीं रह गया।

और आमतौर से साधक, जो उपवास करते हैं, वे क्या करते हैं? जैसे जैनों में उपवास के संकल्प का बहुत प्रयोग किया गया है। तो जब वे उपवास करेंगे उनके पर्युषण में, तो उपवास करके मंदिर में पहुंच जाएंगे! साधु की चर्चा सुनेंगे, शास्त्र सुनेंगे, मंदिर में बैठे रहेंगे। न भोजन दिखाई पड़ेगा, न भोजन की चर्चा होगी, न उसकी याद आएगी। इसलिए बचाव करेंगे वहां जाकर।

यह धोखा है। भोजन करने या नहीं करने का मूल्य नहीं है, मूल्य तो संकल्प को जगाने का है। तो मैं आपसे कहता हूं कि जिस दिन उपवास करें, उस दिन तो चौके में ही अड्डा जमा दें; उस दिन चौका छोड़ना ही नहीं है। और जितनी अच्छी चीजें आपको पसंद हों, सब बनवाकर अपने चारों तरफ रख लें, और बीच में ध्यानस्थ होकर बैठ जाएं। एक—एक चीज पर ध्यान दें, और भीतर भी ध्यान जारी रखें कि भोजन करने का खयाल उठे.?।

और आप हैरान होंगे कि मंदिर में भोजन का खयाल आ जाएगा, चौके में नहीं आएगा! और ऐसा कोई नियम न बनाएं कि करेंगे ही नहीं। अगर खयाल आता है, तो खयाल करने की बजाय भोजन कर लेना बेहतर है। क्योंकि खयाल ज्यादा गहरे जाता है, भोजन उतना गहरा नहीं जाता। भोजन शरीर में जाता है, शरीर से निकल जाता है; खयाल संकल्प में चला जाता है, और संकल्प में छेद कर जाता है। छोटे—छोटे संकल्पों की साधना से गुजरना जरूरी है। बड़े संकल्प मत करें। जो पूरे न हो सकें, उनको छुए ही मत, जो पूरे हो सकें, उनको ही छुए।

मेरे एक मित्र हैं, सिगरेट से परेशान हैं। चेन स्मोकर हैं। दिनभर पीते रहेंगे! भले आदमी हैं, साधु—संन्यासियों कै पास जाते हैं। न मालूम कितनी बार कसमें खा आए। सब कसमें टूट गईं। कई बार तय कर लिया, घंटे दो घंटे नहीं में भी चलाई हालत। लेकिन फिर नहीं चल सका! कभी दिन दो दिन भी खींच लिया। लेकिन तब खींचना इतना भारी हो गया कि उससे तो सिगरेट पी लेना ही बेहतर था। सब काम— धाम रोककर अगर इतना ही काम करना पड़े कि सिगरेट नहीं पीएंगे, तो भी जिंदगी मुश्किल हो जाए।

रात नींद न आए, दिन में काम न कर सकें, चिड़चिड़ापन आ जाए, हर किसी से झगड़ने और लड़ने को तैयार हो जाएं! तो मैंने कहा, इससे तो सिगरेट बेहतर थी। यह झगड़ा—झांसा चौबीस घंटे का! हरेक के ऊपर उबल रहे हैं। जैसे उन्होंने कोई भारी काम कर लिया है, क्योंकि सिगरेट नहीं पी है! और हरेक की गलतियां देखने लगें। जब भी वे सिगरेट छोड़ दें दिन दो दिन के लिए, तो सारी दुनिया में उनको पापी नजर आने लगें! स्वभावतः, उन्होंने इतना ऊंचा काम किया है, तो उनको खयाल में आएगा ही।

बहुत उपाय करके वे थक गए। फिर उन्होंने मान लिया कि यह नहीं छूटेगी। लेकिन बड़ी दीनता छा गई मन पर कि एक छोटा—सा काम नहीं कर पाए। मुझसे वे पूछते थे कि क्या करूं? मैंने कहा कि मुझसे तुम मत पूछो'। कितनी सिगरेट पीते हो, मुझे संख्या बताओ! उन्होंने कहा कि मैं अंदाजन कोई तीस सिगरेट तो हर हालत में दिनभर में पी जाता हूं।

तो मैंने कहा, कसम खाओ कि साठ पीएंगे कल से, लेकिन एक कम नहीं।

उन्होंने कहा, आप पागल हैं!

मैंने कहा कि तुमने जो संकल्प किया, वह हमेशा टूट गया, उससे बड़ा नुकसान पहुंचा। एकाध तो पूरा करके दिखाओ। साठ पीयो कल से। लेकिन एक कम अगर पी, तो ठीक नहीं; फिर मेरे पास दुबारा मत आना।

उन्होंने कहा, क्या कहते हैं!

चित्त उनका बड़ा प्रसन्न हो गया। ऊपर से तो कहने लगे कि आप क्या कहते हैं! लेकिन उनकी आंखें, उनका चेहरा, सब आनंदित हो गया। कि आप आदमी कैसे! आप कहते क्या हैं! साठ! पीयो कल से। लेकिन कम नहीं।

लेकिन आप साठ से अगर एक भी कम हुई, तो दुबारा मेरे पास दुबारा मत आना।

उन्होंने साठ सिगरेट पीनी शुरू की। कठिन था मामला। कठिन था मामला, क्योंकि जबर्दस्ती उनको तीस सिगरेट और पीनी पड़ती थीं। नहीं पीनी थीं और पीनी पड़ती थीं। और जब भी कोई चीज न पीनी हो और पीनी पडे, तो अरुचि बढ़ जाती है, और जब पीनी हो और न पीनी पड़े, तो रुचि बढ़ जाती है। आदमी का मन बहुत अदभुत है।

तीन—चार दिन बाद आकर मुझसे बोले कि यह संकल्प कब तक पूरा करना पड़ेगा? मैंने कहा कि यह मेरे हाथ में है, तुम जारी रखो। यह, जब मैं कहूंगा, तब इसको तुड़वा देंगे।

उन्होंने कहा, यह बहुत मुश्किल मामला मालूम पड़ता है।

जारी रखो! एक काम तो जिंदगी में मुश्किल करके दिखाओ। सातवें दिन वे हाथ—पैर जोड़ने लगे। उन्होंने कहा कि मैं बिलकुल, !र मुझे ऐसा पागलपन लगता है कि मुझे पीना नहीं है और मैं पी रहा। हूं! और आपने मेरी बाकी तीस सिगरेट भी खराब कर दीं। अब ये साठों ही बेकार लग रही हैं!

अभी पीयो! और एक—दो सप्ताह चलने दो। यह बिलकुल जब !_, नर्क हो जाए; और जैसा तुम पहले छोड़कर लोगों पर चिडचिडाते थे, जब इसको पीकर चिड़चिड़ाने लगो और झगड़ने लगो और उपद्रव करने लगो, तब देखेंगे।

तीन सप्ताह में उनकी हालत पागलपन की हो गई। तीन सप्ताह। बाद वे आए। मैंने कहा कि अब कोई दिक्कत नहीं है, छोड़ दो।। मैंने उनसे कहा कि इस समय तुम्हें कैसा लगता है? छोड़ पाओगे? उन्होंने कहा, क्या आप कह रहे हैं! किसी तरह भी छुटकारा हो। जाना चाहिए इससे।

छूट गई सिगरेट। वह मुझसे अब पूछते हैं—वर्षभर बाद मुझे मिले, तो मुझसे पूछते हैं—इसका राज क्या है? मैंने कहा, राज कुछ भी नही है। एक संकल्प जीवन में तुम्हारा पूरा हुआ। तुम्हारी आत्म—ऊर्जा जगी। तुम्हें लगा, मैं भी कुछ पूरा कर सकता हूं! गलत ही सही, पूरा तो कर सकता हूं। तुमने जिंदगी में कभी कुछ पूरा नहीं किया था।

ध्यान रहे, जो भी संकल्प लें, वह पूरा हो सके, तो ही लें; अन्यथा मत लें; न लेना बेहतर है। एक दफा उनका टूटना, खतरनाक छेद छूट जाते हैं। और हर बच्चे की जिंदगी में जो इतने। छेद बन जाते हैं, उसके लिए हम जिम्मेवार हैं; शिक्षक, मां—बाप, समाज, सब जिम्मेवार हैं। न मालूम क्या—क्या उनको करवाने की कोशिश करते हैं, जो वे नहीं कर पाएंगे। उनका संकल्प टूट जाएगा। छेद—छेद आत्मा हो जाएगी। फिर द्दढ़ संकल्प होना बहुत मुश्किल है।

और दूसरी बात; द्दढ़ संकल्प बनाने की दिशा में बढ़े। छोटे—छोटे संकल्प करें, उन्हें पूर्ण करें। धीरे— धीरे आप पाएंगे कि आप भी कुछ कर सकते हैं। और कोई जरूरत नहीं है कि बहुत बड़े—बड़े काम में लगें, बहुत छोटे—से काम में लगें, कि एक मिनट तक मैं इस अंगुली को ऊपर ही रखूंगा, नीचे नहीं गिराऊंगा।

अब इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन आप पाएंगे, एक मिनट में पच्चीस दफे मन होगा कि क्या कर रहे हो? नीचे कर लो! क्या फायदा? कोई देख न ले कि यह अंगुली ऊंची क्यों रखे हुए हो! कोई यह न समझ जाए कि पागल हो गए हो!

मेरे पास लोग आते हैं संन्यास के लिए, वे कहते हैं कि गेरुआ कपड़ा न पहनें तो? माला बाहर न रखें तो? मैं उनसे कहता हूं, बाहर ही रखना। माला का मतलब नहीं है। लेकिन किसके डर से भीतर कर रहे हो? इतना भी काफी है कि तुम माला पहनकर, गेरुआ कपड़ा पहनकर बाजार में निकल जाओगे, तो भी तुम्हारा संकल्प बड़ा होगा।

ये सब छोटी बातें हैं, लेकिन इनका मूल्य है। मूल्य इनका संकल्प के लिहाज से है, और कोई मूल्य नहीं है। और कोई मूल्य नहीं है।

एक अमेरिकी युवती पिछले माह मेरे पास थी। उसे मैंने लिखा था..... तीन बार मेरे पास आकर गई है। दो वर्ष से निरंतर उसका आना—जाना हुआ है, लेकिन संकल्प की क्षीणता तकलीफ दे रही थी। उतने दूर से आती है; फिर जो मैं कहता हूं वह नहीं कर पाती; फिर सब द्वंद्व में पड जाती है; वापस लौट जाती है। इस बार उसने मुझे लिखा, तो मैंने उसे लिखा कि इस बार एक बात पक्की करके आना, जो भी

मैं कहूं उसमें नो, नहीं नहीं कह सकोगी, उसमें यस ही कहना पड़ेगा; जो भी मैं कहूं! यह बेशर्त है। अन्यथा आना मत। जो भी मैं कहूं उसमें ही कहने की तैयारी हो, तो आना।

स्वभावत:, उसे सोचना पड़ा कि पता नहीं मैं क्या कहूंगा? उसे खयाल आया कि जिस मकान में मैं रहता हूं वह छब्बीस मंजिल मकान है। कहीं मैं छब्बीसवीं मंजिल से कूदने के लिए कहूं, तो मेरी क्या तैयारी है? उसने तय किया कि अगर मैं कूदने के लिए कहूंगा, तो कूद जाऊंगी। ही कहूंगी। उसे खयाल आया, स्त्री है, उसे खयाल आया कि मैं अगर कहूं कि जाओ, भरे बाजार नग्न, चौपाटी का एक चक्कर लगा आओ, तो मैं लगाऊंगी? उसने तय कर लिया। कि लगाऊंगी। वह तय करके आई। तय करने से ही बदल गई।। मुझे न उसे छब्बीस मंजिल मकान से कुदवाना पड़ा और न चौपाटी पर नग्न चक्कर लगवाना पड़ा। यह जो निर्णय है—कि ठीक—यह निर्णय ही बदल गया।

ध्यान रखें, बदलने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता है; एक गहरा निर्णय, और बदलाहट हो जाती है।

कृष्ण कहते हैं, ऐसा गहरा संकल्प जिसका हो, और इस संकल्प को वह मेरे भजन में लगा दे, मेरे स्मरण में लगा दे, यह जो संकल्प की धारा है, यह मेरी तरफ बहने लगे।

एक दूसरे प्रतीक से हम समझ लें।

हम ऐसी नदी हैं, जौ कई दिशाओं में बह रही है। तो सागर तक हम नहीं पहुंचते, हर जगह रेगिस्तान आ जाता है। अगर गंगा भी कई दिशाओं में बहे, तो सागर तक नहीं पहुंचेगी; सब जगह रेगिस्तान में पहुंच जाएगी। जहां भी पहुंचेगी, वहीं रेगिस्तान होगा। सागर तक पहुंचती है, क्योंकि एक दिशा में बहती है।

दूसरा ध्यान रख लें कि आपकी चेतना अगर बहुत दिशाओं में बहती रहे, तो आपकी जिंदगी एक मरुस्थल हो जाएगी, एक रेगिस्तान। सब सूख जाएगा, और सब जगह मार्ग खो जाएगा। लेकिन अगर एक दिशा में बह सके, तो किसी दिन सागर पहुंच सकती है।

अनन्य भाव से जो मुझे स्मरण करता है, अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ...।

इसका केवल इतना ही अर्थ है कि चाहे वह कुछ भी करता हो, लेकिन उसकी चेतना की धारा मेरी ओर उन्मुख बनी रहती है। वह कुछ भी करता हो।

कभी आप देखें किसी घर में, मां अंदर खाना बना रही है, खाना बनाती है, बर्तन मल रही है, बुहारी लगा रही है, लेकिन उसकी चेतना की धारा उसके बच्चे की तरफ लगी रहती है। शोरगुल ही रहा हो, तूफान हो. बाहर आंधी हो, हवा चल रही हो, बैंड—बाजे बज रहे हों, बादल गरज रहे हों, बिजली कड़क रही हो, लेकिन बच्चे की जरा सी रोने की आवाज उसे सुनाई पड़ जाती है। रात मां सोई हो—मनसविद भी बहुत हैरान हुए हैं—मां सोई हो, तो। आकाश में बादल गरजते रहें, उसकी नींद नहीं टूटती! और बच्चा जरा—सा कुनमुन कर दे, और उसकी नींद टूट जाती है! बात क्या होगी? क्या होगा इसका कारण?

इसका एक ही कारण है, एक अनन्य धारा, एक प्रेम का अनन्य भाव बहा जा रहा है।

अभी एक डच महिला मेरे पास थी। वह किसी आश्रम में ' संन्यासिनी है। बच्चा उसको है छोटा। वह मेरे पास आई, उसने कहा कि जब से यह बच्चा हुआ है, तब से मैं ध्यान नहीं कर पाती। कितना ही ध्यान लगाकर बैठूं? बस मुझे इसका ही। जब ध्यान लगाती हूं, तो और इसका खयाल आता है कि पता नहीं, कहीं बाहर न सरक गया हो; कहीं झूले से नीचे न उतर गया हो, कहीं गाय के नीचे न आ जाए; कहीं कुछ हो न जाए! तो मेरा सब ध्यान नष्ट हो गया है। दो साल से आश्रम में हूं इस बच्चे की वजह से मेरा सब ध्यान नष्ट हो गया है। तो अब मैं क्या करूं?

मैंने उससे कहा, ध्यान को छोड़, बच्चे पर ही ध्यान कर। अब ध्यान को बीच में क्यों लाना! बच्चा काफी है।

मैं क्या करूं?

ध्यान मत कर, जब बच्चा झूले में लेटा हो, तो तू पास बैठ जा और बच्चे पर ही आंख से ध्यान कर। बच्चे को ही भगवान समझ। अच्छा मौका मिल गया। बच्चे पर इतना ध्यान दौड़ रहा है सहज, बच्चे में भगवान देखना शुरू कर।

पंद्रह दिन में उसे लगा कि मैंने वर्षों ध्यान करके जो नहीं पाया, वह इस बच्चे पर ध्यान करके पा रही हूं। और अब बच्चा मुझे दुश्मन नहीं मालूम पड़ता; बीच में जब मुझे ध्यान में बाधा पड़ती थी, बच्चा दुश्मन मालूम पड़ता था। अब बच्चा मुझे सच में ही भगवान मालूम पड़ने लगा है; क्योंकि इसके ऊपर मेरा ध्यान जितना गहरा हो रहा है, उतना किसी भी प्रक्रिया से कभी नहीं हुआ था।

अनन्य भाव का अर्थ है, जहां भी आपका भाव दौड़ता हो, वहीं भगवान को स्थापित कर लें।

दो उपाय हैं। एक तो यह है कि कहीं भगवान है, आप सब तरफ से अपने ध्यान को खींचकर भगवान पर ले जाएं। यह बहुत मुश्किल है; इसमें आप हारेंगे; इसमें जीत की संभावना न के बराबर है। कभी हजार में एक आदमी जीत पाता है सब तरफ से खींचकर भगवान की तरफ ले जाने में। कठिन है। शायद नहीं हो पाएगा।

पर एक बात हो सकती है, जहां भी ध्यान जा रहा हो, वहीं भगवान को रख लें। अगर वेश्या के घर भी आपके पैर जा रहे हैं, और ध्यान वेश्या की तरफ जा रहा है, तो चूके मत मौका; वेश्या को भी भगवान ही समझ लें। और आपके पैर की धुन बदल जाएगी, और आपकी चेतना का भाव बदल जाएगा, और एक न एक दिन आप पाएंगे कि वेश्या के घर गए थे, लेकिन मंदिर से वापस लौटे हैं!

यह जो क्रांति की संभावना है, यह अनन्य भाव से उसकी भक्ति में है।

तो कृष्ण कहते हैं कि वह दुराचारी भी हो, कोई फिक्र नहीं। लेकिन मुझे देखने लगे अपने कर्मों में, चारों तरफ मुझे अनुभव करने लगे, सब ओर मेरी प्रतीति उसमें गहरी होती चली जाए, मेरे स्मरण का तीर उसमें गहरा होता चला जाए, तो शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है।

सदाचारी नहीं कहते वे। कहते हैं, धर्मात्मा। सदाचार से बड़ी ऊंची बात है। धर्मात्मा का अर्थ है, जिसकी आत्मा धर्म हो जाती है। आचरण तो अपने आप ठीक हो जाता है। आचरण तो गौण है, आदमी के पीछे छाया की तरह चलता है। चूंकि भीतर हम कुछ भी नहीं हैं, इसलिए बाहर सब अस्तव्यस्त है। जिस दिन भीतर हम कुछ हो जाते हैं, बाहर सब सुव्यवस्थित हो जाता है। भीतर के मालिक को सिंहासन पर बिठा दें, बाहर के सब नौकर—चाकर हाथ जोड़कर सेवा में रत हो जाते हैं। भीतर का मालिक बेहोश पडा है।

सिंहासन से नीचे औंधा पड़ा है। मुंह से उनके फसूकर निकल रहा है। भीतर के मालिक इस हालत में हैं, बाहर सब नौकर—चाकर गड़बड़ में हो जाते हैं।

जिसको हम अनीति कहते हैं, वह हमारी इंद्रियों के ऊपर मालिक का अभाव है, अनुपस्थिति है। वहा मालिक मौजूद ही नहीं है,। बेहोश पड़ा है। तो ठीक है, जिसको जो सूझ रहा है, वह कर रहा है। इसमें इंद्रियों की कोई गलती भी नहीं है। इंद्रियों को दोष देना मत, इंद्रियों की कोई भी गलती नहीं है। इंद्रियों को कोई देखने वाला ही नहीं है, दिशा देने वाला नहीं है, सूचन देने वाला नहीं है। और तब इंद्रियों से जो बनता है, वह करती हैं।

और सब इंद्रियां अलग—अलग हैं, उनके बीच कोई एकसूत्रता नहीं रह जाती। कैसे रहेगी? एकसूत्रता जिससे मिल सकती है, वह सोया हुआ है। तो जब सोया हुआ है सूत्र मूल, जो सबको जोड़ता। है, तो कान कुछ सुनते हैं, आंखें कुछ देखती हैं, हाथ कुछ खोजते हैं, पैर कहीं चलते हैं, मन कहीं भागता है, सब अस्तव्यस्त हो जाता है। नदी कई धाराओं में बंट जाती है। फिर एक दिशा नहीं रह जाती। धर्मात्मा हो जाता है वह व्यक्ति। उसकी आत्मा ही धर्म हो जाती है। फिर आचरण तो अपने आप बदल जाता है। सदा रहने वाली शांति को उपलब्ध होता है।

अनैतिक व्यक्ति शांति को उपलब्ध नहीं होता। कैसे होगा? बुरा करेगा दूसरों के साथ, दूसरे उसके साथ बुरा करेंगे। नैतिक व्यक्ति भी शांति को उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि बुराई को दबाता है; बुराई भीतर धक्के मारती है कि मुझे मौका दो। भीतर अशांति हो जाती है।

अनैतिक व्यक्ति को अशांति झेढ़नी पड़ती है, दूसरों और स्वयं के बीच में, नैतिक व्यक्ति को झेलनी पड़ती है, अपने ही भीतर। अनैतिक डरा रहता है कि बाहर कहीं फंस न जाए। नैतिक डरा रहता है कि भीतर जिसको दबाया है, कहीं वह निकल न आए। दोनों ही अशांत होते हैं।

केवल सदा रहने वाली शांति को वही उपलब्ध होता है, जो भीतर धर्मात्मा हो जाता है। धर्मात्मा का अर्थ है, जिसकी आत्मा प्रभु में स्थापित हो जाती है। प्रभु की तरफ दौड़ते—दौड़ते बहकर नदी सागर में गिर जाती है। जिस दिन सागर और नदी का मिलन होता है, जहां सागर और नदी का संगम होता है, वहीं धर्मात्मा का जन्म होता है। जिस दिन आत्मा परमात्मा से मिलती है, वह जो संगम—स्थल है, वहीं धर्मात्मा का जन्म है। फिर कोई अशांति नहीं है, न बाहर, न भीतर।

हे अर्जुन, तू निश्चयपूर्वक जान, मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता है।

नष्ट होने का कोई कारण ही न रहा। नष्ट तो वे ही होते हैं, जो अशांत हैं। बिखरते तो वे ही हैं, जो भीतर टूटे हुए हैं। जो भीतर एक हो गया, संयुक्त हो गया, उसके नष्ट होने का कोई कारण नहीं है। और अब हम पहले सूत्र को लें।

मैं सब भूतों में सम— भाव से व्यापक हूं। न कोई मेरा अप्रिय है और न कोई प्रिय। परंतु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे में और मैं उनमें प्रकट हो जाता हूं।

सब भूतों में सम— भाव से हूं।

ऐसा नहीं है कुछ, जैसा लोग कहते हैं अक्सर कि फलां व्यक्ति पर परमात्मा की बड़ी कृपा है। परमात्मा की कृपा किसी पर भी कम— ज्यादा नहीं है। भूलकर इस शब्द का उपयोग दोबारा मत करना। एक आदमी कहता है कि प्रभु की कृपा है.। उसका मतलब कहीं ऐसा तो नहीं है कि कभी उसकी अकृपा भी होती है? या एक आदमी कहता है कि मुझ पर अभी प्रभु की कोई कृपा नहीं है। तो उसका अर्थ हुआ कि उसकी अकृपा होगी!

नहीं, उसकी अकृपा होती ही नहीं। इसलिए उसकी कृपा का कोई सवाल नहीं है। वह सम— भाव से सबके भीतर मौजूद है। यह कहना भी भाषा की कठिनाई है, इसलिए; अन्यथा सब में वही है, या सब वही है। जरा भी, रत्तीभर फर्क नहीं है। कृष्ण में या अर्जुन में, मुझ में या आप में, आप में या आपके पड़ोसी में, आप में या वृक्ष में, आप में या पत्थर में, जरा भी फर्क नहीं है।

लेकिन फर्क तो दिखाई पड़ता है! कोई बुद्ध है। कैसे हम मान लें कि बुद्ध में वह ज्यादा प्रकट नहीं हुआ है! कैसे हम मान लें कि बुद्ध में वह ज्यादा नहीं है, और हम में, हम में भी उतना ही है! कठिनाई है। साफ दिखाई पड़ता है। गणित कहेगा, नाप—जोख हो सकती है कि बुद्ध में वह ज्यादा है, कृष्ण में वह ज्यादा है। इसीलिए तो हम कहते हैं, कृष्ण अवतार हैं, बुद्ध अवतार हैं, महावीर तीर्थंकर हैं, जीसस भगवान के पुत्र हैं, मोहम्मद पैगंबर हैं, आदमियों से अलग करते हैं उन्हें। उनमें वह ज्यादा दिखाई पड़ता है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं सम— भाव से व्यापक हूं। फिर भेद कहां पड़ता होगा? न मेरा कोई अप्रिय है और न मेरा कोई प्रिय।

प्रेम जब पूर्ण होता है, तो न कोई अप्रिय रह जाता, न कोई प्रिय। क्योंकि जब तक मैं कहता हूं कोई मुझे प्रिय है, तो उसका अर्थ है कि कोई मुझे अप्रिय है। और जब तक मैं कहता हूं कोई मुझे प्रिय है, उसका यह भी मतलब है कि जो मुझे प्रिय है, वह कल अप्रिय भी हो सकता है, क्योंकि आज जो अप्रिय है, वह कल प्रिय हो सकता है। जब प्रेम पूर्ण होता है, तो न कोई अप्रिय होता, न कोई प्रिय होता। और न आज प्रिय होता और न कल अप्रिय होता। ये सारे भेद गिर जाते हैं। परमात्मा पूर्ण प्रेम है, इसलिए कोई उसका प्रिय नहीं है और कोई अप्रिय नहीं है।

परंतु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे में और मैं उनमें प्रकट हूं।

यह फर्क है, यहीं भेद है। यहीं बुद्ध कहीं भिन्न, महावीर कुछ और, और हम कुछ और मालूम पड़ते हैं।

जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं, मैं उनमें प्रकट हो जाता हूं; जो मुझे नहीं भजते हैं, उनमें मैं अप्रकट बना रहता हूं।

व्यापकता में भेद नहीं है, लेकिन प्रकट होने में भेद है।

एक बीज है। बीज को माली ने बो दिया, अंकुरित हो गया। एक बीज हम अपनी तिजोड़ी में रखे हुए हैं। दोनों बीजों में जीवन समान रूप से व्यापक है! और दोनों बीजों में संभावना पूरी है। लेकिन एक बीज बो. दिया गया और एक तिजोड़ी में बंद है। जो बो दिया गया, वह अंकुरित हो जाएगा। जो अंकुरित हो जाएगा, उसमें फूल लग जाएंगे। कल हम अपने तिजोड़ी के बीज को निकालें, और उस

वृक्ष के पास जाकर कहें कि तुम दोनों समान हो, हमारा तिजोड़ी का बीज मानने को राजी नहीं होगा।

वह कहेगा कैसे समान? कहां यह वृक्ष, जिस पर हजारों पक्षी गीत गा रहे हैं। कहां यह वृक्ष, जिसके फूलों की सुगंध दूर—दूर तक फैल गई है। कहां यह वृक्ष, जिससे सूरज की किरणें रास रचाती हैं। कहां यह वृक्ष और कहां मैं, बंद पत्थर की तरह! कुछ भी तो मेरे पास नहीं है। मैं दीन—दरिद्र, मेरे पास कोई आत्मा नहीं है, कोई फूल, कोई सुवास नहीं है। मुझे इस वृक्ष के साथ एक कहकर क्यों मजाक उड़ाते हो? क्यों व्यंग करते हो?

लेकिन हम जानते हैं, उन दोनों में वृक्ष सम— भाव से व्यापक है। पर एक में प्रकट हुआ, क्योंकि खाद मिली, जमीन में पड़ा, पानी पड़ा, सूरज के लिए मुक्त हुआ, उठा, हिम्मत की, साहस जुटाया, संकल्प बनाया, आकाश की तरफ फैला, अज्ञात में गया, अनजान की यात्रा पर निकला, तो वृक्ष हो गया है।

कृष्ण कहते हैं, जो मुझे प्रेम से भजते हैं!

यह प्रेम से भजना ही बीज को जमीन में डालना है। प्रेम से भजने का अर्थ है कि जो आदमी दिन—रात प्रभु को सब तरफ स्मरण करता है, उसके चारों तरफ प्रभु की भूमि निर्मित हो 'जाती है—चारों तरफ। उठता है तो, बैठता है तो, खाता है तो, प्रभु को स्मरण करता रहता है। चारों तरफ धीरे—धीरे, उसकी चेतना के बीज के चारों तरफ प्रभु की भूमि इकट्ठी हो जाती है। उसी भूमि में बीज अंकुरित होता है। निश्चित ही, जमीन में बीज को गाड़ना पड़ता है। तो प्रकट बीज है, प्रकट जमीन है। यह जो चेतना का बीज है, अप्रकट है, अप्रकट ही इसकी जमीन होगी। उस जमीन को पैदा करना पड़ता है। चारों तरफ मिट्टी इकट्ठी करनी पड़ती है उस जमीन की। वही प्रभु की भक्ति है।

और तब वे मेरे में और मैं उनमें प्रकट होता हूं।

यह प्रकट होना भी दोहरा है। जब एक वृक्ष आकाश में खुलता है, तो दोहरी घटना घटती है। यह वृक्ष तो आकाश में प्रकट होता ही है, आकाश भी इस वृक्ष में प्रकट होता है। यह वृक्ष तो सूरज के समक्ष प्रकट होता ही है, सूरज भी इस वृक्ष के भीतर से पुन: प्रकट होता है। यह वृक्ष तो हवाओं में प्रकट होता ही है, हवाएं इस वृक्ष के भीतर श्वास लेती हैं और प्रकट होती हैं। यह वृक्ष तो प्रकट होता ही है, इस वृक्ष के साथ जमीन भी प्रकट होती है, इस वृक्ष के साथ जमीन की सुगंध भी प्रकट होती है। यह वृक्ष ही प्रकट नहीं होता, वृक्ष के साथ सारा जगत भी इसके भीतर से प्रकट होता है।

तो जब कोई एक भक्त बीज बन जाता है और अपने चारों तरफ परमात्मा के स्मरण की भूमि को निर्मित कर लेता है, तो दोहरी घटना घटती है। भक्त परमात्मा भक्त में प्रकट होता है। वे दोनों प्रकट हो जाते हैं। वे आमने—सामने हो जाते हैं। एनकाउंटर।

हम सब ने सदा भगवान से साक्षात्कार का मतलब ऐसा ही सोचा है कि आमने —सामने खड़े हो जाएंगे। वे मोर—मुकुट बांधे हुए ' खड़े होंगे, हम हाथ जोड़े, उनके घुटनों में पैर टेके खड़े होंगे!

ऐसा कहीं नहीं होने वाला है। यह तो कवि का काव्य है, और मधुर है, प्रीतिकर है, लेकिन काव्य है। वस्तुत: जो अभिव्यक्ति होगी प्रकट होने की, वह ऐसी नहीं होगी। वह तो ऐसी होगी कि जब हम अपने भीतर के बीज को तोड्ने में समर्थ हो जाएंगे, तो जो अभिव्यक्ति होगी, वह दो व्यक्ति आमने—सामने खड़े हैं ऐसी नहीं,। बल्कि दो दर्पण आमने—सामने रखे हैं।

दो दर्पण अगर आमने—सामने रखे हैं, तो पता है क्या होगा? एक दर्पण दूसरे में दिखाई पड़ेगा, दूसरा दर्पण पहले में दिखाई पड़ेगा। और फिर अनंत दर्पण, एक के भीतर, एक के भीतर, एक के भीतर दिखाई पड़ते जाएंगे। वह जो इनफिनिटी, वह जो अनंत दर्पण दिखाई पड़ेंगे, और हर दर्पण फिर उसको दिखाएगा, और फिर वह दर्पण इसको दिखाएगा। और यह अनंत होगा।

दो दर्पण एक—दूसरे के सामने हों, तो जो होगा, वही जब हमारी चेतना परमात्मा की चेतना के सामने होती है, तो होता है। अंतहीन हो जाते हैं हम। और वह तो अंतहीन है ही। अनंत हो जाते हैं हम, वह तो अनंत है ही। अनादि हो जाते हैं हम, वह तो अनादि है ही। अमृत हो जाते हैं हम, वह तो अमृत है ही। और दोनों एक—दूसरे में झांकते हैं। और यह झांकना अनंत है। इस झांकने का फिर कोई अंत नहीं होता। यह फिर कभी समाप्त नहीं होता।

तो ध्यान रखें, परमात्मा से मिलन होता है, फिर बिछुड़न नहीं होती। फिर वह मिलन अनंत है। और फिर उस मिलन की रात का कोई अंत नहीं है। उस सुहागरात का फिर कोई अंत नहीं है। वहा से फिर कोई वापस नहीं लौटता। वहा से पुनरागमन नहीं है।

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा किसी को प्रेम करता है और उसे दर्शन दे देता है, और किसी को प्रेम नहीं करता और उसको चकमा देता रहता है कि दर्शन नहीं देंगे!

नहीं, इससे कोई संबंध नहीं है। परमात्मा के प्रेम का सवाल नहीं है, आपके श्रम का सवाल है। उसकी कृपा का सवाल नहीं है, आपके संकल्प का सवाल है।

उसकी कृपा प्रतिपल बरस रही है, लेकिन आप अपने मटके को उलटा रखकर बैठे हैं। आप चिल्ला रहे हैं कि कृपा नहीं है। पास का मटका भरा जा रहा है। वह मटका सीधा रखा है, आप अपने मटके को उलटा रखे बैठे हैं। और अगर कोई आकर कोशिश भी करे

आपके मटके को सीधा रखने की, तो आप बहुत नाराज होते हैं। आप कहते हैं, यह हमारा ढंग है; यह हमारी मान्यता है; यह हमारा दृष्टिकोण है; यह हमारा धर्म है, यह हमारा मत है; यह हमारे शास्त्र में लिखा है!

आप हजार दलीलें देते हैं अपने मटके को उलटा रखे रहने के लिए। और जब भी कोई अगर जोर—जबर्दस्ती आपके मटके के साथ सीधा करने की करे, तो कष्ट होता है, पीड़ा होती है, झंझट होती है; सुखद नहीं मालूम पड़ता। मटका उलटा रखा है सदा से। हमें लगता है, यही इसके रखे होने का ढंग है। फिर पास का मटका भर जाता है, तो हम चिल्लाते हैं, परमात्मा किसी पर ज्यादा कृपालु मालूम हो रहा है और हम पर कृपालु नहीं है।

परमात्मा की वर्षा निरंतर हो रही है, जो भी अपने मटके को सीधा कर लेता है, वह भर जाता है। और कोई बाधा नहीं है। आपके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। आपके अतिरिक्त और कोई आपका शत्रु नहीं है। आपके अतिरिक्त और किसी ने कभी कोई विध्न नहीं डाला है।

अगर आप परमात्मा से नहीं मिल पा रहे हैं, तो इसमें आपका ही हाथ है। अगर आप मिल पाएंगे, तो यह आपकी ही आपके ऊपर कृपा है। परमात्मा की कृपा का इसमें कुछ लेना—देना नहीं है। उसका प्रेम सम है। उसका अस्तित्व हमारे भीतर समान है। उसकी क्षमता, उसकी बीज— क्षमता हमारे भीतर एक—सी है। लेकिन फिर भी हम स्वतंत्र हैं। और चाहें तो उस बीज को वृक्ष बना लें, और चाहें तो उस बीज को बंद रख लें।

हम सब तिजोडियों में बंद बीज हैं। और सब अपनी—अपनी तिजोडियो पर ताले डाले हुए हैं मजबूत कि कोई खोल न दे! कहीं बीज बाहर न निकल जाए! इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। दो—तीन प्रश्न रोज मुझसे लोग पूछ रहे हैं, एक—दो मिनट उनके संबंध में आपसे कह दूं। कुछ प्रश्न तो ऐसे हैं, जिनका कोई भी संबंध नहीं है। उनको उत्तर नहीं दिया जाता, तो वे तकलीफ अनुभव करते हैं। क्योंकि किसी के प्रश्न का उत्तर न मिले, तो उसके अहंकार को चोट लग जाती है। उसको इसकी फिक्र ही नहीं होती कि उसका प्रश्न क्या था।

एक मित्र ने पूछा है कि चंद्रमा पर आदमी पहुंच गया, लेकिन हिंदू शास्त्रों में लिखा है कि वहां देवताओं का वास है! इसका उत्तर दीजिए।

इधर गीता चल रही है, उससे इसका कोई प्रयोजन नहीं है। इस पर अगर मैं चर्चा करने बैठ जाऊं, तो गीता बंद कर देनी पड़े। फिर चर्चा का दूसरा रुख, वह मेरी आदत नहीं है। जो मैं बात कर रहा हूं उससे इतर बात करना मुझे पसंद नहीं है। इस तरह के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जाता है, तो उनको लगता है कि भारी नुकसान हो गया। फिर मुझे यह भी समझ में नहीं पड़ता कि साधक को क्या प्रयोजन कि चांद पर देवता रहते हैं कि नहीं रहते। आपके भीतर कौन रहता है, इसकी फिक्र करनी उचित है। चांद पर न भी रहते हों, तो कुछ हर्जा नहीं है। और रहते भी हों, तो मजे से रहें! आपको कुछ लेना—देना नहीं है। इन सब बातों का साधक के लिए कोई अर्थ नहीं होता।

मैं उतनी ही बातें आपसे कहना पसंद करता हूं जो किसी तरह आपकी साधना के लिए उपयोगी हों। व्यर्थ की बातों में प्रयोजन मुझे नहीं है। आपका प्रश्न गलत है, यह नहीं कहता। किसी के लिए सार्थक हो सकता है, वह खोज में लगे।

एक मित्र छपा हुआ पर्चा रोज यहां बांटकर मुझे दे जाते हैं। पोस्ट से भी मुझे घर भेजा है। भारी नाराज हैं। वे जो मित्र रोज शोरगुल करके खड़े हो जाते हैं, उनका पर्चा है। उस पर्चे में है कि राजस्थान में किसी आदमी ने कोई किताब लिखी है, कि दशरथ नपुंसक थे, या लक्ष्मण व्यभिचारी थे।

मुझे पता नहीं है! मैंने वह किताब पढ़ी नहीं। जिन्होंने पर्चा छापा है, उन्होंने भी नहीं पढ़ी है। किसी अखबार में उन्होंने यह पढ़ा है कि ऐसा किसी आदमी ने लिखा है। वे बार—बार मुझे यहां चिट्ठी लिखकर भेजते हैं कि मैं जवाब दूं।

मेरी समझ में नहीं आता! मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। और दशरथ नपुंसक थे या नहीं, इस रिसर्च में जाने का भी मुझे कोई अर्थ नहीं समझ में आता। हों, तो कोई फर्क नहीं पड़ता; न हों, तो कोई प्रयोजन मुझे नहीं है। जिसको प्रयोजन हो, वह खोजबीन में लगे। लेकिन इधर उस सवाल को उठाने का कोई कारण नहीं है।

लेकिन हमारे मन न मालूम कहा—कहा के सवाल उठाते हैं! हम सोचते हैं, भारी काम हो रहा है। वह मित्र कल मुझे चिट्ठी लिखकर दे गए हैं, दो दिन से रोज चिट्ठी लिखकर देते हैं, कि वे यहां आधा घंटा मंच पर आकर एक बात सिद्ध करना चाहते हैं। वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं मूर्ख हूं।

इसे सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं बिना सिद्ध किए इसे मान लेता हूं। इसे सिद्ध तो तब करना पड़े, जब मैं कहूं कि मैं नहीं हूं या उनकी बात को गलत कहूं। मैं मूर्ख हूं। क्योंकि अगर मैं मूर्ख न होऊं, तो उन जैसे बुद्धिमान जनों को समझाने की कोशिश ही क्यों करूं। सहज—साफ ही है। इसको सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि सिद्ध करने में समय व्यय करना है। मैं मान ही लेता हूं।

कृष्ण के वक्त में अगर वे होते, तो कृष्ण ने एक सूत्र अर्जुन से और कहा होता। उन्होंने कहा होता, हे कौन्तेय, जिनके दिमाग के स्क्रू थोड़े ढीले हैं, उनमें भी मैं हूं। वह कृष्ण नहीं कह पाए, यह एक नुकसान हुआ। उनकी मौजूदगी जरूरी थी। गीता ज्यादा समृद्ध हुई होती। उसमें एक सूत्र और उपलब्ध हो जाता। लेकिन यह बात पक्की है, स्क्रू ढीले हों कि ज्यादा कसे हों, मैं उनके भीतर हूं। इसमें कोई शक—शुबहा नहीं है।

इस तरह की बातें हमारे मुल्क के मन में न मालूम कैसे—कैसे घूमती रहती हैं! इन सारी बातों ने हमारे मुल्क को एकदम क्षुद्रतम हालत में खड़ा कर दिया है।

सोचें विराट को, खोजें विराट को; व्यर्थ की बातों में समय जाया न करें। लेकिन हम समझते हैं कि भारी संकट आ गया। किसी ने लिख दिया कि दशरथ नपुंसक थे। अब वह बेचारा कुछ खोज—बीन कर रहा होगा। गलत होगा, सही होगा। किन्हीं को उत्सुकता हो, वे सिद्ध करने में लगें।

पर बड़ा मुश्किल मामला है सिद्ध करना कि थे कि नहीं थे। बहुत कठिन है। पर मुझे तो प्रयोजन भी नहीं है। जिनको प्रयोजन है, वे भी क्यों इतने आतुर हैं, कुछ समझ में नहीं आता! इस तरह की बातों को जरा भी मूल्य देने की जरूरत नहीं है। कोई लिखे, तो भी देने की जरूरत नहीं है। उसको तूल देने की भी जरूरत नहीं है कि शोरगुल मचाओं। उस शोरगुल से और प्रचार होता है कि यह क्या मामला है! इन सबमें पड़ने की जरा भी जरूरत नहीं है।

धार्मिक आदमी का यह लक्षण नहीं है। धार्मिक आदमी को एक। ही चिंता है कि किसी भांति उसके जीवन का एक—एक पल रीता जा रहा है, उस रीतते हुए जीवन में वह खाली हाथ ही लौट जाएगा? या कि उस रीतते हुए जीवन में प्रभु की कोई झलक मिलनी संभव है? मैं उसी दृष्टि से सब बोल रहा हूं। आप पूछ लेते हैं, आवश्यक नहीं है कि मैं जवाब दूं। आप पूछ लेते हैं, आपका काम पूरा हो गया। मुझे लगेगा कि इससे आपकी साधना में कोई सहायता मिलेगी, तो ही जवाब दूंगा।

कुछ ऐसे सवाल लोग पूछते हैं, जो उनके निजी, वैयक्तिक हैं। अब एक व्यक्ति पूछ लेता है। यहां तीस—चालीस हजार आदमी बैठे हों, इनके तीस हजार घंटे खराब करना एक व्यक्ति के निजी प्रश्न के लिए बेमानी है। तीस हजार घंटे बहुत बड़ा वक्त है। अगर एक आदमी की जिंदगी, तो दस साल की जिंदगी एक आदम। की खतम होती है, चालीस हजार घंटे अगर हम खराब करें तो।

तो एक आदमी कुछ पूछ लेता है, उसकी व्यक्तिगत रुचि है, उसे मेरे पास आ जाना चाहिए। यहां जोर देने की जरूरत नंदी है।

और एक बात पक्की समझ लें कि आपने पूछा, मैंने जवाब नहीं दिया, उसका कुल कारण इतना है कि मैं नहीं समझता कि इतने लोग जो यहां इकट्ठे हैं, इनके लिए उस जवाब की कोई भी जरूरत है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
क्षणभंगुरता का बोध—(प्रवचन—तेरहवां)
अध्याय—9

सूत्र:

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।32।।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।33।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यीसि युज्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।34।।

क्योंकि हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शुद्रादिक तथा पाप योनि वाले भी जो कोई हों? वे भी मेरे शरण होकर परम गीत को ही प्राप्त होते हैं।

फिर क्या कहना है कि पुण्यशील ब्रह्मणजन तथा राजऋषि भक्तजन परम गति को प्राप्त होते हैं। इसलिए तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस लोक की प्राप्त होकर निरंतर मेरा ही भजन कर।

केवल मुझ परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से अचल मन वाला हो? और मुझ परमेश्वर को ही निरंतर भजने वाला हो? तथा मेरी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से विह्लतापूर्वक पूजन करने वाला हो और मुझ परमात्मा को ही प्रणाम कर।

इस प्रकार मेरे शरण हुआ तू आत्मा को मेरे में एकीभाव करके मेरे को ही प्राप्त होवेगा।

इस सूत्र को सुनकर आधुनिक मन को बहुत धक्का लगेगा। चाह होगी कि यह सूत्र न होता तो अच्छा था। आज का विचार इस सूत्र को बड़ी कठिनाई पाएगा समझने में।

कृष्ण ने कहा है, क्योंकि हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शूद्र आदि तथा पाप योनि वाले भी जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं।

बहुत अजीब मालूम पड़ेगा। बहुत कड़वाहट भी मालूम पड़ेगी। स्त्री को, वैश्य को, शूद्र को, पाप योनि को समझने में हमें कई तरह की कठिनाइयां हैं। !,? पहली कठिनाई कि हमने इन शब्दों से जो कुछ समझा है, वह इन शब्दों से अभिप्रेत नहीं है। और इन शब्दों का हमारे मन में जो अर्थ है, वह कृष्ण का अर्थ नहीं है। तो इन शब्दों की ठीक से व्याख्या में प्रवेश करना जरूरी हणो, तभी इस सूत्र को समझा जा सके।

मनुष्य की आत्मा तो एक है, लेकिन उसके मन अनेक हैं। और मनुष्य की परम स्थिति तो एक है, लेकिन उसकी बीच की स्थितियां भिन्न—भिन्न हैं। मनुष्य आत्यंतिक रूप से तो समान है, लेकिन ! अलग— अलग स्थितियों में बहुत असमान है।

मनुष्य का विभाजन जो भारतीय बुद्धि ने किया है, वह पहला विभाजन है स्त्री और पुरुष में। लेकिन ध्यान रहे, स्त्री से अर्थ है स्त्रैण। स्त्री से अर्थ स्त्री ही हो, तो यह वचन बहुत बेहूदा है। स्त्री से अर्थ है स्त्रैण। और जब मैं कहता हूं स्त्री से अर्थ है स्त्रैण, तो उसका अर्थ यह है कि पुरुषों में भी ऐसे व्यक्ति हैं, जो स्त्री जैसे हैं, स्त्रैण हैं; स्त्रियों में भी ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो पुरुष जैसे हैं, पौरुषेय हैं। पुरुष और स्त्री प्रतीक हैं, सिंबालिक हैं। उनके अर्थ को हम ठीक से समझ लें।

गुह्य विज्ञान में, आत्मा की खोज में जौ चल रहे हैं, उनके लिए स्त्रैण से अर्थ है ऐसा व्यक्तित्व, जो कुछ भी करने में समर्थ नहीं है; जो प्रतीक्षा कर सकता है, लेकिन यात्रा नहीं कर सकता, जो राह देख सकता है, लेकिन खोज नहीं कर सकता। इसे स्त्रैण कहने का कारण है।

स्त्री और पुरुष का जो संबंध है, उसमें खोज पुरुष करता है, स्त्री केवल प्रतीक्षा करती है। पहल भी पुरुष करता है, स्त्री केवल बाट जोहती है। प्रेम में भी स्त्री प्रतीक्षा करती है, राह देखती है। और अगर कभी कोई स्त्री प्रेम में पहल करे, इनिशिएटिव ले, तो आक्रामक मालूम होगी, बेशर्म मालूम होगी। और अगर पुरुष प्रतीक्षा करे, पहल न कर सके, तो स्त्रैण मालूम होगा।

लेकिन विगत पांच हजार वर्षों में, गीता के बाद, सिर्फ आधुनिक युग में कार्ल गुस्ताव कं ने स्त्री और पुरुष के इस मानसिक भेद को समझने की गहरी चेष्टा की है। कं ने इधर इन बीस—पच्चीस पिछले वर्षों में एक अभूतपूर्व बात सिद्ध की है, और वह यह कि कोई भी पुरुष पूरा पुरुष नहीं है और कोई भी स्त्री पूरी स्त्री नहीं है। और हमारा अब तक जो खयाल रहा है कि हर व्यक्ति एक सेक्स से संबंधित है, वह गलत है। प्रत्येक व्यक्ति बाइ—सेक्यूअल है, दोनों यौन प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद हैं। जिसे हम पुरुष कहते हैं, उसमें पुरुष यौन की मात्रा अधिक है, स्त्री यौन की मात्रा कम है। ऐसा समझें कि वह साठ प्रतिशत पुरुष है और चालीस प्रतिशत स्त्री है। जिसे हम स्त्री कहते हैं, वह साठ प्रतिशत स्त्री है और चालीस प्रतिशत पुरुष है।

लेकिन ऐसा कोई भी पुरुष खोजना संभव नहीं है, जो सौ प्रतिशत पुरुष हो; और ऐसी कोई स्त्री खोजनी संभव नहीं है, जो सौ प्रतिशत स्त्री हो। यह है भी उचित। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का जन्म स्त्री और पुरुष से मिलकर होता है। इसलिए दोनों ही उसके भीतर प्रवेश कर जाते हैं। चाहे स्त्री का जन्म हो, चाहे पुरुष का जन्म हो, दोनों के जन्म के लिए स्त्री और पुरुष का मिलन अनिवार्य है! और स्त्री—पुरुष दोनों के ही कणों से मिलकर, जीवाणुओं से मिलकर व्यक्ति का जन्म होता है। दोनों प्रवेश कर जाते हैं। जो फर्क है, वह मात्रा का होता है। जो फर्क है, वह निरपेक्ष नहीं है, सापेक्ष है।

इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति ऊपर से पुरुष दिखाई पड़ता है, उसके भीतर भी कुछ प्रतिशत मात्रा स्त्री की छिपी होती है; जो स्त्री दिखाई पड़ती है, उसके भीतर भी कुछ मात्रा पुरुष की छिपी होती है। और इसलिए ऐसा भी हो सकता है कि किन्हीं क्षणों में स्त्री पुरुष जैसा व्यवहार करे और किन्हीं क्षणों में पुरुष स्त्री जैसा व्यवहार करे। ऐसा भी हो सकता है कि किन्हीं क्षणों में जो भीतर है, वह ऊपर आ जाए; और जो ऊपर है, नीचे चला जाए।

आप पर एकदम से हमला हो जाए घर में आग लग जाए, तो आप कितने ही बहादुर व्यक्ति हों, एक क्षण में अचानक आप पाएंगे, आप स्त्री जैसा व्यवहार कर रहे हैं। रो रहे हैं, बाल नोंच रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, घबड़ा रहे हैं! अगर एक मां के बच्चे पर हमला हो जाए, तो मं। भी खूंख्वार हो जाएगी, और ऐसा व्यवहार करेगी, इतना कठोर, इतना हिंसात्मक, जैसा कि पुरुष भी न कर पाए। यह संभावना है, क्योंकि भीतर एक मात्रा निरंतर छिपी हुई है। वह किसी भी क्षण प्रकट हो सकती है।

कै ने स्त्री और पुरुष के नए अर्थ को फिर से प्रकट किया है। कृष्ण का भी अर्थ वही है। जब वे कहते हैं, स्त्रियां भी मुझे उपलब्ध हो जाती हैं, तो उनका अर्थ यह है .कि वे, जो एक कदम भी नहीं चलते हैं, मात्र प्रतीक्षा करते हैं, वे भी मुझे पा लेते हैं अर्जुन! जिनके मन में आक्रमण ही नहीं है, परमात्मा की खोज में भी जो आक्रामक, एग्रेसिव नहीं हो सकते, वे भी मुझे पा लेते हैं। जो इंचभर भी नहीं चलते, सिर्फ मेरा स्मरण ही करते हैं, सिर्फ अनन्य भाव से मुझे पुकारते ही हैं, जो बदले में कुछ भी चुकाने को तैयार नहीं होते, जो मुकाबले में कुछ भी दाव पर नहीं लगाते, अगर मैं उनके दरवाजे पर भी खड़ा हूं, तो वे दरवाजे तक उठकर भी नहीं आते, मुझे ही उन तक जाना पड़ता है, वे भी मुझे पा लेते हैं।

स्त्रैण से अर्थ है, ऐसा मन, जो कुछ भी करने में समर्थ नहीं है; ज्यादा से ज्यादा समर्पण कर सकता है, ग्राहक मन, रिसेप्टिविटी, द्वार खोलकर प्रतीक्षा कर सकता है।

अगर हम स्त्री के मन को ठीक से समझें, तो वह किसी ऐसे प्रतीक में प्रकट होगा, द्वार खोलकर दरवाजे पर बैठी हुई, किसी की प्रतीक्षा में रत; खोज में चली गई नहीं, प्रतीक्षा में। और पुरुष अगर दरवाजा खोलकर और किसी की प्रतीक्षा करते दीवाल से टिककर बैठा हो, तो हमें शक होगा कि वह पुरुष कम है। उसे खोज पर जाना चाहिए।

जिसकी प्रतीक्षा है, उसे खोजना पड़ेगा, यह पुरुष चित्त का लक्षण है। जिसकी खोज है, उसकी प्रतीक्षा करनी होगी, यह स्त्री चित्त का लक्षण है। स्त्री और पुरुष से इसका कोई संबंध नहीं है। कृष्ण कहते हैं, जो स्त्रैण हैं, वे भी अर्जुन, मुझे पाने में समर्थ हो जाते हैं।

फिर कहते हैं, वैश्य और शूद्र भी। ये दो शब्द भी समझ लेने जैसे हैं।

मैंने कहा, हमारे मन अलग—अलग हैं, हमारी आत्माएं एक हैं। और मन के अलग—अलग होने के कारण हमारे शरीर भी अलग—अलग हैं। क्योंकि शरीर मन के द्वारा ही निर्मित होता है, शरीर को हम पाते हैं मन के द्वारा ही।

चार प्रकार के व्यक्तित्व भारत ने विभाजित किए हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चारों का भी कोई संबंध आपके जन्म से नहीं है। इन चारों का भी गहरा संबंध आपके व्यक्तित्व के ढांचे से है। हमने यह भी कोशिश की थी कि व्यक्तित्व का ढांचा और जन्म की व्यवस्था में ताल—मेल हो जाए। हमने अकेले ही इस जमीन पर यह प्रयोग किया था कि जन्म में और व्यक्तित्व के ढांचे में कोई एक इनर हार्मनी, एक आंतरिक संबंध खोज लिया जाए। हम थोड़ी दूर तक सफल भी हुए थे। लेकिन वह प्रयोग पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाया। वह टूट गया। टूट जाने के कारण थे, उनकी मैं आपसे पीछे बात करूं। पहले आपको यह कह दूं कि ये चार शब्द व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। चार तरह के व्यक्तित्व होते हैं।

शूद्र हम उस व्यक्ति को कहते हैं, जो शरीर के इर्द—गिर्द जीता है। शरीर से ज्यादा जिसे अस्तित्व में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। शरीर ही जिसका परमात्मा है। शरीर सुख में रहे, तो वह प्रसन्न है; शरीर दुख में हो जाए, तो वह दुखी है। शरीर की मांग पूरी हो जाए, तो सब मागें समाप्त हो गईं, शरीर की मांग पूरी न हो, तो उसके जीवन में व्यथा और संताप है। उसके व्यक्तित्व का केंद्र शरीर है।

बहुत अनूठी बात भारतीय शास्त्रों ने कही है कि सभी व्यक्ति जन्म से शूद्र होते हैं! एक अर्थ में सही है। सभी व्यक्ति जन्म से शरीर के इर्द—गिर्द होते हैं, बाकी ऊंचाइयां तो क्रमश: पानी पड़ती हैं। ध्यान रहे, सभी व्यक्ति शरीर से शूद्र जैसे पैदा होते हैं, यह दुर्भाग्य नहीं है। दुर्भाग्य तो यह है कि अधिक लोग शूद्र ही मरते हैं, अधिक लोग मरते क्षण में भी शरीर के पास ही होते हैं।

ध्यान रहे, अगर आपके भीतर से शूद्र विलीन हो गया हो, तो मृत्यु की आपको पीड़ा नहीं होगी, क्योंकि मृत्यु की पीड़ा शरीर के मरने की पीड़ा है। और जिसके भीतर से शूद्र विलीन हो गया है, उसका शरीर का दृष्टिकोण ही बदल गया! अब वह भलीभांति जानता है कि शरीर मैं नहीं हूं।

संक्षिप्त मेँ कहें, तो जो ऐसा मानता है कि मैं शरीर ही हूं वह शूद्र है। मैं शरीर ही हूं? सब कुछ शरीर है, शरीर पर मैं समाप्त हो जाता हूं। शरीर ही मेरा जन्म है, शरीर ही मेरा जीवन, शरीर ही मेरी मृत्यु है। शरीर के पार मैं नहीं हूं शरीर से भिन्न मैं नहीं हूँ। शरीर में मैं समाप्त हूं, शरीर मेरी सीमा है, यह शूद्र का अर्थ है।

शूद्र को इसलिए निम्नतम कहा है। निम्नतम कहने का कारण? कारण इतना ही कि शूद्र होना सिर्फ जीवन की बुनियाद है, और भवन उठाया जा सकता है। और भवन न उठे, तो बुनियाद बेकार है। शरीर पर ही कोई समाप्त हो जाए, तो उसका जीवन व्यर्थ गया। लेकिन हमारी दृष्टि ही शरीर पर है।

तो कृष्ण कहते हैं कि शूद्र भी, जो केवल अपने को शरीर में ही जिलाए रखते हैं, शरीर के आस—पास ही घूमते रहते हैं; वे भी अगर अनन्य भाव से मेरा स्मरण कर लें, तो अर्जुन, वे भी मुक्त हो जाते हैं।

कृष्ण, बिलकुल निम्नतम जो चित्त की दशा हो सकती है, उसके लिए भी कह रहे हैं कि उस दशा में भी, उस अंधकार में पडा हुआ भी अगर मेरा स्मरण करे, तो प्रकाश की किरण उस तक भी पहुंच जाती है। खाई में पड़ा है, गहन अंधकार में पड़ा है कोई, चारों ओर अंधकार है, लेकिन अगर मुझे स्मरण करे, तो मेरी किरण वहां भी पहुंच जाती है। स्मरण ही मेरी उपस्थिति बन जाती है। शूद्र को भी, वे कहते हैं, यह हो जाएगा।

वैश्य दूसरी कोटि है। शूद्र उसे कहते हैं, जो शरीर के आस—पास जीता है। वैश्य उसे कहते हैं, जो मन के आस—पास जीता है। इसलिए शूद्र की जो भी वासनाएं हैं, आकांक्षाएं हैं, बहुत सालिड, बहुत स्थूल होंगी। वैश्य की जो कामनाएं और वासनाएं और आकांक्षाए हैं, वे मानसिक होंगी, सूक्ष्म होंगी।

वैश्य धन के लिए जीएगा। धन सूक्ष्म बात है; और धन से मिलने वाला रस मन को मिलने वाला रस है। वैश्य यश के लिए जीएगा, पद के लिए जीएगा। उनसे मिलने वाला रस, मन के लिए मिलने वाला रस है। और वैश्य धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए शरीर को भी गंवाने को तैयार हो जाएगा। शूद्र पद के लिए,। धन के लिए, प्रतिष्ठा के लिए शरीर को गंवाने को तैयार नहीं होगा। शरीर उसके लिए मौलिक मूल्य है। शरीर के लिए वह सब कुछ कर सकता है। लेकिन वैश्य शरीर को गंवाने को तैयार हो जाएगा।

एक लिहाज से शूद्र शरीर से स्वस्थ होगा, वैश्य अस्वस्थ होने ' लगेगा। एक लिहाज से शूद्र के पास प्रकृति कै संपर्क का द्वार बहुत स्पष्ट होगा, संवेदनशील होगा, वैश्य प्रकृति के साथ संवेदना खोने लगेगा। लेकिन प्रकृति से संवेदना उसकी कम होगी, लेकिन परमात्मा की तरफ वह एक कदम ऊपर उठ जाएगा। क्योंकि शरीर से आत्मा तक जाने में बीच में मन के पड़ाव को पार करना जरूरी ही है। मन से गुजरना ही पड़ेगा। शूद्र को आत्मा की यात्रा में किसी न किसी क्षण वैश्य होना ही पड़ेगा।

सभी शूद्र की तरह जन्मते हैं; कुछ लोग वैश्य तक पहुंच जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। वह भी पड़ाव है, मंजिल नहीं है। मन मूल्यवान हो जाएगा शरीर से ज्यादा, और मन के रस शरीर के रस से ज्यादा कीमती मालूम पड़ने लगेंगे। भोजन उतना मूल्यवान नहीं रहेगा अब, कामवासना उतनी मूल्यवान नहीं रहेगी, जितना मन के रस मूल्यवान हो जाएंगे। पद है, प्रतिष्ठा है, यश है, गौरव है, ! गरिमा है, ये ज्यादा मूल्यवान होने लगेंगे।

कृष्ण कहते हैं, वैश्य भी अगर मुझे स्मरण करें, तो वे भी मुझे उपलब्ध हो जाते हैं, अनुईन! वे जो अभी मन में ही घिरे हैं और आत्मा तक जिनका कोई कदम नहीं उठा है, वे भी अगर मुझे स्मरण करें, तो उन तक भी मेरी किरण पहुंच जाती है।

तीसरी कोटि है क्षत्रिय की। क्षत्रिय का अर्थ है, जो शरीर और मन दोनों के पार उठकर आत्मा में जीना शुरू करे। शूद्र और वैश्य की कोटि को भारत ने नीचा माना है। वह एक पलड़ा है, दो वर्गों का। क्षत्रिय और ब्राह्मण को श्रेष्ठतर माना है, वह दूसरा पलड़ा है। जो आत्मा में जीने की चेष्टा करे। शरीर का भी मूल्य नहीं है, मन का भी मूल्य नहीं है, सिर्फ आत्मगौरव का ही मूल्य है।

इसलिए क्षत्रिय धन पर भी लात मार देगा, शरीर पर भी लात मार देगा, मन की भी चिंता छोड़ देगा, लेकिन आत्मगौरव उसके लिए सबसे ज्यादा कीमती हो जाएगा। वह उसके आस—पास ही जीएगा। आत्मगौरव के लिए वह सब कुछ गंवा सकता है, लेकिन आत्मगौरव नहीं गंवा सकता है।

चौथी कोटि है ब्राह्मण की। ब्राह्मण से अर्थ है, जो आत्मा से भी पार हट जाए और ब्रह्म में जीए। उसके लिए अब न शरीर का कोई मूल्य है, न मन का कोई मूल्य है, न आत्मा का कोई मूल्य है, उसके लिए सिर्फ परमात्मा ही मूल्यवान रह गया।

ये चार टाइप हैं, इनका जाति से फिलहाल कोई संबंध न जोडे। ये चार मनस—प्रकार हैं।

कृष्ण कहते हैं कि पहले दो प्रकार वाले लोग भी मुझे उपलब्ध हो जाते हैं, तो बाद के दो प्रकार वाले लोगों का क्या कहना! अगर वे मेरा स्मरण करें, तो वे मुझे उपलब्ध हैं ही।

अगर मन के प्रकार की तरह समझें, तो इस सूत्र में कोई कठिनाई न रह जाएगी। लेकिन भारत ने यह प्रयोग भी किया था। कि ये जो मन के प्रकार हैं, इनको जन्म से जोड्ने की एक अभूतपूर्व चेष्टा की थी। असफल गया वह प्रयोग, लेकिन बड़ा प्रयोग था। और इतना बड़ा था कि सफल होना संभव नहीं मालूम पड़ता था। जितनी बड़ी बात हो, उतनी असफलता की संभावना ज्यादा हो जाती है। और जब कोई बहुत बड़ी बात असफल होती है, तो बड़े गट्टे में गिरा जाती है।

हमने एक अनूठा प्रयोग किया था। वह प्रयोग यह था कि न केवल व्यक्ति का मन अलग— अलग है, न केवल उसकी चेतना के ढांचे' अलग— अलग हैं, क्या यह नहीं हो सकता कि प्रत्येक चेतना के ढांचे के व्यक्ति को जन्म भी इस भाति मिले कि वह जन्म से ही अपने ढांचे के अनुकूल पैदा हो सके?

एक व्यक्ति मरता है, तो उसकी आत्मा भटकती है नए जीवन की तलाश में। हर कहीं आकस्मिक जन्म नहीं होता। आत्मा खोजती है अपने अनुकूल, अपने अनुकूल गर्भ को खोजती है। और जब अपने अनुकूल गर्भ मिलता है, तो जन्म लेती है।

तो जन्म की घटना में दो घटनाएं घटती हैं, मां और पिता का गर्भ निर्माण करना और उस निर्मित गर्भ में एक चेतना का प्रवेश। वह चेतना का प्रवेश उस चेतना के अपने समस्त कर्मों का फल है। उसके अनुकूल वह खोजती है। यह खोज बहुत सचेतन नहीं है, कांशस नहीं है, अनकांशस है।

अनकाशस खोज का मतलब यह है कि जैसे हम पानी को बहाते हैं, तो वह गड्डे को खोज लेता है। भाषा में हम कहेंगे, पानी गड्डे को खोज लेता है। लेकिन पानी कोई सचेतन रूप से खोजता नहीं, सिर्फ स्वभाव अनुसार वह गड्डे की तरफ बहता है, जहां नीचाई है, वहां बहता है। पानी ऊपर की तरफ नहीं बह सकता, गड्डे की तरफ बह सकता है। इसलिए जो सबसे बड़ा गड्डा है, वहां पहुंच जाता है। कमरे में जहां गड्डा है, पानी पहुंच जाता है। यह खोज अचेतन है। पानी के स्वभाव से हो जाती है।

ठीक ऐसे ही, प्रत्येक आत्मा अचेतन खोज करती है। जहां उसके अनुकूल गर्भ होता है, वहीं गड्डा बन जाता है, वहीं आत्मा प्रवेश कर जाती है। भारत ने यह कोशिश की कि क्या यह नहीं हो सकता कि शूद्र आत्माओं के लिए हम एक वर्ग ही नियत कर दें, जहां शूद्र आत्माएं पैदा हो जाएं! क्या यह नहीं हो सकता कि ब्राह्मण आत्माओं के लिए हम ब्राह्मण का एक वर्ग ही नियत कर दें, जहां ब्राह्मण आत्माएं पैदा हो जाएं!

यह बड़ा कठिन प्रयोग था, बहुत मुश्किल प्रयोग था। शायद भविष्य में बायोलाजी कुछ इस तरह के प्रयोग करना शुरू करे। लेकिन वे किसी दूसरे ढांचे पर होंगे। क्योंकि विज्ञान अब यह कह रहा है कि हम इस बात की कोशिश जरूर करेंगे आज नहीं कल, कि ज्यादा सुंदर लोग पैदा किए जा सकें, और निर्णायक बना जा सके कि ज्यादा सुंदर व्यक्ति पैदा हों। विज्ञान यह भी कह रहा है कि अब यह कठिनाई नहीं रही कि हम अगर पुरुष पैदा करना चाहें, तो पुरुष पैदा करें; और स्त्री पैदा करना चाहें, तो स्त्री पैदा करें। विज्ञान अब यह भी कह रहा है कि हम यह भी तय कर लेंगे कि जो बच्चा पैदा हो, उसका बुद्धि अंक, उसका आई क्यू. कितना हो, यह हम पहले तय कर लेंगे। हम यह भी तय कर लेंगे कि उसके शरीर का रंग कैसा हो, उसकी उम्र कितनी हो। हम ये सारी बात तय करेंगे।

यह तय करेंगे, तो हमें ब्रीडिंग को नियत करना पडेगा। फिर हर कोई, हर किसी से संबंध नहीं बना सकेगा। तब संबंध हमें सीमित करने पड़ेंगे, ताकि वे ही लोग संबंधित हों, जो नियमानुसार एक व्यक्ति को जन्म दे सकें।

ठीक वैसे ही प्रयोग भारत ने किसी और दिशा से किए थे, और समाज को चार हिस्सों में बांट दिया था। इन चार हिस्सों में बांटने का प्रयोजन यह था कि शूद्र शूद्र से ही विवाह करे, और यह पीढ़ी दर पीढ़ी ब्राह्मण ब्राह्मण से ही विवाह करे। तो पचास पीढ़ियों के गुजरने के बाद, यह दो ब्राह्मणों का जो विवाह होगा और इन ब्राह्मणों से जो गर्भ निर्मित होगा, वह निर्मित गर्भ किसी ब्राह्मण आत्मा को आकर्षित करने में ज्यादा संभव होगा, बजाय किसी और गर्भ कै। यह बिलकुल वैज्ञानिक है और तर्कयुक्त है। अगर यह हो सकता है, तो यह बिलकुल तर्कयुक्त है।

यह प्रयोग एक महत प्रयोग किया गया। हर प्रयोग के खतरे भी होते हैं। खतरा हुआ। यह प्रयोग तो संभव नहीं हो सका; समाज चार हिस्सों में बंट गया। यह प्रयोग तो टूटा; लेकिन समाज चार शत्रुओं के हिस्सों में टूट गया। और धीरे— धीरे शूद्र व्यक्तित्व का विचार न रहा, जाति का लक्षण हो गया। और तब कोई आदमी ब्राह्मण पैदा हो गया, तो चाहे वह बिलकुल शूद्र के व्यक्तित्व का हो, तो भी सिर पर बैठ गया। और तब कोई अगर शूद्र घर में पैदा हुआ और अगर वह ब्राह्मण की योग्यता का था, तो भी उसे किसी मंदिर में पूजा की जगह न मिली! यह खतरा हुआ।

हर प्रयोग का खतरा है। वैज्ञानिकों ने अणु बम की खोज की, तब सोचा नहीं था कि अणु बम का परिणाम हिरोशिमा और नागासाकी होगा। तब उन्होंने सोचा था कि अणु की ऊर्जा हमारे हाथ में लग जाएगी, तो हम सारी जमीन को खुशहाल कर देंगे; कोई भूखा नहीं होगा, कोई गरीब नहीं होगा। इतनी बड़ी शक्ति हमारे हाथ में लगेगी कि हम सारे जीवन को रूपांतरित कर डालेंगे, पृथ्वी स्वर्ग हो जाएगी।

लेकिन यह नहीं हुआ। यह हो सकता था, लेकिन यह नहीं हुआ। हुआ—हिरोशिमा और नागासाकी कब्रगाह बन गए! एक लाख आदमी एक क्षण में जलकर राख हो गए। और अभी सारी दुनिया के पास अणु बम और हाइड्रोजन बम इकट्ठे हैं। किसी भी दिन पूरी दुनिया राख की जा सकती है!

आइंस्टीन मरते वक्त कहकर मरा है कि हमने सोचा भी नहीं था कि इतनी महान ऊर्जा का ऐसा महान दुरुपयोग हो सकेगा। लीनियस पालिंग ने, जो कि अणु की खोज में बड़े वैज्ञानिकों में एक था, आखिरी वक्त सारी दुनिया के वैज्ञानिकों से अपील की कि अब दुबारा कोई बड़ी शक्ति आदमी के हाथ में खोजकर मत देना! क्योंकि हम खोजते हैं पता नहीं किसलिए और आदमी उसका क्या उपयोग करता है!

इस मुल्क में इस मुल्क के मनीषियों ने भी एक बहुत अदभुत सूत्र खोजा था। और वह सूत्र यह था कि प्रत्येक आत्मा को हम उसके जीवन के चुनाव में भी मार्ग—निर्देश कर सकें। आत्मा ऐसे ही भटककर कहीं भी, किसी भी तरह पैदा न हो। हम उसे सुनिश्चित मार्ग दे सकें, व्यवस्थित मार्ग दे सकें, ताकि ज्यादा से ज्यादा उपयोग थोड़े से थोड़े जीवन का किया जा सके।

और अगर एक व्यक्ति पिछले जन्म में ब्राह्मण था, समझें, और उसने ब्राह्मण की एक ऊंचाई पाई। लेकिन इस बार जन्म की खोज करते वक्त उसे एक शूद्र के घर में ही योग्य मौका मिला, वह शूद्र के घर पैदा हो जाता है। तो उसे ब्राह्मण की पूरी शिक्षा नहीं मिल सकेगी, उसे ब्राह्मण का पूरा वातावरण नहीं मिल सकेगा। हो सकता है, वह पचास वर्ष का हो जाए, तब इस योग्य हो, जिस योग्य का वह ब्राह्मण के घर में पैदा होकर पांच वर्ष में हो जाता! ये पैंतालीस वर्ष उसके व्यर्थ खो जाएंगे।

भारत ने एक जीवन की गहरी इकॉनामिक्स की चिंता की थी, समय कम से कम उपयोग में लाया जा सके और अधिक से अधिक परिणाम हो सकें, और व्यक्ति में जो गहनतम छिपा है, वह प्रकट हो सके। उसे मां—बाप भी, परिवार भी, वातावरण भी, सब कुछ ब्राह्मण का मिल सके। शूद्र को शूद्र का मिल सके, वैश्य को वैश्य का मिल सके। इसलिए जातिया विभाजित हुईं।

लेकिन यह महान प्रयोग नहीं हो सका। जिन्होंने किया था, वे खो गए। और जिनके हाथ में यह महान प्रयोग दे गए, उन्होंने केवल समाज को विभाजित करके शोषण का एक उपाय किया।

तब शूद्र शोषित हो गया। तब ब्राह्मण छाती पर बैठ गया। तब क्षत्रिय ने तलवार हाथ में ले ली और लोगों के ऊपर प्रभुसत्ता कायम कर ली। और तब वैश्य धन इकट्ठा करके बैठ गया। और इन चारों वर्गों ने एक—दूसरे के साथ गहरी शत्रुता ठान ली। जो फायदा होता, वह तो नहीं हुआ, नुकसान यह हुआ कि शूद्र के घर अगर कोई पैदा हो गया, तो उसके विकास का उपाय ही न रहा।

पांच हजार साल में, अगर डा अंबेदकर को छोड़ दें, तो शूद्रों में एक भी बुद्धिमान आदमी पैदा नहीं हो सका। और ये डाक्टर अंबेदकर भी हमारी वजह से पैदा नहीं हुए। यह एक आदमी है, जिसको ब्राह्मण की हैसियत का कहा जा सके। इसलिए ब्राह्मणों से नाराज भी थे वे। ब्राह्मणों से नाराज होना बिलकुल स्वाभाविक था, क्रोध स्वाभाविक था।

पांच हजार वर्षों में शूद्रों की कितनी प्रतिभाएं खो गईं, इसका हमें कोई पता नहीं है! प्रयोग गलत निकल गया, गलत आदमियों के हाथों में पड़ गया। और कितने शूद्र जैसे ब्राह्मण हमारे मुल्क की छाती पर छाए चले गए और कितना गहन नुकसान पहुंचा गए, उसका भी अब हिसाब लगाना मुश्किल है।

यह मैंने इसलिए कहा, ताकि आपको कृष्ण का अर्थ साफ हो सके। कृष्ण के समय में यह महान प्रयोग गतिमान था, यह प्रयोग चल रहा था, इस प्रयोग की आधारशिलाए रखी जा रही थीं। कृष्ण को पता भी नहीं है कि इस प्रयोग का क्या परिणाम आज हो गया!

जो लोग हिरोशिमा के पहले मर गए अणु बम बनाकर, उनको पता भी नहीं है। वे इसी खुशी में मरे हैं कि वे मनुष्य—जाति को एक, महान शक्ति देकर विदा हो गए हैं। अभागे तो वे वैज्ञानिक थे, जिन्होंने अपने हाथ से अपने सामने आदमीयत को जलते हुए देखा—अपनी ही खोज का यह परिणाम!

कृष्ण ने जब यह सूत्र कहा था, तब मनुष्य के प्रकार का यह महान प्रयोग गतिमान था, स्वस्थ था, विकसित हो रहा था, अंकुरित हो रहा था, सड़ नहीं गया था।

कृष्ण कहते हैं, शूद्र हो, कि वैश्य हो, कि स्त्री हो, कोई भी हो, वे भी मेरी शरण को पाकर परम गति को उपलब्ध हो जाते हैं।

यहां कोई निंदा का स्वर नहीं है, यहां केवल तथ्य की सूचना है। सिर्फ इस तथ्य की कि जो शरीर के पास जी रहे हैं, वे भी, जो मन के पास जी रहे हैं, वे भी, वे भी शरण आकर मुझे पा लेते हैं।

शरण आने का मूल्य समझाया जा रहा है। आप क्या हैं, यह मूल्यवान नहीं है; आप कौन हैं, यह मूल्यवान नहीं है; अच्छे हैं, बुरे हैं, यह मूल्यवान नहीं है। शरण जाने की क्षमता आपकी है, तो आप परमात्मा को उपलब्ध हो जाएंगे। ऐसी शर्त कृष्ण कहते हैं, शरण, सरेंडर की, उसके सामने समर्पण कर देने की, अपने अहंकार को उसके सामने छोड़ देने की।

पुण्यशील ब्राह्मणजन और राजऋषि भक्तजनों का तो परमगति को प्राप्त होना सुनिश्चित है। अगर वे भी अपने को शरण में लगा पाएं। इसलिए तू सुखरहित ओर क्षणभंगुर इस लोक को प्राप्त होकर निरंतर मेरा ही भजन कर।

केवल मुझ परमात्मा में अनन्य प्रेम से अचल मन वाला हो, और मुझ परमेश्वर को ही निरंतर भजने वाला हो। और मेरा श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से विह्वलतापूर्वक पूजन करने वाला हो, मुझ परमात्मा को प्रणाम कर। इस प्रकार मेरे शरण हुआ तू आत्मा को मेरे में एकीभाव करके मुझ को ही प्राप्त हो सकेगा।

यहां तीन—चार बातें खयाल में लेने जैसी हैं।

पहली बात, कृष्ण कहते हैं, सुखरहित और क्षणभंगुर लोक में! जहां हम जी रहे हैं, वहां सुख का आभास बहुत होता है, सुख मिलता नहीं। मिलता है दुख, आभास होता है सुख का। हाथ में आता है दुख, आशा बनती है सुख की। दूर से दिखाई पड़ता है सुख, पास पहुंचकर उघड जाता है और पता चलता है, दुख ही है। दूर से सुख दिखाई पड़ता था। दूरी की भूल है। दूर से जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा पास पाया नहीं जाता।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सुखरहित संसार में!

ध्यान रहे, कृष्ण यह भी कह सकते थे, इस दुख से भरे संसार में। यह नहीं कहा। ज्यादा उचित होता, ज्यादा जोर वाला होता, कहते कि इस दुख भरे संसार में। लेकिन कृष्ण ने यह नहीं कहा कि इस दुख भरे संसार में। बुद्ध ने कहा है, यह संसार दुख है। कृष्ण ने कुछ दूसरा शब्द उपयोग किया है, और ज्यादा विचारपूर्वक है। कृष्ण ने कहा है, इस सुखरहित संसार में!

क्यों त्र: क्योंकि दुख तो पैदा ही इसलिए होता है कि हम इस जगत में सुख मान लेते हैं। इसलिए यह कहना कि जगत दुख है, ठीक नहीं है। हम सुख मानते हैं, इसलिए दुख पाते हैं। जगत दुख है, यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अगर हम सुख न मागें, तो जगत बिलकुल दुख नहीं देता। हम सुख मानते हैं, इसलिए दुख मिलता है। जगत दुख नहीं देता।

मैं आपसे आशा करता हूं कि मेरा सम्मान करेंगे, मेरा आदर करेंगे। फिर आप मेरा आदर न करें, सम्मान न करें, तो मुझे दुख हो। दुख आपने मुझे दिया नहीं। आपका कोई हाथ ही नहीं है। आप बिना नमस्कार किए निकल गए। आपको पता भी नहीं होगा कि आपने मुझे दुख दिया। लेकिन मुझे दुख मिला, बिना आपके दिए! यह दुख कहां से पैदा हुआ? यह दुख मेरी अपेक्षा से जन्मा। मैंने चाहा था नमस्कार हो, प्रणाम करें मुझे, आदर दें मुझे। नहीं दिया, मेरी अपेक्षा टूटी। टूटी हुई अपेक्षा दुख बन जाती है। बिखरा हुआ सुख, दुख बन जाता है। न मिला सुख, दुख बन जाता है।

तो जगत दुख है, यह कहना ठीक नहीं है। बुद्ध से कृष्ण का वचन ज्यादा गहन है। बुद्ध सीधा कहते हैं, जगत दुख है। ठीक नहीं है। कृष्ण कहते हैं, जगत सुखरहित है। वे यह कहते हैं कि जगत में कोई सुख नहीं है। और अगर कोई मनुष्य ऐसा जान ले कि जगत सुखरहित है, तो फिर उसे इस जगत में दुख नहीं हो सकता। उसे इस जगत में कोई दुख नहीं दे सकता।

मुझे आप दुख देने में उसी सीमा तक समर्थ हैं, जिस सीमा तक मैं आपसे सुख मांगने में आतुर हूं। मेरे सुख मांगने की मात्रा ही आपकी क्षमता है मुझे दुख देने की। अगर मैं कुछ भी मांग नहीं रहा हूं? तो आप मुझे दुख नहीं दे सकते।

तो दुख स्वअर्जित है; जगत सुखरहित है और दुख स्वअर्जित है। इसलिए शब्द पर खयाल करें! कृष्ण कहते हैं, सुखरहित है जगत। दूसरी बात कहते हैं, क्षणभंगुर। एक—एक क्षण में नष्ट हो जाने वाला है।

हमें खयाल नहीं आता। हमें ऐसा लगता है कि जगत बहुत थिर है। हम सबको यही खयाल होता है कि हम एक थिर जगत में जी रहे हैं। लेकिन जगत प्रतिपल बदलता चला जाता है—प्रतिपल! लेकिन बदलाहट इतनी तीव्र है कि दिखाई नहीं पड़ती।

नदी के किनारे खड़े हैं, नदी बही जा रही है, हम सोचते हैं वही नदी है। फिर भी नदी में तो दिखाई पड़ता है। पहाड़ के किनारे खड़े हैं, तब तो बिलकुल दिखाई नहीं पड़ता कि पहाड़ बहा जा रहा है। पहाड़ भी बह रहे हैं! उनके बहने का समय जरा लंबा है। नदी के बहने का समय जरा तीव्र है; इसलिए नदी दिखाई पड़ रही है। पहाड़ भी बह रहे हैं। क्योंकि कल जो पहाड़ थे, आज नहीं हैं, और आज जो पहाड़ हैं, कल नहीं थे। कल जो पहाड़ होंगे, उनका हमें अभी कोई पता नहीं है।

पहाड़ बह रहे हैं। वे भी बदल रहे हैं। उनका काल—माप बड़ा है। करोड़ों वर्ष में बदलते हैं। नदी घड़ी में बदल जाती है। बस काल—माप, टाइम पीरियड का फर्क है, बाकी पहाड़ भी बह रहे हैं।। और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रत्येक चीज बह रही है।। प्रत्येक चीज लयमान है, गतिमान है। प्रत्येक चीज दौड़ रही है।।, प्रत्येक चीज एक बहाव है। और यहां हर क्षण सब बदला जा रहा। है। यहां कुछ भी एक क्षण से ज्यादा नहीं टिकता। बाहर भी कुछ नहीं टिकता, भीतर भी कुछ नहीं टिकता आपने कभी खयाल किया है कि आपका मन एक क्षण भी वही नहीं रहता, जो एक क्षण पहले था। एक क्षण पहले सुख मालूम हो रहा था, और जरा भीतर झांककर देखें, सुख तिरोहित हो गया है! एक क्षण पहले दुख मालूम हो रहा था, दुख खो गया है! एक क्षण पहले चिंता मालूम हो रही थी, चिंता चली गई! एक क्षण पहले बड़े शांत थे, अशांत हो गए हैं! एक क्षण भी मन दोहरता नहीं, वही नहीं होता। दो क्षण भी मन एक जैसा नहीं रहता।

भीतर मन बदल रहा है, बाहर संसार बदल रहा है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। और जहां कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, वहा हमारी ठहराने की आकांक्षा से दुख पैदा होता है। हम ठहराना चाहते हैं, हम हर चीज को ठहराना चाहते हैं। हम जगत के, जीवन के नियम के विपरीत कोशिश में लगते हैं। फिर हार जाते हैं। फिर दुखी ' होते हैं।

एक आदमी जवान रहना चाहता है, तो जवान ही रहना चाहता है। उसे पता नहीं है कि उसके रहने की कोशिश भी उसको बूढ़ा कर रही है, रहने की कोशिश में भी जो समय और ताकत लगा रहा है, वह भी का, वह भी बूढ़ा होता जा रहा है! एक आदमी मरना ही नहीं चाहता है। वह जो कोशिश कर रहा है, उसमें ही मर जाएगा। जीवन कै प्रवाह के विपरीत हम थिर को खोजना चाहते हैं। हम चाहते हैं, कुछ ठहर जाए।

मैं किसी को प्रेम करता हूं, तो सोचता हूं, यह प्रेम बह न जाए, बचे, सदा बचे। सिर्फ कवियों की कविताओं में बचता है। और अक्सर उन कवियों की, जिनको प्रेम का कोई अनुभव नहीं है। सच।' तो यह है कि जिनको प्रेम का अनुभव है, वे कविता लिखने की। झंझट में नहीं पड़ते। जिनको कोई अनुभव नहीं है, वे कविता से तृप्ति खोजते रहते हैं।

सिर्फ कविताओं में प्रेम अमर है। जीवन में कहीं भी अमर नहीं है। हो नहीं सकता। ऐसा नहीं कि प्रेमी का कोई कसूर है। नहीं, जीवन का नियम नहीं है। क्षणभंगुर है।

इसीलिए प्रेमी बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं। जब प्रेम के बहाव में होते हैं और प्रेम अपनी ऊंचाई पर होता है, तो उनको लगता है कि शाश्वत है, इटरनल है। अब तो इसका कोई अंत नहीं होगा। उन्हें पता नहीं है कि शाश्वत तो बहुत दूर की बात है, कल का, सुबह का भी कोई भरोसा नहीं है।

और फिर कल सुबह जब गंगा बह जाती है, और हाथ से पानी की धाराएं गिर जाती हैं बाहर, और हाथ में कुछ नहीं रह जाता, तब बड़ी कठिनाई शुरू होती है। फिर अपने ही किए हुए वचन—कि चाहे मर जाऊं, लेकिन प्रेम करूंगा, चाहे कुछ भी हो जाए, प्रेम करूंगा। लेकिन प्रेम बह गया। क्योंकि प्रेम आपके वचनों को नहीं मानता। प्रेम जगत के नियमों को मानता है। उसके अपने नियम हैं। मैं कितना ही कहूं मेरे कहने का कोई सवाल नहीं है। जीवन के नियम अपवाद नहीं करते।

प्रेम बह जाएगा, तब फिर मुझे प्रेम का धोखा सम्हालना पड़ेगा। फिर मैं एक डिसेप्शन को पालकर रखूंगा। फिर मैं कहता रहूंगा कि ! प्रेम करता हूं और भीतर प्रेम नहीं पाऊंगा। और जारी रखूंगा। अपने को भी धोखा दूंगा, दूसरे को भी धोखा दूंगा। और तब प्रेम से पीड़ा निकलेगी, कष्ट आएगा, ऊब मालूम पड़ेगी, घबड़ाहट मालूम होगी, धोखा मालूम पड़ेगा। लेकिन अब मैं क्या कर सकता हूं! वचन जो मैंने दिया था, उसे खींचना पड़ता है।

प्रेम थिर नहीं हो सकता। कोई चीज थिर नहीं हो सकती। सिर्फ एक चीज थिर है, वह है परिवर्तन। सिर्फ एक चीज नहीं बदलती है, वह है बदलाहट। और सब बदल जाता है।

तो कृष्ण कहते हैं, क्षणभंगुर है यह।

और इस क्षणभंगुर में हम कोशिश करते हैं बचाव की, ठहराव की। उस लड़ने में ही हम मिट जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं।

ज्ञान का अर्थ होता है, जीवन के नियम को जानकर जीना। अज्ञान का अर्थ होता है, जीवन के नियम के विपरीत चेष्टा में लगे रहना। एक आदमी को पता ही नहीं है कि जमीन में गुरुत्वाकर्षण है, वह छलांग लगा—लगाकर आकाश छूने की कोशिश करते हैं, गिर—गिरकर हाथ—पैर तोड़ लेते हैं। नियम का उन्हें पता नहीं है कि जमीन खींच रही है, और जितने जोर से तुम उछाल मारोगे, उतने ही जोर से खींचे जाओगे। हाथ—पैर तोड़ लेंगे, तो शायद वह कहेंगे कि जीवन ने उनके साथ धोखा किया! जमीन को कितना कहा कि धरती माता है तू और यह व्यवहार किया मां होकर!

नहीं, धरती माता का कोई लेना—देना नहीं है इसमें। आपको नियम का पता नहीं है। नियम के विपरीत आदमी दुख पैदा कर लेता है। तो कृष्ण कहते हैं कि क्षणभंगुर इस लोक में तू निरंतर मेरा ही भजन कर। क्योंकि तभी तू उसे पा सकेगा, जो कभी नहीं खोता है। बाकी तू कुछ भी पा लेगा, तो खो जाएगा। चाहे यश, चाहे कीर्ति, चाहे धन, चाहे राज्य—कुछ भी—इस संसार में तू कुछ भी पा लेगा, तो तू ध्यान रखना कि पा भी नहीं पाएगा कि खोना शुरू हो जाएगा।

यहां हम जीत भी नहीं पाते हैं कि हार शुरू हो जाती है। पहुंच भी नहीं पाते हैं कि भटकना शुरू हो जाता है। मंजिल हाथ में आती नहीं कि छीनने वाले मौजूद हो जाते हैं। उसका कारण, जीवन क्षणभंगुर है।

इसमें कुछ निराशा नहीं है। पश्चिम के लोगों ने पूरब के संबंध में निरंतर ऐसा सोचा है कि पूरब के लोग बिलकुल निराश हो गए हैं। इन्होंने जीवन की आशा छोड़ दी है। तभी तो ये कहते हैं, कोई सुख नहीं है, दुख ही दुख है। कोई आशा नहीं, कोई अपेक्षा नहीं है। कुछ नहीं होगा।

लेकिन पश्चिम के लोगों को ठीक खयाल नहीं है। पूरब के लोग निराशावादी नहीं हैं। लेकिन पूरब के लोग नासमझ भी नहीं हैं। अगर एक आदमी जमीन पर कूद—कूदकर हाथ—पैर तोड़ रहा है और मैं उससे कहूं कि पागल, तुझे पता नहीं कि जमीन का स्वभाव खींच लेना है! तो खींचने के खिलाफ तू जो भी कर रहा है, सोच—समझ के कर! अन्यथा हाथ—पैर टूट जाएंगे। और हाथ—पैर से, तो जमीन को दोष मत देना, अपनी नासमझी को दोष देना।

तो मैं निराशावादी नहीं हूं। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि जीवन से व्यर्थ लड़ने की कोशिश में मत पड़! उसमें तू टूट जाएगा। तब मैं यह भी कह रहा हूं कि यह शक्ति, जो तू जीवन से लड़कर नष्ट कर रहा है, यह शक्ति एक और दिशा में भी लगाई जा सकती है। और जो तू पाना चाहता है, वह पाया जा सकता है।

एक ऐसा प्रेम भी है, जो शाश्वत है; लेकिन वह परमात्मा का प्रेम है। वह पाया जा सकता है। आदमी— आदमी के प्रेम को शाश्वत करने की कोशिश मत कर! वह नहीं हो सकता। इसका कोई उपाय ही नहीं है। इसका कभी कोई उपाय नहीं हो सकेगा। लेकिन एक प्रेम है, जो शाश्वत भी है। आदमी—आदमी के बीच के प्रेम की परेशानी में मत पड़! और अगर आदमी— आदमी के बीच भी प्रेम करना है, तो आदमी के भीतर से भी परमात्मा को खोज। प्रेम उसको ही कर। आदमी को भी बीच का द्वार बना, जस्ट ए पैसेज, एक मार्ग। लेकिन उसके भीतर भी परमात्मा को देख।

इसलिए हमने चाहा था कि पति में परमात्मा देखा जा सके। क्योंकि अगर पति ही देखा जा सके, तो जिस प्रेम की आशा है, वह कभी संभव नहीं हो सकता। पश्चिम में प्रेम टूटेगा, विवाह भी टूटेगा, परिवार भी बिखरेगा। बिखरना ही पड़ेगा। वह एक ही आधार पर बन सकता था और थिर हो सकता था, कि किसी दिन पति में परमात्मा की झलक मिल जाए या पत्नी में कभी उस दिव्यता का बोध हो जाए। तो ही। जिस दिन किसी दिन पत्नी में मां दिखाई पड़ जाए गहरे में कहीं, पति में प्रभु दिखाई पड़ जाए गहरे में कहीं, उस दिन हम शाश्वत के नियम में प्रवेश कर गए।

ऐसा समझें, आज हमने जमीन के पार जाने के उपाय कर लिए अब हम चांद पर जा सकते हैं। अब तक नहीं जा सकते थे। न जा सकने का कारण जमीन का ग्रेविटेशन था। दो सौ मील तक जमीन का गुरुत्वाकर्षण पकड़े हुए है। दो सौ मील के भीतर कोई भी चीज फेंको, जमीन उसे खींच लेगी। और या फिर उसको इतनी तीव्र गति में रखना पड़ेगा, जैसे हवाई जहाज को रखना पड़ता है। इतनी तीव्र गति में रखना पड़ेगा कि यहां की जमीन खींच पाए, इसके पहले वह यहां की जमीन से आगे हट जाए। वहा की जमीन खींच पाए उसके पहले आगे हट जाए।

तो या उसे तीव्र गति में रखना पड़ेगा, तो जमीन उसे नहीं खींच पाएगी। क्योंकि जमीन के खींचने में समय लगेगा। मेरा हाथ यहां है, जमीन के खिंचाव का असर पड़ा, तब तक हाथ आगे हट गया। यह खिंचाव बेकार चला गया। तब तक उस पर असर पड़ा, आगे हाथ हट गया। तो या तो हवाई जहाज की गति से घूमते रहो वर्तुलाकार, तो जमीन से बच जाओगे। लेकिन जमीन का कर्षण खींचता ही रहेगा।

ही, दो सौ मील के पार अगर हम किसी भी चीज को फेंक दें, तो फिर जमीन खींचने में असमर्थ हो जाती है। दूसरा नियम शुरू हो गया। जमीन के घेरे के बाहर दो सौ मील की जमीन का फील्ड है, एनर्जी फील्ड है। उसके बाहर फिर जमीन नहीं खींचेगी। फिर एक छोटा—सा कंकड़ भी छोड़ दो, तो जमीन की ताकत उसे खींचने की नहीं है। फिर वह कंकड़ अनंत में घूम सकता है।

ठीक ऐसे ही, जीवन के आंतरिक नियम भी हैं। जब तक हम क्षणभंगुर के घेरे में ही सब कुछ खोजेंगे, शाश्वत को खोजेंगे, तब तक हम क्षणभंगुर से खिंचते रहेंगे, टूटते रहेंगे, परेशान होते रहेंगे। वह स्थिर हमें उपलब्ध नहीं होगा, शाश्वत की प्रतीति नहीं होगी। एक और दिशा भी है, आदमी के पार। जैसे जमीन के पार दो सौ मील के पार उठने की, ठीक ऐसे ही, आदमी के प्रेम, वस्तुओं के आकर्षण के पार, परमात्मा के प्रेम की तरफ उठने की भी एक आंतरिक दिशा है। उस दिशा में उठते ही सारे नियम दूसरे हो जाते हैं। यहां सब क्षणभंगुर है, वहा कुछ भी क्षणभंगुर नहीं है। यहां सब सुखरहित है, वहां सब दुखरहित है।

मैं नहीं कहूंगा कि वहां सुख है। क्योंकि आप नहीं समझ पाएंगे। क्योंकि सुख तो आपने जाना नहीं कभी। अगर मैं कहूं, वहां सुख है, तो आपकी समझ में कुछ भी न आएगा। और अगर आएगा भी, तो वही सुख समझ में आएंगे, जो आप यहां जानना चाह रहे थे। नहीं। मैं कहूंगा, यह संसार सुखरहित है, और वह संसार, परमात्मा का, दुखरहित है। दुखरहित इसलिए कि आप दुख को भलीभांति जानते हैं। आपका दुख वहां कोई भी नहीं होगा। स्वभावत:, आपका कोई भी सुख वहां नहीं होगा। क्योंकि आपके सब दुख इन्हीं सुखों से पैदा हुए हैं।

यह क्षणभंगुर है, वह शाश्वत है। यहां हर चीज क्षण में बदल जाती है, वहां कुछ भी कभी नहीं बदला है।

निश्चित ही, जहां बदलाहट बिलकुल नहीं है, वहा समय नहीं हो सकता, वहां टाइम नहीं हो सकता। क्योंकि समय तो बदलाहट का माध्यम है। जहां भी समय होगा, वहां बदलाहट होगी। जहां बदलाहट नहीं होगी, वहा समय नहीं होगा।

यहां, जहां हम जीते हैं, वहां हम समय में जीते हैं। समय की प्रक्रिया को हम समझ लें, तो क्षणभंगुर का दूसरा अर्थ समझ में आ जाए।

समय में, कभी आपने खयाल किया कि आपको वर्ष, माह, जीवन इकट्ठा नहीं मिलता, एक—एक क्षण एक—एक बार मिलता है! कभी आपने खयाल किया कि दो क्षण इकट्ठे आपके हाथ में कभी नहीं होते! एक क्षण, और जब वह छिन जाता है, तभी दूसरा आपके हाथ में उतरता है।

एक क्षण से ज्यादा आपके हाथ में कभी नहीं होता। कोई आदमी कितनी ही कोशिश करे कि दो क्षण मेरे हाथ में हो जाएं, तो नहीं हो सकते। एक ही क्षण हाथ में होता है। जब वह खिसक जाता है हाथ से, तब दूसरा आता है। अगर आपने रेत से चलती हुई घड़ी देखी है, तो एक—एक दाना रेत का गिरता रहता है। बस, एक दाना ही गुजरता है छेद से। जब एक गुजर जाता है, तब दूसरा दाना गुजरता है। दो दाने साथ नहीं गुजरते।

समय का भी एक दाना हमें मिलता है, एक क्षण। क्षण समय का एटम है, आखिरी कण है। उसके आगे विभाजन नहीं हो सकता। एक क्षण हमें मिलता है। वह खोता है, तो दूसरा हाथ में आता है।

इसका अर्थ हुआ कि हमारे पास एक क्षण से ज्यादा जिंदगी कभी नहीं होती! चाहे बच्चा हो, चाहे जवान हो, चाहे का हो, चाहे गरीब हो, चाहे अमीर हो, चाहे ज्ञानी हो, चाहे अज्ञानी हो—एक क्षण से ज्यादा जिंदगी किसी के पास नहीं होती।

क्षणभंगुर का यह भी अर्थ है कि पूरा जीवन क्षण से ज्यादा हमारे पास नहीं होता।

और क्षण कितनी छोटी चीज है आपको पता है गुर आपको पता नहीं होगा। जिसे हम सेकेंड कहते हैं घड़ी में, वह बहुत बड़ा है। बहुत बड़ा है। अब तक समय की ठीक—ठीक जांच—पड़ताल नहीं हो सकी; क्योंकि बड़ा सूक्ष्म मामला है समय का।

लेकिन क्षण, आप ऐसा ही समझें, डेमोक्रीट्स या वैशेषिक भारत के आज से तीन—चार हजार साल पहले परमाणु की जो कल्पना करते थे, परमाणु का जो खयाल करते थे, तो उनका खयाल था कि परमाणु आखिरी टुकड़ा है, उससे ज्यादा नहीं टूट सकता। लेकिन फिर परमाणु भी टूट गया और अब इलेक्ट्रान हमारे हाथ में है। अब इलेक्ट्रान जो है, वस्तु का आखिरी टुकड़ा है। वह कितना बड़ा है, यह कहना मुश्किल है, वह कितना छोटा है, यह कहना मुश्किल है। और जो भी बातें कही जाती हैं, वे सब अंदाज हैं, अनुमान हैं।

इसे ऐसा समझें कि एक पानी की बूंद—स्याही का ड्रापर होता मुड़ने की बात है और वह दिखाई पड़ जाएगा। संसार पर ध्यान मत है, आप स्याही के ड्रापर से एक पानी की या स्याही की बूंद गिरा दो; उसकी तलाश करो, जिसमें संसार बह रहा है, जिसमें संसार लें। तो वैज्ञानिक कहते हैं, एक बूंद में जितने इलेक्ट्रौस हैं, अगर उठ रहा है, जिसमें संसार खो रहा है, जिसमें संसार बना है और पूरी पृथ्वी के लोग—तीन अरब लोग हैं अभी—तीन अरब लोग उन इलेक्ट्रांस की गिनती करने लग जाएं, तो छ: करोड़ वर्ष लगेंगे! एक पानी की बूंद में, जमीन पर जितने लोग हैं, तीन अरब लोग हैं अभी, अगर ये गिनती करने लग जाएं—खाएं न, पानी न पीए, उठें न, सोए न, बैठें न—कुछ भी न करें, चौबीस घंटे गिनती ही करें, तो छ: करोड़ वर्ष! एक पानी की बूंद में उतने इलेक्ट्रांस हैं! कहना मुश्किल है कि एक सेकेंड में कितने क्षण हैं, कहना मुश्किल है। इलेक्ट्रौस से तो छोटे किसी हालत में नहीं होंगे। बहुत बारीक है मामला। उतना बारीक हमारे पास होता है! हमें पता भी नहीं चल पाता। बारीक इतना है कि जब आपको पता चलता है, तब तक क्षण आपके हाथ से जा चुका होता है। पता चलने में जितना वक्त लगता है, उतने में वह जा चुका होता है। आपको पता लगता है कि आपको लगा, बारह बजकर एक मिनट, जब आपको पता लगता है, तो बारह बजकर एक मिनट अब नहीं रहा। क्षण सरक गए।

इसका मतलब यह हुआ कि क्षण भी हमारे हाथ में है, यह भी हमें पता नहीं चल पाता। इतना छोटा है क्षण और इतना क्षणभंगुर है जीवन कि हमारे हाथ से कब गुजर जाता है, हमें इसका भी पता नहीं चलता। इस बदलती हुई, भागती हुई समय की धारा में जो जीवन के शाश्वत भवन बनाने की कोशिश करते हैं, वे अगर दुख में पड़ जाते हैं, तो कसूर किसका है?

तो कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, इस क्षणभंगुर और सुखरहित संसार में तू मुझ को स्मरण कर। और स्मरण के लिए कुछ बातें कहते हैं।

अनन्य प्रेम से अचल मन वाला हो, मुझ परमेश्वर को निरंतर भज। श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से विह्वलतापूर्वक पूजन कर। मुझ परमात्मा को प्रणाम कर। मेरे शरण हुआ, मेरे में एकीभाव करके मेरे को ही प्राप्त हो जाएगा।

इन सब बातों का सार तीन शब्दों में आपसे कहना चाहूं।

एक, दृष्टि संसार पर मत रखो। वहां कुछ भी हाथ में आएगा नहीं। निराश होने का कोई कारण नहीं; क्योंकि जहां कुछ हाथ में आ सकता है, वह बिलकुल किनारे ही है। संसार से बहुत दूर नहीं, बस जस्ट बाई दि कार्नर। एकदम किनारे, नुक्कड़ पर ही है। जरा

जिसमें संसार लीन हो जाएगा। उसकी थोड़ी फिक्र करो। आदमी से आंख थोडी ऊपर उठाओ; आदमी के थोड़े पार देखो।

नीत्शे ने कहा है, अभागा होगा वह दिन, जिस दिन आदमी अपने से तृप्त हो जाएगा। और लगता है कि वह अभागा दिन हमारे आस—पास है कहीं। आदमी अपने से तृप्त मालूम पड़ता है।

धर्म का अर्थ है, आदमी का अपने से अतृप्त हो जाना, ए बेसिक डिसकटेंट, एक आधारभूत प्राणों में असंतुष्टि, कि आदमी होना काफी नहीं है, और संसार पा लेना पर्याप्त नहीं है—कोई और खोज! वही खोज परमात्मा की तरफ उठाती है।

तो पहली बात, संसार से तृप्त मत हो जाना, संसार में खो मत जाना, डूब मत जाना, स्मरण रखना कि पार भी कोई है।

एक मित्र ने पूछा है कि उस पार का हमें कोई पता ही नहीं है, तो हम उसका स्मरण कैसे करें?

वे ठीक कहते हैं। उसका कोई भी पता नहीं है। उसका स्मरण कैसे करें?

बच्चा पैदा होता है। आपने कभी खयाल किया है, बच्चा पैदा होकर पहला काम क्या करता है? रोता है। इस बच्चे को रोने का भी कोई पता नहीं था। रोता क्यों है? शायद आपको खयाल में भी न हो! रोता इसलिए है, ताकि सांस ले सके, क्योंकि मां के पेट में उसे सांस नहीं लेनी पड़ती। मां की सांस से ही काम चलता है। मां के पेट में नौ महीने बच्चे के फेफड़े काम नहीं करते। पैदा होते से ही फेफड़ों को काम करना पड़ता है। पता कुछ भी नहीं है बच्चे को कि फेफड़े कैसे काम करें? कैसे श्वास लें? लेकिन एक बेचैनी है। उसका जो पता नहीं है, उसकी भी एक बेचैनी तो है। पूरा यंत्र माग करता है, तो एक विह्वलता पैदा होती है।

कृष्ण ने उसी विह्वलता की बात्त कही है। रो उठता है, चीख उठता है। उसी चीखने में सांस भीतर—बाहर हो जाती है, हृदय की धड़कन शुरू हो जाती है। इसलिए अगर बच्चा न रोए, तो डाक्टर चिंतित हो जाते हैं, नर्सें घबड़ा जाती हैं, किसी तरह रुलाओ बच्चे को। अगर बच्चा नहीं रोया, तो गया! अगर बच्चा न रोए, तो उसका मतलब है कि वह बचेगा नहीं, मर जाएगा। मरा ही हुआ होगा। रो भी नहीं सकता, तो मरा ही हुआ है।

तो दूसरी बात आपसे कहता हूं परमात्मा का तो आपको पता नहीं है, लेकिन एक बात तो आपको पता चल सकती है कि जिस जगत में आप जी रहे हैं, वहां कुछ भी नहीं है। तो फिर रो तो सकते हैं। जहां खोज रहे हैं, वहां कुछ भी नहीं मिल रहा है। उसका कोई पता नहीं है, माना मैंने। उसका कोई पता नहीं है, जो मिले। लेकिन जहां हैं, वहां कुछ भी नहीं मिल रहा है, तो छाती पीटकर रो तो सकते हैं! हृदयपूर्वक चीख तो सकते हैं! आंसू तो बह सकते हैं! कृष्ण ने उसे ही विह्वलता कहा है। वह विह्वलता इस बात का ही सबूत है कि जो सामने है, उसमें कुछ मिलता नहीं; और तुम, जिनमें मुझे मिल सकता है, तुम दिखाई नहीं पड़ते! इस क्षण में जो पीड़ा पैदा होती है, उसका नाम विह्वलता है। जो है, वह पाने योग्य नहीं मालूम पड़ता; जो पाने योग्य है, उसका कोई पता नहीं है! तो मैं क्या करूं? लेकिन मैं रो तो सकता हूं।

भक्तों ने रोने का अभूतपूर्व उपयोग किया है। भक्तों ने रोने को योग बना लिया है। रोने का उन्होंने वही उपयोग किया है, जो बच्चा मां से पैदा होकर करता है अनजान जगत में प्रवेश करने के लिए। भक्तों ने रोकर परमात्मा में प्रवेश करने के लिए वही उपयोग किया है। और जो व्यक्ति उस अनजान के लिए रुदन से भर जाता है और उसके प्राणों में आंसू भर जाते हैं, अचानक वह पाता है कि उसके हृदय ने नई श्वास लेनी शुरू कर दी है। वह किसी दूसरे लोक में प्रवेश कर गया है। कोई दूसरा जगत सामने खड़ा हो गया है। द्वार खुल गए हैं।

उन मित्र का पूछना ठीक है कि जिस भगवान को हम नहीं जानते, उसका स्मरण कैसे करें?

मत करो स्मरण! लेकिन जिसे तुम जानते हो, उससे पूरी तरह असंतुष्ट तो हो जाओ। जहां तुम खड़े हो, उस जमीन को तो व्यर्थ समझ लो। तो तुम्हारे पैर आतुर हो जाएंगे उस जमीन को खोजने के लिए, जहां खड़ा हुआ जा सके। जिस नाव पर तुम बैठे हो, उसे तो देख लो कि वह कागज की है। कोई फिक्र नहीं कि दूसरी नाव का हमें कोई पता नहीं है। और हमें कोई पता नहीं है कि कोई किनारा भी मिलने वाला है। हमें कोई पता ही नहीं है कि कोई और खिवैया भी हो सकता है। लेकिन यह नाव, जिस पर तुम बैठे हो, कागज की है या सपने की है, जरा नीचे इसकी तलाश कर लो।

और जिस आदमी को पता चल जाए कि मैं कागज की नाव में बैठा हूं पता है वह क्या करेगा? कम से कम चीखकर रोका, चिल्लाएगा तो! पता है कि कोई सुनने वाला नहीं है, तो भी मैं कहता हूं वह चिल्लाएगा और रोएगा। कोई किनारा हो या न हो, और कोई निकट हो या न हो, उस स्वात निर्जन में भी उसका रुदन तो सुनाई ही पड़ेगा, उसके प्राण तो चिल्लाने ही लगेंगे, कि मैं कागज की नाव में बैठा हूं, अब क्या होगा? इस घटना से ही, इस विह्वलता से ही अचानक हृदय का एक नया यंत्र शुरू हो जाता है। हृदय में दो यंत्र हैं। वैज्ञानिक से पूछने जाएंगे, तो वह कहेगा, फेफड़े के अतिरिक्त हृदय में और कुछ भी नहीं है, फुफफुस है। पंपिंग सेट के सिवाय वहा कुछ भी नहीं है। वह सिर्फ श्वास को फेंकने और खून को शुद्ध करने का काम करता है। एक पंपिंग की व्यवस्था है। वैज्ञानिक से पूछने जाएंगे, तो हृदय जैसी कोई भी चीज नहीं है, फेफडा है, फुफफुस है, लेकिन शब्द हम सदा हृदय का उपयोग करते हैं, हालाकि हमारे पास भी फुफफुस है अभी, अभी हृदय नहीं है।

हृदय उस फेफड़े का नाम है, जो दूसरे संसार में श्वास लेना शुरू करता है। यह फेफड़ा तो इसी संसार में श्वास लेता है, यही आक्सीजन और कार्बन डायआक्साइड के बीच चलता है। एक और भी आक्सीजन है, एक और प्राणवायु है, एक और प्राणवान जीवन है, जब वह शुरू होता है, तो इसी फुफफुस के भीतर एक और हृदय है, जिसमें नई श्वास और नई धड़कन शुरू हो जाती है। वह धड़कन अमृत की धड़कन है। तो दूसरी बात है, विह्वलता। और तीसरी बात है, समर्पण।

पहली बात है, यह जो चारों तरफ है, यह व्यर्थ हो जाए, तो ही आंख उठेगी। आंख उठे, कुछ दिखाई न पड़े; जो था, वह छूट जाए; जो मिलने को है, वह मिले नहीं; बीच में आदमी अटक जाए तो विह्वलता पैदा होगी; घबड़ाहट पैदा होगी; एक बेचैनी पैदा होगी। कीर्कगार्ड ने कहा है, एक ट्रेबलिंग, एक कंपन पैदा होगा। एक चिंता पैदा होगी कि अब क्या होगा? जो नाव थी वह छूट गई, नई नाव पर पाव नहीं पड़े, अब तो लहर पर ही खड़े हैं, अब क्या होगा?

इस विह्वलता में घटना घटेगी।

और तीसरी बात है, समर्पण। समर्पण का अर्थ है, जब उस नए हृदय की धड़कन शुरू हो जाए, तो समग्र भाव से, अत्यंत श्रद्धापूर्वक, पूरे ट्रस्ट से, भरोसे से उस नए जीवन में प्रवेश कर जाना। उस नए जीवन को सौंप देना अपनी बागडोर। कहना कि तू मुझे खींच ले।

दो तरह से एक आदमी नाव में जाता है। एक तो नाव होती है, जिसमें हाथ से खेना पड़ता है। एक नाव होती है, जिसमें पाल लगा होता है। हवा बहती है पूरब की तरफ और पाल खोल देते हैं, तो हवा ही नाव को खींचकर ले जाती है।

ध्यान रहे, संसार का जो जगत है, वहा जिस नाव से हमें चलना पड़ता है, वहां खेना होता है, वहां प्रत्येक आदमी को मेहनत उठानी पड़ती है, पतवार चलानी पड़ती है। तब भी चलता नहीं कुछ, कहीं पहुंचते नहीं। पतवार चलती है बहुत, परेशान बहुत होते हैं, दौड़— धूप, पूरी जिंदगी डूब जाती है, किनारा—विनारा कभी मिलता नहीं। वही सागर की लहरें ही कब सिद्ध होती हैं। लेकिन मेहनत करनी पड़ती है। यहां इंचभर अगर आप रुके, तो डूब जाएंगे। कारण, पूरे वक्त लगे रहना पड़ता है बचने में। यहां क्षणभंगुर है सब। यहां पूरे वक्त लगे रहेंगे, तब भी डूबेंगे! लेकिन जितनी देर बचे रहे, उतनी देर बचे रहेंगे।

एक दूसरा लोक है, जिसकी मैं बात कर रहा हूं, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं। उस लोक में आपको पतवार नहीं चलानी पड़ती। वहा पतवार लेकर पहुंच गए, तो आप मुश्किल में पड़ेंगे। वहा तो उस परमात्मा की हवाएं ही आपकी नाव को ले जाने लगती हैं। आपको सिर्फ छोड़ देना पड़ता है।

लेकिन जिसको पतवार चलाने की आदत है और कभी उस पाल वाली नाव में नहीं बैठा है, वह पाल वाली नाव में बैठकर बहुत घबडाएगा कि पता नहीं कहां जाऊंगा? क्या होगा, क्या नहीं? उतर जाऊं? क्या करूं? या पतवार भी चलाऊ?

समर्पण का अर्थ है, तुम अपनी पतवार मत चलाना। वह तुम्हें जहां ले जाए, तुम वहीं चले जाना। छोड़ देना अपने को।

तो कृष्ण कहते हैं, ऐसा जो छोड़ देता है सब, वह मुझे उपलब्ध हो जाता है।

इन दिनों में जौ कुछ आपसे कहा है, मेरा कोई प्रयोजन नहीं है कि कोई सिद्धात आपको साफ हो जाएं। सिद्धांतों के साफ होने से कुछ होता नहीं। कोई मार्ग साफ हो जाए, तो कुछ होता है। मार्ग भी साफ हो जाए, तो भी बहुत कुछ नहीं होता, जब तक कि चलने की उमंग

और लहर न आ जाए। चलने की उमंग और लहर भी आ जाए, तो भी बहुत कुछ नहीं होता, जब तक कि उस अज्ञात पर भरोसा न आ जाए। तो फिर वह चलाता है और खे लेता है।

इतने दिन इन बातों को इतनी शांति से सुना है, तो यह आशा की जा सकती है कि कोई बात इनमें से आपके जीवन में बीज बन जाए, कोई परिणाम ले आए। परिणाम तो कुछ आते हैं, लेकिन वे परिणाम अक्सर वैसे नहीं होते, जैसे आने चाहिए।

अनुभव करता हूं मैं, सुनते हैं आप मुझे, परिणाम एक आता है कि आप सोच—विचार में पड़ जाते हैं। वह कोई बहुत गहरा परिणाम नहीं है। या आपके मन में और अनेक प्रश्न उठ आते हैं और उनकी चर्चा में आप पड़ जाते हैं। वह भी कोई बहुत गहरा परिणाम नहीं है। ऐसे तो अनेक जीवन आदमी सोचकर, विचारकर, प्रश्न उठाकर, जवाब खोजकर व्यय कर सकता है। किए ही हैं हमने। कुछ चलें। एक कदम भी चलें, तो हजार कदमों की चर्चा करने से बेहतर है। परिणाम तो आते हैं, लेकिन हितकर नहीं मालूम होते। कल मैंने जिन मित्र के लिए कहा था कि वे मुझे मूर्ख सिद्ध करने के लिए यहां आना चाहते हैं, तो मैंने स्वीकार कर लिया कि मैं मूर्ख हूं? अब कोई सिद्ध करने की जरूरत नहीं है। तो आज वे मेरे ऊपर हमला ही कर दिए! उन्होंने कहा, जब विवाद से सिद्ध नहीं होना है, तो अब हमले से सिद्ध होना है!

परिणाम उन पर भी आया! जो मैंने कहा, उसका परिणाम आया। पर परिणाम यह आया कि अब विवाद की जगह हमला करना है।

हमारा मन कैसे परिणाम लेता है! मैंने अगर स्वीकार ही कर लिया, तो बात समाप्त हो जानी चाहिए। लेकिन बात समाप्त नहीं हुई है। उनको और भी ज्यादा चेष्टा करनी पड़ेगी मुझे मूर्ख सिद्ध करने की। वह चेष्टा यह है कि मुझ पर हमला किए! उनको खयाल भी नहीं हो सकता कि वे क्या कर रहे हैं! खयाल ही होता, तो क्यों करेंगे!

जब आदमी मन के एक ढांचे में फंस जाता है, तो उसी में आगे बढ़ा चला जाता है। हर मन के ढांचे में आगे बढ़ने की तरकीब होती है, पीछे लौटने की तरकीब नहीं होती। पहले दिन वे चिल्लाकर व्यवहार किए। दूसरे दिन गाली देकर व्यवहार किए। आज हमला करके मारकर व्यवहार किए। वे एक ढांचे में फंस गए। तो अब वे ढांचे में बढ़ते चले जाएंगे। अब उनको कोई उपाय नहीं सूझेगा कि कैसे पीछे लौट जाएं!

उनका तो मैंने उदाहरण दिया। हम सब भी मन के ढांचों में फंसे हुए लोग हैं। और हमारे मन का ढांचा हमें आगे ही धकाए चला जाता है। तो जो हमने कल किया है, वही हमसे और आगे करवाए चला जाता है।

धार्मिक आदमी वही हो सकता है, जो मन के इस ढांचे को किसी जगह कहकर बाहर निकल सके कि बहुत चला तुम्हारे साथ, अब मैं लौटता हूं। अब बंद! अब तुम्हारा तर्क नहीं सुनूंगा; तुम्हारी व्यवस्था नहीं सुनूंगा; तुम्हारा हिसाब नहीं मानूंगा। बहुत माना।

अब मैं हटता हूं तुम्हारी लीक से ही हटता हूं।

लीक से ही आप हट जाएं, तो शायद वह घटना घट सके, जिसकी कृष्ण अर्जुन से बात कर रहे हैं। और वह घटना न घटे, तो जीवन व्यर्थ है। और वह घटना न घटे, तो जीवन सार्थक नहीं है। और वह घटना न घटे, तो हम जीए भी, मरे भी, उसका कोई भी मूल्य नहीं है।

आपके जीवन में यह मूल्य का फूल खिल सके, इस आशा से यह अध्याय पूरा करता हूं।